अमूल्य शास्त्र दानदाता

जैन समाज दानवीर

जैन समाजके धर्म धुरंधर

स्व. राजा बहादुर लाला सुखदेवसहायजी जौहरी

S. JWALAPRASHAD

लाला ज्वालाप्रसादजी जौहरी

मुख्यसहायकारी

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के धुरन्धारी पूज्य श्री खुबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य श्री तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज! आप श्रीने मुझ मायसे महा परिश्रम से हैदराबाद जैसा बडा क्षेत्र साधुमार्गीय धर्म में प्रसिद्ध किया व धर्मोपदेश से राजाबहादुर दानवीर लाला सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसादजी का धर्मप्रेमी बनाया उनके प्रतापसे ही शास्त्रोद्धार का यह महा कार्य हैदराबाद में हुए इस लिये इस कार्य के मुख्य सहायकारी आपही हुए जो जो भव्य जीवों इन शास्त्र द्वारा महालाभ प्राप्त करेंगे वे आपही के कृतज्ञ होंगे

शिष्य अमोल ऋषि

उपकारी महात्मा

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवरेन्द्र महा पुरुष श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के पाटवीय शिष्य वर्य, पूज्य पाद गुरु वर्य श्री रत्नऋषिजी महाराज!

आप श्री की आज्ञामे ही शास्त्रोद्धार का कार्य स्वीकार किया और आपके परमाशिर्वाद से पूर्ण कर सका इस लिये इस कार्य के परमोपकारी महात्मा आप ही हैं आप का उपकार केवल मेरे पर ही नहीं परन्तु जो जो भव्यों इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे उन सबपर ही होगा

दास अमोल ऋषि

आभारी महात्मा

कच्छ देश पावन कर्ता मोटी पक्ष के परम पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्यवर्य महात्मा कविवर्य श्री नागचन्द्रजी महाराज!

इस शास्त्रोद्धार कार्य में आद्योपान्त आप श्री मांगिन शुद्ध शास्त्र, हुंडी, गुटका और समय २ पर आवश्यकीय शुभ सम्मति द्वारा मदद देते रहनेसेही मैं इस कार्य को पूर्ण कर सका इस लिए केवल मैं ही नहीं परन्तु जो जो भव्य इन शास्त्रोद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे वे सब ही आप के आभारी होंगे

हिन्दी भाषानुवादक

पदाधारी पुज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य, आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्यवर्य बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज! आपने बडे साहस से शास्त्रोद्धार जैसे महा परिश्रम वाले कार्य का जिस उत्साहसे स्वीकार किया था उस ही उत्साह से तीन वर्ष जितने स्वल्प समय में अहर्निश कार्य को अच्छा बनाने के शुभाशय से सदैव एक भक्त भोजन और दिन के सात घंटे लेखन में व्यतीत कर पूर्ण किया और एसा सरल बनादिया कि कोई भी हिन्दी भाषा सहज में समज सके, ऐसे ज्ञानदान के महा उपकार तल दबे हुवे हम आप के बडे आभारी हैं

अापकी तर्फ से

अपनी छत्ती पदवि का त्याग कर हैद्राबाद सीकन्द्राबादमें दीक्षा धारक बाल ब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजी के शिष्यवर्य ज्ञानानंदी श्री देव ऋषिजी वैय्यावृत्यी श्री राज ऋषिजी तपस्वी श्री उदय ऋषिजी और विद्याविलासी श्री मोहन ऋषिजी इन चारों मुनिवरोंने गुरु आज्ञाका बहुमानसे स्वीकार कर आहार पानी आदि सुयोग पार का प्रयोग मिला दो प्रहर का व्याख्यान, प्रश्नोत्तरीसे वार्तालाप,कार्य दक्षता व समाधि भाव से सहाय दिया जिस से ही यह महा कार्य इतनी शीघ्रता से लेखक पूर्ण करे इस लिये इस कार्य दृष्ट उक्त मुनिवरों का भी बड़ा उपकार है

पंजाब देश पावन करता पूज्य श्री सोहन लालजी, महात्मा श्री माधव मुनिजी, शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी तपस्वीजी माणकचन्दजी, कवी वर श्री अमी ऋषिजी,सुवक्ता श्री दौलत ऋषिजी व श्री नथमलजी, पं श्री जोरावरमलजी कविवर श्री मानचन्द्रजी महासती सतीजी श्री पार्वतीजी गुणज्ञ सतीश्री श्री रंभाजी थोराजी सर्वज्ञ भंडार भीना सरवाले फतीरामजी बहादरमलजी बांठीया, सीकरी भंडार,कुचेरा भंडार,इत्यादिक की तरफ से शास्त्रों व सम्मति द्वारा इस कार्य को बहुत सहायता मिली है इस लिये इन का भी बहुत उपकार मानते हैं

६१ इस विश्व में प्रवर्ते ते अनेक मतांतरियों में से कोई तो एक ज्ञान करके ही मुक्ति मानते हैं क्रिया का उत्थापन हैं और कोई केवल क्रिया कर से ही मुक्ति मानते हैं वे ज्ञान की उत्थापना करते हैं परन्तु जिनेन्द्र भगवान फरमाते हैं कि—

हय नाणं किरियाहीण, हया अण्णाणओकिरिया॥पासंतो पंगुलोदड्ढो,धावमाणओ अंधओ॥१॥
संयोग सिद्धिए फलवयंति नहु एगचक्केण रहोपयाइ॥अंधोयपंगूयवणेसमिच्चा तेसंपउत्तानगरंपविट्ठा
नाणं पगासयं सोहओ,तवोसंजमोय गुत्तिकरो॥तिण्हंपिसमाउगेमुक्खो, जिणसासणे भणिओ ॥२॥

अर्थात्—जिस प्रकार अंधा और पंगुला दोनों अलग २ जगह में भटकते थे तब पंगुल ने अंधेको देखकर अपने पास बोलाया और पंगु के स्कन्धपर स्वार हो रस्ता बताता गया तैसे अंधा चलता हुवा दोनों भिन्न नगर को प्राप्त किया, ऐसे ही ज्ञान पंगू और क्रिया अन्धा दोनों अलग २ रहे तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है और ज्ञान सहित क्रिया की जाय तो मोक्ष नगर प्राप्त कर सकता है तथा जिस प्रकार दोनों चक्र से रथ चलता है उस ही प्रकार ज्ञान क्रिया दोनों से मोक्ष पंथ चलता है ज्ञान कर आत्मा में प्रकाश कर वस्तु (आश्रव) के यथार्थ स्वरूप को जानना संवर कर आश्रव का निरुंधन करना और तप कर पूर्व संचित आश्रवों का क्षय करना यों तीनों के संयोग से मोक्ष की प्राप्ति जिन शासन में कही है ॥ १ ॥ इस लिये सूत्रकृतांग में एकान्तवादी के मतों

का खण्डन कर अनेकांत वाद स्थापन किया है और भी यत " स्वपर समयाथ सूचनं, सूत्रा साऽस्मिस्त तेणि ॥ एतानि चास्य गुण निष्पन्नानि, मामानि सूत्राकृतमितीति " ॥ १ ॥ स्वमत सो जिन भाषित मत की और पर मत मा चारयाकादि मत की जिस के स्वरूप की इस में सूचना होने से इस का नाम सूत्र कृतांग है पुन ' दो चेव सुयक्खधा अज्झयणाई च हुंति तेवीसा।नेभिमुद्देसण काला, भायाराभो दुगुण मेतं ॥ १ ॥ अर्थात् इस सूत्र कृताग के दो श्रुतस्कन्ध है, प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन हैं और दूसरे के ७ अध्ययन हैं दोनों के मिलकर सब २३ अध्ययन हैं जिस में अलग२ अनेक हेतु दृष्टान्त कर स्वसमय परसमय का स्वरूप दर्शाया है

इस सूत्रकृतांग का अनुवाद मुख्यता में बाबू धनपतसिंह मनसुखाबाद की छपाई हुई प्रत से किया है और गोगा में कुचरा (मारवाड) के • दार से गया मेरे पास की प्रत के आधार से हिन्दी अनुवाद किया है न में छद्मस्थता स तथा दृष्टी फेर स दोष रहने का संभव है उन दोषों का शुद्धी कर विद्वान इस का पठन करें एसी विश्वास है

☞ परम पुज्य श्री कहानजी ऋषि महाराज की सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलकऋषिजी ने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिन्दी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रो की १०००—
१००० प्रतो को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादुरलाला
सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को अमूल्य लाभ दिया है

११ इस विश्व में प्रवर्ते ते अनेक मतांतरियों में से कोई तो एक ज्ञान करके ही मुक्ति मानते हैं र क्रिया का उत्थापन हैं और कोई केवल क्रिया कर से ही मुक्ति मानते हैं वे ज्ञान की उत्थापना करते हैं परन्तु जिनेन्द्र भगवान फरमाते है कि—

हय नाणं किरियाहीण हया अण्णाणा ओकिरिया॥पासंतो पगुलोदढो,धावमाणओ अधओ॥१॥
सयोग सिद्धिए कलवयति नहु एगचक्केण रहोपयाइ॥अधोयपंगूयवणेसमिच्चा तेसंपउत्तानगरपविट्ठा
नाणं पगासय सोहओ,तवोसयमोय गुत्तिकरो॥तिण्हपिसमाउगेमुक्खो, जिणसासणे भणिओ ॥३॥

अर्थात्—जिस प्रकार अंधा और पंगुला दोनो अलग २ जगल में भटकते थे तब पंगुल ने अंधेको देखकर अपने पास बोलाया और पंगुके स्कन्धपर स्वार हो रस्ता बताता गया वैसे अंधा चलता हुवा दोनों मिल नगर को प्राप्त किया, एसे ही ज्ञान पगू और क्रिया अन्धा दोनों अलग २ रहे तो कोइ भी कार्य सिद्ध नहीं होता है और ज्ञान सहित क्रिया की जाय तो मोक्ष नगर प्राप्त कर सकता है तथा जिस प्रकार दोनों चक्र से रथ चलता है उस ही प्रकार ज्ञान क्रिया दोनों से मोक्ष पंथ चलता है ज्ञान कर आत्मा में प्रकाश कर वस्तु (आश्रव) के यथार्थ स्वरूप को जानना संवर कर आश्रव का निरुंधन करना और तप कर पूर्व संचित आश्रवों का क्षय करना यों तीनों के संयोग से मोक्ष की प्राप्ति जिन शासन में कही है ॥ ३ ॥ इस लिये सम्यक्त्वांन में एकांतवादी के मतों

का खण्डन कर अनेकांत वाद स्थापन किया है और भी यत " स्वपर समयाथ सूचनं, सूचा साऽस्मिन्क तेति ॥ एतानि चास्य गुण निष्पन्नानि, नामानि सूत्रकृतायिति " ॥ १ ॥ स्वमत सो जिन भाषित मत की और पर मत सो चारवाकादि मत की जिस के स्वरूप की इस में सूचना होने से इस का नाम सूत्र कृतांग है पुनः ' दो चेव सुयक्खधा अज्झयणाई च हुंति तवीस॥नेत्तिमुद्देसण काला, आयाराओ दुगुण मेगं ॥ १ ॥ अर्थात् इस सूत्र कृतांग के दो श्रुतस्कन्ध है, प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन हैं और दूसरे के ७ अध्ययन हैं दोनों के मिलकर सब २३ अध्ययन हैं जिस में अलग२ अनेक हेतु दृष्टान्त कर स्वसमय परसमय का स्वरूप दर्शाया है

इस सूत्रकृतांग का अनुवाद मुख्यता में बाबू धनपतसिंह मकसुदाबाद की छपाई हुई प्रत से किया है और गौणता में कुचेरा [मारवाड] के • द्वार से गया मेरे पास की प्रत के आधार से हिन्दी अनुवाद किया है ग में छद्मस्थता से तथा दृष्टी फेर से दोष रहने का संभव है उन दोषों का शुद्धी कर विद्वज्जन इस का पठन करें एसी विज्ञप्ति है

☞ परम पूज्य श्री कहानजी ऋषि महाराज की सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी ने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिन्दी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रो की २०००— १००० प्रतो को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादुर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को अमूल्य लाभ दिया है

“सूयगडांग सूत्र की विषयानुक्रमणिका”

द्वितीय श्रुतस्कंध

॥ द्वितीय " सूयगडांग सूत्र " ॥

श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार

संचालक

श्री जैन ... श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जयपुर

॥ प्रथम श्रुत स्कंध ॥

॥ स्वसमयपरसमयनामक प्रथम मध्ययनम्॥

बु० जाने ति० तोडे ब० बन्धन प० जानकर कि० कैसा आ० कहा ब० बन्धन, वी० वीरने कि०

बुज्झिज्जत्ति तिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया, किमाह बंधण वीरो, किं वा जाणं

इस संसार में कितनेक ज्ञान मात्र से मुक्ति मानते हैं, तो कितनेक केवल क्रिया से ही मुक्ति मानते हैं, परंतु जैन ज्ञान और क्रिया दोनों से मुक्ति मानते हैं सो इस श्लोक से दर्शाते हैं षट्काया का स्वरूप को पहिचान कर कर्मबंध तोडो अर्थात मुक्तिके बाधक ज्ञानावरणादिक अष्ट प्रकारके कर्मरूप बंधन को ज्ञान परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से तोड कर मुक्ति प्राप्त करो ऐसा श्री सुधर्मस्वामिभाषित वचन सुनकर

क्या जा० जानता हुआ वि तोड़े (१) ॥ १ ॥ चि० सचित्त अ० अचित्त प० मध्यकर कि० थोडामी अ दूसरे को म० अच्छा जाने ए० ऐसे दु० दुःख से ण नहीं मु० मुक्त होवे (२) स० स्वय नि घातकरे पा० प्राणी की म० अथवा भ० दूसरे से घा० घात करावे ह० घात करते को अ० अच्छा जाने वे० वैरका व० बढाता है अ० आत्माका (३) जे० जिसके कु० कुलमें स उत्पन्न होवे जे० जिसके

तिउटइ (१) ॥ १ ॥ चित्तमत मचित्तं वा, परीगिज्झ किसामवि, अण्णं वा, अणुजाणाइ, एव दुक्खा ण मुच्चइ (२) सय निवायए पाण, अदुवा अण्णेहि घायए, हणतं वा णुजाणाइ, वेर वड्ढइ अप्पणो (३) जेसिं कुले समुप्पन्ने,

जम्बूस्वामी पूछते हैं कि:—श्री महावीर प्रभुने बंधन कैसा कहा है और क्या जानकर उस को तोडना ॥ १ ॥ अब श्री सुधर्मस्वामी कर्मबंध के कारण बताते हैं कर्मबंध के दो कारण है आरंभ और परि ग्रह जिस में परिग्रह दो प्रकार के हैं (१) मनुष्य पशुआदि सचित्त, (२) वस्त्र भूषण मकानादि अचित्त यह दोनों प्रकार के परिग्रह स्वतः धारन कर अन्य की पास धारन करावे और परिग्रह धारण करनेवाले को अच्छा भी जाने. इस तरह आचरण करनेवाला दुःख से मुक्त नहीं होता है (२) अब जहां परिग्रह है वहां आरंभ है और जहां आरंभ है वहां प्राणातिपात है सो कहते हैं पर परिग्रहमन्त पुरुष असंतोषी होता हुवा परिग्रह की उपार्जना करने के लिये तथा प्राप्त परिग्रह का संरक्षण के लिये स्वयं षट्काय के

साथ वा या सं० रहे न० मनुष्य म ममत्ववान लु० पीडित होता है बा० अज्ञानी अ० परस्पर में मु० मूर्च्छित होता हुवा (४) ॥ २ ॥ वि० धन सो० स्वजनादि चे निश्चय स० सर्व ए० यह ण० नहीं ता० रक्षण करे स० जानकर जी० जीवितव्य चे० निश्चय क० कर्म से ति० मुक्त होवे (५) ॥ ३ ॥ ए० ये

जेहिं वा संवसे नरे, ममाइ लुप्पइ बाले, अण्णेअण्णेहिं मुच्छिए (४)॥ २ ॥

वित्तं सोयरिया चेव, सव्वमेयं ण ताणइ, संखाए जीवियं चेव, कम्मुणा उ तिउ

ट्टइ (५) ॥ ३ ॥ एए गंथे विउक्कम्म, एगे समण माहणा अयाणता विउस्सि

जीवों की घात करता है, अन्य की पास घात कराता है, और घात करनवाले को अच्छा जानता है इस तरह जीवों की घात करनेवाला अपनी आत्मा का वैर की वृद्धि करता है इस से वह दुःख से मुक्त नहीं होता है (१) अज्ञानी मनुष्य जिस के घर में उत्पन्न होता है, और जिस की साथ रहता है उन माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र, ज्ञाति आदि में ममत्ववान् होता हुवा अनेक कर्मों से पीडित होता है भव भ्रमण में फसता है ॥ (४) ॥ २ ॥ यह बंधन का कारण दर्शाया अब कैसा जानता हुवा बंधन से मुक्त होवे सो बताते हैं इस धन धान्यादिक सचित्त अचित वस्तु तथा स्वजन प्रमुखमें से कोइ भी मुझे बचाने को समर्थ नहीं है और आयुष्य भी अल्प तथा अस्थिर है इस लिये आरंभ, परिग्रह, और स्वजन स्नेहादि बंधनों को ज्ञान परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर कर्म बंध से मुक्त होना (५) ॥ ३ ॥

गे० ज्ञान वि० छाण्कर ए कितनेक स० साधु मा० माहण अ० अजान वि० कदाग्रही स० लुब्ध हो रहे
े का० कामभोग में मा० मनुष्य (६) ॥ ६ ॥ सं० है प० पांच म० मोटे भू भूत इ० यहां ए० कि
त क र आ० कहा पु पृथ्वी आ० पानी ते० अग्नि वा० या वा० वायु आ आकाश पं० पांचवा (७)
ए य प० पांच म० महाभूत त० उन से ए एक आ० कहा अ० अथ ते० उसका वि० विनाश से वि०

गंथं विहाय इह सिक्खमाणा, उठाय सुबंभचेरं वसेज्जा ।

घा, सत्ता कामेहि माणवा (६) ॥ ४ ॥ संति पंच महब्भूया, इह मेगेसि
माहिया, पुढवी आउ तेऊ वा, वाउ आगास पंचमा (७) एए पंच महब्भूया
तब्भो एगोत्ति आहिया, अह तेसिं विणासेण, विणासो होइ देहिणो (८)

इस तरह ज्ञान और क्रिया से मुक्ति होती है ऐसा स्वसमय का अधिकार कहकर परसमय का अधिकार कहते हैं
कितनेक शाक्यादि साधु ब्राह्मण परमार्थ को नहीं जानते हुए अपने मत के ही कदाग्रही बनकर अरिहंत
भाषित करुणारसमय शास्त्रों का त्यागकर काम भोगों में आसक्त होते हुवे प्रवर्तते हैं (६) ॥ ६ ॥ अब
चार्वाक का मत कहते हैं इस जगत् में सर्व लोकव्यापी पंच महाभूत हैं पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु,
और आकाश. (७) इन भूतों से अव्यतिरिक्त अन्य कोइ पदार्थ नहीं है अन्य दर्शनी जो अन्य तरह से कल्पना
करते हैं वैसा नहीं है पर लोक को जानेवाला, सुख दुःख को भोगनेवाला, जीव कोइ अन्य पदार्थ नहीं
है उन को कोइ परवादी प्रश्न करे कि अहो चार्वाक ! तुमारा मत में पंच महाभूत से अन्य कोइ

विनाश हो होता है दे० जीवका (८) इ० यह प० पांच भू० भूत वादीका मत ग० कहा ॥८॥ ज० जैसे पु० पृथ्वीका थू० स्तूप ए० एक णा० अनेक प्रकार ही दिखता है ए० ऐसे भो अहो क० पूर्ण लो लोक वि० आत्मा णा० अनेक प्रकार से ही दिखता है (९) ए० ऐसे ए कितनेक ज० बकते हैं म०

इति पंच भूयवाइगता ॥ ५ ॥ जहाय पुढवीथूभे, एगे णाणाहि दीसइ, एव भो कसिणे लोए, विण्णू णाणाहि दीसइ (९) एव मेगेचि जप्पंति, मंदा आरभ

आत्मा नहीं है तो उस का मरण हुवा ऐसा कैसे कहाजाय? इस का उत्तर चार्वाकदर्शनीय कहते हैं कि इन पंच महाभूतों के विनाश से आत्मा का भी विनाश होता है उस को ही मृत का व्यवहार करते हैं परंतु जो ऐसा कहते हैं कि आत्मा यहां से चलकर अन्यस्थान जाता है, कर्मवश से सुखी दुःखी होता है, यह सर्व मुग्ध रंजन मानना इस का उत्तर तज्जीव तच्छरीरवादी से जानना (८) ॥ ९ ॥ यह पंच भूतिकवादी का मत कहा अब आत्माद्वैतवादि का मत कहते हैं जैसे पृथ्वीरूप स्तूप एक होने पर भी नदी, समुद्र, पर्वत, ग्राम, नगर इत्यादि नाना प्रकारके रूप में दिखता है, और इन की बीच में पृथ्वी का अंतराल नहीं दीखता है वैसे ही समस्तलोक चराचर रूप एक ही है और वही चराचर रूप आत्मा द्विपद, चतुष्पद पशुपक्ष्यादि नाना प्रकार से दिखता है परंतु जो ऐसा कहते हैं कि शरीर में

मग आ आरम्भमें णि० आसक्त ए० पृथक कि० करके स० स्वयं पा० पाप ति० तीव्र दु० दुःख
में नि० जाताहै (१०) ६ यह स० सर्वगतवादी का मत ग० कहा ॥६॥ प० अथग क सर्व आ आ
त्मा म० जा ["]ि० अज्ञानी से० जो प पण्डित सं० है पि० परलोक में न० नहीं ते० वे सं० है न०

णिस्सिया, एगे किच्चा सयं पावं, तिव्वं दुक्खं नियच्छइ (१०) इति सव्वग
तवाइगता ॥ ६ ॥ पत्तेयं कसिणे आया, जे बाला जे अ पंडिया, संति पिच्चा

मत्मा भिन्न है यह मिथ्या है * (९) अब इस का उत्तर देते हैं कितनेक आत्माद्वैतवादवाले मंद पु
रुषों का यह बकवाद है इस जगत् में कितनेक आरंभ में आसक्त जन स्वयं पाप करके स्वयं ही तीव्र
दुःख पाते हैं परंतु अन्य नहीं पाते हैं मतलब कि जो जीव जगत में असमंजस चोरादिक कर्म करता है,
वह छेदनभेदनादिक अनेक दुःख भोगता है और जो जीव अच्छा समाचरता है वह सुखी होता है यदि
सब जीव की आत्मा एक ही होवे तो सर्व जीव को दुःख या शाताएक क्यों नहीं होना चाहिये ? इस लिये
तुमारा यह वचन मिथ्या है (१०) ॥ ६ ॥ अब तज्जीवतच्छरीरवादिका मत कहते हैं वे कहते हैं

* एक एवही भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ भिन्न २
भूतों में रहाहुवा भूतात्मा एक ही है जैसे जल से भरेहुवे घड़ोंमें चन्द्रमा भिन्न २ दिखता है वैसे ही एक

नहीं स प्राणी उ० उत्पन्न होने वाले (११) न० नहीं पु० पुण्य पा० पाप ना० नहीं लो० लोक इ० इस से प० अपर स० शरीरके वि० विनाशसे वि० विनाश हो० होता है

न ते संति नत्थि सत्तोववाइया (११) नत्थि पुण्णे च पावे वा, नत्थि लो
ए इतो परे, सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥१२॥ तज्जीवसरीरवाइ ग
ता ॥ ७ ॥ कुव्व च कारय चेव, सव्वं कुव्व न विज्जइ, एवं अकारओ अप्पा

कि पांच भूतों एकत्रित हो कर काया के आकार में परिणम कर चेतना उत्पन्न करते हैं इस लिये शरीर शरीर में आत्मा भिन्न है जगत् में अज्ञानी और विद्वान् हैं वे सर्व भिन्न २ हैं, परंतु एक आत्मा सर्व व्यापी मानना नहीं इस में जैन का मत और इस का मत एक ही हुवा परतु जो भिन्नता है वह बताते हैं वे कहते हैं कि जहां लग शरीर है वहांलग आत्मा है शरीर का विनाश होने पर आत्मा का अस्तित्व नहीं है वैसे ही प्राणी भवांतर में जाकर उत्पन्न नहीं होते हैं यहां शिष्य प्रश्न करते हैं कि पूर्व कहे हुवे भूतवादि में और यह तज्जीव तच्छरीरवादि में क्या भिन्नता है? गुरु उत्तर देते हैं कि भूतवादी के मत में वेही काया के आकार में परिणम कर धावनादिक क्रिया करे, और इस के मत में पंचभूत काया के आकार में परिणम कर चैतन्य स्वरूप आत्मा उत्पन्न हो जावे परतु भूत से आत्मा पृथक् नहीं है यही विशेषता है (११) उन की वक्तव्यता यह है कि पुण्य पाप कुच्छ भी नहीं है वैसे ही जो दिखने में आ

मूस आ आरम्भमें नि० आसक्त ए० एकेक कि० करके स० स्वय पा० पाप ति० तीव्र दु० दु स में नि० जावारे (१) इ यह स० सर्वगतवादी का मत ग० कहा ॥६॥ प० अलग क० सर्व आ आ त्मा मे० जो उ० अज्ञानी मे० जो प पण्डित स० है पि० परलोक में न० नहीं ते० वे सं० है न०

णिोस्सया, एगे किच्चा सय पावं, तिव्व दुक्ख नियच्छइ (१०) इति सव्वग

तवाइगता ॥ ६ ॥ पत्तेय कसिण आया, जे बाला जे अ पडिया, सति पिच्चा

आत्मा भिन्न है यह मिथ्या है * (१) अब इस का उत्तर देते हैं कितनेक आत्माद्वैतवादवाले यह पु रुषों का यह बकवाद है इस जगत् में कितनेक आरंभ में आसक्त जन स्वयं पाप करके स्वयं ही तीव्र दुःख पाते हैं परंतु अन्य नहीं पाते हैं मतलब कि जो जीव जगत् में भतभेभन चोरादिक कर्म करता है, वह छेदनभेदनादिक अनेक दुःख भोगता है और जो जीव अच्छा समाचरता है वह सुखी होता है यदि सर्व जीव को आत्मा एक ही होवे तो सर्व जीव को दुःख या शातायक क्यों नहीं होना चाहिये ? इस लिये तुमारा यह वचन मिथ्या है (१०) ॥ ६ ॥ अब तज्जीवतच्छरीरवादिका मत कहते हैं वे कहते हैं

* एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ भिन्न २ भूतों में रहाहुआ भूतात्मा एक ही है जैसे जल से भरेहुवे घडोंमें चंद्रमा भिन्न २ दिखता है वैसे ही एक आत्मा अनेक रूप दिखता है

त्मप ए ऐसे लो सोकर्म वे० वने क० करास सि० हाय त० ...
मूर्ख मा० आरंभमें नि आसक्त (२८) धे० हे पं० पांच म० महाभूत इ० यहां ए० कितनेक
भा० कहा आ० आत्मा छ० छट्ठा पु० और आ० कहतें आ आत्मा लो० लोक सा० शाश्वत (१५)
दु० दोनों प्रकार से ण० नहीं वि० विनाश पातोर नो नहीं उ० उपजे अ० अविद्यमान स० सर्व

सति पच महब्भूया इह मेगेसिं आहिया आयछट्ठा पुणो आहु आया लोगे य
सासए (१५) दुहओ ण विणस्सति नोय उप्पज्जए असं सव्वे वि सव्वहा भा
वा णियतीभाव मागया (१६) इति आयाछट्ठ वाइगता ॥ ९ ॥ पंच स
धे वयतेगे घालाउ खणजोइणो, अण्णो अणण्णो णेवाहु हेउय च अहेउय

अव उन के मत का निराकरण करते हैं शरीर से आत्मा अभिन्न है, और आत्मा अकर्ता है ऐसा जो मानते हैं, उन के मत में लोक की विचित्रता कहां से होवे? इस तरह बकवाद करनेवाले अज्ञान रूप तिमिरमें से निकलकर अन्य अंधकार में जाते हैं अर्थात् ज्ञानावरणादिक कर्म की उपार्जना करते हैं अथवा तो वे आत्मा का अभाव होने से पुण्य पाप नहीं मानते हैं इस से आरंभ में आसक्त बनकर वे मूर्ख तम (नरक) में जाते हैं इस तरह सांख्य मत का वर्णन कहा (२८) ॥ ८ ॥ अब आत्मषष्ठवादि का मत कहते हैं वे कहते हैं कि इस संसार में जैसे पच महाभूत हैं वैसे ही छट्ठा आत्मा है वह शाश्वत, सर्व व्यापी है (१५)

दे० यात्मा का (१२) ॥७॥ कु० करता का० कराता स० सर्व कु० करता न नहीं वि० विद्यमान है ए० ऐसे अ अक्रिय अ० आत्मा ए० ऐसे ते० वे प० पृष्ट (११) ज० जो ते० वे उ० उ

एव तेउ पगब्भिया (१३) ज ते उवाइणो एव, लोए तेर्सि कओ सिया, त

माओ ते तम जंति, मदा आरभनिस्सिया (१४) अकिरिया वाइगता ॥ ८ ॥

था है यह ही लोक है इस से अन्य कोइ लोक नहीं है क्यों कि शरीर का विनाश होने से आत्मा का भी विनाश होता है इस लिये आत्मा का अभाव में पुण्य पाप तथा अन्य लोक की संभावना कहां से होवे ! इस तरह अपने मत के प्रतिपादन करनेवाले को इतना उत्तर देना कि यदि आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है और वह सुख दुःख नहीं भोगता है, तो इस जगत् में जो विचित्रता दिखने में आती है वह नहीं होना चाहिये कोइ धनवान था, कोइ दरिद्र, काइ सुरूप, तो कोइ कुरूप, सुखी, दुःखी, रोगी, यह सब विचित्रता कर्म की है उस को भोगने के लिये आत्मा को पर लोक में जाना पडता है इस लिये तुम्हारा यह मंतव्य युक्ति पूर्वक नहीं है (१२) अब अक्रियावादि का मत कहते हैं आत्मा अमूर्त, नित्य तथा सर्वव्यापी है इस लिये वह स्वयं क्रिया करता नहीं है और अन्य को भी क्रिया कराता नहीं है यों सर्व क्रिया करने की नास्ति होने से आत्मा अक्रिय है. ऐसे यह अक्रियावादी (सांख्य) [illegible]

[illegible]
अ० घरमें आ० रहने वाले अ० अरण्यवासी वा० अथवा प० प्रव्रजित इ० यह द० मत में आ० आश्रित स सर्व दु० दुःखोंसे मु० मुष्योंसे [१९] ते वे णा० नहीं सं० संधि ण० मानते न० नहीं ते० वे ध० धर्मके वि० जान म० मनुष्य जे० जितने वा० वादिओ ए ऐसे ण नहीं ते० वे

मावसतावि अरण्णा वा वि पव्वया, इमं दरिसण मावण्णा, सव्वदुक्खा विमुच्चइ (१९) तेणावि सधिं णच्चाण न ते धम्मविओ जणा जे ते उवाइणो एव, ण ते ओहंतराहिया ॥ २० ॥ तेणावि सधिं णच्चाणं न ते धम्मविओ जणा जे ते उ वाइणो एव ण ते संसारपारगा ॥ २१ ॥ ते णावि संधिं णच्चाण, न ते

आत्मा किस से बना, आत्मा नित्य, अनादि अनंत और शाश्वत है वैसा भी नहीं मानते हैं (१७) ॥ १० ॥ पृथ्वी, पानी, तेउ और वायु इन चार धातु से लोक बना हुआ है इस से अन्य कोइ आत्मा नहीं है, इस तरह स्वतः को पंडित मानते हुवे बोलते हैं यह भी क्षणिकपना से क्रिया के सबंध को मिलते नहीं है इस लिये उन को भी अफलवादी कहना (१८) ॥ ११ ॥ वे पूर्वोक्तदर्शनी अपने २ दर्शन में मुक्ति का कारण बताते हैं वे कहते हैं कि चाहे तो गृह में निवास करते होवे चाहे तो अरण्य में रहते होवे या चाहे तो प्रव्रजित होवे परन्तु वे सर्व हमारे मत में आजाने से सर्व दुःख से मुक्त होते हैं (१९) वे पंचभूतवादी प्रमुख ज्ञानावरणादिक कर्म की संधि नहीं जानते हुवे दुःख से मुक्त होने को सावधान होते

म० सर्वथा भा भाव नि० नित्यभाव में आ० भास (१६) पं० पांच सं० स्कन्ध म० कहतें प० क्षिनक वा० अज्ञानी स सत्ययोगी अ० अन्य अ० अनन्य ण० नहीं आ कहते हैं हे० हे युक्त अ० अहेतुक (१७) पु० पृथ्वी आ० पानी ते० अग्नि ते० तैसे वा० वायु ए० एकही स०

(१७) अफलवादीगता ॥ १० ॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊ य एगओ, (१८) ॥ १२ ॥ अगार-वचारी धाउणो रूव, एव माहसु जाणया (आत्वर)

वे मानते हैं कि पदार्थों का दो+कारणों में से किसीभी कारणसे विनाश नहीं होता है वैसेही, अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति भी नहीं होती है, इसलिये सर्व पदार्थ नित्यभाव में रहते हैं अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं (१६) ॥ ९ ॥ अफलवादी कहते हैं कि इस जगत् में पांच स्कंध हैं विज्ञान रस की समझ, वेदना सुख दुःख की समझ, संज्ञा—धर्म की समझ, संस्कार—पृथिव्यादि, और धातु रूपादि, इन के सिवाय अन्य कोई आत्मा जगत् में नहीं है और भी वे अज्ञानी कहते हैं कि वे क्षणिक हैं ये क्षणिकवादी चार्वाक वादि की तरह आभिन्न और आत्मषष्ठवादी की तरह आत्मा भिन्न यह दोनों प्रकार नहीं मानते हैं वैसे ही

\+ विनाश दो प्रकार से होते हैं एक सहेतुक विनाश और एक निर्हेतुक विनाश जैसे क्षण २ में बौद्ध मत में वस्तु का क्षिण होना यह निर्हेतुक विनाश और वैशेषिक मत में लकड़ी आदि संयोग से विनाश

पुत्र म० महावीर ए ऐसे आ० फरमाया जि० जिनोत्तम वि० एसे भ० भगवा प्रु (२७)

पुत्र म० महावीर ए ऐसे आ० फरमाया जि० जिनोत्तम
आ० करा पु० और भी ए० कितनेक उ० उत्पन्न हुवे पु० मलग२ जि० जीव वे० वेदते हैं सु० सुख दु० दुःख अ० अ
यता लु० जाते हैं ठा० स्थान से (१) न० नहीं त० वह स० स्वयं क० कृत दु० दुःख क० करा से अ०

उच्चावयाणि गच्छंता, गब्भमेस्सति णतसो; नायपुत्ते महावीरे, एव माह जिणोत्तमे॥ त्तिबेमि

॥ २७ ॥ इति ससमयपरसमयज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो

आघाय पुण एगेसिं, उववण्णा पुढो जिया, वेदयति सुह दुक्खं, अदुवा लुप्पति ठाणओ ॥१॥

(१७) इस तरह सूत्रविरोधी ऊचनीच स्थानक में परिभ्रमण करते हुवे आगामिक काले अनंता जन्म मरण करेंगे ऐसा जिनोत्तम श्री ज्ञातपुत्र महावीर देवने कहा है, और वैसाही में कहता हूं यह स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देशा पूर्ण हुवा इस उद्देशा में भूतवादी प्रमुख परवादिके मतको और आगे भी मतान्तरों का स्वरूप कहते हैं

नियतवादी ऐसा कहते हैं नरकादिक जो जो जीव हैं वे अपने देहस्थित सुख दुःख वेदते हैं अथवा वे प्राणी सुख दुःख अनुभवते हुये एक स्थान से अन्य स्थान जाते हैं ॥ १ ॥ जो प्राणी सुख दु ख अनुभवते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान उत्पन्न होते हैं, वे दुःखादिक अपने किये हुवे नहीं हैं वैसे ही अन्य ईश्वर स्वाभावादिक कृत भी नहीं हैं यदि स्वयंकृत सुख दुःख होते तो सर्व जीव व्यापारादिक सरिखा करते

भो० भोष त० विरन वाले (२०) ण० नहीं ते० वे स० संसारके पा० पारगामी (२१) ण० नहीं
ते० वे ग० गर्भके पा० पारगामी (२२) ण० नहीं ते० वे ज० जन्मके पा पारगामी [२३) ण० नहीं
ते वे दु० दुःखके पा० पारगामी (२४) ण० नहीं ते वे मॉ० मृत्युके पा० पारगामी (२५) णा०
अनेकप्रकारके दु० दुःख अ० भोगवे पु० बारम्बार स० संसार च० चक्रवालमें म० मृत्यु वा० व्याधि ज मृ
द्धावस्था कु० व्याकुल (२६) उ ऊंच ण० नीच ग० भावे ग० गर्भमें ए० भावे णं० अनन्त ना० ज्ञात

धम्मविओ जणा, जे ते उ वाइणो एव, ण ते गब्भस्स पारगा ॥२२॥ ते णा
वि संधिं णच्चाण, न ते धम्मविओ जणा, जे ते उवाइणो एव ण ते जम्मस्स पारगा॥२३॥
ते णावि संधिं णच्चाण, न ते धम्मविओ जणा, जे ते उ वाइणो एव णते दुक्खस्स पारगा।२४।
ते णावि संधिं णच्चाण न से धम्मविओ जणा जे ते उ वाइणो एव ण ते मारस्स पारगा॥ २५ ॥
णाणा विहाई दुक्खाइ अणुहवंति पुणो २ संसार चक्कवालमि मच्चुवाहिजराकुले ॥ २६ ॥

हैं परंतु वे धर्मनिष्ट यति धर्मको नहीं जाननेवाले और असमंजस वचन बोलनेवाले भवसमुद्रकोपार नहीं हो
सकते हैं (२०) वैसे ही वे लोक संसार के पारगामी, गर्भ के पारगामी, जन्म के पारगामी, दुःख के
पारगामी, और मृत्यु के पारगामी नहीं हो सकते हैं ॥ २१ से २५ ॥ परंतु वे संसार रूप चक्रवाल में

एवं ए० कितनेक पं० पार्श्वस्थ तें० व मु० फिर वि० धीठ प ऐसे उ० सावध हुवे भी प० नहीं तें० वे दु० दुःख से वि० छूटेंगे (५) ज० वेगवन्त मि० मृग ज० जैसे सं० होता हुवा प धरण व० वर्जित अ० आशङ्कासे स० शंकाते हैं स० शंकितसे अ नहीं शकाते (६) प रक्षण स्थानसे सं० शंकाते पा० पाश स्थानसे अ० अशंकाते अ० अज्ञान से भ० भयसे स० व्याकुल स० वह प दोडते हैं त० तहां तहां (७) अ० अथ सं०

एव मेगेउ पासत्था, ते भुज्जो विप्पगब्भिया एव उवट्ठिया सता, ण ते दुक्खविमोक्खया ॥५॥

जविणा मिगा जहा सता परिताणेण वज्जिया, असकियाइ सकंति, सकियाइ असकिणो॥ ६॥

परियाणिआणि सकंता, पासिताणि असकिणो, अण्णाणभयसंविग्गा, स पलिंति तहिंतहिं ॥७॥

सुख दुःख से अज्ञान व बुद्धि रहित हैं ॥ ४ ॥ इस तरह कितनेक पार्श्वस्थ, अत्यंत धीठ अपनी मानी हुइ मोक्ष मार्ग की क्रियायें प्रवर्तते हुए दुःख से मुक्त नहीं होते हैं अर्थात् मुक्ति नहीं प्राप्त करसकते हैं ॥ ५ ॥ अब अज्ञानवादी के मत का खंडन करते पहिले उन की अज्ञानता मृग के दृष्टांत से बताते हैं जैसे त्राण रहित भयाकुल कोइ मृग प्राण बचाने को भागता हुआ जहां पाश नहीं है वहां शंका करता है, और जहां शंका स्थान पाशादि होवे वहां शंका नहीं करता है ॥ ६ ॥ और वह मृग रक्षा का स्थान की शंका करता हुआ और पाश की शंका नहीं करता हुआ अज्ञानपने से और भय से व्याकुल बन कर जहां पाशादिक स्थान है वहां ही बारम्बार जाता है ॥ ७ ॥ अब जो वह मृग पाश की उपर से या नीचे से चलाजावे तो उस से

दूसरे का क० कृत सु० सुख अ यद्यपि दु दुःख स० सैद्धिक वा० वा अ० असैद्धिक (२) स० स्वयं कृ० कृत न नहीं अ० दूसरे का वे० भोगवते है पु अलग २ जि० जीवों सं० सम्प्रति त० वह त० तथा ते० उनका इ० यहां ए किवनेक आ० कहा (३) ए० एसे ए० यह जं० जल्पने वाले वा० अज्ञानी प० पण्डितपनामानने वाले नि० नियत अनियत सं० एकान्त अ० अजान अ० निर्बुद्धिक (४) ए

न त सय कड दुक्खं, कओ अण्णकडं च ण, सुहं वा जइ वा दुक्खं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥

सय कड न अण्णाहिं वेयंति पुढो जिया संगइअं त तहा तेसिं इह मेगेसि आहियं ॥ ३ ॥

एव मेयाणि जप्पंता, बाला पंडियमाणिणो निययानियय संतं, अयाणंता अबुद्धिया ॥ ४ ॥

दुखे सब सरिखे क्यों नहीं होय ? यदि ईश्वरादि कृत होवे तो जगत् की विचित्रता क्यों होवे इसलिये स्वयं कृत तथा ईश्वरादि कृत सुख दुःख नहीं हैं वे सुख दो प्रकार के है सैद्धिक (उपरका) और असैद्धिक (अंदर का) मतलब कि एक कारण से उत्पन्न होता है और दूसरा स्वाभावीक उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ यह सुख दुःख यदि किसीने नहीं किया तो जीव सुखी दुःखी क्यों होता है ? जीव अपना किया हुवा, या अन्य का किया हुवा सुख दुःख वेदता नहीं है; किन्तु भवितव्यता का किया हुवा ही सुख दुःख को वेदता है ॥ ३ ॥ स्वतः को पंडित माननेवाले बाल इस तरह बकवाद करते हैं, और जो सुख दुःख नियति

आरम की न० नहीं स शका करते अ० मुग्ध अ० अज्ञान (११) स० सर्वात्मक लोभ ति उत्कर्ष मान म० सर्व णू० माया वि० दूर करके अ० क्रोध म० कर्मांशरहित ए० यह अ० अर्थ मि मृग चु० छोडे (१२) ज० जो ए० इसे न० नहीं अ जाने मि० मिथ्यादृष्टि अ० अनार्य मि० मृग स पा० पाशमें बन्धा घे० वे घा० घातको ए० प्राप्त होते हैं णं० अनंत बार (१३) मा० ब्राह्मण स

धम्मपण्णवणा जासा,त तु सकतिमूढगा, आरम्भाइं न सकति,अविअत्ता अकोविया ॥११॥

सव्वप्पग विउक्कस्स सव्वणूम विहूणिया, अप्पत्तिय अकम्मंसे, एयमट्ठ मिगेचुए ॥१२॥

जे एय नाभिजाणति,मिच्छादिट्ठी अणारिया,मिगा वा पासबद्धा ते घायमेसाति णतसो॥१३॥

शंका करते हैं और आरम्भादिक पाप के कारण में शंका नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ क्रोध, मान माया और लोभ का क्षय करके जीव कर्म रहित होता है, ऐसा यह बाल अज्ञानी मृग की सदृश नहीं जानता है इसलिये उसका नहीं छोड देता है ॥ १२ ॥ जो मिथ्यादृष्टि अनार्य कर्म क्षय करन का उपाय नहीं जानते हैं वे मृगकी सदृश पाश में बंधाए हुवे आगामिक अनन्त काल तक जन्म मरण करेंगे ॥ १३ ॥ कितनेक ब्राह्मण तथा परिव्राजक अपनाही ज्ञानपना अच्छा बतलाते हैं और भिन्न २ ज्ञान परस्पर विरुद्ध संदेह उत्पन्न करता है, इसलिये अज्ञान ही अच्छा है ऐसा अज्ञान वादी कहते हैं इसलिये सर्व लोक में

वह प मास होवे ब बंध स्थान को अ० नीचे व० बधका वा० उपर मु छूटे पा० पांवके पा० पाशसे त० उसे म० अज्ञानी प० नहीं दे०देखे (८) अ० अहित अ० आत्मा अ० अहित प प्रज्ञा वि० विषमस्थान णु भाव स बन्धाहुवा प० पांव पा पाशमें त० वहां घा० घात नि मास होवे (९) ए० ऐसे स० साधु ए कितनेक मि मिथ्यादृष्टि अ अनार्य अ० अशंकित स० शंका करते हैं सं० शं० कासे अ० नशंकावे (१) ध धर्म परूपा मा० जो सा वह त० उसे सं० शंका करवते मू मूढ आ०

अह त पवज्ज वज्झं, अहे वज्झस्स वा वए मुच्चेज्ज पयपासाओ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अहिअप्पाअहियप्पण्णाणे, विसमंतेणुवागते, सबद्धे पय पासेण, तत्थ घायं नियच्छइ ॥ ९॥

एवं तु समणा एगे, मिच्छदिट्ठी अणारिया, असंकियाइं संकंति, संकियाइं असंकिणो ॥ १० ॥

मुक्त होसकता है परंतु वह मन्द प्राणी उस का उपाय नहीं देख सकता है ॥ ८ ॥ अब अहितात्मा और अहित प्रज्ञा का धारक वह मृग पाश में आवे और वहां आकर पाश में बंधाया हुवा घात को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥ जैसे वह मृग पाशमें पडता है वैसेही कितनेक अनार्य मिथ्या दृष्टि श्रमण अशंकित जो धर्म के अनुष्ठान उस में शंका करते हैं और हिंसादिक जो शंकित स्थानक है वहां कुच्छ भी शंका करते नहीं हैं ॥ १ ॥ और भी वे मुग्ध, विवेक विकल, तथा अपंडित,

अ० अपनका प दूसरे को ना० नहीं समर्थ कु० कहांसे अ अज्ञानीओं सा० शिक्षादेने को (१७) व वन में मू० मूर्ख ज जैसे ज० जीव गू० मूर्ख पे लेजानेवाला दो० दोनोंही ए० य अ० अजान ति० तीव्र सा० शोक का णि० प्राप्त होवे (१८) अ० अधा म मर्गको प० रस्तमें णि० लेजाता दू० दूर म०अध रस्त ग० जाताहै आ० जावे उ० उन्मार्ग ज० जीव अ० अथवा प० रस्तानुगामी (१९) ए० ऐसे

अण्णाणियाणवीमसा,णाणेणविनियच्छइ,अप्पणोयपरनालं,कुतोअण्णाणुसासिउ ॥ १७ ॥

वणेमूढेजहाजतू मूढणयाणुगामिए,दोविएए अकोविया, तिव्व सोय णियच्छइ ॥१८॥

अधो अध पह णितो दूरमद्धाणुगच्छइ आवज्जे उप्पह जतू अदुवा पथाणुगामिए ॥१९॥

करन वाले का विशेप दोप है इसस ज्ञानकेविपे प्रवृत्ति करनेकी अज्ञानीयों की इच्छा नहीं होती है इस तरह से अज्ञानी अपना आत्मा का स्वरूप का जानने समर्थ नहीं है तो अन्य में समझाने को कैसे समर्थ होसक्ते हैं ॥ १७ ॥ जैसे कोइ महावन में मार्ग का अजान पुरुप अन्य मार्ग का अजान पुरुप को आगे कर के उन की पीछे पीछे चले तो वे दोनों महा दुःख पावे क्यों कि दोनों ही मार्ग के अजान हैं ॥ १८ ॥ और भी जैसे कोइ अध पुरुप अन्य अंध पुरुप को मार्ग बताने को बहुत दूर जाकर उन्मार्ग में जावे या तो अन्य पथ में चले जावे परंतु इच्छित मार्ग में नहीं पहुंच सके ॥ १८ ॥ ऐसे ही कितनेक भाव मुद्र

साधु ए कितेक स० सर्व जा ज्ञानस स्वय व कहते हैं स सर्वज्ञ लोक में जे जा पा०प्राणी न० नहीं त वे आ० मानते हैं कि किंचित् (१४) मि म्लेच्छ अ अम्लेच्छ का ज जैसे वु० बोला अ० वैसा बोले प० नहीं है० हेतु से० वे वि जाने भा भाषाअनुसार भा० बोले (१५) ए एसे अ० अज्ञानी का ज्ञा न० कहते हुवे भी स अपना २ नि निश्चयार्थ न० नहीं जाने मि० म्लेच्छ-वत् अ अबोधिक (१६) अ० अज्ञानी के भी जानने की इच्छा णा० ज्ञान में न० नहीं वि परोंच

माहणासमणाएगे सव्वेणाणसयवए,सव्वलागेविजेपाणा, न ते जाणाति किंचण ॥१४॥

मिलक्खू अमिलक्खुस्स,जहाचुत्ताणुभासए,णहेउसेविजाणाइ, भासियतणु भासए॥१५॥

एवमण्णाणियाणाणं,वयतावितसयस्स निच्छयत्थ नयाणति, मिलक्खुव्व अबोहिया ॥१६॥

जा प्राणी हैं वे सर्व कुच्छभी नहीं जानते हैं अर्थात् सम्यकज्ञान रहित जानना ॥ १४ ॥ जैसे आर्य भा षाका अजान म्लेच्छ आर्य भाषाको भाषान्तर रूप बोलता है परन्तु वह उसका परमार्थ नहीं जान सकता है केवल भाषानुसार बोलता है ॥ १५ ॥ इस तरह सम्यक् ज्ञान रहित अज्ञानी अपना २ ज्ञान को प्रमाण करके अपने २ मार्ग प्ररूपते हैं परन्तु वे निश्चयार्थ मार्ग को नहीं जानते हुए म्लेच्छवत् ज्ञान रहित हैं ॥१६॥ अज्ञानी लोकों मानते हैं कि ...

का व० वचन अं० जो व० सदा विद्वता पवाय स० ससार म ।।१० रहग [२१] म अय अ०
अपर पु० पहिले कहा कि० क्रियावादी द० मत क० कर्मचिन्ता प० मनष्ट मं० संसार की प० वृद्धिकर्ता
(२४) जा० मानता हुआ का० कायामे णा० घात करे नहीं अ अजान च० निश्चय हिं घातकरे पु०
स्पर्शपाहुआ स० मेदे प० परन्तु अ० अव्यक्त खु निश्चय सा० साप (२५) स० है त०तीन अ आदान

ति ससार ते विठास्सिया ॥ २३ ॥ इति अण्णाणवाइगता । अहावर पुरक्खाय, कि
रियावाइदरिसणं, कम्मचिंतापणठाण, ससारस्स पवड्ढण ॥ २४ ॥ जाण काएण णा
उट्टी, अबुहो जंच हिंसति, पुट्ठो संवदइ पर, अवियत्त खु सावज्ज ॥ २५ ॥ सति मे

रहाहुआ पक्षी अपना पिंजरा तोड़ कर बाहिर नहीं निकल सकता है वैसे ही अपने नर्कों को प्रकट करने
वाले और धर्म अधर्म को नहीं माननेवाले अज्ञानी दुःख को दूर नहीं करसकते हैं ॥ २२ ॥ अपने २ दर्शन
की प्रशंसा करते हुवे और अन्य दर्शन को निंदतेहुवे जो अपना पंडितपना बतलाते हैं वे चातुर्गतिक संसार
मांहि अनंत कालतक रहते हैं ॥ २३ ॥ अब अज्ञानवादी के अनंतर क्रियावादी का मत कहते हैं उन के
दर्शनवाले कर्म बंध का परमार्थ जानते नहीं हैं इस लिये उन का दर्शन संसार की वृद्धिकर्ता है ॥ २४ ॥
जो पुरुष जानता हुवा मन का व्यापार से किसी जीव की घात करता है परतु काया से नहीं करता है
वैसे ही जो पुरुष नहीं जानता हुवा मात्र काया से ही प्राणि आदि की घात करता है उस का कर्म नहीं

प किननेक मि० मोक्षार्थी ध० धर्म आ० आराधक व० हम अ० अथवा अ० अधर्म आ० आचरे ण० नहीं नहीं त० वे स० सर्व उ सरल व० प्राप्त करे (२) ए० ऐसे ए कितनेक वि० वितर्क से णो० नहीं अ० दूसरे को प० सेवन कर अ० अपनी ही वि० तर्क का अ० यह अं० सरल दु० दुर्मति (२१) ए ऐसे त० तर्क सा० करते हुवे ध०धर्माधर्म के अ अजान दु० दुःखके ते० वे ना० नहीं तु तोडे स० पक्षी पं० पिंजरे से न० जैसे (२२) स० स्वय स्वय की प० प्रशंसा करते हुवे ग० निन्दते प० दूसरे

एव मेग णियायट्ठी धम्म माराहगा वय अदुवा अहम्म मावज्जे ण ते सव्वज्जुयत्तए ॥ २० ॥ एव मेगे वियक्काहिं णो अण्ण पज्जुवासिया, अप्पणोय वियक्काहिं अयमजू हिं दुम्मइ ॥ २१ ॥ एव तक्काइ साहिंता धम्माधम्म अकोविया दुक्ख ते नाइतुट्टति सउणी पजर जहा ॥२२॥ सय सयं पससता गरहता परं वय ज उ तत्थ विउस्स

मोक्षार्थी हम धर्म के आराधक है ऐसा कहकर, प्रव्रज्या लेकर, षट्काया का मर्दन करते हुवे अथवा अन्यको ही ऐसा उपदेश करते हुवे अधर्म का ही आचार करते हैं, परंतु मोक्ष मार्ग प्राप्त नहीं करसकते हैं, अर्थात् मोक्ष के लिये व यत्न तो करते हैं, परंतु मोक्ष प्राप्त नहीं करसकते हैं ॥ २ ॥ कितनेक कुमति, अज्ञानवादी, अपनी कल्पित कल्पनाओं से असत्य को सत्य मानते हुवे अन्य मार्ग प्राप्त होने पर भी उस का स्वीकार

ण० नरावे भ निर्णय अ० असत्य ते० उनका ण० नहा त य स० समुतारी (२९) १० इत्यादि ०० मतवाले सा० सातागर्व में णि० आसक्त स० शरण को म० मानते हुवे से० सेवन करे पा० पापको ज० जन [३] ज० जैसे अ० छिद्रवाली णा० नाव जा० जन्मान्ध दु० चढाहुवा इ० वांच्छे पा० पार जाने को भं यीचमें ही वि० डुबजावे (३१) ए० ऐसे स० साधु ए० कितनेक मि मिथ्यादृष्टि

ज्ज मसई तेसिं । ण ते समुडचारिणो ॥ २९ ॥ इच्चेयाहिं य दिठीहिं । सातागारव णिस्सिया ॥ सरणति मन्नमाणा । सेवंति पावग जणा ॥ ३० ॥ जहा अरसाविणिं णाव । जाइअंधो दुरुहिया ॥ इच्छइ पारमागंतु । अतराय विसीयइ ॥ ३१ ॥

भाव की विशुद्धि हाव तो भाव की विशुद्धता से कर्म बंध नहीं होता है। और कर्म बंध नहीं होने से मोक्ष को प्राप्त करसकते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कभी आपत्तकाल में पिता पुत्र का विनाश करके रागद्वेष रहित उसका मांस खाता है, वैसे ही संयती साधु रागद्वेष रहित मांसादिक खाते कर्म बंध से लेपाता नहीं है ॥ २८ ॥ यहां पर जो पुत्रपिता का दृष्टांत दिया है, वह योग्य नहीं है क्यों कि जो मात्र मन से ही रागद्वेष करता है, उस का मन शुद्ध नहीं होता है वैसे ही अशुद्ध मनवाला संवर में प्रवृत्ति करनेवाला नहीं होता है इस लिये उन का जो मतव्य है कि "केवल मन से जो रागद्वेष करता है उन को पाप नहीं लगता है" वह मिथ्या है ॥ २९ ॥ पूर्वोक्त दृष्टि को अंगीकार करके कितनेक सुखशीलिये मनुष्य अपने दर्शन को ही शरण भूत मानते हुवे पाप का सेवन करते हैं ॥ ३० ॥ जैसे किसी छिद्रवाली नावामें जन्मान्ध पुरुष

जे० जिस से की० करे पा पाप अ० अभिमुख पे० आदेश कर म० मनसे अ० अच्छा जाने [२६] ए० यह त० तीन आ० आदान जे जिस से की० करे पा० पाप ए० ऐसे भा० भाव वि० विशुद्ध नि० निर्वाण अ० जावे (२७) पु० पुत्रको पि० पिता स० मारकर आ खावे अ० असयंति भु० भोगवते य० निश्चय मे० पण्डित क० कर्म से नो० नहीं वि० लेपाय (२८) म० मन से जे० जा० प दुष्करे चि० मन ते० उसका

तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं, अभिकम्माय पसाय, मणसा अणुजाणिया ॥२६॥ एतेउ तओ आयाणा। जेहिं कीरइ पावग ॥ एवं भावविसोहीए। निव्वाण माभिग च्छइ ॥ २७ ॥ पुत्तं पिया समारब्भ। आहारज्ज असजए॥ भुंजमाणो य मेहावी। क म्मुणा,नो लिप्पइ ॥ २८ ॥ मणसा जे पउस्साति। चित्त तोसिं ण विज्जइ॥ अणव

लगता है कदाच अनाभाव ता उस को मात्र स्पर्श रूपे ही वेदता है क्यों कि यह पाप अव्यक्त अथात् सिकतामुष्टिवत् है जैसे बालु की मुष्टि भींत पर फेंकने से उस को स्पर्श कर पीछी पडजाती है वैसे ही कर्म का बंध होता है ऐसे क्रियावादी कहते हैं ॥ २५ ॥ जिस से कर्म बंधाते हैं उस कर्म बंध का तीन कारण हैं प्रथम मन में प्राणि की घात चिन्तवना, अन्य को प्राणी की घात करने का आदेश करना, और प्राणी की घात करता होवे उसको अच्छा जानना ये तीन कर्म बंध के कारण जानना ॥ २६ ॥ रागद्वेष युक्त इन तीन कारणों से कर्म निबिड बंधाते हैं यदि इस तरह तीनों प्रकार से जीव पाप में [illegible]

ण० नहाय अ० निमग्न अ मसस्य त० उनको [illegible]
मि० मतवाले सा० सातागर्व में णि० आसक्त स० शरण को म० मानत हुवे से० सेवन करे पा० पापको
म० जन [१] ज जैसे अ० छिद्रवाली णा० नाव जा० जन्मान्ध दु० चढाहुवा इ वांच्छे पा० पार
माने को मं बीचमें ही वि० डुबजावे (३१) ए० एसे स साधु ए० कितनेक मि० मिथ्यादृष्टि

ज्ज मतहं तेसिं । ण ते सवुडचारिणो ॥ २९ ॥ इच्चेयाहिं य दिट्ठीहिं । सातागारव
णिस्सिया ॥ सरणाति मन्नमाणा । सेवंति पावग जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविर्णि
णाव । जाइअंधो दुरुहिया ॥ इच्छइ पारमागंतु । अतराय विसीयइ ॥ ३१ ॥

भाव की विशुद्धि होवे तो भाव की विशुद्धता से कर्म बंध नहीं होता है; और कर्म बंध नहीं होने से मोक्ष को प्राप्त करसकते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कभी आपत्काल में पिता पुत्र का विनाश करके रागद्वेष रहित उसका मांस खाता है, वैसे ही संयती साधु रागद्वेष रहित मांसादिक खाते कर्म बंध से लेपाता नहीं है ॥ २८ ॥ यहां पर जो पुत्रपिता का दृष्टांत दिया है, वह योग्य नहीं है क्यों कि जो मात्र मन से ही रागद्वेष करता है, उस का मन शुद्ध नहीं होता है वैसे ही अशुद्ध मनवाला संवर में प्रवृत्ति करनेवाला नहीं होता है इस लिये उन का जो मंतव्य है कि "केवल मन से जो रागद्वेष करता है उन को पाप नहीं लगता है" वह मिथ्या है ॥ २९ ॥ पूर्वोक्त दृष्टि को अंगीकार करके कितनेक सुखशीलिये मनुष्य अपने दर्शन को ही शरण भूत मानते हुवे पाप का सेवन करते हैं ॥ ३० ॥ जैसे किसी छिद्रवाली नावामें जन्मान्ध पुरुष

एवतु समणा एगे मिच्छादिट्ठी अणारिया ॥ ससारपारकंखी ते । संसार अणुपरिय

ट्टंति त्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति ससमयपरसमय मज्झयणस्स बीओदेसो सम्मत्तो

जं किंचिउ पूइकडं । सड्ढीमागतु मीहिय ॥ सहस्संतरिय भुंजे । दुपक्खं चेव सेवइ ॥

अ० अनार्य सं० संसारसे पा० पारजानेके क कांक्षी ते वे सं० संसारमें अ० भ्रमण करते हैं त्ति० ऐसा मैं कहता हूं ॥ जं० जो किं० किंचित् मात्र पू० पूतीकर्म स० श्रद्धावंत आ आने वाले को इ उद्देशकर किया

ऐसे ही कितनेक शाक्यादि श्रमण, मिथ्यादृष्टि और अनार्य संसार को उत्तीर्ण होने को चाहते हैं परंतु वे संसार में बैठकर पार होने की वांछे अपितु वह पार नहीं होता हुवा बीच में ही डूबजाता है ॥ ३० ॥ ऐसे ही परिभ्रमण करते हैं ॥ ३२ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैं ने श्री महावीर प्रभु से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययन का द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा आगे भी उस की प्ररूपणा करते हैं कोइ श्रद्धावंत गृहस्थ आनेवाले साधु के लिये (१) पूति कर्मवाला आहार बनावे और वह

(१) गृहस्थने एक आहार अपने लिये बनाया होवे और साथ में दूसरा आहार साधु के निमित्त बनाया होवे और उस उद्देशिक आहारको एककण गृहस्थ केलिये बनाया हुवा आहारमें मिलानेसे उस आहार

स हमार गुणन्वर मुं० मोमवे दु० दानों पक्ष वे निश्चय से० सेवन करे (२) त० उसे अ अजानता सि० विषम में अ अकोविद म० मच्छ वे० बरा चे० निश्चय उ० पानीका अ० आगम से (२) उ०पानी का प० प्रभाव से सु० सूके सि० शीघ्र त० उसमें ति० रह ढं० ढंक कं० काक आ० मांसार्थ ते० वह दु०

॥ १ ॥ तमेव अवियाणता, विसमंसि अकोविया, मच्छा वेसालिया चेव, उदगस्स भिया-
गमे ॥२॥ उदगस्स पभावेण । सुक्कं सिग्घ तमिं तिठ ॥ ढंकेहिय कंकेहिय आमिस

आहार (१) सहस्रांतरित हुआ होवे तो भी साधु को भक्षण करना नहीं यदि साधु उस आहारका भक्षण करे तो वह दोनों पक्ष का सेवनेवाला होता है अर्थात् द्रव्य में तो दीक्षित है परंतु आधाकर्मी आ हारका सेवन करने से गृहस्थ सदृश है ॥ १ ॥ उस आधाकर्मी आदि आहार के दोषों को नहीं जाननेवाला और अष्टप्रकार के कर्मबन्धमें अपण्डित अर्थात् जीव को कर्मबंध या मोक्ष है, या नहीं, या किस तरह संसार समुद्र पार होसकता है उस को नहीं जाननेवाला, वैसालिक मत्स्य की मुआफिक दुःख पाता है जैसे वैसालिक मत्स्य समुद्र का पूर आने से समुद्र में से निकलकर नदी का मुख में आकर गिरता है, और पीछे जब पानी सूक जाता है तब कादव में सुखाया हुआ उस दुःखी मत्स्य को ढंक जाती के पक्षी और कंक [कोवे]

(१) एक से दूसरा, तीसरा ऐसे सहस्र घरतक वह आहार गया होवे जो उसे सहस्रांतरित कहते हैं

अ० अनार्य सं० संसारसे पा पारहानेके क० कांक्षी त वे सं० संसारमें अ० भ्रमण करते हैं
त्ति० ऐसा मैं कहता हूं ✽ ✽ ✽
जं० जो किं० किंचित् मात्र पू० पूतीकर्म स० श्रद्धावंत आ आने वाले को इ उद्देश कर किया

एवंतु समणा एगो मिच्छादिठ्ठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते । संसार अणुपरिय
इति बिबेमि ॥ ३२ ॥ इति ससमयपरसमय मज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो
जं किंचिउ पूइकडं । सड्ढीमागंतु मीहियं ॥ सहस्संतरियं भुंजे । दुपक्खं चेव सेवइ ॥

बैठकर पार होने को वांच्छे परंतु वह पार नहीं होता हुवा बीच में ही डूब जाता है ॥ ३० ॥ ऐसे ही कि
तनेक शाक्यादि श्रमण, मिथ्यादृष्टि और अनार्य संसार को उत्तीर्ण होने को चाहते हैं परंतु वे संसार में
ही परिभ्रमण करते हैं ॥ ३२ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा
मैं ने श्री महावीर देव से सुना है वैसे ही तुझे कहता हूं यह स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययन का
द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा आगे भी उस की प्ररूपणा करते हैं ✽ ✽
कोई श्रद्धावंत गृहस्थ आनेवाले साधु के लिये (१) पूति कर्मवाला आहार बनावे और वह

(१) गृहस्थने एक आहार अपने लिये बनाया होवे और साथ में दूसरा आहार साधु के निमित्त बनाया होवे और उस उद्देशिक आहारको एककण गृहस्थ केलिये बनाया हुवा आहारमें पडजावेतो उस आहार

स० सहित है [९] स० स्वयमूने क० किया लो लोक इ ऐसा वु० कहाया हुवा म० महर्षिसे मा० मारसे सं० हुइ मा० माया ते० इसलिये लो० लोक अ० अशाश्वत (७) मा ब्राह्मण स साधु ए० कितनेक

तहाऽवरे ॥ जीवाजीव समाउत्ते । सुह दुक्ख समन्निए ॥ ६ ॥ सयमुणा कडे लोए । इति वुत्त महेसिणा ॥ मारेण संथुया माया । तेण लोए असासए ॥ ७ ॥

समवस्था प्रकृति] ने लोक किया है अर्थात् स्वभाव से ही लोक उत्पन्न हुवा है जैसे मोर की पांख को किसने चित्रित की ? इस को मिष्ट किसने बनाया ? यह सब स्वभाव से ही होता है वैसे ही लोक भी स्वभाव से ही होता है और इस में चराचर जीव अजीव तथा सुख दुःख रहेहुवे हैं ॥ ६ ॥ स्वयमू * ने लोक बनाया है, और उनने माया बनाइ जिस से लोक अशाश्वत है ऐसा महर्षि कहते हैं ॥ ७ ॥ कितनेक श्रमण ब्राह्मण कहते हैं कि यह चराचर जगत् अण्डे से बनाहुवा है और

---

* कितनेक लोकों की यह मान्यता है, कि पहिले विष्णु एक ही थे, उन की जगत् बनाने की इच्छा हुइ तब दूसरी शक्ति उत्पन्न हुइ, बाद में जगत् की सृष्टि हुइ फिर ऐसा चिन्तवन किया कि इतनी जगत् सृष्टि का समावेश कहां होगा इस लिये यम को उत्पन्न किया; और यमने माया बनाइ जिस से लोक में रहे हुवे जीवों मरते हैं और इसी कारण से लोक अशाश्वत है

दुःखी (१) ए० ऐसे स० साधु ए० कितनेक प० वर्तमान सु० सुखाभिलाषी म० मच्छ वे० यह घा० घात ए० मावे पं० अनेकवक (४) इ० इस से अ० अन्य अ० अज्ञानी इ० यहां ए० कितनेक को आ० कहा दे० देवोत्पन्न अ० यह लो० लोक प० प्रज्ञोत्पन्न भी आ० अपर (५) ई०

त्थेहिं ते दुही ॥ ३ ॥ एवं तु समणा एगे। वट्टमाण सुहेसिणो ॥ मच्छावेसालिया खेव। घातमेस्साति णतसो ॥ ४ ॥ इण मण्ण तु अण्णाण। इह मेगेसिं आहियं ॥ देवउत्त अय लोए। बम्भउत्तेति आवरे ॥ ५ ॥ ईसरेण कडे लोए। पहाणाइ

मांसार्थी उन प्राण रहित करते हैं अर्थात् वह मत्स्य बहुत दुःखी होता हुवा मरण को प्राप्त होता है ॥२ ३॥ ऐसे ही कितनेक वर्तमान सुख को गवेषनेवाले शाक्यादि श्रमण वैसालिया मत्स्यकी तरह अनंत जन्म मरण में घात को प्राप्त होवेंगे, अर्थात् अनन्त जन्म मरण करेंगे ॥ ४ ॥ सदोष आहार लेकर सुख मानने वाले अज्ञानी से दूसरा अज्ञानी का मत बतलाते हैं कितनेक अज्ञानी कहते हैं कि यह चराचर संसार को देवने उत्पन्न किया है जैसे करसणी का बीज बोकर करसण उत्पन्न करे, ऐसे ही इस को उत्पन्न किया है कोइ नय दूसरे कहते हैं कि इस लोक को ब्रह्माने उत्पन्न किया अथवा "जगत्पितामह" इतिवचनात्॥ ५ ॥ कोइ [illegible] ब्रह्मा, स्कंध और कर्मयुक्त

का अ० नहीं जानता हुआ क० कहा से ना० जान त० संवरका (१०) सु० शुद्ध अ० निष्पाप आ० आत्मा इ० यहां ए० कितनेक को आ० कहा पु० फीर कि० क्रीडा प्रद्वेष से सो० वह त० तहां अ० अपराध करे [११] इ० यहां सं० संवृतात्मा मु० साधु जा० उत्पन्न हुआ प० पिछे हो० होवे अ० अपा

मजाणंता । कह नायंति संवर ॥ १० ॥ सुद्धे अपावए आया । इह मेगेसिं माहियं पुणो किड्डापदोसेण । सा तत्थ अवरज्झइ ॥ ११ ॥ इह संवुडे मुणी जाए । प

सदसदनुष्ठानसे ही दुःख की उत्पत्ति होती है परंतु ईश्वरादि से दुःख नहीं उत्पन्न होता है ऐसा दुःख का कारण को मानना चाहिये दुःख की उत्पत्ति के कारण को नहीं जाननेवाला उस का निवारण जो संयम है उस को कैसे मान सकेगा ? एतावता अतियत्न करने पर भी दुःख को दूर नहीं कर सकेगा, और संसार में अनंत कालतक परिभ्रमण करता रहेगा ॥ १० ॥ कोइ त्रिराशिक—गोशाला मतानुसारी कहते हैं कि आत्मा मनुष्य भव में शुद्ध पाप रहित होकर और मोक्ष में जाता है वहां × रागद्वेष करने से कर्मरूपी रज से मलिन होता है, जिस से फिर संसार में उत्पन्न होता है इस तरह ये जीव की तीन राशि स्थापन

× उन लोकों की मान्यता यह है कि मुक्ति में रहाहुवा जीव अपना शासनकी पूजा और अन्य शासन का पराभव जानकर राग करे, या अपना शासन की व्याघात से द्वेष करे; इस से आत्मा उज्वलवस्त्र की तरह माने: २ मलीन होजावे

मा० कोई अं० अंडेसे क० किया जं० जगत् अ० अपना त० तत्त्व अ० किया अ० अमानता मु० मृषा प बोले [८] स० स्वयं प पर्याय लो० लोकको बू० कहे क० किया है त० तत्व ते० वे ण० नहीं वि० जानते हैं ण० नहीं वि० विनाश होवारे क० कदापि (९) अ० अमनोज्ञ स० उत्पत्ति दु० दुःख वि० जाने स० उत्पत्ति

माहणा समणा एगे । आह अंडकडे जगे ॥ असो तत्त्व मकासीय । अयाणता मुसं व दे ॥ ८ ॥ सएहिं परियाएहिं । लोय बूया कडेतिय ॥ तत्त ते ण विजाणंति । ण विणासि कयाइवि ॥ ९ ॥ अमणुन्नसमुप्पाय । दुक्खमेव विजाणिया ॥ समुप्पाय

उस अण्डे को ब्रह्माने बनाया इस तरह वे ब्राह्मणादिक नहीं मानते हुवे मृषा बकवाद करते हैं परंतु परमार्थ को वो मानते नहीं है×॥८॥ इसतरह वे पूर्वोक्त दर्शनी अपनी २ कल्पनाओंसे कहते हैं कि लोक अमुकप्रकारसे बना इत्यादि परंतु लोकका कदापि विनाश नहीं होता है जब लोक का विनाश नहीं है तब उसकी आदिभी नहीं है, और उसका अंतभी नहीं हैं, वैसेही उसका कोई कर्ता भी नहीं है ऐसा तत्त्वको वे नहीं मानते हैं॥९॥

× वे लोकों मानते हैं कि पहिले जगत् शून्य था उस समय ब्रह्माने पानी और अण्डा उत्पन्न किया बाद वह अण्डा बडा हुवा १ व उस के दो टुकडे हुवे जिस में से अधो और ऊर्ध्व लोक बना, और उस में

भ० आरोग्य ह यहां ए कितनेक आ० कहते हैं सि० सिद्धिही पु० आगे कर स० माशय म ग० गृध्र मनुष्य [१५] अ० सवर रहित म० अनादि भ० परिभ्रमण करेंगे पु० वारंवार क० बहुतकाल

व पुरो काउं । सासए गढिया नरा ॥ १५ ॥ असंवुडा अणादीय । भमिहिंति पु

णो पुणो ॥ कप्पकाल मुवज्जति । ठाणा आसुर किब्बिसिया त्तिबेमि ॥ १६ ॥

करते ही सिद्धि होती है परंतु अन्य अनुष्ठान से सिद्धि नहीं होती है हमारा दर्शन में ही जो समस्त इन्द्रियों को वश करनेवाला होता है, वही इस लोक में इच्छित कामभोग प्राप्त कर सकता है, और परभवमें मोक्ष का जाता है ॥ १४ ॥ कितनेक शैवपंथी कहते हैं कि यहां से जो शरीर का त्याग करके सिद्ध होते हैं व सर्व शारीरिक मानसिक अनेक दुःखों से रहित होते हैं वे अपने मत के कदाग्रही बन करके पामर पुरुष की मुवाफिक अपना अनुष्ठान से ही मुक्ति होती है ऐसा चमत्कार करते हैं ॥ १५ ॥ वे संवर रहित पाखण्डी लोकों अनादि संसार में परिभ्रमण करेंगे तथा वार २ नरकादिक का दुःख भोगवेंगे कदाचित तप के प्रभाव से स्वर्गादि गति मिलजाय तो बहुत काल पर्यंत असुर कुमारादि स्थानक में या किल्विषी आदिक स्थानक में उत्पन्न होकर दुःख पावेंगे ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि जैसा मैं ने भगवान के मुखारविन्दसे सुना है वैसा ही तेरे प्रत्ये कहता हू ॥ १६ ॥ यह स्वसमय परसमय नामक

पी नि० शुद्ध पानी ज जैसे मु० फीर नि० रज रहित स० रस सहित त० तमे (१२) ए० इतने नि विचार करके मे० पण्डित व असमर्थ में प०नहीं त वे न० बसे पु असग २ पा० परवादिओं स० सब अ बसानेवाले स० अपना २ [१३] स० अपने २में उ० सावधान हुवे सि सिद्धि ए० ऐसे न० नहीं अ० अन्यथा अ० अहो इ यहां ही व० वशवर्ती स० सर्व काम स० समर्पित (१४) सि० सिद्ध ते० वे

च्छा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा भुज्जो । नीरय सरय तहा ॥ १२ ॥ एताणु वीति मेधावी । बंभचेर ण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सव्वे । अक्खायारो सय सय ॥ १३ ॥ सए सए उवट्ठाणे । सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती । सव्व-काम समप्पिए ॥ १४ ॥ सिद्धा य ते अरागा य इह मेगेसि माहिय ॥ सिद्धिमे

करते हैं प्रथम आत्मा सकर्मक, फिर अकर्मक बन मुक्तिमें जावे यह दूसरी राशि, और वहां कर्म को उपार्जन करके संसार में आवे यह तीसरी राशि ॥११॥ जैसे निर्मल जल रजादिक के संयोग से मलिन होता है और फिर वह ही जल शुद्ध निर्मल हो जाता है, वैसे ही मुक्ति के जीव मनुष्य भव में उत्पन्न होकर यम, नियम, संयम आदरकर पाप रहित निर्मल होजाते हैं ॥ १२ ॥ पूर्वोक्त कथन को आलोचकर पण्डित पुरुष विचार करे कि वे अपने २ दर्शन की प्रशंसा करनेवाले भिन्न२ दर्शनीयों शुद्ध संयम नहीं पाल सकते हैं क्यों कि

भ० आरोग्य ह यहां प कितनेक आ० कहते हैं सि सिद्धिही पु० आगे कर स० आशय म ग० गृध्र न मनुष्य [१५] अ० संवर रहित अ० अनादि भ० परिभ्रमण करेंगे पु० वारवार क० बहुतकाल

थ पुरो काउं । सासए गढिया नरा ॥ १५ ॥ असंवुडा अणादीय । भमिहिंति पु

णो पुणो ॥ कप्पकाल मुवज्जंति । ठाणा आसुर किब्बिसिया त्तिबेमि ॥ १६ ॥

करते ही सिद्धि होती है परंतु अन्य अनुष्ठान से सिद्धि नहीं होती है हमारा दर्शन में ही जो समस्त इन्द्रियों को वश करनेवाला होता है, वही इस लोक में इच्छित कामभोग प्राप्त कर सकता है, और परभवमें मोक्ष को जाता है ॥ १४ ॥ कितनेक शैवपथी कहते हैं कि यहां से जो शरीर का त्याग करके सिद्ध होते हैं व सर्व शारीरिक मानसिक अनेक दुःखों से रहित होते हैं वे अपने मत के कदाग्रही पन करके पामर पुरुष की मुवाफिक अपना अनुष्ठान से ही मुक्ति होती है ऐसा अंगीकार करते हैं ॥ १५ ॥ वे संवर रहित पाखण्डी लोकों अनादि संसार में परिभ्रमण करेंगे तथा वार २ नरकादिक का दुःख भोगवेंगे कदाचित तप क प्रभाव से स्वर्गादि गति मिलजाय तो बहुत काल पर्यंत असुर कुमारादि स्थानक में या किल्विषी आदिक स्थानक में उत्पन्न होकर दुःख पावेंगे ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान के मुखारविन्दसे सुना है वैसा ही तेरे प्रत्ये कहता हूं ॥ १६ ॥ यह स्वसमय परसमय नामक

ए० इतने जि० भीताये हुवे मो० भरो न० नहीं स० शरण था अज्ञानी पं पण्डितपना मा० मानने वाले (च० यहां वा० अज्ञानी व० नाश पाने) दि० छोडकर पु परिस्म सं० सयोम सि० होवे कि० कार्य उ० उपदेशक (१) तं० उसे मि० साधु प० जान करके वि विज्ञानी ते० उनमें न० नहीं मु० मूर्च्छित होवे

इति ससमय परसमय मज्झयणस्स तइओद्देसो सम्मत्तो *

एते जिया भो न सरण । बाला पडिय माणिणो ॥ (यत्थ वाले वसीयासि) हिच्चाण पुव्व संजोगं । सिया किच्चोवएसगा ॥ १ ॥ तं च भिक्खू परिण्णाय । विय ते

प्रथम अध्ययन का तृतीय उद्देशा पूर्ण हुवा आगे भी उस की विशेष वक्तव्यता चलती है सो कहते हैं

रागद्वेष से भीताय हुवे, और स्वतः को पण्डित माननेवाले, या अज्ञान में रहे हुवे पूर्वोक्त अज्ञानी पर तीर्थिक किसी को शरण नहीं हो सकते हैं क्यों कि ये धन धान्य स्वजनादि परिग्रह छोड कर हम मात्र मित हैं ऐसा कहते हैं परंतु गृहस्थ के पचन पाचनादि कृत्यों का उपदेश में प्रवर्तते हैं इस लिये ये किसी को शरण नहीं होसकते हैं ॥ १ ॥ संयति विद्वान साधु को ऐसे पाखण्डिलोकों को जानकर उन का परिचय करना नहीं कदाचित् उन का संबंध मिलजाय तो मद करना नहीं वैसे ही उन की निन्दा वगैर

अ० अनुत्कर्षवान अ० अप्रलीन म० मध्यस्थ भाव से मु० साधु जा० प्रवर्त (२) स० परिग्रह युक्त य० और सा० आरंभ युक्त इ० यहां ए० कितनेक आ० कहा अ० निष्परिग्रही अ० निरारंभी भि० साधु ता० शरण प० प्रवर्ते [३] क० किया घा० आहार ए० गवेषे वि० भिक्षु द० दिया ए० ऐषणा में च० चले अ० अगृद्ध वि० रहित अ० अपमान को प० दूरकरे (४) लो० लोकवाद णि० सुने इ० यहां ए०

सुं ण मुच्छए ॥ अणुक्कस्से अप्पलीणे । मज्झेण मुणी जावए ॥ २ ॥ सपरिग्गहा य सारंभा । इह मेगेसि माहियं ॥ अपरिग्गहा अणारंभा । भिक्खू ताण परिव्वए ॥ ३ ॥ कडेसु घास मेसेज्जा । विऊ दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को । अओमाणं परिवज्जए ॥ ॥ ४ लोगवाय णिसामिज्जा । इह मेगेसि माहियं ॥ विवरीय पण्णस

प्रशंसा नहीं करता हुवा रागद्वेष रहित विचरना ॥ २ ॥ परिग्रहवन्त तथा आरंभी पुरुषों ऐसे कहते हैं कि तपस्यादिक तथा मुंड मुंडनादिक करना व्यर्थ है किन्तु गुरुभक्ति के प्रभाव से एक अक्षरमात्रका ज्ञान हो जावतो मोक्ष होता है, और जो ये कायक्लेश करते हैं वह सब अप्रमाण है ऐसा कहने वाला साधु कि सको त्राण नहीं होसकता है परंतु निष्परिग्रही और अनारंभी साधु सर्व जीवोंको त्राण देता हुवा विचरता है ॥३॥ गृहस्थने अपने लिये जो आहार बनाया होवे उस में से साधु गवेषणा करे और उसका दिया हुवा आहार ग्रहण करता हुवा विचरे वैसे ही वह साधु उसमें अगृद्ध, रागद्वेष रहित, तथा अपमान को सहन करता हुवा विचरे ॥ ४ ॥ विपरीत प्रज्ञासे उत्पन्न हुवा, अन्य अविवेकी पुरुष का कहा हुवा, और उस

कितनेक आ० कहा वि०विपरीत प०बुद्धि से से उत्पन्न हुआ अ०अन्योक्त त० तदानुमत [५] अ० अनंत नि नित्य लो लोक सा शाश्वत ण नहीं वि० विनाश होवे अं० अन्त सहित णि० नित्य लो० लोक इ ऐसा धी० धीर पा० देखता है [६] अ० अपरिमाण वि जानता है इ० यहां ए कितनेक आ० कहा स सर्वत्र स० सपरिमाण इ० ऐसा धी० धीर पुरुष पा० देखता है (७) जे० जो के कोइ त अस

भूय ॥ अन्नउत्त तयाणुय ॥ ५ ॥ अणत निइए लोए । सासए ण विणस्सति ॥ अतव णिइए लोए । इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥ अपरिमाण वियाणाइ । इह मेगे सि माहिय ॥ सवत्थ सपरिमाण । इति धीराति पासइ ॥ ७ ॥ जे केइ तसा पा

अनुसार बनाया हुवा लोकवादको सुनकर विचारना और जिनमति से विरूद्ध को परिहरना ॥ ५ ॥ वे कहते हैं कि लोक अनंत, नित्य, शाश्वत है, उसका विनाश नहीं होता है वैसे ही यह लोक सप्त द्वीप सप्त समुद्र जितना है ऐसा * व्यासादिक धीर पुरुष देखते हैं ॥६॥ क्षेत्र से तथा कालसे जिसका प्रमाण नहीं है, ऐसी अप्रमाण वस्तुको माने, परंतु वह सर्वज्ञ नहीं है ऐसा कितनेक के मतमें कहा हुवा है और कितनेक ऐसा कहते

* व्यासादिक धीर पुरुषों मानते हैं कि जो पुरुष है वह आगामिक भव में पुरुष ही होगा और जो स्त्री है वह आगामिक काल ।   गे । इस लिये लोक नित्य है

पा० प्राणी चि० रहते हैं अ० अथवा था स्थावर प० पर्याय अ० है स० व भ० सरल ... । स०
पा० प्राणी चि० रहते हैं अ० अथवा था स्थावर (८) उ० औदारिक ज० जीवका जो० जोग वि० विपरीत प० पावे स० सर्व
त० वे त्रस था० स्थावर (८) उ० औदारिक ज० जीवका जो० जोग वि० विपरीत प० पावे स० सर्व
को म० अप्रिय दु० दुःख अ० इसलिये स० सर्व को अ० मतमारो (९) ए यह खु० निश्चय ना०
ज्ञानी का सा० सार ज० जो न० नहीं हिं मारे किं किंचित् अ० दया स० समता ये० निश्चय ए० इ

या । चिठंति अदुवा थावरा ॥ परियाए अत्थि से अज्जू । जेण ते तसथावरा
॥ ८ ॥ उराल जगतो जोग । विवज्जास पलिंतिय ॥ सव्वे अकंतदुक्खाय । अओ
सव्वे अहिंसिता ॥ ९ ॥ एवं खु नाणिणो सारं । जन्न हिंसइ किंचण ॥ अहिं

हैं सर्वज्ञ + प्रमाण सहित जाने परन्तु अप्रमाण जाने नहीं ॥ ७ ॥ अब शास्त्रकार उस का उत्तर देते हुवे
कहते हैं कि:—यदि अन्य दर्शनी के मतानुसार "जो जैसा वह वैसा" परंतु अन्यथ परावर्त होवे नहीं
ऐसा मानाजाय तो इस ससार में दान अध्ययन, जप, तप, नियमादिक का कुच्छ भी फल नहीं होना
चाहिये परंतु संसार द्वीइन्द्रियादि त्रस और पृथिव्यादि स्थावर रहे हुवे दिखते हैं वे अपने २ कर्मानुसार से
त्रस के स्थावर और स्थावर के त्रस होते हैं ॥ ८ ॥ और भी औदारिक शरीरवाले प्राणी अर्बुद, कलल,
पेशी इत्यादि अवस्थाओं में से बाल, कुमार, तरुण, और वृद्धावस्था ऐसी भिन्न २ अवस्था पाते हैं इस से

+ देवी सहस्र वर्ष तक शय्या सोते हैं उस वक्ततक कुच्छ भी नहीं देखे वैसे ही उतना समय भा
पूर्ण होवे सब देखे

कितनेक आ० कहा वि०विपरीत प बुद्धि से स उत्पन्न हुआ अ०अन्योक्त स० स्वरानुगत [५] अ० अनन्त नि नित्य लो लोक सा शाश्वत ण नहीं वि० विनाश होवे अं० अन्त सहित णि० नित्य लो० लोक इ ऐसा धी० धीर पा० देखता है [६] अ० अपरिमाण वि० मानता है इ० यहां ए० कितनेक आ० कहा स सर्वज्ञ स० सपरिमाण इ० ऐसा धी० धीर पुरुष पा० देखता है (७) जे० जो के० कोई त० यस

भूय ॥ अन्नउत्तं तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणंते निइए लोए । सासए ण विणस्सति ॥ अन्तव णिइए लोए । इति धीरोत्ति पासइ ॥ ६ ॥ अपरिमाण वियाणाइ । इह मेगे सि माहियं ॥ सव्वत्थ सपरिमाण । इति धीरोत्ति पासइ ॥ ७ ॥ जे केइ तसा पा

अनुसार मृषावाद हुआ लोकवादको सुनकर विचारना और जिनमति से विरुद्ध को परिहरना ॥ ५ ॥ वे कहते हैं कि लोक अनन्त, नित्य, शाश्वत है, उसका विनाश नहीं होता है वैसे ही यह लोक सप्त द्वीप सप्त समुद्र जितना है ऐसा * व्यासादिक धीर पुरुष देखते हैं ॥६॥ क्षेत्र से तथा कालसे जिसका प्रमाण नहीं है, ऐसी अप्रमाण वस्तुको माने, परंतु वह सर्वज्ञ नहीं है ऐसा कितनेक के मतमें कहा हुआहै और कितनेक ऐसा कहते

---

* व्यासादिक धीर पुरुषों मानते हैं कि जो पुरुष है वह आगामिक भव में पुरुष ही होगा और जो स्त्री है वह आगामिक काल में स्त्री ही होगी इस लिये लोक नित्य है

पा० प्राणी चि० रहते हैं अ० अथवा या। स्थावर प० पर्याय अ० है स० ... सर्व
स० ये त० त्रस था० स्थावर (८) उ० औदारिक ज० जीवका जो० जोग वि० विपरीत प० पावे स० सर्व
को अ० अप्रिय दु० दुःख अ० इसलिये स० सर्व को अ० मतमारो (९) ए० यह खु० निश्चय ना०
ज्ञानी का सा० सार ज जो न० नहीं हिं० मारे किं किंचित् अ० दया स० समता ये० निश्चय ए० इ

जेण ते तसथावरा
णा । चिठति अदुवा थावरा ॥ परियाए अत्थि से अजू । जेण ते तसथावरा
॥ ८ ॥ उरालं जगतो जोग । विवज्जास पलितिय ॥ सव्वे अक्कंतदुक्खाय। अओ
सव्वे अहिंसिता ॥ ९ ॥ एवं खु नाणिणो सार । जन्न हिंसइ किंचण ॥ अहिं

हैं सर्वज्ञ + प्रमाण सहित जाने परन्तु अप्रमाण जाने नहीं ॥ ७ ॥ अब शास्त्रकार उस का उत्तर देते हुवे करते हैं कि—यदि अन्य दर्शनी के मतानुसार "जो जैसा वह वैसा" परंतु अन्यय परावर्त होवे नहीं ऐसा मानाजाय तो इस संसार में दान अध्ययन, जप, तप, नियमादिक का कुच्छ भी फल नहीं होना चाहिये परंतु संसार द्विइन्द्रियादि त्रस और पृथिव्यादि स्थावर रहे हुवे दिखते हैं वे अपने २ कर्मानुसार से त्रस के स्थावर और स्थावर के त्रस होते हैं ॥ ८ ॥ और भी औदारिक शरीरवाले प्राणी अर्बुद, कलल, पेसी इत्यादि अवस्थाओं में से बाल, कुमार, तरुण, और वृद्धावस्था ऐसी भिन्न २ अवस्था पाते हैं इस से

+ देवी सहस्र वर्ष तक प्रमाण सोते हैं उस वक्ततक कुच्छ भी नहीं देखे वैसे ही उतना समय जा-
ग्रत होवे जब देखे

तना वि० भाने (१०) मु० मधवर्ती य और वि० विगत मे०मृद्दि आ० आदान स० पाले च० विचरना आ० आसन से० शय्या में भ० भात पानी अं० शुद्ध आहार मवेषे (११) ए इन ति० तीन ठा० स्थान में स० साधु स० निरंतर मु० साधु उ० (उत्कर्ष) मान ज० ज्वलन (क्रोध) पू० माया म० लोभ नि दूरकरे [१२] स० समिति से स० सदा सा० साधु प० पांच सं० संवर सं० संवृत ति त्रिगुप्ति में अ०

सासमयं चेव । एतावतं वियाणिया ॥ १० ॥ वुसिए य विगयगेही । आयाणं सरक्खए ॥ चरिआसणसेज्जासु । भत्तपाणे अ अंतसो ॥ ११ ॥ एतेहिं तिहिं ठाणेहिं । संजए सततं मुणी ॥ उक्कसं जलणं णूमं । मज्झत्थं च विगिंचए ॥ १२॥

उन पारिग्रहों से वचन सब नहीं मलीन होता है इसलिये किसी जीवकी घात करना नहीं क्योंकि सबको दुःख अप्रिय है ॥ ९ ॥ ज्ञानि पुरुषों का यह ही सार है कि किसी प्राणी की घात नहीं करना वैसे ही अहिंसा और समता को मानना अर्थात् जैसे मुझे मरण और दुःख अप्रिय है, वैसे ही सब प्राणी को दुःख अप्रिय है ऐसा जानकर किसी जीव की घात करना नहीं उपलक्षण से असत्य बोलना नहीं, अदत्त ग्रहण करना नहीं वैसे ही परिग्रह रखना नहीं ॥ १० ॥ ये पूर्वोक्त मूल गुण कह अब उत्तर गुण कहते हैं आहारादिक की लोलुपता रहित तथा दशविध यति धर्म में रहाहुवा ज्ञान दर्शन तथा चारित्र रूप आदान की रक्षा करे और चर्या, आसन, शैय्या और भक्त पान में सम्यक् प्रकार से उपयोग सहित प्रवर्ते ॥ ११॥ चर्या, आसन, और शैय्या ये तीन स्थानक में निरन्तर संयमवन्त होता हुवा क्रोध, मान, माया और लोभ

प्रतिविरति मि० साधु भ० मोक्ष न होवे यहां तक प० प्रवर्ते त्ति ऐसा बे० कहता हूं ॥ १२ ॥

समिएउ सया साहू । पंचसंवरसंवुडे ॥ सिएहि असिए भिक्खू । अमोक्खाय परिव्व एज्जासि त्तिबेमि ॥ १३ ॥ इति ससमयपरसमय मज्झयणस्स चउत्थोद्देसो सम्मत्तो ॥

इति ससमयपरसमयणामं पढममज्झयण सम्मत्त ॥१॥

साधु जहां लग मोक्ष नहीं होवे वहां लग संयमपाले ऐसा मैं कहता हूं यह प्रथम अध्ययन का चतुर्थ उद्देशा पूर्ण हुआ और स्वसमय परसमय नामक प्रथम अध्ययन भी संपूर्ण हुआ इस अध्ययन में स्वसमय का गुण और परसमय का दोष कहा उसे जानकर जैसे कर्म छुटे वैसे यत्न करे इस लिये आगे दूसरा वैतालीय नामक अध्ययन कहते हैं

वैतालीय नामक द्वितीय मध्ययनम्

सं० समझो किं क्यों न० नहीं बु० समझते हो स बोधी ख० निश्चय पे० परलोक में दु० दुर्लभ णा० नहीं हू० निश्चय अ० व्यतीतरात्रि नो नहीं सु० सुलभ पु०पुनरपि जी० जीवितव्य (१) ड० बालक वु० वृद्ध पा देखो ग० गर्भस्थभी चि० मरते हैं मा० मनुष्य से० सींचाणो ब जैसे व० बटेर ह ऐसा

समुज्झह किं न बुज्झह । संबोही खलु पेच दुल्लहा ॥ णो हू वणमति राइओ । नो सुलभ पुणरवि जीविय ॥ १ ॥ डहरा वुड्ढाय पासह । गब्भत्थावि चियति माण

भरतेश्वर से तिरस्कार पाये हुवे ऋषभ देव के अठानु पुत्र को श्री आदीश्वर भगवान, या भव्य जनों को महावीर स्वामी उपदेश करते हैं, कि अहो भव्य ! तुम समझो ऐसा अवसर प्राप्त कर क्यों नहीं समझते हो इस भव में समझकर धर्म नहीं करोगे, तो परभव में सम्यक्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है जैसे व्यतीत हुए रात्रि फिर नहीं आती है वैसे ही यौवनादिक पदार्थ गये हुवे हाथ नहीं आते हैं और संयम रूप जीवितव्य भी सुलभ नहीं है ॥ १ ॥ जैसे चिकरा [बाज] बटेर पक्षी को अकस्मात् उठाजाता है वैसे ही काल मनुष्यों का अपनी २ अवस्था में आजाता है कितनेक तो बाल्यावस्था में ही विनाश होजाते हैं, कितनेक वृद्धावस्था में और कितनेक गर्भ में रहे हुवे विनाश को प्राप्त होते हैं इस तरह आयुष्य का क्षय होता है

नहीं सु० सुलभ सु० सुगति पे० परलोक में ए यह भ भयको पे० देख आ आरंभ से । नि० निवर्ते सु सुव्रति (१) ज० यदि ज० जगत में पु० अलग २ ज० स्थान क० कर्म में लु० लुप्त होते हैं पा० प्राणी स स्वय क० कृत्यमें गा० अवगाहे णो० नहीं त० उस से मु० छूटे अ बिनास्पर्शे ॥ ४ ॥ दे० देव ग० गधर्व र० राक्षस अ भवनपति भू पशुआदि सि० सर्प रा० राजा न मनुष्य से श्रेष्ठी मा० ब्राह्मण

था ॥ सेणे जह वट्टयं हरे । एव माउक्खयमि तुट्टइ ॥ २ ॥ मायाहिं पियाहिं लुप्प इ । नो सुलहा सुगइ य पेचओ ॥ एयाइ भयाइ पेहिया । आरंभा विरमेज्ज सुव्वए ॥ ३ ॥ जमिण जगती पुढा जगा । कम्मेहिं लुप्पति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गा हइ । णो तस्स मुच्चे अपुट्टय ॥ ४ ॥ देवा गधव्व रक्खसा । असुरा भूमिचरा सिरि

॥२॥ माता पिता के मोह में फसाया हुआ जीव को परभव में सुगति सुलभ नहीं है, इस लिये ऐसा मोहादिक भय को जानकर सुव्रति मुनि आरंभ से निवर्ते ॥ ३ ॥ यदि वे आरंभ से निवर्ते नहीं, तो सावद्यानुष्ठान से किये हुवे कर्मों से नरकादि स्थान में भ्रमण करे, और अपने किये हुये कर्मों से नरकादि दुःख का भय करे परंतु बिना भोगने कदापि इस से मुक्त नहीं हो सके ॥ ४ ॥ देव, गंधर्व, राक्षस, असुर, भूमिचर, सर्प, राजा, मनुष्य, श्रेष्ठी और ब्राह्मण वे सब दुःखी होते हुवे अपने स्थान को छोडते हैं

ठा० स्थानमें ते० वे च०मरते हैं दु दुःखित ॥५॥ का०काममें स० परिचय में गि० गृद्ध क०कर्म सहने वाले का० समय से अं०जीव ता०तालफल ज०जैसे ब०बन्धन से चु०छुटे ए०ऐसे आ० आयुष्य क्षयमें तु० टूटजाते ॥ ६ ॥ जे जो वि० अपि य बहुसूत्री सि० होवे ध० धर्मी मा० ब्राह्मण भि० साधु सि० होवे अ० कपट क० कृत्य से मु० मूर्छित ति० तीव्र से० वे क० कर्म से कि दुःखी होवे ॥ ७ ॥ अ० अथ

सित्रा ॥ राया नर सेट्ठि माहणा । ठाणा ते त्रि चयाति दुक्खिया ॥ ५ ॥ कामेहिं य सथवेहि य गिद्धा । कम्मसहा कालेण जतवो ॥ ताले जह बंधणच्चुए । एव आउक्ख यमि तुट्टति ॥६॥ जे यावि बहुस्सुए सिया । धम्मियमाहणभिक्खुए सिया ॥ अभि णूम कडेहिं मुच्छिए । तिव्व से कम्मेहिं किच्चति ॥ ७ ॥ अह पास विवेग मुट्ठिए ॥

॥ ५ ॥ जैसे तालवृक्ष का फल बंधन छोडने पर अकस्मात् नीचे गिरजाता है वैसे ही काम भोग में तथा कुटुम्ब के परिचयमें आसक्त जीवों आयुष्य का क्षय होने से टूट जाते हैं और जब उसका विपाक आवे तब उन को ही उस का फल भोगना पडता है; परंतु वे स्वजनादि उन को दुःख से बचानेवाले नहीं हैं ॥ ६ ॥ जो कोइ शास्त्र के पारगामी धर्म के करनेवाले, ब्राह्मण तथा भिक्षुक होवे और वे माया से कराये हुवे सद् कर्मों में मूर्च्छित होवे तो वे भी उस कर्मों से बहुत दुःखी होते हैं ॥ ७ ॥ जो साथ परिग्रह का त्याग

पा० हसकर नि० विवेक च सावध अ० नहीं विरा इ० यहां मा० करे मु मोक्षका उपाय जा० नजाण आ० यह मम क० कहां से प० परभव वे० बीच में क० कर्म से कि० दुःखी होवे ॥८॥ न० यद्यपि णि० नग्न कि० कृश च विचरे, स० यद्यपि, भु० भोगवे मा० मास२ क्षमणके अतमें जे०जो इ० यहां मा० कपट भि० मूर्छित आ० आगे ग० गर्भ में अ० अनंत वक्त ॥ ९ ॥ पु० पुरुष र० निवर्तो पा० पाप कर्म से प० पल्यापमांत म० मनुष्य का जी जीवितव्य स० आसक्त इ० यहां का० काम भोग मे मु० मूर्छित मो०

अविरितिभे इह भासइ धुव ॥ णाहिसि आर कओ परं । वेहासे कम्मेहिं किच्चति ॥८॥

जइ वि य णिगण किसे चरे । जइ वि य भुंजिय मासमतसो ॥ जे इह मायावि मिज्जइ

। आगतागब्भायणतसो ॥ ९ ॥ पुरिसो रम पावकम्मुणा । पलियंत मणुयाण जीवि

करके सम्यक् ज्ञान से रहित, मोक्ष का उपाय नहीं जानता हुआ कहे कि हमारा दर्शन में ही मोक्ष की प्राप्ति होती है वह साधु इस लोक का सुधारा न कर सका; तो परलोक का सुधारा कहांसे कर सके अर्थात् अंतराल में ही कर्म से पीडाता रहे ॥ ८ ॥ बाह्य परिग्रहत्यागी, कृश, मास २ क्षमण का तप करनेवाला साधु भी जो माया कपट सेवे तो आगामिक काले अनंतागर्भादिक दुःख पावे ॥ ९ ॥ अहो मनुष्य ! अत्र पाप कर्म से शीघ्र ही निवर्तो क्यों कि मनुष्य का आयुष्य पल्योपमांत है जैसे ही मोह रूपी पंक में खुने

ठा० स्थानेस ते० पे च०भरते हैं दु० दु खित ॥५॥ का०काममें स० परिचय में गि० गृद्ध क०कर्म सहने वाले का० समय से भे०जीव ता०तालफल म०जैसे ब०बन्धन से चु०छुटे ए०ऐसे आ० आयुष्य क्षयमें तु० टूटते ॥ ६ ॥ जे जो वि० अपि ब० बहुसूत्री सि० होवे ध० धर्मी मा० ब्राह्मण भि० साधु सि० होवे अ० रूप क० कृत्य से मु० मूर्च्छित ति० तीव्र से० वे क कर्म से कि दुःखी होवे ॥ ७ ॥ अ० अब

सिवा ॥ राया नर सेट्ठि माहणा । ठाणा से वि चयाति दुक्खिया ॥ ५ ॥ कामेहिं य सथवेहि य गिद्धा । कम्मसहा कालेण जतवो ॥ ताले जह बधणच्चुए । एव आउक्खयमि तुट्टति ॥६॥ ज यावि बहुस्सुए सिया । धम्मियमाहणभिक्खुए सिया ॥ अभिणूम कडेहिं मुच्छिए । तिव्व से कम्मेहिं किच्चति ॥ ७ ॥ अह पास विवेग मुट्ठिए ॥

॥ ५ ॥ जैसे तालवृक्ष का फल बंधन छोडने पर अकस्मात् नीचे गिरजाता है वैसे ही काम भोग में तथा कुटुम्ब के परिचयमें आसक्त जीवों आयुष्य का क्षय होने से टूट जाते हैं और जब उसका विपाक आवे तब उन को ही उस का फल भोगना पडता है; परंतु वे स्वजनादि उन को दुःख से बचानेवाले नहीं हैं ॥ ६ ॥ जो कोई शास्त्र के पारगामी धर्म के करनेवाले, ब्राह्मण तथा भिक्षुक होवे और वे माया से कराये हुवे सद् सब कर्मों में मूर्च्छित होवे तो वे भी उस कर्मों से बहुत दुःखी होते हैं ॥ ७ ॥ जो साधु परिग्रह का त्याग

न० नहीं वा० वे म० में भी दु० पीड़ित दु० पीड़ित होते हैं लो० लोक में पा० ...
पस स० ज्ञानादि सहित पा० देखे, अ० क्रोधरहित से वे पु० स्पर्शे अ० सहन कर ॥ १३ ॥ धु० दूर
कर कु० भीत ज्यों च० निश्चय से० लेपको नि० कृशकरे दे० शरीर अ० अनशनादि से अ० हिंसा रहित
ए० मरेव प० प्ररूपे अ० हितकर ध० धर्म मु० साधु से प० कहा ॥ १४ ॥ स० पक्षिणी ज० जैसे पं०
धूल गुं० व्याप्त वि० धूणकर ध० उड़ावे सि० लगी हुई र० रज ए० ऐसे द० मोक्षार्थी ओ० तप

धुणिया कुलि ... अहियासए ॥ १३ ॥ धुणिया कुलि
पाणिणो ॥ एव सहिएहिं पासए । अणिहे से पुट्ठे अहियासए ॥ १३ ॥
य चलेवव । किसए देह मणासणा इह ॥ अविहिंसा मेव पव्वए । अणुधम्मो मुणिणा
पवेदितो ॥ १४ ॥ सउणी जह पसुगुंडिया । विहुणिय धंसयइ सियं रयं ॥ एव

तापादिक परीषह से मनुष्य तिर्यंचादि दुःखित हो रहे हैं परंतु सम्यग् ज्ञान के अभाव से उन को निर्जरा
नहीं होती है, इस लिये ज्ञान दर्शन सहित पूर्व जो जो परीषह कहे हैं उन के आने पर क्रोधादि रहित
पने सहन कर और विचार करे कि मैं एक ही इन परीषहों से नहीं पीड़ाता हूं? ॥ १३ ॥ जैसे पुरानी भित्ति
मिट्टि आदि का ... उस होती है वैसे ही अनशनादि तप करके अपने शरीर को कृश बनावे,
और श्री तीर्थंकर का प्ररूपा हुवा अहिंसादि लक्षणवाला धर्म का आचरण करे ॥ १४ ॥ जैसे पक्षिणी
अपनी पांख पर रही हुइ रज को शरीर को कम्पित कर दूर करती है, वैसे ही मोक्षार्थी तपश्चर्या करके कर्म

मोह में जं० जाते हैं न० मनुष्य अ० असंवरी ॥ १० ॥ ज० यत्नासे वि० विचर जा० मार्ग में अ० दुरुत्तर पा० प्राणी प० रक्षा में दु० दुस्तर हैं अ० शिक्षा में प० प्रवर्ते वी० वीर स० सम्यक् प० कहा ॥ ११ ॥ वि० विरत वी० वीर स० सावधान हुए, को० क्रोध का० कायरी (माया) आदि को पी० पीसने वाले पा० प्राणी को ण० नहीं ह० मारे स० सर्वथा पा० पापसे वि० निरत अ० परम शीतल ॥ १२ ॥

य ॥ सत्ता इह काम मुच्छिया । मोह जंति नरा असंवुडा ॥ १० ॥ जयय विहराहि जोगवं । अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा ॥ अणुसासण मेव पक्कमे । वीरेहिं सम्मं पवेइय ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुट्ठिया । कोह कायरियाइ पीसणा ॥ पाणे ण हणंति सव्व सो । पावाओ विरिया अभिनिव्वुडा ॥१२॥ णावि ता अहमेव लुप्पए। लुप्पंति लोयंसि

इस काम भोग में मूर्च्छित, तथा संवर रहित मनुष्य हिताहित नहीं जानते हैं ॥ १० ॥ अब क्या करना सो कहते हैं यत्नासे समिति पूर्वक विचरना परन्तु सूक्ष्म प्राणीवाले मार्ग को उल्लंघना बहुत कठीन है इस लिये सूत्र में जो जो अनुशासन है उस अनुसार यत्नासे विचरना ऐसा श्री वीर भगवान का कथन है ॥ ११ ॥ श्री वीर प्रभु हिंसादि पाप कर्म से निवर्तनेवाले, कर्म को छेदनेवाले, सम्यक् आचार में सावधान, क्रोध, मान, माया और लोभ का निकंदन करनेवाले, किसी प्रकार से प्राणी की घात नहीं करनेवाले, सा सर्वप्रकार से निवर्तनेवाले [illegible] ॥ १२ ॥ इस लोक में

म न० नहीं अ० वांछे पा० मरा ... पा० देखो तु० तुम ला० लोक ...
पन्त मा० माता पि० पिता सु० पुत्र भा० स्त्री पो० पोषणकरो पा० देखो मु० मूर्छित मो० मोह में ज० जावे न० मनु
ज० जैसे पो० पोषता है ॥ १९ ॥ म० कोइक अ० अन्य में मु० मूर्छित मो० मोह में ज० जावे न० मनु
ष्य अ० असंवरी वि० असयम वि० असयति से गा० ग्रहे ते० वे पा० पापमें पु० फिर प० धीठ ॥ २० ॥

> जाहिण बांधिओ घर ॥ जइ जीविअ नावकंखए । णो लब्भति ण सठविचए
> ॥ १८ ॥ सेहंतिय ण ममाइणो । माया पियाय सुयाय भारिया ॥ पोसाहिण पासओ
> तुम लोगपरपि जहासि पोसणो ॥ १९ ॥ अण्णो अण्णेहिं मुच्छिया । मोह जंति
> णरा असंवुडा ॥ विसम विसमेहिं गाहिया । ते पावेहिं पुणो पगब्भिया ॥ २० ॥ त

घर लेजावे ऐसा अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग सहन करे परंतु असयम जीवितव्य की वांच्छा करे नहीं
वैसे ही वे स्वजनादि उन को न तो वश कर सके और न गृहवास में रख सके ॥ १८ ॥ ममत्ववान्
माता, पिता, पुत्र और भार्या साधु को ऐसा समझावे कि अहो मुनि ! हम तेरा वियोग से अत्यंत
दुःखी हैं इस लिये हम को दुःखी देख कर हमारा पोषण कर क्यों कि तू सूक्ष्म दृष्टिवाला है इस लिये
पोषण कर माता पिता का पोषण नहीं करनेवाला इस लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट होता है ॥ १९ ॥
कोइ असंवरी शिथिलाचारी माता पितादिक में मूर्च्छित हो कर मोह को प्राप्त होता है अर्थात् अच्छा
अनुष्ठान को त्याग देता है और वह असंयम में गृद्ध होता हुवा पाप कर्म से लज्जित नहीं होता है ॥ २० ॥

धानवत क० कर्म ख० खपावे त० तपस्वी मा० महात्मा ॥ १५ ॥ उ० सावधान हुवे अ० साधु ए० एषणा में स साधु ठा० स्थानस्थित त० तपस्वी द बालक वु० वृद्ध प० मार्ये अ० अपि सु० श्रम पावें ण० नहीं त० उसे ल० ग्रास करे म० मन ॥ १६ ॥ ज यदि क० करुणा जनक का० करे ज० यादे रो० रुदन करे पु० पुत्रार्थ द० मोक्षार्थी भि० साधु स० सावधान भो० नहीं ल० पावे ण० नहीं सं० स्थाप सके ॥ १७ ॥ ज यदि का० काम भोग का० करे अ यादि ना लमावे प० पापकर न० यादि जी० असय

दविओवहाणव । कम्म खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ उट्ठिय मणगार मेसणं । स-मण ठाणट्ठिय तवस्सिण ॥ डहरा वुड्ढाय पत्थए । अवि सुस्से ण य त लभेज्जणा ॥ १६ ॥ जइ कालुणियाणि कासिया । जइ रोयति य पुत्तकारणे ॥ दविय भिक्खु समुट्ठिय । णो लब्भाति ण सठविचए ॥ १७ ॥ जइनिय कामेहिं लाविया । जइण

दूर कर सकते हैं ॥ १५ ॥ संयम स्थान में रहाहुवा अणगार तपस्वी साधु को बालक, पुत्रादि यथा वृद्ध, माता पितादि आकर कहे कि हमारे पोषण करनेवाला तुम्हारा सिवाय अन्य कोई नहीं है ऐसे वचन बोलते बोलते व श्रमित हो जावे परंतु वे स्वजनादि साधु को अपने वश में कर सके नहीं ॥ १६ ॥ जो कि वे माता पितादिक साधु की समीप आकर करुणा जनक शब्दों बोले, अथवा पुत्र के लिये रुदन करे तो भी व उन मुक्ति गमन योग्य साधु को अपने वश में नहीं कर सके वैसे ही गृहवास में स्थापित, नहीं कर

य० त्वचा सं० अपनी ज० तजता है म० पह र० रज इ० एस स० जानकर मु० साधु ...
मदकरे गो० गोत्रादि से मा साधु (जे० जो वि० विद्वान्) अ० अथ म अश्रयस्कर्ता अ० दूसरे की
ई० निन्दा (१) जे जो प० पराभव करता है प० दूसरा ज मनुष्य का स० संसार में प परिभ्र
मण करता है म०बहुत काल (ची० बहुत काल) अ० अथवा ई निन्दा पा० पापिनी इ० ऐसा स० जान
कर मु० साधु ण० नहीं म० मदकर ॥ २ ॥ जे० जेकोइ अ० अनायक सि० होवे जे० जेकोइ पे नोकर

तय स च जहाइ सरय। इति सखाय मुणी ण मज्जइ ॥ गोयन्नतरेण माहणे (जे निउ
त्ति) अहसयकरी अन्नेसि इंखणी ॥ १ ॥ जे परभवइ पर जण। ससारे परिवत्तइ
मह (चीर) ॥ अदु इंखणिया उ पाविया। इति संखाय मुणी ण मज्जइ ॥२॥ जे यावि

जैसे सर्प अपनी त्वचा परिहरने योग्य जानकर परिहरता है वैसे ही मुनि को कर्म रूपी रज परिहरना
इस तरह कषाय का अभाव से कर्म का अभाव होता है ऐसा जानकर साधु को गोत्रादि आठ प्रकार का
मद करना नहीं वैसे ही अन्य की निंदा अश्रेयकारिनी है ऐसा जानकर परकी निन्दा करना नहीं ॥ १ ॥
जो कोइ मनुष्य अन्य की निन्दा करता है वह संसार में बहुत कालतक परिभ्रमण करता है, इस लिये
निन्दा अधोगति में लेजानेवाली पापिनी है ऐसा जान साधु मद न करे अर्थात् मैं उत्तम हूं और अ
मुक मेरे से हीन है ॥ २ ॥ चाहे कोइ नायक रहित [चक्रवर्त्यादिक] होवे अथवा कोइ नोकर का नोकर

त० इसलिये व० मासार्थी इ० विचारो प पंडित पा० पापसे नि०निवर्ते अ०आते शीतल प०विनयवन्त वी वीर पुरुष म० दीर्घ रस्ते से सि० मुक्तिमार्ग पे न्याय मार्ग धु० ध्रुव स्थान ॥ २१ ॥ व० वैतालीय म० मार्ग आ० आया हुवा म० मन व० वचन का० कायासे सं संवरी चि० छोडकर वि धन णा ज्ञाति आ० आरंभ सु अच्छा संवरी च० विचरे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २२ ॥

म्हा दवि इक्स पडिए । पावाओ विरते भिणिव्वुडे ॥ पणए वीर महाविहिं । सिद्धि पह णेआउय धुव ॥ २१ ॥ वेयालियमग्ग मागओ । मणवयकाएण संवुडो ॥ चिच्चा वित्त च णायओ । आरंभ च सुसंवुडे चरेज्जासि त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति वेया लिय ज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥२॥१॥

स्क लोभ मे माइयाम में फसनेवाला की विषमगति होती है ऐसा हे पण्डित पुरुष ! तुम जानो पाप से नि वर्तनेवाले, क्रोध से शान्त होनेवाले, विनयवंत, तथा वीर पुरुष को शाश्वत, न्यायवाला महान् मोक्ष मार्ग में प्रवर्तना ॥ २१ ॥ कर्म विदारने का मार्ग आया हुवा जानकर मन वचन और काया से संवर पालनेवाला धन, धान्य ज्ञाति और आरंभ को छोड कर अच्छी तरह संयम पाले ऐसा श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने महावीर देव की पास से सुना है वैसा ही कहता हूं यह वैतालिय नामक द्वितीय अध्ययन का प्रथम उद्देशा पूर्ण हुवा इस उद्देशा में बाह्य द्रव्य स्वजन तथा आरंभ का त्याग करा अब दूसरा उद्देशा में मान का परिहार करते हैं

मरे] ॥ ५ ॥ प० प्रज्ञामें स० पूर्ण (स समर्थ) स० सदैव ज यत्नावंत स ... को मु० साधु मु० सूक्ष्म स० सदैव अ० अविराधक णो० नहीं कु० कोपे णो० नहीं मा० मानी मा० साधु (६) प० बहुत ज मनुष्य को ण० नमाने वाला स० सहस्त्र स० सर्व भव से प० मनुष्य अ० अनिश्रि त इ० द्रह जैसा स सदैव अ निर्मल ध० धर्म पा० प्रगट अ० करे का० काश्यपका (७) प०

संयत्ति) ॥५॥ पण्ण समत्ते (समत्थे) सया जए । समता धम्म मुदाहरे मुणी ॥ सुहु मे उ सया अलूसए । णो कुज्झे णो माणी माहणे ॥ ६ ॥ बहुजणणमणंमि संवुडो । सव्वट्ठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हर एव सया अणाविले । धम्म पादुरकासी कासवं॥७॥

हुवा या स्कंधक मुनि की तरह सर्वथा मरायाहुवा मुनि समता मार्ग में विचरे ॥ ५ ॥ संपूर्ण प्रज्ञावान (प्रश्नादिक के उत्तर देने में समर्थ) तथा सदाकाल कषायादिक को जीतने में समर्थ मुनि समभाव से अहिंसा लक्षण युक्त धर्म कहे और सूक्ष्म जो असंयम उस में अविराधक मुनि कदापि क्रोध करे नहीं, वैसे ही किसी से पूजाया हुवा मान भी कर नहीं ॥ ६ ॥ जैसे द्रह सदाकाल स्वच्छ पानी से भराहुवा रहता है, और अनेक जीवों के रहने पर भी खराब नहीं होता है, वैसे ही अनेक जनों से प्रशंसा पायाहुवा, धर्म में समाधि वंत, सर्व बाह्याभ्यन्तर धन धान्यादि में अनासक्त मुनि श्री महावीर स्वामी निर्दिष्ट धर्म प्रकाशे ॥ ७ ॥ पृथक् २ संसार में आश्रित बहुत पृथिव्यादि प्राणि का दुःख प्रिय है ऐसा जानकर जो साधु प्राणि

कर ये० नोकर सि० होवे वे जो मो० साधु पदमें व वपस्थित पो० नहीं ल० लज्जापावे स० समता धर्म स० सदा या० आचरे (१) स० सामायिकादि अ कोइ भी स० संयम में स० शुद्ध स० साधु प० प्रवर्ते के० जो मा० जाव जीव स० समाधि से द० मुक्ति गमन योग्य का० काल अ० क्रिया प० पण्डित ॥ ४ ॥ दू० मोक्ष अ० आलोच कर मु० साधु ती० गत ध० धर्म आ० अनागत त० तैसे पु० स्पर्शाया प० कठोर मा० साधु अ० अपि ह मराया हुवा स० समता में री० विचरे [स० समता से अ०

अण्णयरे सिया । जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोण पयं उवट्ठिए । णो लज्जे सम यं सयायरे ॥ ३ ॥ समअण्णयरम्मि सजमे । ससुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए । दविए कालमकासि पंडिए ॥ ४ ॥ दूरं अणुपस्सिया मुणी । तीतं धम्म मणागयं तहा ॥ पुट्ठे फरुसेहिं माहणे । अविहण्णू समयंमि रीयइ ॥ (समयाहिया

होवे परंतु दीक्षा ग्रहण किये बाद लज्जा नहीं रखना अर्थात् अभिमान छोड कर परस्पर प्रतिवंदनादिक सर्व क्रिया करना यदि चक्रवर्ति दीक्षा लेवे तो उनको भी पूर्व दीक्षित अपना कर्मकरके भी वंदना करना इस तरह सदैव समताभाव से संयम आदरना ॥ ३ ॥ इस तरह सामायक छेदोपस्थापनीयादि संयम में जाव जीव तक शुद्ध साधु विचरे, या तो आत्मज्ञान सहित शुभ अध्यवसाय में काल करे, वह ही पंडित कहा जाता है ॥ ४ ॥ सम्यग् धर्म विना मोक्ष नहीं होता ऐसा विचार कर, और जीव का अतीतकाल तथा अ नागत काल का स्वभाव को जानकर साधु पद करे नहीं वैसे ही कठोर वचन तथा दंडादिक से स्पर्शाया

मरे] ॥ ५ ॥ प० मज्ञामें स० पूर्ण (स समय) स० सर्व

करे सु० साधु सु० सूक्ष्म स० संवैर अ० अविराधक णो० नहीं कु० कोपे णो० नहीं मा० मानी मा० साधु

(६) प० बहुत ज० मनुष्य को ण० नमाने वाला स० सहचर स० सर्व अर्थ से ण० मनुष्य अ० अनिश्रि

त ह० द्रह जैसा स सदैव अ निर्मल ध० धर्म पा० प्रगट क० करे का० काश्यपका (७) प०

संयेच्चि) ॥५॥ पण्ण समत्ते (समत्थे) सया जए । समता धम्म मुदाहरे मुणी ॥ सुहु
मे उ सया अलूसए । णो कुज्झे णो माणी माहणे ॥ ६ ॥ बहुजणणमणंमि संवुडो
। सव्वट्ठेहिं णरे आणिस्सिए ॥ हर एव सया अणाविले । धम्म पादुरकासी कासव॥७॥

हुआ या स्कंधक मुनि की तरह सर्वथा भरायाहुवा मुनि समता मार्ग में विचरे ॥ ५ ॥ सपूर्ण प्रज्ञावान (प्रश्नादिक क उत्तर देने में समर्थ) सदा सदाकाल कषायादिक को जीतने में समर्थ मुनि समभाव से अहिंसा लक्षण युक्त धर्म को और सूक्ष्म जो असंयम उस में अविराधक मुनि कदापि कोप करे नहीं, वैसे ही किसी से पूजाया हुवा मान भी करे नहीं ॥ ६ ॥ जैसे द्रह सदाकाल स्वच्छ पानी से भराहुवा रहता है, और अनेक जीवों के रहने पर भी खराब नहीं होता है, वैसे ही अनेक जनों से प्रशंसा पायाहुवा, धर्म में समाधि वंत, सर्व बाह्याभ्यन्तर धन धान्यादि में अनासक्त मुनि श्री महावीर स्वामी निर्दिष्ट धर्म प्रकाशे ॥ ७ ॥ पृथक् २ संसार में आश्रित बहुत पृथिव्यादि प्राणि को दुःख प्रिय है ऐसा जानकर जो साधु प्राणि

बहुत पा माणी पु० अलग २ सि० होवे प० अलग २ स० समता स० देख कर मे० मो मो० सा
पु पद में उ० उपस्थित वि साधु त० तहां अ० की पं पंडित (८) ध० धर्म के पा० पारगामी
मु साधु आ० आरंभ से अ दूर ठि० रहे हुवे सो० पश्चाताप करते हैं म० ममत्ववान णो० नहीं
ल० पाते हैं णि अपना प परिग्रह को (९) इ इस लो० लोक में दु० दुःख के कारण वि० ना
न कर प० पर लोक में दु० दुःख दु० दुःख के कारण वि० विध्वंसण ध० स्वभाव इ० ऐसा वि०
जान कर को० कोन आ० गृहवास में आ० रहे (१०) म० महा प० कर्दम जा जानकर जा० जो

सहुवे पाणा पुढो सिया । पत्तेयं समय समीहिया ॥ जे मोणपद उवट्ठिते । विरतिं तत्थ
अकासी पंडिए ॥८॥ धम्मस्स य पारए मुणी । आरभस्स य अतए ट्ठिए ॥ सोयति य
णं ममाइणो णो लब्भंति णिय परिग्गहं ॥ ९ ॥ इह लोगदुहावहं विऊ । पर लो
गेय दुहं दुहावहं ॥ विद्धंसण धम्ममेव तं । इति विज्ज को गारमावसे ॥१०॥

भाव से निवर्तेगा वह पण्डित कहा जायगा ॥ ८ ॥ श्रुत चारित्र रूप धर्म का पारगामी तथा आरंभ से
अत्यंत दूर रहनेवाला ही साधु है और ऐसा नहीं करनेवाला ममत्ववान मरण समय में शोक करता हुवा
दुर्गति में जाता है परंतु स्वतः का धन धान्य स्वजनादिक परिग्रह नष्ट हुवा फिर मिलता नहीं है ॥९॥ घर धन
धान्यादिक परिग्रह इस लोक में दुःख देनेवाला है, वैसे ही परभव में दुःख का करनेवाला है, और घर
मनित्य अशाश्वत है

कोइ वं० वदन पू० पूजा इ० यहां सु० सूक्ष्म स० शल्य दु० दुरुद्धर वि० विवेकी प० परिहरे स० प
रिचय (११) ए० अकेला च० विचरे ठा० कायोत्सर्ग आ० आसन स० शय्या ए० अकेला स०
समाधि युक्त सि० होवे भि० साधु उ० तपादि धर्म में वीर्य फोरने व० वचन गुप्तिवाला अ० आत्मा का
सं० सवृत्ति (१२) णो० नहीं पि० ढके ण० नहीं प० उघाडे द्वा० द्वार का सु० शून्य घ० गृह के
स० साधु पु० पुछने से उ० कहे वा० वचन ण० नहीं स० पूंजे णो० नहीं स० बिछावे त० तृण

महय पलिगोव जाणिया । जाविय वदणपूयणा इह ॥ सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे । वि
उमता पयहिज्ज संथवं ॥ ११ ॥ एगेचरे ठाणमासणे । सयणे एगे समाहिए
सिया ॥ भिक्खू उवट्ठाणवीरिए । वइगुत्ते अज्झत्तसवुडो ॥ १२ ॥
णो पिहे ण यावपंगुणे । दार सुन्नघरस्स संजए ॥ पुट्ठेण उदाहरे वायं । ण स

उल्लंघन करना बहुत कठीन है ऐसा कीचड को तथा राजादिकसे कराइहुइ पूजावंदना को जानकर साधु
को गर्व करना नहीं क्यों कि गर्व यह एक सूक्ष्म शल्य है और सूक्ष्म शल्य होने से उसमें से निकलना
अति कठिन है इस लिये विद्वान् साधु को वैसा परिचय छोडना ॥ ११ ॥ और एकिला रागद्वेष रहित
कायोत्सर्गादि करना समाधिवन्त होता हुवा शयनासन में एकिला रहना वैसे ही तप में वीर्य फोरनेवाला,
विचार पूर्वक बोलनेवाला, और मन को संयम में रखनेवाला होना ॥ १२ ॥ किसी कारण से साधु को
शून्य गृह में रहने का होवे तो उस गृह का द्वार उघाडे नहीं वैसे ही ढके भी नहीं कोइ धर्म संबंधि प्रश्न

[११] न भा। अस्त होवे अ० अव्याकुल स० अच्छा वि० पुरे का मु० साधु अ० सहन करे च० दां मादि अ० अथवा भे भयकर अ० अथवा स वहां स० सर्प सि० होवे (१४) ति० तिर्यंच म० मनुष्य दि० देवता उ उपसर्ग ति० तीन प्रकार का अ० सहन करे लो० रोम मात्र भी ण० नहीं ह० ह० करे स शून्यगृहनिवासी म० साधु (१५) णो० नहीं अ० चाहे जी० जीवितव्य नो० नहीं

मुत्थे णा सयरे तण ॥ १३ ॥ जत्यत्थमिए अणाउल । समविसमाइ मुणी हि यासए ॥ चरगाय दुवावि भैरवा । अदुवा तत्थ सरीसिवा सिया ॥ १४ ॥ तिरिय मणुयाय दिव्वगा । उपसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लोमादियपि ण हरिसे । सुन्नागारगओ महामुणी ॥ १५ ॥ णो अभिकंखेज्ज जीविय । नो विय पूयण

पूछे तो सावद्य बोले नहीं, और वहां रहाहुवा तृणादिक साफ करे नहीं, वैसे ही उस को बिछावे भी नहीं ॥१३॥जहां सूर्य अस्त होवे वहांरहे अनुकूल प्रतिकूल शैय्यासिक परीषहों को सहनकरे परंतु आकुल व्याकुल होवे नहीं, वैसे ही डांस मच्छरादिक के अथवा रौद्र सिंहादिक के अथवा वहां शून्य गृह में सर्पादिक के भी परीषह होवे वे सब सहन करे ॥ १४ ॥ शून्य गृह में रहाहुवा मुनि तिर्यंच के, देवता के, तथा मनुष्य के ऐसे तीनों तरह के उपसर्ग सहन करे, परंतु रोम मात्र में भी खिन्न नहीं होवे ॥१५॥ और वह साधु असंयम

१३] न नहीं मस्त होवे अ० अव्याकुल स० अच्छा नि० बुरे को मु० साधु अ० सहन करे च० दां मारि म० अथवा म० भयकर अ० अथवा त० वहाँ स० सर्प सि० होवे (१४) ति० तिर्यंच म० मनुष्य दि० देवता उ० उपसर्ग ति० तीन प्रकार का अ० सहन करे लो० रोम मात्र भी ण० नहीं ह० हर्ष करे म० शून्यगृहनिवासी म० साधु (१५) णो० नहीं अ० वांछे जी० जीवितव्य नो० नहीं

मुत्थे णा सथरे तण ॥ १३ ॥ जत्थत्थमिए अणाउल । समविसमाइ मुणी हियासए ॥ चरगाय दुवावि भेरवा । अदुवा तत्थ सरीसिवा सिया ॥ १४ ॥ तिरिय मणुयाय दिव्वगा । उपसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लोमादियपि ण हरिसे । सुन्नागारगओ महामुणी ॥ १५ ॥ णो अभिकंखेज्ज जीविय । नो विय पूयण

पूछे तो सावद्य बोले नहीं, और वहां रहाहुवा तृणादिक साफ करे नहीं, वैसे ही उस को बिछावे भी नहीं ॥ १३ ॥ जहां सूर्य अस्त होवे वहां रहे अनुकूल प्रतिकूल शैय्यादिक परीषहों को सहनकरे परंतु आकुल व्याकुल होवे नहीं, वैसे ही डांस मच्छरादिक के अथवा रौद्र सिंहादिक के अथवा वहां शून्य गृह में सर्पादिक के जो परीषह होवे वे सब सहन करे ॥ १४ ॥ शून्य गृह में रहाहुवा मुनि तिर्यंच के, देवता के, तथा मनुष्य के ऐसे तीनों तरह के उपसर्ग सहन करे, परंतु रोम मात्र में भी विषम नहीं होवे ॥ १५ ॥ और वह साधु आत्मार्थ

r० पूजा प० प्रार्थना नि० होवे अ सहताहुवा मु० होवे मे भयंकर सु० शून्यगृहनिवासी
सि साधुको(१६) उ० प्राप्त कराया ज्ञानादि वा परोपकारी म सहने वाले को वि० विविक्त आ०
आसन ना० सामायिक आ० कहते हैं त० उसको ज० जिस मे जो जो अ० आत्मा को भ भय से
हैं भत ॥ १७ ॥ उ उष्णपानी त० गरम भो० खाने वाले ध० धर्म में स्थित मु० मुनि को ही ह
सारम भ परिचयवंत सा साधु रा०रागादिकसे अ असमाधि त तथा आ आहुइ ॥ १८ ॥ अ० अधि

पत्यए सिया ॥ अब्भत्थ मुविंति भेरवा । सुन्नागारगयस्स भिक्खुणो ॥ १६ ॥

उवणीयतरस्स ताइणो । भयमाणस्सवि विक्कमासण ॥ सामाइयमाहु तस्स

ज। जो अप्पाण भएण दसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तभोइणो । धम्मट्ठियस्स

मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिय साहुराइहिं । असमाहीउ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

जीवितव्य की वांच्छा कर नहीं, वैसे ही परीषह जीतने से मुक्त माफ पूजेंगे ऐसा पूजा माथक भी नहीं
सत्र इस तरह सून्य गृह में रहता हुवा साधु को रौद्र उपसर्ग सहन करना सुलभ होवे ॥ १६ ॥ जिस की
आत्मा में ज्ञानादि गुणों उत्पन्न हुए हैं वैसे, विभिक्त शैय्यासन सेवनेवाले तथा उपकारी को सामायिक चा
रित्रिय कहा है इस चारित्रवाला परीषह उत्पन्न होने पर डरता नहीं है ॥१७॥ उष्णोदक तथा तप्तोदकका
पान करनेवाला, श्रुत और चारित्र धर्म में स्थित, तथा असयम में प्रवृत्ति करता हुवा लज्जित, ऐसा मुनि को
भी राजादिक के संसर्ग से स्वाध्याय ध्यान में असमाधि होवे, अर्थात् वे अच्छी तरह कर सके नहीं ॥१८॥

[१३] ज जहां अस्त होवे अ अण्याकुल स० अच्छ चि० बुरे को मु० साधु अ० सहन करे च० दां सादि भ० अथवा भे भयंकर भ० अथवा त वहां स० सर्प सि० होवे (१४) ति तिर्यंच म० मनुष्य दि० देवता उ उपसर्ग ति० तीन प्रकार का अ० सहन करे लो० रोम मात्र भी ण० नहीं ह० ह र्ष करे सु० शून्यगृहनिवासी म० साधु (१५) णो० नहीं अ० वांच्छे जी० जीवितव्य नो० नहीं

मुत्थे णा सयरे तण ॥ १३ ॥ जत्थत्थमिए अणाउल । समविसमाइ मुणी हि यासए ॥ चरगाय दुवाधि भैरवा । अदुवा तत्थ सरीसिवा सिया ॥ १४ ॥ तिरिय मणुयाय दिव्वगा । उपसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लोमादियपि ण हरिसे । सुन्नागारगओ महामुणी ॥ १५ ॥ णो अभिकंखेज्ज जीविय । नो विय पूयण

पूछे तो सावद्य बोले नहीं, और वहां रहाहुवा तृणादिक साफ करे नहीं, वैसे ही उस को बिछावे भी नहीं ॥१३॥जहां सूर्य अस्त होवे वहांरहे अनुकूल प्रतिकूल शैय्यादिक परापहोंको सहनकरे परंतु आकुल व्याकुल होवे नहीं, वैसे ही डांस मच्छरादिक के अथवा रौद्र सिंहादिक के अथवा वहां शून्य गृह में सर्पादिक के जो परीषह होवे वे सब सहन करे ॥ १४ ॥ शून्य गृह में रहाहुवा मुनि तिर्यंच के, देवता के, तथा मनुष्य के ऐसे तीनों तरह के उपसर्ग सहन करे, परंतु रोम मात्र में भी खिन्न नहीं होवे ॥१५॥ और वह साधु असंयम

स्वच्छंदता से पा० भ्रमण कर इ यह प० प्रजा ब० बहुत
मु० साधु ण० नहीं म० मदकरे ॥ २१ ॥ छं० स्वच्छंदता से पा० भ्रमण करे इ यह प० प्रजा ब० बहुत
मा० माया मो० मोह में पा० आच्छादित वि० प्रगट प० प्रवर्ते मा० साधु सी० शीतोष्ण व० वचन अ०
सहन करे ॥ २२ ॥ कु० कुजयी अ० अपराजित ज० जैसे अ० पासा में कु० कुशल दी० खेलता हुवा
क० चौक को ग० ग्रहण करे णो० नहीं क० एक णो० नहीं ति० तीन णो० नहीं दा० दोका ॥ २३ ॥

इति संखाय मुणी ण मज्जति ॥२१॥ छंदेण पाले इमा पया । बहुमाया मोहेण पा
उडा ॥ वियडेण पलीति माहणे । सिउण्ह वयसा हियासए ॥ २२ ॥ कुजए अपरा
जिए जहा । अक्खेहिं कुसलेहिं दीवय ॥ कडमेव गहाय णो कलिं । णो तियं णो
चेव दावर ॥ २३ ॥ एवं लोगमि ताइणा । बुइए जे धम्मे अणुत्तरे ॥ त गिण्ह

ऐसे पाप से पूर्ण होवे है ऐसा जान कर पण्डित मुनि को क्रोध करना नहीं ॥ २१ ॥ ये लोक अपनी
अपनी स्वच्छंदतासे नरकादिक में परिभ्रमण करते हैं क्योंकि वे अनेक प्रकार की कपट क्रिया से श्री वीत
राग का मार्ग को नहीं जान सकते हैं, और मोह से आच्छादित रहते हैं ऐसा जानकर साधु निर्मायी वन
मोक्ष मार्ग में प्रवर्ते और अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग सहन करे ॥ २२ ॥ जैसे अक्ष से खेलने में कुशल
द्यूतकार अन्य किसी से नहीं जीताता है, और एक, दो, तीन का दाव छोड कर चार का ही दाव ग्रहण
करता है वैसे ही इस लोक में उत्तम हित कर एक ही प्रधान धर्म को ग्रहण करो ऐसा श्री जिनेश्वर का

करण का कर्ता भि० साधुको व बोला हुवा प० सहन करे दा० भयंकर भ० अप प० नाश होवे प० बहुत अ अधिकरण न० नहीं क० करे प० पण्डित ॥ १९ ॥ सी० सचित पानी को प० छोडने वाला अ० अमाविद्ध स० कर्म भ० निवर्तने वाले का सा० सामायिक आ० कहते हैं त० उसको स० जो गि० गृहस्थ के प० भाजन में न० नहीं भुं० भोगवे ॥ २० ॥ ण० नहीं स० सन्धे आ० कहा जी० आयुष्य त छिन्ने बा० अज्ञानी जीव प० धीठाइ करे बा अज्ञानी पा पाप से मि० भरावे इ० ऐसा सं० जानकर

अहिगरणकडस्स भिक्खुणो । वयमाणस्स पसज्झ दारुण ॥ अट्ठे परिहायति बहु ।
अहिगरण न करज्ज पण्डिए ॥ १९ ॥ सीओदग पडिदुगंच्छिणो । अपडिण्णस्स ल
वावसप्पिणो ॥ सामाइय माहु तस्स ज । जो गिहिमचत्तण न भुंजति ॥ २० ॥
णय संखयमाहु जीवियं । तह विय बाल जणो पगब्भइ ॥ बाले पापेहिं मिज्जति ।

भाव करनेवाला तथा जीव का भय उत्पन्न होवे एसी भाषा बोलनेवाला साधु के बहुत काल से उपार्जित पुण्य का क्षय होता है, इस लिये पण्डित साधु को क्रोध करना नहीं ॥ १९ ॥ सचेत पानी को नहीं पीने वाला, नियाणा नहीं करनेवाला, कर्म से अंकानेवाला साधु को सामायिक चारित्री कहा है और भी जो साधु गृहस्थ के कांस्यादि पात्र में भोजन नहीं करता है, उस को भी सामायिक चारित्री कहा है ॥ २० ॥ पण्डित पुरुषों कहते हैं, कि त्याहुवा जीवितव्य फिर बढ सकता नहीं है, तथापि मूर्ख जन पाप करते है और

म मांपि ते० वे उ० उठे ते० वे स० सावधान अ अन्योन्य सा० प्रवर्तावे ध० धर्म ॥ २६ ॥ मा० मत पे० निरन्तर पु पहिलके प० प्रणाम अ वांछे उ० उपाधि धु० छोड़न को जे० जो दू० दुष्ट मन के करने वाला से णो० नहीं ण० नमा हुवा ते० वे जा जानते हैं स० समाधि आ० कही ॥ २७ ॥ णो० नहीं का कथा का करने वाला हो० होवे सं० साधु पा० प्रश्नका करने वाला प० नहीं स० निमित्त क हने वाला न० जानकर ध धर्म अ० प्रधान क क्रिया करने वाला ण० नहीं मा० ममत्ववान् ॥ २८ छ०

। अन्नोन्न सारंति धम्मओ ॥ २६ ॥ मा पेह पुरा पणामए । अभिकंखे उवहिं धुणि त्तए ॥ जे दूमणतेहिं णोणया । ते जाणंति समाहिमाहियं ॥ २७ ॥ णो काहि ए होज्ज संजए । पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं । कय किरिए ण यावि मामए ॥ २८ ॥ छन्नं च पसंस णो करे । नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं

धर्म में स्थिर करता है ॥ २६ ॥ पूर्व के भोगवे हुवे काम भोगों का स्मरण करना नहीं और माया को दूर करने की इच्छा करना जो मनुष्य विषय के वशीभूत नहीं हुवे हैं वे ही समाधि [धर्म ध्यान को] हित मानते हैं ॥ २७ ॥ जिनोक्त अनुत्तर धर्म जानकर साधु को गौचरी जाते मार्ग में विकथा करनी नहीं, प्रश्न करना नहीं, अथवा अन्य कोइ प्रश्न करे तो निमित्तादिक कहना नहीं, वृष्टि अर्थकाण्डादिक कथाका विस्तार करना नहीं वैसे ही संयमानुष्ठान रूप क्रिया करता हुवा ममत्व करना नहीं ॥२८॥ साधुको क्रोध, मान,

प ९४ श्लो० गोक में ता० रसक पु० करे ने० जो ध० धर्म म प्रधान त० उसे गि० ग्रहणकर हि० हितकर च उपम क पौरु को से शेष व० छोडकर पं पण्डित ॥ २४ ॥ उ० प्रधान म० मनुष्य को आ० कहा गा० इन्द्रिय धर्म इ० म मे० मैंने भ० सुना जं० जिससे वि० निवर्ते स० सावधान का काश्यप का अ० धर्मानुचारी ॥ २५ ॥ जे जो ए० यह च० आदरते मा० कहा हुवा ना० ज्ञात पुत्र म० महान्

हियाति उत्तम। कडामिव सेसवहाय पण्डिए ॥ २४ ॥ उत्तर मणुयाण आहिया। गाम धम्मा इइ मे अणुस्सुय ॥ जंसि विरता समुट्ठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे एय चरति आहिय। नाएण महया महेसिणा ॥ ते उट्ठिय ते समुट्ठिया

कथन है जैसे जुवकार एकादि दाव को छोड कर चार का ही दाव का लेता है, वैसे ही पण्डित अन्य गृहस्थ, कुलिंगी, द्रव्यलिंगी आदि धर्म को छोड कर सर्वज्ञोपदिष्ट धर्म करे ॥ २४ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं, कि मैंने श्री वीर प्रभु से सुना है, कि मनुष्यों को इन्द्रिय के विषय जीतना अति कठीन है जो पुरुष इन विषयों से निवर्ता हुवा है, वह ही काश्यपके अनुचारी है, अर्थात जिनोक्त धर्म का करनेवाला है ॥ ॥ ज्ञात पुत्र श्री महावीर स्वामी ने कहा है कि जो पुरुष इन इन्द्रियों के विषय से निवर्त हिय धर्म को अंगीकार करता है वह संयम में सावध होता है वैसे ही पाखण्ड धर्म से ...

...॥ २१ ॥ ए ऐसा म०

मु० साधु सा० सामायिक मा० कहा ना० ज्ञात पुत्र भ० भगवन् स० सर्वदर्शी ... गुरु का छं० आज्ञानुवर्ती वि० मानकर म० दुर्लभ ध० धर्म स० ज्ञानादि युक्त ब० बहुत म० मनुष्य गु० गुरु का छं० आज्ञानुवर्ती वि० विरत ति० तीरा म० महान् समुद्र से मा० कहा ॥ २२ ॥ चि० ऐसा वे० कहता हूं ॥ २ ॥ २ ॥ *

स० कर्म से निवर्तनेवाला भि० साधुको जं० जो दु० दुःख पु० स्पर्शा है अ० अज्ञानपने से त० उसको सं०

वितहम्मो अणुट्ठिय) मुणिणा सामाइ आहित । नाएण जगसव्वदसिणा ॥ २१ ॥

एव मत्ता महतर । धम्ममिण सहिया बहू जणा ॥ गुरुणो छंदाणुवत्तगा । विरया

तिन्न महोघमाहित चिबेमि ॥ २२ ॥ इति वेयालीयज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो

सखुडकम्मस्स भिक्खुणो । ज दुक्खं पुट्ठ अबोहिए ॥ तं संजमओत्ति चिज्जइ । मर

ऐसे जीवोंने पहिले कदापि सुना नहीं है कदाचित् सुना होवे तो अंगीकार नहीं किया है ॥ २१ ॥

इस तरह आर्यक्षेत्र, मनुष्य जन्म, तथा जैन धर्म मिलना दुर्लभ है ऐसा जानकर पापसे निवर्ते हुवे तथा गुरु के छांदे चलनेवाले बहुत हलुकर्मी जीव महा भयानक संसार समुद्र को तीर गये हैं ऐसा श्री तीर्थंकर देवने फरमाया है, और वैसा ही मैं कहता हूं यह वैतालीय नामक दूसरा अध्ययन का द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा द्वितीय उद्देशा में चारित्र पालने का कहा, चारित्र पालते परीषह उत्पन्न होवे तो सहन करना यह आगे बताते हैं ॥ २ ॥ २ ॥

माया प० लोभ णो० नहीं कु० करे न० नहीं उ० मान प० क्रोध मा० साधु ते० उनका पु० परित्याग
मा कहा प सावधान ज० जिसस सु० सेवासा धू० संयमानुष्ठान ॥ २१ ॥ अ० स्नेह रहित स० ज्ञाना
दिक युक्त सु० सुसवृत प० धर्मार्थी उ० उपधानमें वी० वीर्यवन्त वि विचरे स० समाधि युक्त इ०इन्द्रियों
आ० आत्महित दु० दुर्लभ स पाव ॥ ३ ॥ ण० नहीं णू० निश्चय पु० पहिले अ० सुना अ० अथवा
त० उसको त० तैसे णो० नहीं स सावधान (अ० अथवा अ० यथातथ्य णो० नहीं अ० आचरा)

सुविवेगमाहिए ॥ पणया जेहिं सुजोसिअ धूयं ॥ २१ ॥ आणिहे सहिए सुसवुडे
। धम्मट्ठी उवहाणवीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए । आत्तहिअ सु दुहेण लब्भइ
॥ ३० ॥ णहि णूण पुरा अणुस्सुतं । अदुवा त तह णो समुट्ठियं ॥ (अदुवा अ

माया और लोभ करना नहीं और महान् पुरुषों ने भी उन का परित्याग करने का कहा है जिसने संय
मानुष्ठान का सेवन किया है उन को ही साधु जानना ॥ २१ ॥ और भी साधु स्नेह रहित, ज्ञानादि सहित,
संवर युक्त, धर्मार्थी, तप में वीर्य फोरता हुआ और इन्द्रियों को वश करता हुआ विचरे क्यों कि इस संसार
में आत्महित मिलना बहुत कठीन है ॥ ३० ॥ ऐसी सामायिकादि चारित्र की प्राप्ति जीव को अन्य किसी
स्थान नहीं हुइ है यह बताते हैं श्री सर्वभावदर्शी सर्वज्ञ श्री महावीर प्रभुने जो सामायिक चारित्र कहा है

जे० जो इ० यहां सा० सुखशीलीया न० मनुष्य अ० गृद्ध का० काम में मु० मूर्च्छित कि० कृपण स० सरिखे प० धीठ न० नहीं वि० जानते हैं स० समाधि आ० कही हुइ (४) वा० माणवान [व्याध] न० जैसे वि० त्रास देता हुआ अ० निर्बल हो० होता है ग बैल(मृग) प० प्रेराया हुआ से वे अं० अंत तक अ० अल्पसामर्थ्यता से न० नहीं अ० अति व० चलता है अ० निर्बल वि० पीडित होता है (५) ए० ऐसे का०

जे इह सायाणुगा नरा । अज्झोववन्ना कामेहिं मुच्छिया ॥ किवणेण सम पगब्भिया ।

नविजाणंति समाहि माहितं ॥ ४ ॥ वाहेण जहा व विच्छए । अबले होइ

गवं पचोइए ॥ से अंतसो अप्पथामए । नाइवहइ अबले विसीयति ॥ ५ ॥

गौरवयुक्त, काम में मूर्च्छित, और कायर की तरह धीठ मनुष्य तीर्थंकर का मार्ग को नहीं जान सकता है ॥४॥ अब जैसे गाडी का चलानेवाला बैल को चलाने की प्रेरणा कर निर्बल करे और बाद में मरणांत कष्ट देकर चलावे तो भी वह बैल असामर्थ्यपना से चल सके नहीं, और कीचड में खूता रहे अथवा कोइ पारधि मृगादिक पशुको त्रास देकर बल रहित कर देवे फिर वह कहां ही जासके नहीं वैसे ही काम भोग में आसक्त पुरुष आज या कल इनको त्यजूंगा ऐसा चिन्तवन करे परंतु त्यजसके नहीं ऐसा जानकर कामी पुरुष को काम भोग वांच्छना नहीं और जम्बू स्वामीकी तरह प्राप्त काम भोगको अप्राप्त करना अर्थात् छोडकर निस्पृही बनना ॥५ ६॥ अब कामभोग के त्याग का कारण बताते हैं काम भोग सेवने से परभवमें असाधता

सयम से चि० हीनहोते हैं म० मरण को है० समकर व० माव हैं प० पण्डित ॥ १ ॥ जे० जो वि० स्त्री अ० नसेवे से० सीरा हुवा से स० सम वि० कराया व० इसलिये ऊ० ऊर्ध्व (मोक्ष) पा० देखा अ० देखा का० कामभोगको ग० रोगवन् ॥ २ ॥ अ० अग्र व० वणिक आ० लाया धा० धारण करते हैं रा० राजादि इ० यहां ए० एस प० प्रधान प० पंचमहाव्रत अ० कहा हुवा स० रात्रि भोजन सहित ॥ ३ ॥

ण हेच वयाति पण्डिया ॥ १ ॥ जे विन्नवणा अजोसिया । संतिन्नाहिं समं वियाहिया ॥ तम्हा उड्ढंति पासहा अदक्खू कामभोगाव ॥ २ ॥ अग्गं वणिएहिं आहियं । धारेंति राइणिया इह ॥ एवं परमा महव्वया । अक्खाया उ सराइभोयणा ॥ ३ ॥

मिथ्यात्वादि कर्म का निरुंधन करनेवाला साधु को अज्ञानपने से बंधाया हुवा निकाचित कर्म का उदय होआवे तो उसे सतरह प्रकार के संयम से क्षय करे तथा वह संवृतात्मा पण्डित मरण को और उपलक्षण से शोक को छोड कर निर्वाण भाव ॥ १ ॥ जिन महान् पुरुषों ने स्त्रियों सेवी नहीं है और जो काम भोग को रोग की तरह देखते हैं वे मोक्ष को देखते हैं ऐसा मुक्त पुरुषों ने सम्यक् प्रकार से कहा है अर्थात् वे लोकों संसार में रहनेपर भी संसार पारगामी हैं ॥ २ ॥ जैसे सर्व वस्तु में अग्र-बहुमूल्य रत्नाभरणादिक वस्तुओं वेपारी बेचने को लाते हैं, और उसे बहुत द्रव्यधारी राजा आदि महान् पुरुषों ही धारन कर सकते हैं वैसे ही आचार्य महाराज की पास से पंच महाव्रत और छट्ठा रात्रि भोजन कोर महा पुण्यवान साधु ही ग्रहण कर सकता है परंतु अन्य नहीं ग्रहण कर सकता है ॥ ३ ॥ परंतु सुखशीलिये, तीन

मु॰ मूर्छा गि॰ गृद्ध म॰ मनुष्य का॰ काम म मु॰ मूर्च्छित ॥ ८ ॥ ... पापलोक में चि॰ बहुत काल आसक्त आ॰ आत्मदंडी ए॰ एकान्त मू॰ लूषारे गं॰ जाने वाले ते॰ वे पा॰ पापलोक में चि॰ बहुत काल आ॰ आसुरी दि॰ दिशामें ॥ ९ ॥ ण॰ नहीं स॰ सन्धाने आ॰ कहा जी॰ जीवितव्य त॰ तथापि बा॰ अज्ञानी ज॰ लोक प॰ धीठ बनते हैं प॰ वर्तमान का॰ कार्य को॰ कौन द॰ देखकर प॰ परलोक से आ॰ आया है ॥ १० ॥ अ॰ अंध इ॰ जैसा द॰ सर्वज्ञ आ॰ कहा स॰ श्रद्धो अ॰ अज्ञानदृष्टीसे ह॰ ग्रहण करो

कामेसु मुच्छिया ॥ ८ ॥ जे इह आरम्भनिस्सिया । आयदंडा एगंतलूसगा ॥ गंता ते पावलोगयं । चिरराय आसुरियं दिसं ॥ ९ ॥ णय संखय माहु जीवियं । तहवि य बाल जणो पगब्भइ ॥ पच्चुप्पन्नेण कारियं । को दट्ठुं परलोग मागते ॥ १० ॥ अदक्खु व दक्खु वाहियं । सद्दहसु अदक्खुदंसणा ॥ हंदि हु सुनिरुद्धदंसणे । मोह

काम भोग में मूर्च्छित होते हैं ॥ ८ ॥ इस लोक में जो कोइ आरंभ में आसक्त, आत्मा को दण्डनेवाले और प्राणी की घात करनेवाले हैं वे बहुत कालतक नरकादिगति में रहेंगे अथवा अज्ञान तप के प्रभाव से देवता की गति मिलजाय तो किल्बिषी देव होवेंगे ॥ ९ ॥ तूटाहुवा जीवितव्य फिर सांधता नहीं है ऐसा सर्वज्ञ का उपदेश होने पर भी कितनेक बाल मनुष्य धीठाइ करते हैं और कहते हैं कि हम को मात्र वर्तमान सुख से ही संबंध है परलोक को देख कर कौन आयाहुवा है ॥ १० ॥ ज्ञानदृष्टिरोध हे अंधतु

कामकी अभिलाषा में वि० निपुण भ० भाग या फल प० छोडूंगा सं० सर्वथ का० कामीजन का० काम को प० नहीं का० वांच्छे ल० प्राप्त हुवा को भ० भपि अ० नहीं प्राप्त हुवा क० करे (६) मा० मत प० पश्चात् अ० असाधुता भ० होवे भ० दूर करे भ० हित शिक्षा भ० आत्मा को अ० त्यजने यो ग्य घ० और अ० असाधु सो० सोच करता है सं० रुदन करता है प० विलाप करता है (७) इ० य हां जी जीवितव्य पा० देखो त० तरुण अवस्था में वा० सो वर्ष में तु० टूटता है इ० अल्प वा० वर्ष

एव कामेसणं विऊ। अज्जसुए प्पयहेज्ज सथवं ॥ कामी कामेण कामए लद्धेवा वि अलद्धकण्हुइ ॥ ६ ॥ मा पच्छ असाधुता भवे। अश्चेही अणुसास अप्प- ग ॥ अहिय च असाहू सोयाति। संथणति परिदेवाति बहु ॥ ७ ॥ इह जीविय मेव पासह। तरुणे एव वाससयस्स तुट्टति ॥ इतरवासेय बुज्झह। गिद्ध नरा

कोमें प्राप्त नहोवे ऐसा विचारकर आत्माको विषय संगसे दूर करना, और अपनी आत्माको शिक्षा देनाकि हे आत्मन्! असाधु कर्म करनेसे दुर्गतिमें गयेबाद तू शोक करेगा, आक्रंद करेगा, और बहुविलाप करेगा॥७॥ और भी इस संसार में जीवितव्य देखो यह क्षण क्षण में विनाश होरहा है तरुण भी अपना आयुष्य क्षय होने से काल को प्राप्त होता हैं और भी सांप्रतकाल में मनुष्य का आयुष्य मात्र सो वर्ष का है जो कि वह

मर्थ में सु० सुमती दे० देवताके भा० भावे लो लोक में ॥ १३ ॥ सो० सुनकर भ० भगवान की अ० हित शिक्षा स० सत्र त० तहां क० करे उ उपक्रम स० सर्व अर्थ वि० निवारे म० मत्सर भाव उं० माधुकरीवृत्ति भि साधु वि० निर्दोष आ० आहारसे ॥ १४ ॥ स० सर्व न० जानकर अ० आभिग्रहित ध० धर्मार्थी उ० उपधान वी० वीर्य फोरवे गु गुप्त जु० युक्त स सदैव ज० यत्नाकरे आ० आत्मा में प० दूसरे में प० उत्कृष्ट आ० मोक्षार्थी ॥ १५ ॥ वि० धन प० पशु ना० ज्ञाति सं० उसे भा०

सोच्चा भगवाणुसासणं । सच्चे तत्थ करेज्जुवक्कम ॥ सव्वत्थ विणियम च्छरे । उञ्छ भिक्खू विसुद्ध माहरे ॥ १४ ॥ सव्वं नच्चा अहिट्ठिए । धम्मट्ठी उवहाण वीरिए ॥ गुत्ते जुत्ते सदा जए आय पर परमायतट्ठिते ॥ १५ ॥ वित्त प

सदा समता परिणाम में रहता हुवा देवलोक में जा सकता है तो फिर यति धर्म पालनेवाले का कहना ही क्या ॥ १३ ॥ वीतराग की आज्ञा पूर्वक श्रम गुन करके जैसा आगम में धर्मानुष्ठान कहा है वैसा ही पालने का उद्यम करे तथा सर्वत्र मात्सर्यता रहित साधु माधुकरी वृत्ति से शुद्ध निर्दोष आहार लेवे ॥ १४ ॥ सर्व हेय ज्ञेय उपादेय को जानकर सर्वज्ञोक्त मार्ग का आश्रय ग्रहण करना चाहिये और धर्मार्थी बन, तप में वीर्यवान् होता हुवा, मन वचन और कायको गोपता हुवा, ज्ञानादि सहित, तथा मोक्ष का अभिलाषी होता हुवा यत्न करना चाहिये ॥ १५ ॥ धन, पशु, ज्ञाती यह सब मेरे हैं, मैं उनका हूं इसतरह

मु० निरुद्ध द० दर्शनी मो मोहनीय से क०किये हुए क०कर्मों से ॥११॥ दु० दुःखी मो० मोह में पु०पुनः वि० छोडे लो० लोक पूजा ए० ऐसे स० सहित पा देखे आ० आत्म तुल्य पा० प्राणी को सं० साधु ॥१२॥ गा०घर में आ० रहता हुआ न०मनुष्य अ० अनुक्रमसे पा० प्राणीयों सं०यत्नकरे स० समता स०सर्व

णिज्जेण कडेण कम्मुणा ॥ ११ ॥ दुक्खी मोहे पुणो पुणो । निव्विंदेज्जसि लोगपूय ण ॥ एव सहितेहि पासए । आयतुल पाणेहिं संजए ॥ १२ ॥ गारंपिअ आवसे, नरे । अणुपुव्वं पाणेहिं संजए ॥ समता सव्वत्थ सुव्वते । देवाण गच्छे सलोगयं ॥ १३ ॥

पुरुष ! सर्वज्ञ से उपदेशाया हुवा आगम की श्रद्धा कर क्यों कि मात्र प्रत्यक्ष प्रमाण माननेवाले को व्यवहार का लोप होता है अर्थात् वर्तमान काल को छोड कर अन्य अतीत अनागत काल नहीं मान नेवाले को पितामहादिक तथा पुत्र पौत्रादिक होवें नहीं परंतु मोहनीय कर्म से जिस का दर्शन रुंधाया है ऐसा प्राणी जैन धर्म की श्रद्धा नहीं करता है ॥ ११ ॥ ऐसा वचन बोलने वाला दुःखी होता हुआ वारंवार मोह में फसता है इस लिये मोह का त्याग कर आत्मश्लाघा, पूजा को भी छोडना ऐसा करनेवाला ज्ञानादि सहित संयति साधु सर्व प्राणी मात्र को अपनी आत्मा तुल्य देखता है ॥ १२ ॥ अब गृहस्थवास में रहनेवाला पुरुष भी अनुक्रम से धर्म सुनकर, श्रावक के व्रत अंगीकार कर, जीवों की यतना करता हुवा

हिं भवे भ भयसे व्याकुल स शठ आ० जन्म म वृद्धावस्था म० मरण से भि० पीडित हुवा ॥१८॥ इ० यह स० अवसर वि० जानो णो० नहीं सु० सुलभ बो बोधि आ० कहा हुवा ए० ऐसे स० सहित इ० यह स० अवसर ... पा० दसो (अ० सहन करे) आ० कहा जि० जिनवर इ० यह से० शेष ॥ १९ ॥ अ० हुवे पु० पहिले भि० साधुओं आ० आगामिक भ० होवेंगे सु सुव्रति ए० यही गु० गुण आ० कहे का० काश्यप के अ० धर्मानुचारी ॥ २० ॥ ति० तीन करन से पा० प्राणी मा नहीं ह० हने आ० आत्महित अ० नियाणा

भिवुता ॥ १८ ॥ इण मेव खण वियाणिया । णो सुलभं बोहिं च आहितं ॥ ए
य सहिएहिंपासए । (आहियासए) आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १९ ॥ अ
भविंसु पुरा वि भिक्खवो । आएसावि भवंति सुव्वता ॥ एयाइं गुणाइं आहुते
। कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥ तिविहेण वि पाण मा हणे । आयहि-

करते हैं ॥ १८ ॥ ऐसा अवसर को, वैसे ही बोध बीज मिलना सुलभ नहीं है इस को जानकर ज्ञानादि युक्त साधु परीषह आनेपर उसे सहनकरे ऐसा श्रीआदिश्वर भगवानने तथा अन्य सब तीर्थंकरोंने कहा है॥१९॥ अहो मुनियों भूतकाल में जो प्रधान व्रतधारी तीर्थंकर हुवे और जो आगामिक काल में होवेंगे वे सर्व ऐसे ही गुणों को कहते हैं किसी में मत भेद नहीं रहता है जो उपदेश ऋषभ देव स्वामी का है यह ही उप देश महावीर स्वामी का है ॥ २० ॥ तीन करन और तीन जोग से प्राणी मात्र की हिंसा करनी नहीं वैसे

अज्ञा ी स० शरण म० माना है ए ये म० मेरे ते० उस का म० में नो० नहीं ता० प्राण स० शरण म० नहीं वि० जानता है ॥ १६ ॥ म० मास दु० दुःख म० अथवा उ० उपक्रम भ० भवान्तर में ए० अकेला की ग० गति आ० आगति वि० विवेकी स० शरण ण० नहीं म० मानता है ॥ १७ ॥ स० सर्व स० स्वत' कर्म क० कल्पे अ० अव्यक्त दु० दुःख पा० प्राणी को

सव्वो नाइओ । त माल सरणति मन्नइ ॥ एते मम तेसुवि अह । नो ताण सरण न विज्जइ ॥ १६ ॥ अब्भागमितमि वा दुहे । अहवा उक्कमिते भवतिए ॥ एगस्स गती य आगती । विदुमता सरण ण मन्नइ ॥ १७ ॥ सव्वे सयकम्म कप्पिया । अवियत्तण दुहेण पाणिणो ॥ हिंडति भयाउला सढा । जाइ जरा मरणेहिं

अज्ञानी उन सब को शरण माने परन्तु वह ऐसा नहीं मानता है कि वे धनादि, रोगादि दुःख उत्पन्न होने समय या दुर्गति में जाते समय शरण नहीं होते हैं ॥ १६॥ साता वेदनीय कर्म का उदय से आयेहुवे दुःख को, या मरण समय में आयेहुवे दुःख तथा भवान्तर में प्राप्त दुःख को जीव अकेला ही भोगता है वैसे ही गति और आगति जीव अकेलाकी ही होती है ऐसा जानकर पण्डित पुरुष किसी का शरण माने नहीं ॥ १७॥ संसार में रहे हुवे सर्व जीवों की एकेन्द्रियादि जाति अपने २ कर्मों से बनी हुई है उस में अव्यक्त दुःख से दुःखी, भय से व्याकुल जन्म जरा मरण से पीडित तथा [illegible]

उपसर्गपरिज्ञाख्य तृतीय मध्ययनम्

सू० शूरवीर म० मानता है अ० स्वतः को जा० यावत् मे• जेता न० नहीं प० देखता है जु० लड़ता हुवा द० दृढधर्मी सि० शिशुपाल की तरह म० महारथी [नारायण] ॥ १ ॥ प० आया हुवा सू० शूरवीर र० रणके अग्रभाग में स० संग्राम में उ० उपस्थित मा० माता पु० पुत्रको न० नहीं जा० जानती है जे० जीतने वाले से प० छेदाया हुवा ॥२॥ ए० ऐसे से• नवदीक्षित साधु अ नहीं स्पर्शाया भि० भिक्षा

सूरं मण्णइ अप्पाणं । जाव जेयं न पस्सति ॥ जुज्झंतं दढधम्माणं । सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे । संगामम्मि उवट्ठिते ॥ माया पुत्तं न याणाइ । जेएण परिविच्छए ॥ २ ॥ एवं सेहवि अपुट्ठे । भिक्खायरिया अकोविए ॥ सूर

जैसे शिशुपाल अपने को शूरवीर मानता था, परंतु दृढ धर्मी महारथ (कृष्ण) को संग्राम में लड़ता हुवा देख कर क्षोभित हुवा, वैसेही कितनेक अपनेको शूरवीर मानते हैं परंतु जबलग संग्राम में अपने जेताको न देखे वहां लग ही उन का सामर्थ्यपना है ॥ १ ॥ जैसे अपने को शूरवीर माननेवाला कोइ पुरुष संग्राम में आया हुवा शत्रु आदि के प्रहार से छेदाता कायरता से मगमाता है और जहां सुभटों की आकुलता से माता भी अपना पुत्र को नहीं जान सकती है वैसा रणक्षेत्र में अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित भट साधु के

राहित स० प्रभृति ए०ऐसे सि सिद्ध अ०अनंत सं० सांप्रत अ०अनागत में अ अपर॥२१॥ ए० ऐसे से० वे उ० कहा अ० निरुपम ज्ञानी अ० निरुपम दर्शी अ निरुपम ज्ञान दर्शन के धारक अ० अर्हन् ना ज्ञात पुत्र भ० भगवान् व० विशाला नगरी में वि० फरमाया त्ति० ऐसा बे० कहता हूं॥ २२ ॥ २ ॥

ते आणियाण संवुडे ॥ एव सिद्धा अणंतसो । संपइ जे अणागयावरे ॥ २१ ॥ एवं स उदाहु अणुत्तर णाणी । अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाणदंसणधरे ॥ अरहा नाय पुत्ते भगवं वेसालिए वियाहिए त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति वेयालीयज्झयणस्स तइओद्देसो सम्मत्तो । इति वेयालीय णाम बीअमज्झयण सम्मत्त ॥ २ ॥

री का महाव्रत मानना इस का धारन करनेवाला, नियाणा रहित तथा संवरी साधु अतीत काल में अनंत सिद्ध हुवे, आगामिक काल में अनंत होवेंगे और वर्तमान काल में भी सिद्ध होरहे हैं ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त रीत्या निरुपम ज्ञानी, निरुपम दर्शनी और अनुपम ज्ञान दर्शन के धारन करनेवाले श्री ऋषभ दव स्वामी ने कहा, ऐसा श्री ज्ञात पुत्र महावीरने विशाला नगरी में उपदेश दिया इस तरह श्री सुधर्मा स्वामी अपन शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने वर्धमान स्वामी से सुना है वैसा ही तेरे मत्ये कहता हूं यह वैतालीय नामक द्वितीय अध्ययन का तृतीय उद्देशा पूर्ण हुआ और द्वितीय अध्ययन भी समाप्त हुआ। कर्मों को विदारनेवाला उपसर्ग सहनेवाला होता है इस लिये आगे उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन का प्रारंभ करते हैं ॥ २ ॥

से पीरातें दु० दुर्भागी चे० निश्चय इ० ऐसा भा० कहे पु० पृथक् ज० मनुष्य ॥ ६ ॥ ए० ये स शब्दो को अ० असमर्थ गा० ग्राममें ण नगरमें त० वहां मं० मूर्ख वि० सिदाते हैं सं० संग्राम में भी० भीरु ॥ ६ ॥ अ० कोइ भक्खु० क्षुधित भि० साधु को सु० कुत्ती इ० काटती है कू० क्रूर त० तहां मं० मूर्ख वि० सिदावेहे ते० अग्नि से पु० स्पर्शावा पा० प्राणी ॥ ८ ॥ अ० कितनेक प० बोलते हैं प० प्रतिपथि-

पुट्ठो जणा ॥ ६ ॥ एते सद्दे अचायता । गामेसु णगरेसु वा ॥ तत्थ मदा विसीयति ।
संगाममिव भीरुया ॥ ७ ॥ अप्पेगे क्खुधिय भिक्खुं । सुणी डसति लूसए ॥ तत्थ
मदा विसीयति । तेउ पुट्ठाव पाणिणो ॥ ८ ॥ अप्पेगे पडिभासंति । पडिपंथिय मा

परीषह कहते हैं, साधु को सदाकाल दी हुइ वस्तु लेना यह एक बडा दुःख है, और मांगना यह वो भ पार दुःख है इस में जो कायर पुरुष हैं वे सीदावें आक्रोश परीषह: और भी कितनेक पामर पुरुष साधु को ऐसा कहे कि ये बिचारे पूर्व कृतकर्म के फल अनुभवते हैं या तो दुःख वेदना से ग्रसित होने से कार्य करने में असमर्थ हुवे हैं, इस लिये यति बने हैं या तो दुर्भागी होने से परीवार को, छोड कर यति हुवे हैं वगेरह ॥ ६ ॥ जैसे भीरु संग्राम में सीदाता है वैसे ही ग्राम में या नगर में रहेहुवे पूर्वोक्त शब्दों को सहन करने में असमर्थ मंद पुरुषों सीदाते हैं ॥ ७ ॥ जैसे अग्नि से स्पर्शाये हुवे जीवों पीडित होते हैं, वैसे ही जब कोइ क्रूर कुत्ता साधु को काटता है तब उस से वह साधु खेदित होता है ॥ ८ ॥ कोई साधु के द्वेषी

यर्थों में अ० अमान मू० शूर म० मानते हैं अ० स्वत को मा मावत् सु० संयम को न० नहीं से० सेवे ॥ ३ ॥ म मद हे० हेमन्तऋतु में सी० शीत फु० स्पर्शता है स० सर्वांग में [स० वायु सहित] त० तहां म मंद वी जीवराव हैं र० राज्य हीन सत्व स० क्षत्रिय ॥ ४ ॥ पु० स्पर्शोपा गि० ग्रीष्म में ता० ताप से वि० मराव मन मास्या स० तृषावर त० तहां मं० मूर्ख वि० पीड़ाते हैं म० मत्स्य अ० अल्पोदक में म० मेस ॥ ५ ॥ स० सदैव द० दीया हुवा प० भैना दु० दुःख जा० याचना दु० अपार दुःख क० कर्म

मण्णति अप्पाण । जाव लूह न सेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासमि । सीय फुसइ स व्वेग (सवायग) ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । रज्जहीणाव खत्तिया ॥ ४ ॥ पुट्ठ गि म्हाहि तावेण) विमणे सुपिवासिए ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । मच्छा अप्पोदए जहा॥५॥ सया दत्तेसणा दुक्खा । जायणा दुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता दुब्भगा चेव । इच्चाहंसु

मारों से छेदाया हुवा खेद पाता है ॥२॥ वैसे ही नव दीक्षित परीषहसे नहीं स्पर्शाया हुवा और भिक्षाचरि का अमान साधु ने जहां तक संयम अंगीकार नहीं किया है वहां तक ही अपने को शूरवीर मानता है ॥ ३ ॥ जैसे राज्य विहीन क्षत्रिय खेदित होता है वैसे ही जब मंद पुरुषों को शीत काल में ठंड सर्वांग में स्पर्श करती है तब वे शीत से स्पर्शाये हुवे खिन्न होते हैं ॥ ४ ॥ जैसे अल्पोदक में रहा हुवा मत्स्य पीड़ा ता है वैसे ही ग्रीष्म काल में ... ॥ ५ ॥ ... याचना

प परलोक भ० जिस लिये प परम म०मरण ।सि० होवे ॥१२॥ से० गभराया हुवा के० केश लो० लोच से ब ब्रह्मचर्य से प० पराभव पाया त०तहां मं०मूर्ख भवि० सिदाते हैं म० मच्छ वि० प्रवस कियाहुवा के० जाल में ॥ १३ ॥ आ० आत्मदंड स० समाचरे मि० मिथ्या म० संस्थित भा भावना ह० रागद्वेष से स० व्याकुल के० कितनेक मू०भतापे भ०भनार्य ॥ १४ ॥ अ०कितनेक प० विचरतेहुवे चा० चोकसी चो० चोर

परे मरण सिया ॥ १२ ॥ सतत्ता केसलोएण । बंभचेर पराइया ॥ तत्थ मंदा

विसीयंति । मच्छा विट्ठाव केयणे ॥१३॥ आयदंड समायरे । मिच्छासंठिय भावणा ॥

हरिसप्पउ समावन्ना । केइ लूसंति नारिया ॥ १४ ॥ अप्पेगे पलियंतेसिं । चारो

करने में अशक्त साधु ऐसा चिन्तवन करे कि यह दुष्कर अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं; परंतु परलोक तो हमने देखा नहीं है और यहां पर क्लेश सहित मरण प्रत्यक्ष होरहा है ॥ १२ ॥ जैसे जाल में आया हुवा मत्स्य जीवितव्य से भ्रष्ट होता है वैसे ही केशलोच से संतप्त तथा काम विकार के उदय से पीडित बिचारे मूर्ख संयम से भ्रष्ट होते हैं ॥ १३ ॥ आत्मा दुर्गति में जावे वैसा आचार के सेवनेवाले, मिथ्या दर्शनी तथा रागद्वेष से व्याकुल कितनेक अनार्य पुरुष साधु को अपनी क्रीडा के लिये दुःख देते हैं ॥१४॥ और देशान्तर में विचरनेवाला साधु को कोइ अनार्य पुरुष यह चोकसी है, यह चोर है, ऐसा कहकर

कता (द्वेष बुद्धि) आ० आये हुवे पु० पूर्व कर्मानुभव को ग० प्राप्त ए० ये जे० जो ए० ये ए० ऐसा
जी० जीवनार्थी ॥ ९ ॥ अ० कितनेक व० वाचा बु० बोलते हैं न० नग्न पिं० भिखारी मुं० मुण्डित
कं० खर्जू वि० विनष्ट अंग वाले उ० मैले अ० असमाधिक ॥ १० ॥ ए० ऐसे वि० पुण्य रहित अ० स्वतः
अ० अज्ञान त० अंधकार से ते० वे त० अंधकार में जं० जाते हैं म० मंद मो० मोहसे पा० आच्छादित
॥ ११ ॥ पु० स्पर्शाया दं० डांस मच्छर से त० तृण फा० स्पर्श अ० असक्त न० नहीं मे० मेने दि० देखा

गता ॥ पडियार गता एते । जे एते एव जीविणो ॥ ९ ॥ अप्पेगे वइ जुजंति । न
गिणा पिंडोलगाहमा ॥ मुंडाकंडूविणट्ठगा । उज्जल्ला असमाहिता ॥ १० ॥
एव विप्पाडिवन्नगे । अप्पणाउ अजाणया ॥ तमओ ते तम जंति । मंदा मोहेण पा
उडा ॥ ११ ॥ पुट्ठोय दंसमसएहिं । तणफास मचाइया ॥ न मे दिट्ठे परलोए । जइ

ऐसा कठोर वचन बोलते हैं कि ये जो साधु घर घर की भिक्षा मांगकर आजीविका करते हैं वे अपने
पूर्व भव के किये हुवे कर्मों के फल हैं ॥ ९ ॥ और भी कितनेक ऐसा अनार्य वचन बोलते हैं कि ये नग्न
फिरनेवाले हैं, सदाकाल अन्य की पास से भिक्षा मांगकर खानेवाले हैं, मुण्डित, खर्जू से जिसके अंग
विनष्ट हुवे हैं ऐसे मलीन गात्रवाले तथा असमाधि को उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १० ॥ ऐसे बोलनेवाले साधु

स॰ मरते ति॰ ऐसा के॰ कहता हूं ॥ १७ ॥
स॰ मरते सं॰ बिमाया की स्त्रीव म परमम ग॰ गये मि॰ पर स॰ सबल मि॰ साधु को जे॰ मो दु॰ दुस्वर ज जहां ए॰ कितनेक
म॰ भव इ॰ पर सु॰ सूक्ष्म स॰ सबल मि॰ साधु को जे॰ जो दु॰ दुस्वर ज जहां ए॰ कितनेक
वि॰ सिदाते हैं ण॰ नहीं प पास सकते हैं म॰ प्रवर्तने को ॥ १ ॥ अ॰ कितनेक ना॰ ज्ञातिको
दि॰ देखकर रो॰रुदन करते हैं प॰परिवार पो॰पोषण ता॰ तात पु॰स्पर्शाया क किस कारणसे ता॰ तात

कीवा घासागया गिहं तिबेमि ॥ १७ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाज्झयस्स पढमो

देसो सम्मत्तो ॥ ३ ॥ १ ॥

अहिमे सुहमा सगा । भिक्खुण जे दुरुत्तरा ॥ जत्थ एगे विसीयति । ण चयंति ज

विचए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायओ दिस्स । रोयाति परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुट्ठोसि ।

श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं इस उद्देशा में प्रतिकूल उपसर्ग कहा, अब आगे अनुकूल उपसर्ग के
कारण बताते हैं

अब चित्त में विकार उत्पन्न करनेवाले माता पितादिक के संबंध रूप सूक्ष्म उपसर्ग साधु को दुरुलंघ
नीय है जो पुरुष इन उपसर्गों में सिदाता है पर अपनी आत्माको संयम में प्रवृत्ति नहीं करा सकता है
॥ १ ॥ दीक्षा लेनेवाला पुरुष की आसपास आकर कितनेक स्वजनादि कहते हैं कि हे तात हमने आज
दिन पर्यंत ऐसा जानकर तेरा पोषण किया है कि त वृद्धावस्था में हमारा पोषण करे इस लिये अब त

मु० सुव्रति व० चोरौ भि० साधु का बा अज्ञानी क० कषाय वचन से ॥१८॥ त०तहां दं० दंड से सं० मारे मु०मुष्टि से अ० अथवा प० फल से ना० ज्ञाती को स० याद करता है बा० मूर्ख इ० स्त्री कु० को पित हुइ ॥१६॥ ए०इतने मो० महो क० संपूर्ण फा० स्पर्श फ० कठीन दु० दुस्सह स०सदा ह०हस्ती जैसे

चोरोत्ति सुव्वय ॥ पधंति भिक्खुय बाला । कसायवयणेहिय ॥ १५ ॥ तत्थ दंडेण

संवीते । मुट्ठिणा अदु फलेण वा ॥ नातीणं सरति बाले । इत्थी वा कुद्धगामिणी

॥ १६ ॥ एते मो कसिणा फासा । फरुसा दुस्सहिया सया ॥ हत्थी वा सरसंविचा।

रस्सी प्रमुख से बांधे और कषाय के वचनों से निर्भर्त्सना करे, वैसे ही उस दण्ड से, मुष्टि से, तथा खड्गादि से मारे तो उस समय वह ज्ञाति जन का स्मरण करे अर्थात् ऐसा चिन्तवन करे कि मेरे स्वजन संबंधि पासपर होवे तो मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता जैसे कोइ क्रुद्धा स्त्री अपने गृह से निकल कर अन्य स्थान जाती होवे और उसे मार्ग में चोर लूटे तब अपना संबंधि को याद करती है; वैसे ही मंद बुद्धिवाले बाल परीषह उत्पन्न होने पर अपने स्वजनों को याद करते हैं ॥ १८—१६ ॥ जैसे शरसे विंधाया हुआ हस्ती संग्राम में से भग जाता है वैसे ही, हे शिष्यों ! सर्व दुस्सह स्पर्श को नहीं सहते कर्म वशमें पिरे हुवे असमर्थ साधु संयम से भ्रष्ट होते हैं ॥ १७ ॥ ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य

दूसरे से ग० गमन करे ॥ ५ ए० आय ता तात घ० घर जा० जावे मा० मत क० कर्म स सहायक वि० दूसरी वक्त ता० तात पा देखो मा घलोगे ता० तावत् स० अपन गि० घर ॥ ६ ॥ गं जाकर गा० तात पु० फिर ग० जा प नहीं से० उससे अ० असाधुपना सि० होवे अ० निष्कामी प० प्रवर्तता दूसा को कौन से० तुझे वा नाकहने अ० समर्थ है ॥७॥ जं० जो किं० किंचित् अ० ऋण ता० तात सं०

गतु ताय पुणो गच्छे । णय तेणासमणो सिया ॥ अकामग परिकम्म । को उ ते वारे-
जामो । माय कम्म सहावय ॥ बितिय पि ताय पासामो । जासु ताव सयं गिहं॥६॥
उ मरिहति ॥ ७ ॥ ज किंचि अणग तात । नपि सव्व समीकत ॥ हिरण्ण ववहा

॥ ५ ॥ हे तात अग तुम पीछे घर चलो यहां तुम कोइ भी कार्य करना नहीं और जो कोइ नवीन कार्य होगा तो हम तुम मदद देनेवाले होंगे एक वार तुम बाहिर चले भये हो परंतु अब दूसरीवार घर चलो, हम देखते हैं, कि तुम्हारा यहां क्या बिगाड होता है इस लिये अपने घर चलो और इतना ही हमारा वचन मान्य करो ॥ ६ ॥ हे तात एक वार ही घर चलके स्वजन संबंधि को मिलकर के फिर आकर साधुपना लेना इतना जाने में तुमारा साधुपना नहीं चलाजाता है यदि तुम ढूड्या व्यापार की इच्छा रहित संयमानुष्ठान करोगे तो तुम को ना कहने को कौन समर्थ है ॥ ७ ॥ और हे तात तुम्हारा जो ऋण था वह सब हमने भरदिया है, और तुम्हारा व्यवहार के लिये या अन्य

म छाडता है ण० हम को ॥ २ ॥ पि पिता ते० तुमारा थे स्थविर ता० तात स० भगिनी से० तुमारी खु छोटी भा० भ्राता ते तुमारा स० समावास सो सहोदर किं० क्यों ज० छोडता है ण० हमको ॥ ३ ॥ मा० माता पि० पिताका पो० पालन कर ए एने लो लोक म० होवेगा ए० एमे खु० निश्चय लो० लौकिक ता० तात ज० जा पा० पालते हैं मा माता ॥ ४ ॥ उ प्रधान म० मधुर उ० आलाप पु० पुत्र ते० तुमारा ता० तात खु० छोट भा० स्त्री ते तुमारी ण० तरुण ता तात मा० रस सा यह म०

फस्स ताय जहासि णे ॥२॥ पिया ते थेरआ तात । ससा ते खुड्डिया इमा ॥ भायरो ते सगा तात । सायरा किं जहासि ण ॥३॥ मायर पियर पोस । एव लोगो भावस्स-ति ॥ एव खु लोइयं ताय । जे पाळति मायर ॥४॥ उप्तरा महुरुल्ला ना । पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ भारिया ते णवा तात । मा सा अन्न जण गमे ॥५॥ एहि ताय घर

हमारा पालन कर. तू क्या कारण से हम को तजता है ॥ २ ॥ हे तात यह तेरा वृद्ध पिता, यह तेरी छोटी स्वसा, य तेरे भाइ, सहोदर उन को कैसे छोडेगा कि जिस से हम को छोडता है ॥ ३ ॥ माता पिता का पोषण कर; कि जिस से तेरी परलोक की सिद्धि होवेगी और जो इस लोक में माता पिता का पोषण करता है वह श्रेष्ठ मनुष्य कहाजाता है ॥ ४ ॥ हे तात मधुर आलाप करनेवाले तेरे पुत्र छोटे हैं और तेरी भार्या नव योवना है जिस को छोडने से कदाचित् वह उन्मार्गगामिनी न होवे

ए ये ह० संग म० मनुष्य का पा समुद्र जैसे म० दुस्तर की० असमर्थ न० मरा कि क्लेश पावे है ना ज्ञाति संबंध से मु० मूर्च्छित ॥ १२ ॥ त० उसको च० और भि साधु प० जानकर स० सर्व सं० संबंध म० महाश्रव जी० जीवितव्य न० नहीं अ० वांच्छे सो० सुनकर ध धर्म अ० प्रधान ॥ ११ ॥

मणुसाण । पातालत्व अतारिमा ॥ कीवा जत्थ य किस्संति । नायसंगेहिं मुच्छिय ॥ १२॥

त च भिक्खू परिण्णाय । सव्वे सगा महासवा ॥ जीवियं नावकंखेज्जा । सोच्चा ध

म्म मणुत्तर ॥ १३ ॥ अहिमे संति आवट्टा । कासवेण पवेइया ॥ बुद्धाजत्थ वस

गोत्रि के मधुर वचनों स यह साधु फंसाता है जैसे नव प्रसूतगाय अपना बच्चा को छोड कर दूर नहीं जाती है, वैसे ही वे पुत्रादिक साधु को मोह में डालने के लिये पीछे २ फिरते रहते हैं ॥ ११ ॥ मनुष्यों को यह ज्ञाति आदि का संग पाताल समुद्र को तीरने जैसा कठीन है इस में ही स्वजनादि संबंध में मूर्च्छित २ असमर्थ मनुष्य क्लेश पावे हैं ॥ १२ ॥ जो साधु होवे वह पूर्वोक्त स्वजनादिक को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोडे, क्यों कि उनका संग महाआश्रव का कारण है ऐसा मनुष्य जिन प्रणित धर्म सुनकर अनुकूल परीषह आने पर असंयम जीवितव्य की वांच्छा करे नहीं ॥ १३ ॥ यह मोह पाश जीव को संसार में परिभ्रमण कराने को कारण भूत है, ऐसा श्री महावीर प्रभुने कहा है सो बुध

उगे त० सब स० परस्पर किया वि० धन प० व्यवहारार्थ दे० वह भी ग देवेंगे वे० तुझे प० इन ॥८॥ इ० ऐसे मु० अच्छा सिखाते हैं का० करुणा स उत्पन्न करता बि० बंधा हुवा ना० ज्ञाति संबंध से त० तब आ गृहमें प० जाता है ॥ ९ ॥ ज० जैसे रु वृक्ष व० वन में आ० उत्पन्न हुवा मा० वेलसे प० लपेटाता है ए० ऐसे प बांधते हैं णा० ज्ञाति अ० असमाधि से ॥ १० ॥ वि० बन्धाया हुवा ना० ज्ञाति संबंध से ह० हस्ति जैसे न० नवा पकडा हुवा पि पीछे प० फीरते हैं सु नव प्रसूतगो अ० सूरन करे ॥ ११ ॥

राइ । तरि दाहासु ते मय ॥ ८ ॥ इच्चेव ण सुसेहति । कालुणीय समुट्ठिया॥ विबद्धो नायसंगेहिं । ततो गार पहावइ ॥ ९ ॥ जहा रुक्खं वणे जाय । मालुया पडिबंधइ ॥ एवं ण पडिबंधति । णातओ असमाहिणा ॥ १० ॥ विबद्धो नायिसंगेहिं । हत्थि वावि नवग्गहे ॥ पिट्ठतो परिसप्पति । सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एते संगा

किसी कार्य के लिये तुम को द्रव्य की जरूरत होगा तो वह भी हम देवेंगे ॥ ८ ॥ इस तरह से करु णामनक शब्दों से दीनता बताते हुवे उसे अच्छी तरह शिक्षा देते हैं इस से वह ज्ञाति से बंधायाहुवा संयम को छोड कर गृहवास में आता है ॥ ९ ॥ जैसे वन में उत्पन्न हुवा वृक्ष को चारों ओर लता लिपटाती है, वैसे ही ज्ञाति जन साधु को असमाधि करके बांधते हैं ॥ १० ॥ जैसे नवीन पकडाया हुवा हस्ती को हाथि इक्षुमादि का आहार कराने में आवे तो वह नवीन बंधन से बंधता है वैसे

सुगन्ध भ० भूषण इ० स्त्री स० शेय्या भु० भोगव इ० यह भो० भोग आ० आयुष्यमन् पू० पूजते हैं तं० तुझे ॥ १७ ॥ जो जो तु० तुमने नि० नियम चि० आचरे हैं भि० भिक्षुभाव में सु० सुव्रती अ० गृह में भा० रहता हुवा स० सर्व सं० यथा तथ्य ॥ १८ ॥ चि० बहुत काल दू० विचरता हुवा दो० दोष इ० सांप्रत कु० कहां से इ० इसेव नि० निमन्त्रते हैं नि० सालीकण से सू० गराह को ॥ १९ ॥ चा प्रेराया

इत्थीओ सयणाणिय ॥ भुंजाहि इमाई भोगाइ । आउसो पूजयामु तं ॥ १७ ॥
जो तुमे नियमो चिन्नो । भिक्खुभावमि सुव्वया ॥ अगारमावसतस्स । सव्वो स
विज्जए तहा ॥ १८ ॥ चिर दूइज्जमाणस्स । दोसोदाणिं कुतो तव ॥ इच्चेव ण नि
मंतेति । निवारेण्व सूयर ॥ १९ ॥ चोइया भिक्खचरिया । अचयता जवित्तए

भोग तुम भोगवो हे आयुष्मन् ! हम इसमे तुमारा सत्कार करते हैं ॥१७॥ हे सुव्रति ! संयम के अवसरमें जो तुमने महाव्रतादिक के नियम किये हैं वे सब गृहस्थ वास में रहने पर भी वैसे ही रहते हैं ॥ १८ ॥ हे मुनि तुम को संयम पालते बहुत समय होगया है तो अब तुम को दोष कहां से होवे ? ऐसे भोग योग्य पदार्थों से साधु को निर्मंत्रण करे और जैसे सूअर को चांवल के दाने से पारधि कुमार्ग में डालता है वैसे ही साधु को मोहपाश में डाले ॥ १९ ॥ जैसे दुर्बल बैल गाडा का भार से पीडायाहुवा ऊंचे स्थानक में आये

अ भय ॰ ये स०ईआ आवर्त का०काश्यपने प०कहा बु० ज्ञानी ज० जिससे अ०दूर होते है सी० आ सक्त होते है अ० अज्ञानी अ जिस में ॥ १४ ॥ रा० राजा रा० राजाके अमात्य मा० ब्राह्मण अ० अथवा ख क्षत्रिय नि० आमंत्रण करते हैं भो० काम भोगकेलीये भि० साधु को सा० अच्छा आ चार वाले ॥ १५ ॥ ह हस्ती अ अश्व र० रथ जा० पालखी से वि० विहारादिगमन से भुं० भोगव मा० भोग इ० यह स श्लाघ्य म० महर्षि पू० पूछते हैं त० तुझे ॥ १६ ॥ व० वस्त्र ग०

प्पति । सीयाति अमुहा जहिं ॥ १४ ॥ रायाणो रायमच्चाय । माहणा अदुव खत्तिया ॥ निमंतियाति भोगाहिं । भिक्खुय साहुजीविण ॥ १५ ॥ हत्थस्स रहजाणेहिं । विहार गमणहिया ॥ भुज भोग इमं सग्घे । महरिसी पूजयामु त॥ १६ ॥ वत्थगंधमलंकार

होते हैं वे इस से दूर रहते हैं, और अज्ञानी पुरुष इस आवर्त में सीदाते हैं ॥ १४ ॥ चक्रवर्ति, अमीश्वर, पुरोहित तथा अन्य क्षत्रिय प्रमुख साधु वृत्ति से जीवन चलानेवाले मुनि को काम भोगों से आमंत्रण करे "अहो महर्षि हम तुम को पूछते हैं कि यह तुम हस्ती, अश्व, रथ पालखी प्रमुख भोगवो अथवा तो उद्यान में क्रीडा करने के लिये या अनुकूल विषय सुख के लिये पधारो" ॥ १५ १६ ॥ चीन अंशुकादिक

ज० जैसे सं० संग्राम के समय में पि पीछा भी भीरु मे देखता है व० वलयाकार ग गहन नू
गुप्त को० कौन जा० जानता है प० पराजय ॥ १ ॥ मु० मुहूर्तों में मु० मुहूर्त का मु मुहूर्त (दो घडी का)
हो० होता है ता० तादृश प० पराजित भ० भय मावे इ० ऐसा भी० डरपोक उ० विचारता है ॥ २ ॥

जहा संगामकालम्मि । पिट्ठतो भीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णूमं । को जाणइ पराजं

य ॥ १ ॥ मुहुत्ताण मुहुत्तस्स । मुहुत्ता होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पामो । इति

भीरु उवेहइ ॥२॥ एवं तु समणा एगे । अबलं नचाण अप्पगं ॥अणागयं भय दिस्स

न मालुम इस संग्राममें किसका जय होता है क्यों कि कार्यसिद्धि देवाधीन है ऐसा मनमें चिन्तवन कर जैसे भीरु युद्ध के समय में वलयाकार स्थान, गहन या गुप्त स्थान के लिये पीछे देखता है ॥ १ ॥ और भी मुहूर्त देखने में कोइ ऐसा मुहूर्त का समय आजावे कि जहां पराजय होवे तो ऐसे समय में कदा माना इस स हम को वे स्थान छुपने को काम में आवेंगे ऐसा चिन्तवन करके जैसे वह भीरुक पीछे देखता है ॥ २ ॥ वैसे ही कोइ संयम का भार वहन करने में स्वतः को असमर्थ जानकर तथा (१) आगामिक

(१) आगामिक भय वृद्धावस्था का, रोग की अवस्था का, तथा दुर्भिक्ष समय का जो भय रहता है वह आगामिक भय है

हुवा भि० भिक्षाचरी में अ० असमर्थ भ संयम में त० तत्र म० मूर्ख वि० सिदाते हैं उ० ऊंचस्थल में दु० दुर्बल ॥ २० ॥ अ० असमर्थ लू० संयम उ० उपधान से त० पीडाया हुवा त० तत्र मं० मूर्ख वि० सिदाते हैं उ ऊंचस्थल में म० वृद्ध वृषभ ॥ २१ ॥ ए० ऐसे नि निमंत्रण स० मास हुवे मु० मूच्छित गि गृद्ध इ स्त्री में अ आसक्त का० काम भोगमें चा० प्रेराया हुवा ग० गये गि० गृहको त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २१ ॥

॥ तत्थ मंदा विसीयंति । उज्जाणंसि व दुब्बला ॥ २० ॥ अचय ताव लूहेण । उवहाणेण तज्जिया ॥ तत्थ मंदा विसीयंति । उज्जाणंसि जरग्गवा ॥ २१ ॥ एवं नि मंतिए लद्धु । मुच्छिया गिद्ध इत्थीसु ॥ अज्झोववन्ना कामेहिं । चोइज्जंता गयागिह त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो ●

हुवे नीचे पडे वैसे ही संयम में रहने पर भी संयम का भार का निर्वाह करने में असमर्थ मुनि मोक्षमार्ग में सीदाते ॥ २० ॥ जैसे वृद्ध वृषभ ऊंच स्थान में आया हुवा सीदाता है; वैसे ही कितनेक मंद, संयम का निर्वाह करने में अशक्त तथा बाह्याभ्यंतर तप से पीडित संयम में सीदाते हैं ॥ २१ ॥ इस तरह पूर्वोक्त रीति से निमंत्राये हुवे काम भोगों को प्राप्त कर, उन में मूर्छित होता हुवा, स्त्री में आसक्त, काम भोगों में रागी तथा संयम में कराइ हुइ प्रेरणा को जीतने में असमर्थ मुनि गृहवास स्वीकारता है ॥ २२ ॥ यह श्री उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन का दूसरा उद्देशा पूर्ण हुवा आगे भी परीषह सहने का कहते

स० संग्राम समय में ना मालिक सू० शूरवीर म मुख्य ना० नहीं त० व ।प पाछ । देख कि क्या प०
वत्कष्ठ म० मरण सि० होवे ॥ ६ ॥ ए० ऐसे स० सावधान भि० साधु वो० त्यज कर अ गृह बंधन आ०
आरंभ को ति० तिर्यक् क० करके आ० आत्मत्व के लिये प० सावधान हाय ॥ ७ ॥ त उसे ए कितने
क प० कहते हैं भि० साधु को सा० अच्छी आजीविका करने वाला मे० मो ए ऐसा प करते हैं अ०
दूर ते० वे स० समाधि से ॥ ८ ॥ स० गृहस्थ स० सदृश क० कल्प अ० परस्पर में मु मूर्च्छित पि०

ए भिक्खू । वोसिज्जा गारबंधणं ॥ आरंभ तिरियं कट्टु । आत्तत्ताए परिव्वए ॥ ७ ॥
इति अध्यात्म विसारदनार्थं गत्त । तमेगे परिभासंति । भिक्खुय साहुजीविणं ॥ जे-
एत्र परिभासंति । अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥ संबद्ध सम कप्पाउ । अन्नमन्नेसु मु

शंका युक्त रहते हैं ॥ ६ ॥ जैसे कोइ शूरवीर पुरुष युद्ध समय में पीछ नहीं देखता है, और ऐसा ही मान
कर आगे बढ़ता है कि मरण सिवाय क्या होवेगा ऐसे ही कितनेक सावधान साधु गृहवासपना छोड़ कर,
आरंभ को दूरकर मोक्ष मार्ग में प्रवर्तते हैं ॥६-७॥ यहां आत्मा का विवाद कहा अब दूसरा अधिकार परवा
दिके वचन आश्रय कहते हैं अच्छी तरह आजीविका करनेवाले परोपकारी साधु की कितनेक गोशाला
मतानुसारी निंदा करते हैं जो धर्म के अजान इस तरह निन्दा करते हैं, वे सम्यक् अनुष्ठान से सदैव दूर
रहते हैं ॥ ८ ॥ गोशाला मतानुसारी जो निन्दा करते हैं उसे बताते हैं वे कहते हैं कि हे साधुओं ! तुम

प० ऐसे म साधु ए कितनेक भ० निर्बल न० जानकर अ० अपने को अ० अनागत भ० भय दि० देख कर म० विचार करे मं०व्याकरणादि ॥१॥ को० कौन जा० जानता है वि० व्यापात (भ्रष्ट होना) इ० स्त्री से उ० पानी से चो० पूछाया हुवा प० कहेंगे ण०नहीं णो०हमारा अ है प०प्रकल्पितार्थ।इ०ऐसा प० प्रतिलेखते हैं व० वलयादिक को प० देखने वाले वि० संदेह को स० प्राप्त प० मार्ग का अ० अजान ॥५॥

। अविकप्पति मसुय ॥ ३ ॥ को जाणइ विउवात । इत्थीओ उदगाउ वा ॥ चोइज्जं
ता पवक्खामो । णणो अत्थि पकप्पियं ॥४॥ इच्चेव पडिलेहंति । वल्या पडिलेहिणो ॥
वितिगिच्छ समावन्ना । पथाणं च अकोविया ॥ ५ ॥ जे उ सगाम कालमि ।
नाया सुर पुरगमा ॥ णो ते पिट्ठ मुवेहिंति। किं पर मरण सिया ॥ ६ ॥ एवं समुट्ठि

भय देख कर ऐसी कल्पना करके निश्चय करे कि मुझे भविष्य में व्याकरण, ज्योतिष; वैद्यादिक त्राण होवेंगे इस लिये वैसा शास्त्र का अध्ययन करूं ॥ ३ ॥ मैं स्त्री से भ्रष्ट होवूंगा किंवा सचित्त पानी का उप भोग करने से भ्रष्ट होवूंगा यह कौन जानता है; क्यों कि कर्म की गति विचित्र है और ऐसा कोइ पूर्वो पार्जित द्रव्य नहीं है कि जो ऐसे समय में काम में आसके ऐसे समय में जो कोइ पूछेगा तो व्याकर णादि कहूंगा ऐसा चिन्तवन कर उस का अभ्यास करे ॥ ४ ॥ जैसे मीरुसुभट वलयादिक स्थान के देखनेवाले होते हैं वैसे ही कितनेक मंद भागी आजीविका के भय से कुशास्त्र सीखते हैं और जैसे पथ के

पानी म० लाकर के दं० उसे उ० उद्देशकादि जं० जो क० किया ॥ १२ ॥ लि लिप्त ति० तीव्र अ० विराधना से उ० विवेक रहित अ समाधि रहित न० नहीं अ० विशेष खर्ज खणना से० श्रेय अ० गूंपका अ० अपराधि होता है ॥ १३ ॥ त० तत्त्व से अ० अनुशासित म० ममतिकी मा० मानते हुवे ण० नहीं

तुब्भे भुंजह पाएसु । गिलाणो अभिहडमिया ॥ त च बीओदग भोच्चा । तमुद्दिसादिज कड ॥ १२ ॥ लित्ता तिव्वाभितावेण । उज्झआ असमाहिया ॥ ना ति कंडूय सेय । अरुयस्सा व रज्झति ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिट्ठा ते । अपडिन्नेण

जिसने जैन हो, ऐसे दोनों पक्ष का सेवन करते हो ॥ ११ ॥ और भी तुम कहते हो कि हम अकचन हैं परंतु तुम गृहस्थ के कांसादिक धातु के पात्र में भोजन करते हो इस लिये तुम सपरिग्रही हो और कोइ रोगी भिक्षा लाने को असमर्थ होवे तो उस के लिये आहार गृहस्थ की पास से मंगवाते हो यदि इस आहार को गृहस्थने बीज उदक आदि का मर्दन करके बनाया होवे, और तुम उसे भोगवो, तो उसमें तुम को भी दोष लगता है ॥ १२ ॥ और भी तुम षट्काया के जीव की विराधना तथा साधु की निन्दा रूप तीव्र पाप से लिप्त, विवेक तथा शुभ ध्यान रहित हो इस लिये जैसे अति खुजली खुजाउना या पका हुआ व्रण को खणना श्रेय नहीं है वैसे ही तुम को सच की ग्राह टेप करना श्रेय नहीं है ॥ १३ ॥ रागद्वेष रहित

भिक्षा गि० रोगी को जे० जिस से सा० गत्रपते हो द० देते हो ॥ ९ । ए० ऐसे तु० तुम स० राग सहित भ० परस्पर भ० पक्षगामी न० नष्ट स० सन्मार्ग का स० सद्भाव सं० संसार के अ० पारगामी ॥१०॥ भ० अथ ते० वे प० बोले भि० साधु मो० मोक्ष विशारद ए० ऐसे तु० तुम प० भाषते दु० दो पक्ष से० सेवते हो ॥ ११ ॥ तु० तुम भुं० खाते हो पा० पात्र में गि० ग्लानी अ० लाया हुवा तं० उसे पी० पीन उ०

च्छिया ॥ पिंडवाय गिलाणस्स । जं सारेह दलाहय ॥ ९ ॥ एव तुब्भे सरागत्था । अन्नमन्न मणुव्वसा ॥ नट्ठ सप्पह सब्भावा । ससारस्स अपारगा ॥ १० ॥ अह ते परिभासज्जा । भिक्खू मोक्खविसारए॥एवं तुब्भे पभासता। दुपक्ख चेव सेवह ॥११॥

गृहस्थ तुल्य हो जैसे गृहस्थ परस्पर मातपितादिक की सेवा चाकरी करते हैं वैसे ही तुम आचार्य में मूर्च्छित बन हुए हो रोगी के लिये भिक्षा गवेषते हो और लाकर देते हो वैसे ही गुर्वादिक की वैयावृत्य करते हो ॥ ९ ॥ इस तरह तुम परस्पर बन्धे हुवे सरागी हो और साधु तो किसी के आधीन न होते हैं, जिस से तुम अच्छा मार्ग स भ्रष्ट हुवे हो इस लिये संसार के पारगामी नहीं हो सकते हो ॥१०॥ इस तरह निन्दा करनेवाले को मोक्ष मार्ग का ज्ञान उत्तर देते हैं, कि तुम ऐसे बोलते हुवे रागद्वेष रूप दोनों पक्ष का सेवन करते हो क्यों कि तुम स्वतः आनाचारी सदोष हो, और दूसरा निर्दोष साधु के निन्दक हो अथवा बीज उदक उद्देशादिक भोगने से गृहस्थ समान हो. वेश लिंग धारन करने से यति समान

पानी भे० साकर के तं० उसे उ० उद्देशकादि भे० जो क० किया ॥ १२ ॥ लि लिप्त ति० तीव्र अ विराधना से व विवेक रहित अ समाधि रहित न० नहीं भ० विशेष सर्जू सणना से० श्रेय भ० गूलका अ० अपराधि होता है ॥ १३ ॥ त० तत्त्व से अ० अनुशासित म० अमाविकी मा० मानते हुवे ण० नहीं

तुब्भे भुंजह पाएसु । गिलाणो अभिहडमिया ॥ त च बीओदग भोच्चा ।

तमुद्दिसादिज कड ॥ १२ ॥ लित्ता तिव्वाभितावेण । उज्झआ असमाहिया ॥ ना

ति कण्डूय सेय । अरुयस्सा व रज्झति ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिट्ठा ते । अपडिन्नेण

दिसने जैन हो, ऐसे दोनों पक्ष का सेवन करते हो ॥ ११ ॥ और भी तुम कहते हो कि हम अकंचन हैं परंतु तुम गृहस्थ के कांसादिक धातु के पात्र में भोजन करते हो इस लिये तुम सपरिग्रही हो और कोइ रोगी भिक्षा लाने को असमर्थ होवे तो उस के लिये आहार गृहस्थ की पास से मगवाते हो यदि इस आहार को गृहस्थने बीज उदक आदि का मर्दन करके बनाया होवे, और तुम उसे भोगवो, तो उसमें तुम को भी दोष लगता है ॥ १२ ॥ और भी तुम षट्काया के जीव की विराधना तथा साधु की निन्दा रूप तीव्र पाप से लिप्त, विवेक तथा शुभ ध्यान रहित हो इस लिये जैसे अति खुजली खुजालना, या पका हुवा व्रण को खणना श्रेय नहीं है वैसे ही तुम को साधु की साथ द्वेष करना श्रेय नहीं है ॥ १३ ॥ रागद्वेष रहित

गृहस्थ को वि० विशुद्धि करने वाला प० नहीं ए० यह दि० दृष्टिसे पु० पूर्व में भा० हुवे प० कहा ॥१६॥ स० सर्व भ० अनुयुक्ति भ० असमर्थ भ० स्थापन करने को त० तब वा० वादका णि० निराकरण करके ते० वे मु० पुनः २ वि० धृष्टपना करे ॥ १७ ॥ रा० रागद्वेष भ० पराभव हुआ मि० मिथ्यादृष्टि

मासि पगप्पियं ॥ १६ ॥ सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं । अचयंता जविचए ॥ ततो वाय

णिराकिच्चा । ते भुज्जो विप्पगब्भिए ॥१७॥ राग दोसाभिभूयप्पा । मिच्छत्तेण अ

देशना है कि साधु को दान देने का अधिकार नहीं है दान मात्र गृहस्थ को ही विशुद्धि का करनेवाला है; और साधु तो अपने २ अनुष्ठान से ही शुद्ध होते हैं इस तरह तुम्हारी दृष्टि में आता है परंतु पहिले जो तीर्थंकर होगये हैं उन्होंने ऐसा धर्म नहीं कहा है ॥ १६ ॥ ऐसे दृष्टान्त करके अपने २ मत को स्थापने में असमर्थ होने से वाद को दूर करके वारंवार अपना धृष्टपना बतलाते हैं, और कहते हैं कि हमारी जो परं परा है वह ही श्रेष्ठ है; अन्य से हम का कुछ भी काम नहीं है ऐसा कहकर धृष्टपना अंगीकार करते हैं, परंतु युक्ति पूर्वक उत्तर नहीं देसकते हैं ॥ १७ ॥ जैसे शस्त्रादिक से युद्ध करने में असमर्थ म्लेच्छादिक पर्वत का शरण अंगीकार करते हैं वैसे ही युक्ति पूर्वक प्रत्युत्तर देने में असमर्थ तथा मिथ्या दृष्टि से व्याप्त कितनेक अनार्य आक्रोश—असभ्य वचन, दंड, मुष्टयादिक का शरण अंगीकार करते हैं अर्थात् क्रोधी बन

म्र अ्याशु भा आक्राश स० शरण न आत हैं ट० म्लेच्छ की तरह प० पत्न ॥ १८ ॥ व० बहुत गु०
गुण को प० मकट करने वाला कु० कर भ० आत्म समाधिक ज० जिससे व० पे णा० नहीं त्रि० त्रिग्द
३ात स० इसलिये त० उने म० आचरे ॥ १२ ॥ इ० यह ध० धर्म आ० ग्रहण कर का० कास्यप मे
उ फरमाया हुवा कु० कर भि० साधु गि० रोगी को अ० ग्लानपन स० समाधियंत ॥ २० ॥ सं० जानकर
पे श्रेष्ठ ध० धर्म दि० दृष्टिमान् प० शीतल उ० उपसर्गको नि० सहन कर आ० मोक्ष केलिये प० अपने

भिरता ॥ आठस्स सरण जति । टकणा इव पव्वय ॥ १८ ॥ बहु गुणप्पगप्पाइ ।
कुज्जा अत्तसमाहिए ॥ जण ते णा विरुज्झज्जा । तण त त समायर ॥ १९ ॥ इ
म स धम्म मादाय । कासवेण पवेइय ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स । अगिलाए समा
हिए ॥ २० ॥ ससाय पेसल धम्म । दिट्ठिम परिनिव्वुड ॥ उवसग्ग नियामित्ता ।

भाव हैं ॥ १८ ॥ जो साधु है वह ऐसा आक्रोशादि न करे, परंतु प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय निगमन
इत्यादिकों मे माध्यस्थपना का कारण को धरे और जिस अनुष्ठान से या वचन से अन्य विरोध न पावे
ऐसा अनुष्ठान कर और वचन बोले. ॥ १९ ॥ श्री महावीर का मरूपा हुवा धर्म को अंगीकार कर साधु
ग्लानीकी अग्लानपने जैसे समाधि होवे वैसे वैयावच्च करे ॥ २० ॥ ऐसा श्रेष्ठ धर्म को जानकर मोक्ष

धि ऐसा मैं• कहता हूं ॥ २१ ॥
भा• कहे म० महापुरुष पु० पहिले त० तप्त तपोधन उ• पानी से सि० सिद्धि आ० कही त० वहाँ मं•
अज्ञानी वि• सीदाते हैं ॥ १ ॥ भ० भक्ष न खाने वाले न० नमीराज वि० विदेह देशके रा० रामगुप्त भुं०

आमोक्खाए परिव्वएज्जासि त्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाज्झयणस्स तइ

आहंसु महापुरिसा । पुव्विं तत्ततवो धणा ॥ उदयेण सिद्धि मावन्ना । तत्थ मंदा विसीयति ॥ १ ॥ अभुंजिया नमी विदेही । रामगुत्तेय भुंजिआ ॥ बाहुए उदगं भो

आइंसो सम्मत्तो

यह उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन का तृतीय उद्देशा पूर्ण हुआ आगे शीलव्रत रक्षणार्थ कथन करते हैं
क उपशम से शीतली भूत बना हुआ सत्यका जाननेवाला साधु मोक्षकी मासिवक संयम में विचरे ॥२१॥
कितनेक परमार्थ के अजान कहते हैं कि तपस्या के करनेवाले तपोधन [सारागण ऋषि प्रमुख] महा
पुरुष शीतल पानी का परिभोग से मुक्ति में गये हैं ऐसा अन्य तीर्थ का वचन सुनकर अज्ञानी वन में सी
दाते हैं ॥ १ ॥ और भी वे कहते हैं कि विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होनेवाला नमीराज अशनादि विना भोगवे
मुक्ति में गया रामगुप्त राजर्षि अशनादि भोगवता हुआ मुक्ति में गया, बाहुकऋषि तथा तारागणऋषि शीतल

भागवकर था० बाहुक उ० पानी मो० भोगवकर व० वथा ता० तारागणभाषि ॥ २ ॥ भा० आसिल्ल द० देवल य० भौर दी दीपायनमहर्षि पा० पाराशर द० पानी मो० भोगवकर बी० बीज ह० हरीकाय च० भौर ॥ ३ ॥ ए० ये पु० पहिले म० महर्षि भा० कहा इ० यहां स० मख्यात भो० भोगवकर बी० बीज पानी सि० सिद्ध इ० ऐसा मे० मरे से भ० सुना गया ॥ ४ ॥ त० तहां मं० मूर्ख नि० सीदाते हैं

चा । तहा तारागणे रिसी ॥ २ ॥ आसिले देवल चेव । दीवायणमहारिसी ॥ पारासरे दग भोच्चा । बीयाणि हरियाणि य ॥ ३ ॥ एते पुव्वं महा रिसी । आहिता इह सम्मता ॥ भोच्चा बीओदग सिद्धा । इति मेयमणुस्सुअं ॥ ४ ॥ तत्थ मंदा विसीअ

पानी का परिभोग से सिद्धि को प्राप्त हुवे ॥ २ ॥ और आसिल्ल, देवल, द्वीपायन, तथा पारासर बीज हरिकाय तथा शीतल पानी भोगव कर मोक्ष को पहुंचे ॥ ३ ॥ ये नमीराज प्रमुख महर्षि पूर्व काल में प्रसिद्ध हुवे हैं वे बीज, पानी भोगव कर मुक्ति में गये ऐसा हमने महा भारतादिक पुराण में सुना है इस लिये हम इसी तरह मुक्ति पावेंगे ॥ ४ ॥ जैसे अधिक भार से पीडित गर्दभ सीदाता है वैसे ही कुआचरण करनेवाले पूर्व उपसर्ग आने पर सीदाते हैं और जैसे मन्दगतिवाला पुरुष अग्नि आदि का उपसर्ग से व्याकुल बनकर भागगामी नहीं होता है, अपितु वहां ही नष्ट होता है वैसे ही शीतलविहारि इत्यादि

सा० मार्ग स छि० छुय ग गढा पि पीछे प० जाता है पि० ... तहां मा० आर्य म० मार्ग प० एकेक मा कहन है मा० साता सा साता से पि०होवे जे जो व तहां ... अल्प सु० नाश करते प्रधान स निश्चय म समाधि ॥ ६ ॥ मा० मत प० यह अ० थोडा मानता अ० ... पा० प्राणातिपात में दुख ब० बहुत ए० इस को अ० मोक्ष नहीं अ लोह वणिक् जैसे जू० झूरेंगे ॥ ७ ॥

इह ति । वाहच्छिन्नाव गद्दभा ॥ पिट्ठतो परिसप्पाति । पिट्ठसप्पी य सभमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ भासंति । सातं सातेण विज्जति ॥ जे तत्थ आरिअं मग्गं । परमं च समाहिए ॥ ६ ॥ मा एयं अवमन्नंता । अप्पेणं लुंपहा बहुं ॥ एतस्स अमोक्खाए । अयहारिव्व जूरह ॥ ७ ॥ पाणाइवाते वट्टंता । मुसावादे असंजता ॥ अदिन्नादाणे वट्टंता । मेहु-

अनंत काल तक परिभ्रमण करते हैं ॥ ५ ॥ यहां मोक्षमार्ग की विचारणा में कितनेक शाक्यादि तथा लोच परिषह सहन करने में असमर्थ स्वतीर्थि ऐसा कहते हैं कि मुक्ति का सुख सुख से ही मिलता है परंतु दुःख से सुख न होवे इस लिये लोचादि कष्ट से मुक्ति कैसे होवे इस तरह बोलते हुवे वे जिन प्रणित मोक्षमार्ग तथा परम समाधि के कारण ज्ञान, दर्शन चारित्र को छोडदेते हैं ॥ ६ ॥ अहो दर्शनि ! सुख से सुख होवे ऐसा वचनों से जिनमार्ग की निन्दा करते हुवे अल्प सुख के लिये मोक्ष का सुख को तुम गुमाते हो और ऐसा असत्य पक्ष को नहीं छोडने से मोह वाहक [लोह वाणिक] की तरह पश्चाताप करोगे ॥ ७ ॥ प्राणातिपात, मृषावाद अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह में रहकर असंयति मोक्ष सुख का विनाश

मोगनकर बा० बाहुक उ० पानी मो० मोगनकर त० तथा ता० तारागणऋषि ॥ २ ॥ आ० आसिल दे० देवल घ० और दी० दीपायनमहर्षि पा० पाराशर द० पानी मो० भोगवकर बी० बीज ह० हरिकाय घ० और ॥ ३ ॥ ए० ये पु० पहिले म० महर्षि आ० करा इ० यहां सं० मख्यात मो० भोगवकर बी० बीज पानी सि० सिद्ध इ० ऐसा मे० मरे से भ० सुना गया ॥ ४ ॥ त० तहां मं० मूर्ख वि० सीदाते हैं

घा । तहा तारागणे रिसी ॥ २ ॥ आसिले देवले चेव । दीवायणमहारिसी ॥ पारासरे दग भोच्चा । बीयाणि हरियाणि य ॥ ३ ॥ एते पुव्वं महा रिसी । आहिता इह सम्मता ॥ भोच्चा बीओदग सिद्धा । इति मेयमणुस्सुअं ॥ ४ ॥ तत्थ मंदा विसीअ

पानी का परिभोग से सिद्धि को प्राप्त हुवे ॥ २ ॥ और आसिल, देवल, दीपायन, तथा पारासर बीज हरिकाय तथा शीतल पानी भोगव कर मोक्ष को पहुंचे ॥ ३ ॥ ये नमीराज प्रमुख महर्षि पूर्व काल में प्रसिद्ध हुवे हैं वे बीज, पानी भोगव कर मुक्ति में गये ऐसा हमने महा भारतादिक पुराण में सुना है इस लिये हम इसी तरह मुक्ति पावेंगे ॥ ४ ॥ जैसे अधिक भार से पीडित गर्दभ सीदाता है वैसे ही कुशास्त्र श्रवण करनेवाले मूर्ख उपसर्ग आने पर सीदाते हैं और जैसे भग्नगतिवाला पुरुष अग्नि आदि का उपसर्ग से व्याकुल होकर अग्रगामी नहीं होता है, अपितु वहां ही नष्ट होता है वैसे ही

मो॰ मोसूसता है द॰ पानी ए॰ ऐसे पि॰ प्रार्थना करने वाली इ॰ स्त्री में दो॰ दोष त॰ तहां क॰ कहांसे सि
होवे ॥ १२ ॥ ए॰ ऐसे ए॰ कितनेक पा पार्श्वस्थ मि॰ मिथ्यादृष्टि अ॰ अनार्य अ आसक्त हुवा का॰
काममें पू॰ गाडर जैसे त॰ तरुण ॥१३॥ अ॰ अनागत अ॰ नहीं देखताहुवा प॰ प्रत्युत्पन्न ग॰ गवेषते
ते॰ वे प॰ पश्चात् प॰ परितापकरतेहैं खी॰ क्षीण आ आयुष्य जो यौवन ॥ १४ ॥ जे॰ जिसमें का
सक्रपर प॰ पराक्रमकरते को न॰ नहीं प॰ पश्चात् प॰ परितापित होवे ते॰ वे धी॰धीर बं बंधन मु॰

विहगमा पिंगा । थिमिअं भुजति दग ॥ एव विन्नवणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ
सिआ ॥ १२ ॥ एव मेगे उ पासत्था । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ अज्झोववन्ना कामे
हिं । पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥ अणागयमपस्सता । पच्चुप्पन्न गवेसगा ॥ ते प
च्छा परितप्पाति । खीणे आउंमि जोव्वणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिक्कंत । न पच्छा

पानी का पान करता है परंतु पानी को कष्ट नहीं देता है वैसे ही प्रार्थना करनेवाली स्त्री से कामभोग
सेवने में कोनसा दोष है ? ॥ १२ ॥ जैसे तरुण छोटा बच्चा को देखकर गृद्ध होवे अथवा जैसे गाडरी अ
पना तरुण बच्चा को देख कर गृद्ध होवे वैसे ही कितनेक मिथ्यादृष्टि अनार्य पुरुष कामभोग में गृद्ध होते
हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य अनागतकाल के नरकादिक दुःख को नहीं देखनेवाले होते हैं परंतु मात्र वर्तमान
काल के ही सुख देखते हैं वे आयुष्य और यौवन क्षीण होने पर पश्चाताप करते हैं ॥ १४ ॥ जिन पुरुषों

व वर्तता हुवा मु मृषावाद में अ० अप्रमति अ० अवश्य दान में व० वर्तता हुवा मे० मैथुन में प० और परिग्रह में ॥ ८ ॥ ए० ऐसे ए० कितनेक पा पार्श्वस्थ प करते हैं अ० अनार्य इ० स्त्री व० वश ग० गया हुवा बा० अज्ञानी जि० जिन शासन प पराङ्मुख ॥ ९ ॥ ज० जैसे गं० गुम्बदा पि० पकाहुवा प० रसी निकाले मु०मुहूर्त मात्र ए ऐसे वि प्रार्थना करनेवाली इ०स्त्रीमें दो० दोष त नहीं क०कहांसे भि होवे॥१०॥ ज० जैसे म० मेष वि पीवे से मुं० भोगवता है ए पानी ए० ऐसे वि प्रार्थना करने वाली इ० स्त्री में दो० दोष त० नहीं क० कहां से सि० होवे ॥ ११ ॥ ज० जैसे पि० पक्षी पि० कपिंजल थि पीने से

णेय परिग्गहं ॥ ८ ॥ एव मेगे उ पासत्था । पन्नवंति अणारिया ॥ इत्थीवसं गया बा

ला । जिणसासणपरम्मुहा ॥ ९ ॥ जहा गंड पिलागं वा । परिपीलेज्ज मुहुत्तगं ॥

एवं विन्नवणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ सिया ॥ १० ॥ जहा मंधादए नाम । थिमि-

अं भुजति दगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ सिआ ॥ ११ ॥ जहा

करते हैं, ॥ ८ ॥ जिन मार्ग से पराङ्मुख, स्त्री का परीषह जीतने में असमर्थ, अनार्य कर्म के करनेवाले कितनेक परतीर्थिक तथा पार्श्वस्थ स्वतीर्थिक ऐसा कहते हैं कि जैसे पका हुवा गुम्बदा को फोडकर राध, रुधिर निकालने से मुहूर्त मात्र में आराम होजाता है वैसे ही विषय भोग की प्रार्थना करनेवाली स्त्री साथ संगम करने में कौनसा दोष होवे ? ॥१०॥ जैसे मेष पानी को नहीं डोलता हुवा पानी पीता है अर्थात् वह पानी को डोलता नहीं है परंतु अपने को इस से संतुष्ट करता है वैसे ही प्रार्थना करनेवाली स्त्री के साथ संगम करने में कौनसा दोष है ? अपितु नहीं है ॥ ११ ॥ जैसे कपिंजलपक्षी आकाश में उडता हुवा

मो मोमुवता है द पानी प०ऐसे वि०मार्थना करने वाली इ० स्त्री में दो० दोष त० वहां क०कहां न सि० होवे ॥ १२ ॥ ए० वैसे ए० कितनेक पा पार्श्वस्थ मि० मिथ्यादृष्टि अ० अनार्य अ ग्रास हुवा का० काममें पू० गाडर जैसे त० तरुण ॥१३॥ अ० अनागत अ० नहीं देखताहुवा प० प्रत्युत्पन्न ग० गवेषणाकरनेवाले ते० वे प० पश्चात् प० परितापकरतेहैं स्त्री० क्षीण आ आयुष्य जो यौवन ॥ १४ ॥ ज० जिसमें का० कालपर प० पराक्रमकरते को न० नहीं प० पश्चात् प० परितापित होवे त० वे धी०धीर बं बंधन मु०

विहगमा पिंगा । थिमिअ भुजाति दग ॥ एव विन्नवणित्थीसु । दोसो तत्थ कओ सिआ ॥ १२ ॥ एव मेगे उ पासत्था । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ अज्झोववन्ना कामेहिं । पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥ अणागयमपस्सता । पच्चुप्पन्न गवेसगा ॥ ते पच्छा परितप्पाति । खीणे आउंमि जोव्वणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिक्कत । न पच्छा

पानी का पान करता है परंतु पानी को कष्ट नहीं देता है वैसे ही मार्थना करनेवाली स्त्री से कामभोग सेवने में कोनसा दोष है ? ॥ १२ ॥ जैसे बालक पीने पथ्य को देखकर गृद्ध होवे अथवा जैसे गाडरी अपना तरुण बच्चा को देख कर गृद्ध होवे वैसे ही कितनेक मिथ्यादृष्टि अनार्य पुरुष कामभोग में गृद्ध होते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य अनागतकाल के नरकादिक दुःख को नहीं देखनेवाले होते हैं परंतु मात्र वर्तमान काल के ही सुख देखते हैं वे आयुष्य और यौवन क्षीण होने पर पश्चाताप करते हैं ॥ १४ ॥ जिन पुरुषों

मुक्त न० नहीं म० वांच्छते हैं जी० असंयम ॥१८॥ ज० जैसे न० नदी वे० वैतरणी दु० दुस्तर इ० यहां स० मसिद्ध ए० ऐसे लो० लोकमें ना० स्त्री दु० दुस्तर अ० निर्बुद्धि ॥ १६ ॥ जे० जिसने ना० स्त्रीके स० संयोग पू० पूजा प्रशंसा को पि० पृष्ठ क० करे स० सर्व ए० उसने नि० दूर करके ते० वे ठि० स्थित सु० अच्छी समाधि में ॥ १७ ॥ ए० ये ओ० प्रवाह त० तीरेंगे स० समुद्र को व० वणिक ज०

परितप्पए ॥ ते धीरा बंधणुम्मुक्का । नावकंखंति जीविय ॥ १५ ॥ जहा नई वेयरणी । दुत्तरा इह संमता ॥ एव लोगंसि नारीओ । दुत्तरा अमईमया ॥ १६ ॥ जेहिं नारीण संजोगा । पूयणा पिट्ठतो कता ॥ सव्वमेयं निराकिच्चा । ते ठिया सुसमाहिए ॥ १७ ॥ एते ओघं तरिस्संति । समुद्दं ववहारिणो ॥ जत्थ पाणा विसण्णासि । कि

ने अपनी यौवना अवस्था में धर्म के लिये उद्यम किया वे महापुरुष वृद्धावस्था तथा मरण का अवसर में पश्चाताप नहीं करते हैं और वे बंधन से मुक्त धैर्यवंत पुरुष असंयम जीवितव्य की वांच्छा नहीं करते हैं ॥ १८ ॥ जैसे वैतरणी नदी पार करना बहुत कठिन है वैसे ही अज्ञानी मनुष्यों को स्त्रियों अतीव दुस्तर है ॥ १६ ॥ जिन्होंने स्त्री का संयोग छोड दिया है वैसे ही अपने शरीर की विभूषादि भी छोड दी है, वे पुरुषों स्त्री संगादिक तथा अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग का निराकरण करके सुन्दर रूप समाधि से स्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ जैसे व्यवहारिया समुद्र को नाव से तीरता है वैसे ही पूर्वोक्त परीषह जीतनेवाले महापुरुषों

मश पा० प्राणी वि० सुतते हैं कि० फसते हैं स० अपने क० कर्म से ॥ १८ ॥ तं उसे भि० साधु प जानकर सु० सुमति स० समीतिवंत च० विचरे मु० मृषावाद को व० वर्जे अ० अदत्त दान को वो सिरे ॥ १९ ॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् जे जो के० कोइ त० त्रस था० स्थावर से स० सर्वथा वि० विरति कु० करे सं० है नि० निर्वाण आ० कहा ॥ २० ॥ इ० यह ध० और ध० धर्म को आ० ग्रहण क

घति सयकम्मुणा ॥ १८ ॥ तं च भिक्खू परिण्णाय । सुव्वते समिते चर ॥ मुसावा य च वज्जिज्जा । दिन्नादाण च वोसिरे ॥ १९ ॥ उड्ढमहे तिरियं वा । जे केइ तस थावरा ॥ सव्वत्थ विरतिं कुज्जा । संति निव्वाण माहिय ॥२०॥ इम च धम्म माया

ससार रूपी ओघ कि जिस में खुते हुवे प्राणी अपने कर्म से पीडित होवे हैं उसे तीरेंगे ॥ १८ ॥ सदा चारी साधु पूर्वोक्त बातों को जान कर समिति पूर्वक विचरे और मृषावाद अदत्तादान का त्याग करे वैसे ही अनुक्रम से मैथुन परिग्रह का भी त्याग करे ॥ १९ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो कोइ त्रस और स्थावर रहे हुवे हैं उन की मन वचन और काया से हिंसा करना नहीं, कराना नहीं, और हिंसा करने वाले को अनुमोदना नहीं ऐसा करने से शान्ति तथा मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है ऐसा श्री सर्वज्ञ प्रभुने कहा है ॥ २० ॥ श्री महावीर स्वामी का मरूपा हुवा धर्म को अंगीकार कर साधु को रोगी साधु

र का० काश्यपने प० कहाहुवा कु करे भि० साधु गि० रोगीकी म०भग्लानपने स० समाधि ॥२१॥ स० जानकर पे० श्रेष्ठ ध० धर्म दि० द्रष्टिमान् प शीतल उ० उपसर्ग अ० सहे भा० मोक्ष के लिये प० प्रवर्ते ॥ ऐसा बे० कहता हूं ॥ २२ ॥ १ ॥

य । कासवेण पवेदितं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स । अगिलाए समाहिए ॥ २१ ॥
संखाय पेसलं धम्मं । दिट्ठीम परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे हियासित्ता । आमोक्खाय परिव
एज्जासि त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाणाम तइयमज्झयण सम्मत्तं

की अग्लानपने समाधि उत्पन्न होवे वैसे वैयावृत्य करना ॥ २१ ॥ जिन भाषित श्रेष्ठधर्म को जानकर स म्यक् दृष्टि धीर कषाय को उपशमाकर शीतली भूत होवे और उपसर्ग को सहन कर जहां तक मोक्ष नहीं होवे वहांतक संयम पाले ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन समाप्त हुवा इसमें अनुकूल उपसर्ग सहन करना दुर्लभ है ऐसा कहा अब आगे स्त्रीके रूपसे हुवे अनुकूल उपसर्ग सहन करने के लिये स्त्री परिज्ञा नामक चतुर्थ अध्ययन कहते हैं

॥ स्त्रीपरिज्ञा नामक चतुर्थ मध्ययनम् ॥

जे० जो मा० माता पि० पिता को वि० छोड़कर पु० पूर्व संयोग ए० कितनेक स० ज्ञानादि सहित च० विचरूंगा आ० मैथुन धर्म से निवर्तने वाला वि० विविक्त ॥ १ ॥ सु० सूक्ष्म तं० उसकी पास प०मा कर छ०कपट से इ०स्त्री मं० मूर्ख उ०उपाय को ता०वे जा०जाने ज०जैसे लि०भ्रष्ट होवे भि०साधु ए०कोइ ॥२॥पा० पार्श्व में भि० बहुत णि० बैठती है अ०बारम्बार पो०अच्छे वस्त्र प०पहिने का०काया अ० अधो

जे मायर च पियर च । विप्पजहाय पुव्वसंजोगं ॥ एगे सहिते चरिस्सामि । आरत मेहुणो विवित्तेसु ॥१॥ सुहुमेण तं परिक्कम्म । छन्नपएण इत्थीओ मंदा ॥ उवायंपि ताउ जाणसु । जहा लिस्संति भिक्खुणो एगे ॥ २ ॥ पासे भिसं णिसीयंति । अभि

माता, पिता, भ्राता, आदिका संयोग छोड़ कर ज्ञानादि सहित अकेला ही विचरूंगा; ऐसी जो साधु भ िक्षा करता है, और स्त्री पशु पंडग रहित स्थान की गवेषणा करता हुआ मैथुन से निवर्तता है; उस की पास मूर्खा स्त्री अमुक स्थान [मकान] में जाकर धीरे २ गुप्त कथा करके साधु को संयम से भ्रष्ट करती है क्यों कि जिस रीति से साधु भ्रष्ट होवे उस का उपाय वह जानती है ॥ १ २ ॥ अब भ्रष्ट करने का उपाय बताते हैं वह साधु की बहुत नजीक जाकर बैठती है, बारंबार काम विकार उत्पन्न होवे वैसा

र का० काश्यपने प० कथाउुना कु० करे भि० साधु गि० रोगीकी अ०भग्लानपने स० समाधि ॥२१॥ स० जानकर पे० मधु प० धर्म दि० दृष्टिमान् प० शीतल उ० उपसर्ग अ० सहे मा० मोक्ष के लिये प० प्रवर्ते त्ति ऐसा बे० कहता हूं ॥ २२ ॥ १ ॥

य। कासवेण पवेदितं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स । अगिलाए समाहिए ॥ २१ ॥
सखाय पेसलं धम्मं । दिट्ठीमं परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे नियामित्ता । आमोक्खाय परिव
एज्जासि त्तिबेमि ॥ २२ ॥ इति उवसग्गपरिण्णाणाम तइयमज्झयणं सम्मत्तं

की अग्लानपने समाधि उत्पन्न होवे वैसे वैयावृत्य करना ॥ २१ ॥ जिन भाषित श्रेष्ठधर्म को जानकर सम्यक् दृष्टि भीव कषाय को उपशमाकर शीतली भूत होवे और उपसर्ग को सहन कर जहां तक मोक्ष नहीं होवे वहांतक संयम पाले ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह उपसर्ग परिज्ञा नामक तृतीय अध्ययन समाप्त हुवा इसमें अनुकूल उपसर्ग सहन करना दुर्लभ है ऐसा कहा अब आगे स्त्रीमें कपाये हुवे अनुकूल उपसर्ग सहन करने के लिये स्त्री परिज्ञा नामक चतुर्थ अध्ययन कहते हैं

॥ स्त्रीपरिज्ञा नामक चतुर्थ मध्ययनम् ॥

जे॰ जो मा॰ माता पि॰ पिता को पि॰ छोडकर पु॰ पूर्व संयोग ए॰ कितनेक स॰ ज्ञानादि सहित च॰ विचरूंगा मा॰ मैथुन धर्म से निवर्तने वाला वि॰ विविक्त ॥ १ ॥ सु॰ सूक्ष्म तं॰ उसकी पास प॰आ कर छ॰कपट से इ॰स्त्री मं॰ मूर्ख उ॰उपाय को ता॰वे जा॰जाने ज॰जैसे लि॰भ्रष्ट होवे भि॰साधु ए॰कोइ ॥२॥पा॰ पार्श्व में भि॰ बहुत नि॰ बैठती है अ॰वारम्वार पो॰अच्छे वस्त्र प॰पहिने का॰काया अ॰ अधो

जे मायर च पियर च । विप्पजहाय पुव्वसजोग ॥ एगे सहिते चरिस्सामि । आरत-
मेहुणो विविप्तेसु ॥१॥ सुहुमेण त परिक्कम्म । छन्नपएण इत्थीओ मदा ॥ उवायपि
ताउ जाणसु । जहा लिस्सति भिक्खुणो एगे ॥ २ ॥ पासे भिस णिसीयति । अभि

माता, पिता, भ्राता, आदिका संयोग छोड कर ज्ञानादि सहित अकेला ही विचरूंगा; एसी जो साधु प्रतिज्ञा करतारे, और स्त्री पशु पंडग रहित स्थान की गवेषणा करता हुवा मैथुन से निवर्तता है; उस की पास मूर्खा स्त्री अमुक स्थान [बहाना] से आकर धीरे २ गुप्त कथा करके साधु को संयम से भ्रष्ट करती है क्यों कि जिस रीति से साधु भ्रष्ट होवे उस का उपाय वह जानती है ॥ १ २ ॥ अब भ्रष्ट करने का उपाय बताते हैं वह साधु की बहुत नजीक जाकर बैठती है, वारंवार काम विकार उत्पन्न होवे ऐसा

भाग वि० बतलावे बा० भुजा को उ० उठाकर क० कक्षा अ० जावे ॥ ३ ॥ स० शयन आ० आसन के जो० योग्य इ० स्त्रियों ए० एकदा णि० निमंत्रण करती है ए० ये चे० निश्चय से० वह जा० जाने पा० पाश नि० नाना प्रकार की ॥४॥ नो० नहीं ता० उसमें च० चक्षु सं० संधे नो० नहीं मा० अकार्य को (साहस) म० अच्छा जाने णो० नहीं स० साथि (साथ) वि० विचरे ए० इस तरह अ० आत्मा सु० रक्षित हो०

क्खण पोसवत्थ परिहिंति ॥ कायं अह विदंसेति । बाहू उद्धट्टु कक्ख मणुव्वजे ॥३॥
सयणासणेहिं जोगहिं । इत्थीओ एगया णिमंतंति ॥ एयाणि चेव सेजाणे । पासाणि
विरूवरूवाणि ॥ ४ ॥ नो तासु चक्खु संधेज्जा । नो विय साहस समभिजाणे ॥ णो

वस्त्र पहिनती है, काया का अधो भाग जंघादिक बताती है, और बाहु को उठाकर कक्षा को बताती हुए साधु की सन्मुख आती है ॥ ३ ॥ कोइ स्त्री लेने योग्य पाटपाटला प्रमुख के लिये साधु को अकेला देखकर स्नेह वचनों से निमंत्रण करे. परंतु साधु उन सब को पाश समान माने ॥ ४ ॥ और उन की चक्षु से चक्षु मिलावे नहीं, वैसे ही मैथुनादिक अकार्य करे नहीं, उस के प्रार्थनारूप वचन को अच्छा जाने नहीं, स्त्री की साथ ग्रामादिक विचरे नहीं इस तरह रहने से अपना आत्मा का रक्षण होता है, ॥ ५ ॥ कितनीक स्त्रियों साधु को संकेत करके या विश्वास उपजाकर आमंत्रण करती है। परंतु साधु

होता है ॥ ५ ॥ आ० आमंत्रण करके वि० विश्वास देकर भि० साधु को भा० भाषा से नि० निमंत्रण करती है ए० इनको से० निश्चय से० यह णा० जान स० शब्द वि० विविध प्रकारके ॥ ६ ॥ म० मन बंधन में भ० कितनेक क० करुणाजनक वि० विनय पूर्वक उ० पास आकर अ० अथवा मं० मधुर भा० बोलती है आ० आज्ञा करावे भि० भस्मार कथासे ॥ ७ ॥ सी० सिंह ज० जैसे कु० मांससे नि० निर्भय ए० अकेला नि० विचरे पा० पाशसे ए० ऐसे स्थि० स्त्रियों बं० बांधती है सं० संवृत ए० अकिंचन

सहियपि विहरेज्जा । एव मप्पा सुरक्खिओ होइ ॥ ५ ॥ आमंतिय उस्सविय । भिक्खू आयसा निमंतति ॥ एताणि चेव से जाणे । सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६ ॥ मणबंधणेहिं णेगेहिं । कलुण विणीय मुवगसित्ताण ॥ अदु मंजुलाइ भासति । आणवयंति भिन्नकहाहिं ॥ ७ ॥ सीहं जहा च कुणिमेण । निब्भय मेगचरति पासेण ॥ एवंत्थि

को उन सब नाना प्रकार के शब्दों ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागना ॥६॥ मनको बंधन करे ऐसे अनेक प्रकार के प्रपंच करनेवाली स्त्रीयों विनय पूर्वक साधु की पास आकर करुणाजनक तथा मनोहर वचनों से बोलती हैं और मैथुन संबंधि रहस्य वार्तालाप करके साधु को अपनी आज्ञा में प्रवर्तावती हैं ॥ ७ ॥ जैसे सिंह को मांस का टुकडा बतलाकर कितनेक पारधि निर्भय करते हैं और जब निर्भयता से अकेला फिरता है तब वे उसे पास से बांध कर अनेक प्रकार से दुःखी करते हैं

अ० अनगार को ॥ ८ ॥ अ० अब त० तहां पु और ण नमाने र० रथकार च चक्र अ० अनुक्रमसे ब० बधाया हुवा मि मृग जैसा पा० पाश में फं० फसायमान ण० नहीं मु० मुक्त होता है ता० उस से ॥ ९ ॥ अ० अब स० वह अणु० पश्चाताप करता है प० पिछे भ भा० खाकर पा० दूध वि० विषमिश्रित ए० ऐसे वि० विवेक आ० आचरकर स० संवास न नहीं क० कल्प द० मोक्षार्थी ॥ १० ॥ त० इस

पाश्रा भवति । सवुड एगतिय मणगारं ॥ ८ ॥ अह तत्थ पुणा णमयति । रहकारोव्व णमि अणुपुव्वी ॥ बद्धेमिएव पासेणं । फंदतेवि ण मुचए ताहिं ॥ ९ ॥ अह से णुत-प्पइ पच्छा । भोच्चा पायसं च विसम्मिस्सं ॥ एवं विवेग मादाय । स वासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥ तम्हाउ वज्जए इत्थी । विसलित्त च कटगं नच्चा ॥ उए कुलाणि व

जैसे ही स्त्रियों अकेला फिरनेवाला संवृत अनगार को बांधती हैं ॥ ८ ॥ अब जैसे रथकार चक्र का नाभि का भाग नमाता है वैसे ही स्त्रियों साधु को अपने वश में करती हैं और इस तरह बा बद्ध हुवा साधु जैसे मृग पाश में बंधाये बाद नहीं छूटता है, वैसे ही स्त्रीयों की पास से नहीं छूट सकता है ॥ ९ ॥ जैसे कोई मनुष्य विषमिश्रित दूध का पान कर पश्चाताप करता है, वैसे ही स्त्रियों की पास में बं पाया हुवा साधु पश्चाताप करता है ऐसा विवेक जानकर साधु को स्त्रियों का संसर्ग करना नहीं ॥ १० ॥ इस लिये जैसे विषलिप्त कंटक शरीर में चुभनेसे अनर्थ करता है वैसे ही स्त्रियों का स्मरण करने

लिये घ० घोरे इ० स्त्री को सि० विलित कं० कंटक न मानकर उ० एकिसा कु० कुलको व० वश मा०
करे ण० नहीं स० वह णि० निर्ग्रन्थ ॥ ११ ॥ जे० जो ए० यह उं० निन्दा अ० मूर्च्छ अ० अन्य इं०
हावे कु० कुशील को सु० अच्छा तपस्वी स० वह भि० साधु नो० नहीं वि० विचरे स० साथ इ० स्त्रियों
में ॥ १२ ॥ अ० भपि धू० पुत्री सु० पुत्रवधू धा० धाय माता अ० अथवा दा० दासी म० बडी वा०
या कु० कुमारी साथ सं० परिचय से० वह न० नहीं कु० करे अ० साधु ॥ १३ ॥ अ० अथवा णा०

सवच्ची । आघाते ण से वि णिग्गये ॥ ११ ॥ जे एय उंछ अणुगिद्धा। अन्नयरा हुं-
ति कुसीलाण ॥ सुतवस्सिएवि से भिक्खू । नो विहरे सह णमित्थिसु ॥ १२ ॥ अ-
वि धूयराहि सुण्हाहिं । धातीहिं अदु व दासीहिं ॥ महतीहि वा कुमारीहिं । संथवं से
न कुज्जा अणगारे ॥ १३ ॥ अदु णाईण च सुहीणं वा । अप्पियं दृट्ठु एगया होंति॥

स संयम में बाधा भाती है, ऐसा मानकर स्त्री की संगत, तथा उनकी साथका वार्तालाप को भी साधु को
छोडना और जो अकस्य विचरताहुवा स्त्रियों के वश में रह कर स्त्रियों की कथा करता है, वह साधु नहीं
है ॥ ११ ॥ जो साधु मात्र स्त्री की कथा में ही लुब्ध रहता होवे उन को पार्श्वस्थ साधु कहना इस लिये
तपस्वी को भी स्त्री की साथ विहार करना नहीं ॥ १२ ॥ साधु को पुत्री, पुत्रवधू, धायमाता, दासी व
बडी कुमारीका की साथ विचरना नहीं ॥ १३ ॥ इस तरह विचरने से उस को ज्ञाति, सुहृद कभी

शातिको सु० सुहृद् को अ० अप्रीति द० देखकर ए० एकदा हो० होते हैं गि० गृद्ध स० आसक्त का० काम भोग में र रक्षण पो० पोषण म०मनुष्य सि है ॥ १४ ॥ स० साधु को द० देखकर दा० दासी त० तहां ता० तब ए किवनेक कु० कोप करते हैं अ० अथवा भो० आहार ण० साधु निमित्त इ० स्त्री का दोष स० शंकावंत हो० होते हैं ॥ १५ ॥ कु० करते हैं सं० परिचय ता० उस से प० भ्रष्ट हुवा

गिद्धासत्ता कामेहिं । रक्खणपोसणे मणुस्सोसि ॥ १४ ॥ समणंपि, दट्ठु दासीणं तत्थवि ताव एगे कुप्पंति ॥ अदु भोयणेहिं णत्थेहिं । इत्थीदोसं संकिणो होंति ॥१५॥ कुव्वंति संथवं ताहिं । पब्भट्ठा समाहिजोगेहिं ॥ तम्हा समणा णं समेंति । आयहियाए

देख लेने तो द्वेष उत्पन्न होवे और ऐसा जाने कि, देखो यह पुरुष काम भोग में आसक्त दिखता है ऐसा मानकर उस को आक्रोश वचन बोले कि क्या तू "इसका पति है" कि जिस से यहांपर बहुत बेठता है, और उस का रक्षण पोषण करता है ॥ १४ ॥ रागद्वेष रहित उदासी साधु स्त्री की साथ एकान्त में वार्ता लाप करे तो उन के घर भी कोइ क्रोधित होते हैं, और अनेक प्रकार का भोजन साधु के लिये बनाया देख कर ऐसा मानते हैं कि यह आहार का गृद्ध साधु सदैव यहां आता है, और स्त्री की भी शंका करे कि यह स्त्री भी अच्छी नहीं है ॥ १५ ॥ मन वचन और काया का शुभयोग रूप व्यापार से भ्रष्ट होनेवाला

स० समाधि योग से त० इसलिये स० साधु न० नहीं स० जाते हैं आ आत्महितायकेऽयं स स्त्री की वसति ॥ १६ ॥ ब बहुत गि० घर अ० छोडकर मि० मिश्र भाव प० पहोंचा ए० कितनेक धु० ध्रुवमार्ग प प्ररूपते हैं वा० वचन बल कु कुशीलिया ॥ १७ ॥ सु शुद्ध र० बोलते हैं प० परिषद् में र० एकान्त में दु० दुष्कृत्य क० करते हैं जा० जानते हैं त० तथा विध मा० मायावी म० महाशठ हैं ॥ १८ ॥ स० स्वयं दु० दुष्कृत्य न० नहीं व० बोलते हैं आ० आदेश कराया हुवा

सण्णि सेज्जाओ ॥ १६ ॥ बहवे गिहाइं अवहट्टु । मिस्सीभाव पत्थुया (पणता) यए गे ॥ धुवमग्ग मेव पवयंति । वायाविरिय कुसीलाण ॥ १७ ॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्संमि दुक्कड करेंति, जाणंति यण तहाविया, माइल्ले महासढयंति ॥ १८ ॥

साधु स्त्री साथ परिचय करता है इस लिये साधु अपना आत्मा का हित जानकर स्त्री की साथ जावे नहीं वैसे ही जिस स्थान में स्त्री रहती होवे उस स्थान में भजनादिक करे नहीं ॥ १६ ॥ गृह छोडकर मिश्रभावको पहुंचे हुवे कितनेक मनुष्य ऐसा कहते हैं कि हमाराही मोक्ष मार्ग श्रेय है परन्तु उनका यह कथन मात्र है अर्थात् उनका वीर्य मात्र कथन रूपही है, कार्य रूप नहीं है ॥१७॥ कुशीलका सेवनेवाला परिषदामें अपनी आत्माको शुद्ध बतलाता है; परंतु यहांसे उठे बाद एकान्तमे दुष्ट कर्म करता है, इस तरह अपना आचारको छुपाता है परंतु उसे अंगचेष्टाके जानकार पुरुष जानजाता है और सर्वज्ञतो सदैव जानते हैं कि यह साधु मायावी महाशठ है ॥ १८ ॥ द्रव्यलिंगी साधुको कोइ आचा

प० करता है पा० भवानी वे० वेदका उदय मां० नहीं का० करे पो० मैराया हुवा गि० गिना न धन्य पाता है से० वे मु० वारंवार ॥ १९ ॥ भो० मुक्तभोगी इ० स्त्रीपोषन में मु० स पुरुष इ० स्त्रीके से० सेवक प० भवानत स० सुविस्मित ए० किवनेक ना० नारीके व० वश उ० वासस्व करते हैं ॥ २० ॥ अ० अपि ह० हस्तपाद छेदनेके लिये अथवा व० चर्ममांस उ० तारे अ० अपि

सप पुच्छे च न वदति आउट्टोषि पकत्थति बाले, वेयाणुवीइ मा कासी, चोइज्जंतो गिला इ से भुज्जो ॥ १९ ॥ ओसियावि इत्थिपोसे, सुपुरिसा इत्थिवेय खेयन्ना, पण्णासमन्नि तावेग, नारीण वसं उवकसंति ॥ २० ॥ अवि हत्थपादच्छेदाय, अदुवा वद्धम सउकंते

यदि पुछे तो भी वह अपना किया हुआ अनाचार कहे नहीं, और उसको कहे कि अब तुम ऐसा कार्य मत करना तो पर मूर्ख कहे कि अब तुम कहोगे वैसा करुंगा, और पुरुष वेद का उदय आने पर मैथुन की अ भिलाषा मत करना इसप्रकार शिक्षा देनेपर वह खिन्न होता है और वारंवार सुने को अनसुना करता है ॥ १९ ॥ अहो शिष्य! वेदोदय की अवस्था से उत्पन्न हुआ जो मोहोदय उस का अभाव करना ही दुष्कर है बड़े वि द्वान भी इसी को संसार का कारन जानते हुवे भी स्त्री के वश हुव जाते हैं और जो कार्य वह बताती है उस को दास की तरह करते हैं ॥ २० ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू !

छे॰ अग्नियें अ॰ तपावे म॰ मही प॰ और खा॰ खार सिं॰ सींचे ॥ २१ ॥ अ अथवा क॰ कर्ण ना॰ नाक का छे॰छेद कं॰गलका छे॰ छेद ति॰ तितिक्खसे इ॰ यहां पा पापासक्त न॰नहीं बिं॰दुसरी बक्त पु फिर न॰ नहीं का॰ करुंगा ॥ २२ ॥ सु॰ सुना ए॰ कितनेक इ॰ स्त्री वेद सु कहा ए॰ ऐसे तम॰वे प॰ बोलतीहुवी अ॰ अथवा क॰ कर्मसे अ करते हैं ॥ २३ ॥ अ॰ अन्य म॰ मनसे चिं॰ चिन्तवन करती

अवि तेयसाभितावणानि, तच्छिय खारसिंचणाइं य ॥ २१ ॥ अदु कण्णणासच्छेदं कंठच्छेदणं तितिक्खंति, इत्थ पावसंतत्ता, न य बिंति पुणो न काहिंति ॥ २२ ॥ सुत मे तमेव मेगेसिं, इत्थी वेदेति हु सुयक्खायं, एवंपिता वइत्ताण, अदुवा कम्मुणा अवकरेंति ॥ २३ ॥ अन्नं मणेण चिंतेति, वाया अन्नं च कम्मुणा। अन्नं तम्हा ण सद्दहे भिक्खू, बहुमायाओ

स्त्री सेवन के कटुक फल श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामी से मैंने सुना है कि स्त्री का संबंध करनेवाला पुरुष को इस का फल इसी भव में मिल जाता है कितनेकोंका हाथ पाँव, नाक, कान छेदते हैं, चिमटे से चमडा तोडते हैं और उपर खार का सिंचन करते हैं, अग्नि में जलाते हैं, इतना ही नहीं अपितु उस की गर्दन काटकर प्राण रहित करते हैं. ऐसे कष्ट होने पर भी कहते हैं कि अब मैं ऐसा कार्य नहीं करूं गा परंतु पुनरपि वैसा कार्य करने लगजाते हैं, ॥ २२ २३ ॥ स्त्री मन से अन्य चिंतवन करती है, वचन से अन्य बोलती है, और कर्म से अन्य करती है इस लिये स्त्री को बहुत मायावी जान के साधु उन का

आ० के प वस्त्र ता०रक्षक पा०पात्र वा० अथवा अ०आहार पा०पानी प० ग्रहणकरो ॥३०॥ णी० है या० कुण जैसा मु० माने णा नहीं इ० इच्छा अ० घर में आ० आनेको प० बन्धाये वि० विषय पाश से बहुत या० अ० भ्रमण करता है पु० फिर म० मूर्ख धि० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ३१ ॥ ४ ॥ १ ॥

विषिमार्दस्को

अ० अथवा वत्थगंहं ॥ ३० ॥ णीवारमेव वुज्झेज्जा । णो इच्छ अगारमागतु ॥ बद्धे विसय पासेहिं मोहमावज्जइ पुणो मंदे त्तिबेमि ॥ ३१ ॥ इति इत्थीपरिण्णाज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥ ४ ॥ १ ॥

को आमंत्रण करे कि अहो षट्काया के रक्षक तुम को वस्त्र, पात्र, अन्न, पानी आदि जिस की जरूरत होवे उसे हमारे घर आकर लेजाना ॥ ३० ॥ पूर्वोक्त आमंत्रण को बीही के कण समान मानकर उस के घर जाने का वांच्छे नहीं यदवांच्छतो विषय पाशमें बंधाया हुवा वह अज्ञानी मोह के चक्रमें वारम्वार पडे॥३१॥ ऐसा श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू ! जैसा मैंने श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही तेरे प्रत्ये कहता हूं यह स्त्री परिज्ञा नामक चतुर्थ अध्ययन का प्रथम उद्देशा पूर्ण हुवा इसमें स्त्री का परिचय से साधु के चारित्र का विनाश होता है ऐसा कहा अब आगे स्त्री से भ्रष्ट साधु को क्या क्या विटम्बना होती है वह बताते हैं ॥ ४ ॥ १ ॥

ओ० विरक्त स० सदा भगवान श्री अमोलक ऋषिजी भोग कामी पु० फिर वि० विरमे भो भोग में
म साधु सु सुनो ज यथा कितनेक ॥ १ ॥ अ० फिर त० उसे भे०
भेद भा० भाव मु० मूर्च्छित देख प० मर्यादा छोड प० फिर पा०
पांवउठाकर मु० शिरमें प प्रहार यदि के० केशवाली (स्त्री) म० मरी साथ

ओए सया ण रज्जेज्जा । भोगकामी पुणो विरज्जेज्जा ॥ भोगे समणाण सुणेह जह भु
जंति भिक्खुणो एगे ॥१॥ अह त तु भेद मावन्नं । मुच्छितं भिक्खु काम । मतिवट्ट
॥ पलिभिंदियाण तो पच्छा । पादुद्दहु मुद्धि पहाणति ॥ २ ॥ जइ केसिआ ण मए

जो साधु संसार के कार्यों से विरक्त हुवे हैं, वे काम भोगों से सदैव निर्लेप रहते हैं कदाचित उस की इच्छा होजाय तो भोगोंसे होती हुइ विटम्बना को जानकर भी भोगकी इच्छासे अपना मन पीछा खेंच लेना जो साधु अपना मन भोगोंकी इच्छाओंसे पीछा नहीं खेंचता है, और भोगोंमें ही फसता है, उन को जो जो विटम्बना होती है उसे आगे बताते हैं ॥ १ ॥ स्त्री सम से भ्रष्ट हुवा तथा कामभोग में मूर्च्छित साधु को कोइ स्त्री ऐसा कहे कि—तेरे लिये मैंने मेरा कुल की मर्यादाका भंग कीया है और मेरा यह शरीरभी तुमको मैंने अर्पण कर दिया है ऐसे ऐसे वचनों से साधु को अपना वश में कर लेवे फिर जब कभी वह स्त्री रुष्ट होवे और मोह पाश में फसाहुवा साधु उस के पांव में पडे तब वह क्रुद्धा स्त्री उस के शिर में बाया पांव का प्रहार करतीहै तदपि वह मूर्ख उस से विरक्त नहीं होता है ॥२॥ साधु को वश करने केलिये कोइ

भि साधु णो० नहीं वि० विहार करोगे स० साथ इ० स्त्री की के० केशों का भी लुं० लोच करूंगी न० नहीं म अन्यत्र प० मेरे च विचरो ॥ १ ॥ अ० अब स वह हो० होता है उ० उपलब्ध सो० तब पे० भमती है त० तथा मूत अ० तुम्बेको छेदने का शस्त्र पे० लाइये वि नालीयेरभी आ० लावो ॥४॥ दा काष्ठ आ० शाक पा० पकाने केलिये प० उद्योत भ० होवेगा रा० रात्रिको पा० पात्रे को मे० मरे

भिक्खु । णो विहरे सह ण मित्थीए ॥ केसाणविहं लुंचिस्स । ननत्थमए चरिज्जासि ॥ २ ॥ अह ण स होइ उवलद्धो । तो पेसंति तहा भूएहिं ॥ अलाउच्छेद पेहेहि । व ग्गुफलाइ आहराहिचि ॥ ४ ॥ दारूणि सागपागाए । पज्जोठ वा भविस्सति राओ ॥

भी ऐसी माया करे कि यदि तुम मुझे साथ साथ रखने में लज्जित होते हो तो इस तरह तुम मत विहार करो मैं केश का लोच करूंगी और अन्य भी तुम जो कहोगे वह करूंगी परंतु मेरे सिवाय तुम अन्यत्र विहार करना नहीं ॥ ३ ॥ अपने वश में आया हुवा साधु को जानकर उस की पास दास जैसा कार्य करावे, वह बताते हैं—अपनी पास तुम्बा है उसे छेदने के लिये शस्त्र लाइये वह ला दो या अच्छे नालियेर के फल ला दो ॥ ४ ॥ शाक पकाने के लिये काष्ठ, रात्रि में प्रकाश होवे इस लिये तेल ×

× " पज्जोवा भविस्सवि राओ " रात्रि में उद्योत होवेगा इस लिये रात्रि में वन में आकर के भी काष्ठादि ले आवो ऐसा टीकाकार अर्थ करते हैं

र० रंग प० लावो मे मेरी पि० पिठ म मर्दन करो ॥ ५ ॥ व० वस्त्रों मे० मेरे प० देखो अ अन्न पा० पानी आ० लावो गं सुगंध र रजोहरण का० नापित ए० अच्छा जानो ॥ ६ ॥ अ० अथवा अं० सुरमा अ अलंकार कु० कुंकुमदानी मे० मेरेको प० घुघरा लो० लोद्र लो लोद्रके फूल वे० बांश की लकडी गु० कामगुटिका ॥ ७ ॥ कु० कोष्ट त० तगर अ० दचन सं० सब पीस स० तैयार कर ते०

पाताणिय मे रयावेहि । एहि तामे पिट्ठओ मद्दे ॥ ५ ॥ वत्थाणिय मे पडिलेहेहि । अन्नं पाण च आहराहित्ति ॥ गंध च रओहरणं । कासवगं समणुजाणाहि ॥ ६ ॥ अदु अंजाणिं अलंकारं । कुक्कयय मे पयच्छाहि ॥ लोद्द च लोद्दकुसुमं च । वेणुपलासियं च गुलियं च ॥ ७ ॥ कुट्ठं तगरं च अगरु । संपिट्ठं सम्म उसिरेण ॥ तेल्लं

और मरे पात्र रंगने के लिये रंग मुझे ला दो, तथा मेरा अंग दुखता है इस लिये यहां आवो और मेरी पीठ को मर्दन करो ऐसा कहे ॥ ५ ॥ मेरे वस्त्र जीर्ण होगये हैं, वस्त्र तुम देखो अन्न, पानी, कर्पूरादिक सुगंध द्रव्य ला देवो अथवा हिरण्य, सुवर्ण रजोहरणादि मुझे ला देवो वैसे ही लोचादिक सहन करने को मैं असमर्थ हूं, इस लिये क्षौरकर्म कराने को मुझे नापित ला देवो ॥६॥ आंखों को अंजन करने केलिये सुरमा लावो पहिनने के लिये आभूषण, तिलक करने को कुंकुम, घुघुरुवाले नेवर बिछिये लावो शरीर को लगाने को लोद्र शिर को शोभित करने को फूल, बजाने को बंशकी बीणा, और यौवन रखनेको गुटिका ला देवो ॥ ७ ॥ कोष्ट अगर, तगर इत्यादिक सुगंधि द्रव्य कुटकर तैयार करके ला दो मुख को तेज करनेको

ते- ए० मुत्र मि० मींगानेको वे वांधने फवीए म वस्त्रादि रखनेका ॥ ८ ॥ न० नदी चूर्ण पा० ला वा छ० छत्र रा० पगरखी जा लावो म०शस्त्र सू० शाक सुधारने केलिये आ नील च० और म० वस्त्र र० रंगने ॥ ९ ॥ सु अच्छी हरी सा० शाक पा० पकाने को आ० आमले द० पानीका परतन ति० तिलक करने की सलाइ अं अंजन केलिये सलाइ पि० ग्रीष्म में पे० मेरे लिये वि पंखा वि० लावो ॥ १० ॥ सं० चिपिया क० कांगसी सी० वेणी बांधने केलिये उ की गांठ आ० लावो आ दर्पण प०

मुहाभिंजाए । वणुफ्लाइ सन्निधानाए ॥ ८ ॥ नंदीचुण्णगाइ पाहराहिं । छत्तोवाणह च जाणाहिं ॥ सत्थ च सूवच्छेजाए । आणील च वत्थय रयावेहि ॥ ९ ॥ सुफणिं च सागपागाए । आमलगाइ दगाहरण च ॥ तिलगकरणि मंजणसलागं । विंसु मे विहूणय विजाणेहिं ॥ १० ॥ संडासग च फणिह च । सीहालि पासग च आ

फूलेल और वस्त्राभूषण रखने को करंडिया ला देवो ॥ ८ ॥ ओष्ठ रंगने को नंदीचूर्ण, आताप और वृष्टि का निवारण के लिये छत्र, पाँव में पहिनने को पगरखी, शाकादिक छेदने को अच्छी छूरी, और वस्त्र रंगने को नील ला देवो ॥ ९ ॥ शाक बनाने को हंडी शिर धोने का आमले, पानी लाने का घडा, तिलक करने को और अंजन आंजने को सलाइ तथा उष्ण काल में हवा करने को पंखा लावो ॥ १० ॥ नासीका का केश खेंचने को चीपिया, बालों ओछने को कांगसी, शिर बांधने को गांठी, मुख देखने को दर्पण,

लावो दं० दांत धोनेका प० लायो ॥ ११ ॥ पू पुंगफल त तंबोल च सूइ सु दोरा मा लावो मो मोचन म० मसुनीनित्यर्थ सु० सूपडा उ० ऊखल खा० क्षार छानने का पात्र ॥ १२ ॥ चं० चंगेरी क० दुग्ध का पात्र च छाया घ० गृह आ० आयुष्मन स खोदावो स० मनुष्यपाण आ० समो गो० बछडा स० श्रमण केलिये रा० लायो ॥ १३ ॥ घ० कुराडा स० डमरु चे दडी गोल कु० कुमार की क्रीडा केलिये

पूयफलं तंबोलं णाहि ॥ आदसगं च पयच्छाहि । दंतपक्खालणं पवेसाहि ॥ ११ ॥ पूयफलं तंबोलं य । सूईसुत्तगं च जाणाहि ॥ कोसयं मोयमेहाए । सुप्पुक्खलगं च खारगालणं च ॥ १२ ॥ चंदालगं च करगं च । वच्चघरं च आउसो खणाइ ॥ सरपायं च जायाए । गोरहगं च सामणेराए ॥ १३ ॥ घडिगं च सडिंडिमयं च । चेलगोलं कु

मुखवास के लिये सोपारी, तम्बोल [पान] और दंत प्रक्षालन के लिये दातण मुझे ला देवो ॥ ११ ॥ और रात्रि को मैं बाहिर जाने से डरती हूं इस लिये लघुनीति करने का पात्र लावो वस्त्रादि बान्धने को सूई दोरा लावो, और धान्य खाडने को ऊखल और [illegible] सूपडा, साजी आदि क्षार छानने को पात्र, दुग्धादि पीने के लिये करा मुझ ला देवो ॥ १२ ॥ और भी शरीर का शृंगार के लिये कुसुमकी चंगेरी, वर्षाऋतु आगइ है इस लिये घर को छवावो, और कूप खोदावो बच्चे (साध) मुझे ला देवो हे आयुष्मन्! क्रीडा करने के लिये मनुष्य याण तथा छोटी उमर का बछडा लावो ॥ १३ ॥ कुराडा, डमरु, गेंददडी यह को खेलने के लिये

वा० वर्षा काल स० आया आ० मकान ला० समो भ० भक्त ॥ १४ ॥ आ० माचा न० नविन निवार वाली पा पावडी सं० चलने को अ० अथवा पु० पुत्र को दोहला केलिये आ०आज्ञा प्रमाण करनेवाला ह० होता है दा० दास समान ॥ १५ ॥ जा० जन्म फ० फल स० उत्पन्न हुवे को गे ग्रहण करो अ० अथवा ज छोडदो अ० मैं पु० पुत्र का पोषण करने वाला ए० और भा० भारउठाने वाला ह० होते हैं उ० ऊ-

मार भूयाए ॥ वासं समभिआवण्ण । आवसहं च जाण भत्त च ॥ १४ ॥ आसदियं च नवसुत्त । पाउल्लाइ संकमट्ठाए ॥ अदु पुत्तदोहलट्ठाए । आण्णप्पा हवंति दासाव्वा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने । गेण्हसु वा णं अहवा जहाहि ॥ अह पुत्तपोसिणो

उन कुमारके लिये समो और हे श्रमण! वर्षाकाल आगया है इस लिये निवास करने योग्य मकान बनाओ और वर्षाकाल में घर बैठे खावे इतना धान्य लावो ॥ १४ ॥ नविन सूत्र से बनाहुवा माचा ला देवो, वर्षा ऋतु में चलने से कीचड न लगे इस लिये काष्ट की पावडी ला देवो अथवा गर्भ में रहाहुवा पुत्र का दोहला पूर्ण करने के लिये अमुक वस्तु ला देवो, इस तरह दास की मुवाफिक उस को हुकम करे ॥ १५ ॥ पुत्र उत्पन्न हुवे बाद जो जो विटम्बना होती है सो कहते हैं गृह कार्य से व्याकुल बनी हुई कोइ स्त्री कहे कि इस पुत्र को तुम सम्हालो या तो उसे छोड देवो मैंने नवमास तक गर्भ में रक्खा, अब मैं उस की वेठ नहीं करसकती हूं तुम तो उस को क्षणमात्र भी गोदमें लेते नहीं हो ऐसा स्त्री का आक्षेप युक्त वचन सुनकर

ट जैसे ॥ २६ ॥ रा राभि में उ उठकर दा० बालकको सं० रखे धा धात्री जैसे सु० लज्जा

वान भी ते० वे सं होते हुवे व० वस्त्र धो० धोने वाला ह होते हैं धोबी जैसे ॥ १७ ॥ ए० ऐसे ब०

बहुत पुरुषों से क० किया हुवा पु० पहिले भो भोग की इच्छा से जे० जो अ० सन्मुख हुवे दा० दास

मि० मृग जैसे पे० नोकर प० पशु सारिसा से० वे ण० नहीं के० कोइ ॥ १८ ॥ ए० ऐसे सु निश्चय

एगे । भारवहा हवंति उट्टावा ॥ १६ ॥ राओवि उट्ठिया संता । दारगं च संठवंति धाईवा ॥ ॥ सुहिरामणावि ते संता । वत्थधोवा हवंति हसावा ॥ १७ ॥ एवं बहूहिं कए पुव्वं । भोगत्थाए जे भियावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा । पसुभूतेव से ण वा केइ ॥ १८ ॥ एवं खु तासु विन्नप्पं । संथवं संवासं च वज्जेज्जा ॥ तज्जातिया इमे कामा

कोइ पुरुष वस का पोषक बने और ऊंट की मुवाफिक बोजा उठानेवाला होवे ॥ १६ ॥ जैसे धात्री रुदन करता हुवा बालक को रखती है वैसे ही वह पुरुष राभि में उठकर बालक का पालन पोषण करता है कदापि वह पुरुष लज्जावान होवे तो भी स्त्री के वचनों से निर्लज्ज बन जाता है और जैसे धोबी कपडा धोता है वैसे ही वह पुरुष स्त्री तथा बालक का कपडा धोता है और ऐसे अन्य भी कार्य दास जैसे करता है ॥ १७ ॥ इस तरह स्त्री का किंकरपना अतीत काल में अनेक पुरुषों ने किया, वर्तमानकाल में कर रहे हैं और भविष्यकाल में भी अनेक करेंगे भोग की इच्छाओं में लुब्ध पुरुषों के लिये ऐसी कोइ उपमा नहीं

ता उसमें वि० मिला हुआ से० परिचय सं० सहवास व छोडे त० स्त्रि से उत्पन्न हुवे इ० ये का० काम भोग प० पापकारी ए० ऐसा अ० कहा ॥ १९ ॥ ए ऐसा भ भय प० नहीं से० श्रयकारी इ० इति से० वह अ० अपन का नि० रुंधनकरके णा० नहीं इ स्त्री णा नहीं प पशु भि० साधु स०स्वयं पा०हा थ से णि० स्पर्श कर ॥ २ ॥ सु० अच्छी अथवा शाला प० पण्डित प० पर क्रिया को व० छोड णा०

वज्जकराय एव मक्खाए ॥ १९ ॥ एव भय ण सेयाय । इह से अप्पग निरुभित्ता णो इत्थि णो पसू भिक्खुणो । सय पाणिणा णिल्ज्जज्जा ॥ २० ॥ त्रिसुद्ध ल

है कि जो उसके दास, पाश में फसाया हुवा मृग, गुलाम या पशु की भी उसका उपमा नहीं दसकत ह यह सत्क्रिया से भ्रष्ट होने से साधु नहीं है, वैसे ही ताम्बूलादिक परिभाग रहित होने से गृहस्थ भी नहीं है इस से उभय भ्रष्ट जानना ॥ १८ ॥ इस तरह स्त्री को माया का कारण जानकर उसका परिचय और सह वास छोडना स्त्री के संग से उत्पन्न होनेवाले कामभोग पापकारी और दुर्गति के देनेवाले हैं ऐसा श्री तीर्थं कर देवने कहा है ॥ १९ ॥ ऐसे स्त्री का सहवास से अनेक भय उत्पन्न होते हैं इस लिये नह कल्याण कारी नहीं है ऐसा जानकर साधु अपना आत्मा को स्त्री संग से रुके, उस का सहवास करे नहीं इतना ही नहीं परंतु स्त्री को हाथ पग से स्पर्श भी न करे ॥ २० ॥ शुद्ध निर्मल सम्पादाम्ना ज्ञानी मन. वचन

ज्ञानी म० मन से व० वचन से का० काया से स० सर्व फा० स्पर्श स० सहन करे अ० साधु ॥ २१ ॥ इ० य० गा आ० कहा से उन वी० वीर ने धू० रज को दूर करने वाला धू० मोह को दूर करने वाला से० वह भि० साधु त० इसलिये अ० अध्यवसाय वि० शुद्ध वि० विमुक्त आ० कर्मक्षयतक प० विचरे (वि० विचरे आ मोक्ष तक वि०) एसा बे० कहता हूं ॥ २० ॥ ४ ॥

से महावी । पराकिरिअ च वज्जए णाणी ॥ मणसा वयसा काएण । सव्वफाससहे अणगारे ॥ २१ ॥ इच्चेव माहु से वीरे । धूअरए धूममोहे से भिक्खू ॥ तम्हा अज्झत्थ विसुद्धेसु विमुक्के । आमोक्खाए परिव्वएज्जासि (विहरे आमुक्खाए) त्तिबेमि ॥२२॥ इति इत्थीपरिण्णाज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो। इति इत्थीपरिण्णा णाम चउत्थमज्झयण सम्मत्त ॥४॥

उपदेश श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामीने कहा है इस लिये साधु सम्यक् दर्शन युक्त स्त्री का संसग से दूर रहता हुवा जहां तक मोक्ष होवे वहां तक संयम पाले ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं ॥ २२ ॥ यह स्त्री परीक्षा नामक चतुर्थ अध्ययन का द्वितीय उद्देशा पूर्ण हुवा और चतुर्थ अध्ययन भी समाप्त हुवा इस अध्ययन में अनाचारी का वर्णन कहा, और जो अनाचारी होवे हैं, वे नरकगति में जाते हैं इस लिये नरक विभक्ति नामक पंचम अध्ययन चलता है ॥४॥

॥ नरकविभक्तिनामकं पंचम मध्ययनम् ॥

पु० पुछा थे के० केवली म० महर्षि को क० कैसे भि० दुख ण० नरक पु० पहिले अ० अजान मे० मैं मु० साधु बू० कहो जा० जान क० कैसे बा० अज्ञानी न० नरक में उ० उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ ए० ऐसे म० मैंने पु० पुछा म महानुभाव ने इं० ऐसा प० कहा का० काश्यपने आ० श्रीप्रभुजी प० मरुपा दु० दु

पुच्छिस्सहं केवलिय महेसिं । कह भितावा णरगा पुरत्था ॥ अजाणओ मे मुणि बूहि जाणं । कहिं नु बाला नरयं उवेंति ॥ १ ॥ एवं मए पुट्ठे महाणुभावे । इणमो

श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि जैसे तुम मुझे पूछते हो कि "नरक के दुःख कैसे हैं, जीव कैसे कार्यों से नरक में जाता है, और वहां कैसी वेदना है वैसे ही मैंने भी पहिले केवली, महर्षि श्री महावीर स्वामी को पूछा था कि हे भगवन्! तीव्र दुःख रूप नरक के भय कैसे हैं? हे मुनि! केवल ज्ञान से जानते हुवे आप मेरे जैसे अज्ञानी को कहो कि किस तरह अज्ञानी जीव नरक में उत्पन्न होता है। ॥ १ ॥ जब मैंने इस तरह पूछा तब केवलज्ञानी महानुभाव श्री महावीर देवने ऐसा कहा कि जैसा मैं कहूंगा वैसा तुम सुनो नरक के दुःख परमार्थ से बहुत विषम है, वैसे ही दीन पुरुषों ने जिन का आश्रय किया

मम दु० दुर्ग आ० मलीन दु० दुष्कृत्य पु० पहिले के ॥ २ ॥ जे जो के कोइ बा० अज्ञानी इ० इस जी० जीवित के लिये पा० पाप क० कर्म क० करते हैं रु० रौद्र ते० वे घो० घोर रू० रूप त० घोर अंधकार में ति० तीव्र भ० दुःख न० नरक में प० पड़ते हैं ॥ ३ ॥ ति० तीव्र त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावर को जो हिं० घात करते हैं आ० निज सु० सुख प० जानकर जे० जो मू० मूसावादी हो० है अ० चोर प० नहीं सि० सिखाते हैं सें० सेवने योग्य किं० किञ्चित ॥ ४ ॥ पा० धीठ पा० प्राणी ब० बहुतकी अ० घातकर

म्बवी कासवे आसुपन्ने ॥ पवेदइस्सं दुहमट्ठ दुग्गं । आदीणियं दुक्कडियं पुरत्था ॥२॥ जे केइ बाला इह जीवियट्ठी । पावाइ कम्माई करंति रुद्दा ॥ ते घोररूवे तमिसंधयारे । तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पाणिणो थावरे य । जे हिंसति आयसुहं पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ अदत्तहारी । ण सिक्खति सेयवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

है; वैसा पाप फल सहित नरकावासा को कहूंगा ॥ २ ॥ इस संसार में असंयम जीवितव्य के अर्थी जो कोइ अज्ञानी रौद्र पाप कर्म करते हैं; वे महा अंधकारवाली तथा तीव्र अंगारवाली नरक में जाते हैं ॥ ३ ॥ अपना शारीरिक सुख के लिये जो कोइ पुरुष तीव्रपना से त्रस और स्थावर के जीवों की हिंसा करता होवे, अथवा जो कोइ प्राणी का मर्दन करनेवाला होवे, या परद्रव्य का लेनेवाला होवे, अथवा जो सेवने योग्य व्रत पच्चक्खाणादिक न कर सकता होवे वो वह पुरुष नरक में जाता है ॥ ४ ॥ बहुत जीवों

नेरइये म० अनिभृत पा० पापका [नरक] उ० आतारै पा० अज्ञानी णि०, अधोगतिमें ग० जाता है अ० मृत्यु समये अ० नीचा सि० मस्तक क० करके उ० जाता है दु० विषमस्थान ॥ ५ ॥ ह० मारो छिं० छेदो भि० भेदो द० जलाओ इ० ऐसा स० शब्द सु० सुनकर प० परमाधामी के ते० वे ना० नारकी भ० भय भीत क० इच्छते है क० कोनसी दि० दिशामें ग० जावे ॥ ६ ॥ इं० अग्नि समुह ज० जाज्वल्यमान म० अग्नि सरिख उ० उस सरीखी भू० भूमिको अ० जाता वे० वे द० जलते क० दीन प० आक्रन्द करते हैं

पागब्भि पाण बहुणातिवाती । अनिव्वते घात मुवेति बाले ॥ णिहोणिस गच्छाति अंतकाले । अहोसिर कट्टु उवेइ दुग्गं ॥ ५ ॥ हण छिन्दह भिंद ण वहेति । सद्दे सुणित्ता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाओ भयभिन्नसन्ना । कखंति कन्नामदिस वयामो ॥ ६ ॥ इगालरासिं जलियं सजोतिं । ततोवमं भूमि मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थण-

की घात का करनेवाला, धृष्टपने वचन का बोलनेवाला, तथा क्रोधादिक कषायों से नहीं निवर्तनेवाला बाल अज्ञानी नरक में जाता है और मरण बाद शिर नीचा करके अंधकारगति में अंधकार में जाता है और वहां छेदन, भेदनादिक विषम दुःख पाता है ॥ ५ ॥ पर्याप्त हुवे बाद नारकी परमाधामी के जो शब्द सुनते हैं सो कहते हैं मुद्गर से हणो, खड्ग से छेदो, शूलादि से भेदो, अग्नि से जलाओ, ऐसे परमाधामी के क्रूर शब्दों सुनकरके नरक के जीव भय से व्याकुल बनकर, "हम कोनसी

...० पॅराध त० यहां चि० बहुत कालकी स्थिति वाले ॥ ७ ॥ ज० यदि ते० वेरे सेसु सुनागया वे० वैत ...० म० विषम चि० तीक्ष्ण ज० जैसे सु० छुरी इ० जैसे ति० तीक्ष्ण प्रवाह वाली त० तीरते हैं ते० वे बे० वैतरणी अ० विषम घ० बाणसे चो० प्रेराया स० शक्ति से ह० हणाया हुवा ॥ ८ ॥ की० कीलोंसे वि० विधाते हैं अ० असाधु कर्म करने वाले ना० नाव में उ० चढते हुवे स० स्मृति हीन अ० अन्य सू० शूलसे

ति । अरहस्सरा तत्थ चिरद्वितीया ॥ ७ ॥ जइ ते सुया वेयरणी भिदुग्गा । णिसिओ

जहा सुर इव तिक्ख सोया ॥ तरंति ते वेयरणीं भिदुग्गा । उसुचोइयासत्ति सुह

म्ममाणा ॥ ८ ॥ कीलेहिं विज्झति असाहुकम्मा । नाव उविंते सइ विप्पहूणा ॥

दिशा में जावे कि यहां से हम को भय न होवे" ऐसा वांच्छे ॥ ६ ॥ बहुत काल तक यहां रहनेवाले तथा गुंगे प्राणी जैसे शब्द करनेवाले नरक के जीव ...र की लकडी के जाज्वल्यमान अंगार सरीखी भूमि में जाते हुवे, और जलते हुवे हीन स्वर से आक्रंद करते हैं ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य का कहते हैं कि अहो शिष्य! तूने सुना है कि वैतरणी नदी बहुत विषम है क्यों कि उस में छुरी जैसा तीक्ष्ण पानी का पूर रहा हुवा है ऐसी नदी को भी नरक की भूमि के ताप से भीगों तीरने को वांच्छे; अत्यंत दुःखका अगाध पानी तीरने को असमर्थ होने से, बाणों से प्रेरायेहुवे और शक्तिभाला आदि से भगामी व जीवो नाव की वांच्छा करे ॥ ८ ॥ असाधुकर्म के करनेवाले विवेक हीन नरकके जीव

कर्मी ह० हस्त से पा० पाँव से बं० बांध करके फ० काष्ट का फलकावत त० काटते हैं कु० हस्त में कुहाडा लेकर ॥ १४ ॥ रु० रुधीर में पु० फीर व० दुर्गंधी द्रव्य स० भरे हुवे अंगवाले उंच्चाया हुवा व० उत्तम अंगवाले प० उत्थकर प० पकाते हैं पे० नारकी को फु० फूमे स समीन म० मच्छ जैसे अ० लोहकी क० कडाह में ॥ १५ ॥ नो० नहीं चे० निश्चय से ते त० तहां म० भस्म होते हैं ण० नहीं मि० मरते हैं

सतत्यण नाम महाहितावं । ते नारया जत्थ असाधुकम्मा ॥ हत्थेहि पाएहिय ध

विऊणं । फलगंव तत्थति कुहाडहत्था ॥ १४ ॥ रुहिरे पुणो वच्च समुस्सिअगे ।

भिन्नुत्तमगे परिवत्तयंता ॥ पयंति ण णेरइए फुरते । सजीवमच्छेव अयोकवल्ले॥१५॥

नो चेव ते तत्थ मसीभवंति । णमिज्जति तिव्वाभिवेयणाए ॥ तमाणुभाग अणु-

करते हुवे आदे दुःख पावे ॥ १३ ॥ नारकी को छेदने का स्थान महा दुःख का उत्पन्न करनेवाला है; क्यों कि अपाप कर्म करनेवाले परमाधामी नारकी के जीवों को हस्तसे और पाँव से बांधकर जैसे कुहाडा से काष्ठ काटा जाता है वैसे ही उनको काटते हैं ॥ १४ ॥ परमाधामी नारकी के जीवोंका रक्त निकाल कर उस रुधिर में ही उन को पकाते हैं और दुर्गंध × वस्तु से भरे हुवे शरीरवाले, जिस का शिर कायमया है

× नरक की दुर्गंध से जघन्य आधा कोश में उत्कृष्ट चार कोश में रहे हुवे तिर्यंच लोक के जीव मरण [illegible] होते हैं

ति॰ तीव्र म॰ वेदना से व उस अ॰ अनुभाग का अ॰ वेदता दु दुःखी होता है दु॰ दुःखी इ॰ यहां दु॰ दुष्कृत्यसे ॥ १६ ॥ ते उस में ते॰ वे लो॰ लोलुप स॰ सम्पात गा॰ अत्यन्त सु॰ तप्त भ अभि व॰ जाते हैं न॰ नहीं त॰ तहां सा॰ साता ल पाते हैं अ निरंतर अ॰ निरंतर अ॰ तपे हुवे त॰ तथापि त॰ तपाते हैं ॥ १७ ॥ से॰ अथ सु॰ सूना जाता है न॰ नगर वध जैसे स॰ शब्द दु॰ दुःख से व॰ बोलाये हुवे प॰ पद त॰ तहां उ॰ उदय हुवे कर्म वाले को (नारकी को) उ॰ उदय हुवे कर्मवाले (परमाधामी) पु॰ मार

वेदयता । दुक्खति दुक्खी इह दुक्कडेण ॥ १६ ॥ तेहिं च ते लोलणसपगाढे । गाढं सुतत्त अगणिं वयंति ॥ न तत्थ सायं लहति भिदुग्गे । अरहियाभितावा तहवि तावेंति ॥ १७ ॥ से सुव्वइ नगर वहेव सद्दे । दुहो वणीयाणि पयाणि त

ये तथा उलटे मुख से लटकनेवाले नारकी के जीव इधर उधर जाते हुवे कम्पित होवें जैसे जीवित मत्स्य लोह की कढाइ में पड़ाहुवा विव्हल होता है वैसे ही नारकी भी वेदना सहन करने में विव्हल बनते हैं ॥ १५ ॥ इतना कष्ट उन को देने पर भी वे जीव भस्मीभूत नहीं होते हैं वैसे ही नहीं मरते हैं परंतु अपना कृतकर्म का विपाक को भोगवतेहुवे और शीतोष्ण वेदनादिक दुःखों से दुःखी होते हुवे जीते रहते हैं आयुष्य पूर्ण हुवे बिना नहीं मरते हैं ॥ १६ ॥ उस नरकावास में यहां से यहां इस तरह भटकते शीत से पीडित होने से बहुत गरमी में जाते हैं परतु वहां भी वे साता को नहीं प्राप्त कर सकते हैं निर

मार त० वे स० रस्सार से दु० दुःख देवे हैं ॥ १८ ॥ पा० माप से पा० परमाधामी वि० भिन्न करते हैं त० उसको मे० तुमको प० कहता हूं म० यथातथ्य क० कर्म से सं० स्मरणकराते हैं पा० परमाधामी स० सर्व क० कर्मोंसे पु० मागेके क० किये हुवे ॥ १९ ॥ ते० वे ह० हणाया हुवा प० नारक में प० प डते हैं पु पूर्ण दु० दुःखरूप म० महापाप से० वे त० वहां चि० रहतेहैं दु० दुःखकारी दु० दुःखदेते हैं क०

त्थ ॥ उदिण्णकम्माण उदिण्णकम्मा। पुणो पुणो ते सरह दुहेति ॥ १८ ॥ पाणे-
हि णं पावविओजयाते। तं भे पवक्खामि जहातहेण ॥ दंडेहिं तत्था सरयंति या-
ला सव्वेहिं दंडेहिं पुरा कएहिं ॥ १९ ॥ ते हम्ममाणा णरगे पडंति। पुन्ने दुरूवस्स

वर पाप यहां रहता है वैसा ताप में नारकी को परमाधामी तपाते हैं, तेल गरम करके कष्ट देते हैं, ऐसे अनेक प्रकार से परमाधार्मिक देव नारकी को दुःख देते हैं ॥ १७ ॥ जब कोई नगरका विनाश करे तब मनुष्यों के "हाहाव हाहाव" ऐसे कोलाहल युक्त शब्द सुनने में आते हैं वैसे ही नरक में नारकीयों के करुणा जनक शब्द सुने जाते हैं. क्योंकि परमाधामी नरक के जीवों को आनंद पूर्वक दुःख देते हैं ॥ १८ ॥ वे पापिष्ट परमाधामी नारकी के अंगोपांग पृथक करते हैं उन को इतना दुःख क्यों देने में आता है? इस का कारण में यथातथ्य तुम को कहता हूं पूर्वभव में किये हुवे कर्मों को याद कराकर के

परमाधामी कि० वैक्रेय शरीर से ॥ २० ॥ स० सदा/क० पूर्ण पु० फिर प० धर्म स्थान गा० दृढ ब० बा
या हुवा अ० अति दुःख स्वभाव में निबद्ध प० डालकर वि० करते हुवे देहको वे छेदमे सी० शीर्षको
से० उसको अ० तपाते हैं ॥ २१ ॥ छि० छेदते हैं बा० नारकीका खु० छुरीसे न० नासिका को उ०
ओष्ठ अ० अपि छि० छेदते हैं दु० दो क० कर्ण जि० जिव्हा वि० नारकी की वि० वेंतमात्र ति० तीक्ष्ण

सया कसीणं पुण घम्मठाणं । गाढोवणीयं अति दुक्खधम्मं ॥ अंदूसु पक्खिप्प वि
हत्तुदेहं । वेहेण सीसं से भितावयंति ॥ २१ ॥ छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं । उट्ठे

महाभितावे ॥ ते तत्थ चिट्ठंति दुरूवभक्खी । तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं ॥२०॥

हुवे नारकी वहां से ऊंचे + उछलकर नाना प्रकार के दुःख तथा मलवाले नरक के एक देश में
पडे और वहां अशुद्ध आहार का भक्षण करते हुवे बहुत कालतक रहे और परमाधामी कृत के वश पडे
हुवे नारकी को वैक्रेय रूप बना कर दुःख देवे ॥ २० ॥ नरक के सम्पूर्ण स्थान सदैव अधर्म मय और महा
दुःख के सागर हैं वहां परमाधामी नारकी को निबड बंधन से बांध करके मस्तक में छिद्र कर उसे तपा
ते हैं और सब शरीर की चमडी को सीसा से उखेरते हैं ॥ २१ ॥ वे परमाधामी तीक्ष्ण छुरी से नासिका,

+ उत्कृष्ट ५०० योजन ऊंचे उछलनेका अधिकार लिखते हैं

सू० सूलसे भ० बाहार लावे हैं ॥ २१ ॥ ते० वे वि० रुधिर झरता ता० तालपत्र जैसे रा० रात्रि दिवस त० वहां प० आक्रंद करते हैं बा० अज्ञानी (नारकी) ग० झरते हैं ते० वे सो० रुधिर पू० रसी म० मांस म० भक्षण हुवा खा० खारसे लिप्त अंगवाले ॥ २२ ॥ ज० यदि ते० तुमसे सु० सुनाया लो० रुधिर रसीका स्थान बा० बडी अग्नि ते० वेअसे भी अधिक प्रज्वलित कु० कुंभी प० पुरुष प्रमाण से अधिक स०

त्ति छिंदंति पुणोवि कण्णे ॥ जिब्भं विणिक्कस्स विहत्थि मित्तं । तिक्खाहिं सूलाइ भितावयंति ॥ २१ ॥ ते तिप्पमाणा तलसंपुडव्व । राइंदियं तत्थ थणंति बाला ॥ गलंति ते सोणिअपूयमंसं । पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥ २२ ॥ जइ ते सुता लोहितपूअपाई । बालागणी ते अगुणाभिपरेण्ण ॥ कुंभी महंताहियपोरसीया । समूसिता लो

ओष्ठ और दोनों कान को छेदते हैं और पण पीसना, मद्यमांसादि खाना यह सब याद कराके वेंत प्रमाण जिव्हा बाहिर निकाल करके तीक्ष्ण सूलि से उसे छेदते हैं ॥ २१ ॥ जैसे सुकाहुवा ताड वृक्ष का पान पवन आने से अवाज करता है वैसे ही कर्ण, ओष्ठादिक प्रमुख छेदाने से लोही झरता हुवा वे नारकी आक्रंद करते हैं और लवणादिक खार लगाकर अग्नि से सेक करने पर भी शरीर में से राध और रुधिर रात्रि दिन झरते रहते हैं ॥ २२ ॥ श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीको कहतेहैं कि अहो जम्बू ! राध रुधिर से परिपूर्ण, पुरुष प्रमाण बडी, तथा कंठ का आकारवाली कुम्भी का वर्णन पहिले सुना होगा वह कुम्भी अधिक

कुंत्र जैसी लो० रुधिर रसी पूर्ण ॥ २४ ॥ प० डालकर ग० उसमें प० पकाते हैं वा ...
रकी) को अ० आर्त स्वर करते को ते० उनको क दीन र० बोलते को त० तृषासे पीड़ित ते० वे त० तब
त० तप्त तांबा का रस प पीते हुवे अ० आर्त स्वर र० बोलते हैं० ॥ २५ ॥ अ० आत्मा से अ० आत्मा
को इ० यहां व० ठगकर म भव अ० अधम पु० पाहिले के स० सवसहस्र चि० रहते हैं त वहां
बहुत कू० क्रूर कर्मी ज० जैसे क० करे हुवे क कर्म त वैसी सि० होती हैं मा० वेदना ॥ २६ ॥

हिय पूय पुण्णा ॥२४॥ पक्खिप्प तासु पययंति बाले । अट्टसरे ते कलुण रसते ॥ त

ण्हाइया ते तउ तंबतत्तं । पज्जिज्जमाणाट्टतर रसंति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्प इह

वंचइत्ता । भवाहमे पुव्वसते सहस्से ॥ चिट्ठंति तत्था बहु कूरकम्मा । जहा कड क

म्मतहासि भारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुस अणज्जा । इट्ठेहिं कंतेहि य विप्पहूणा

प्रज्वलित अग्नि से अनंत गुणी अधिक उष्ण है ॥ २४ ॥ परमाधामी आर्तशब्द तथा करुणा प्रलाप करने
वाले नारकी को कुंभी में डालकर पचाते हैं और जब वे तृषा से पीड़ित होकर पानी मांगते हैं तब उन को
ताम्र का और कथीर का उष्ण रस पीलाते हैं ॥ २५ ॥ जिन मनुष्यों ने इस लोक में अपनी आत्मा की
साथ ठगाइ की अर्थात् अल्प सुख के लिये या माता पितादिक के लिये महा घातिक कर्म संचित किये ऐसे
महाघातकी जीव सातभव से संचित कर्म फल भोगने को बहुत कालतक रहते हैं ॥ २६ ॥ वे पापी पाप

स० पाप कर्मी क० पापको अ० उपार्जन करके इ० इष्ट से (माता पितादि) कं० स्त्री आदिसे य० और वि० रहित से० वे दु० दुरभिगंध क० संपूर्ण अ० स्पर्शनेको अयोग्य क० कर्मसे ऐपाया हुआ कु० मांसादिक वाली भा० रहते हैं चि० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २७ ॥

अ० अब अ० दूसरा सा० शाश्वत दुःख स्वभाव तं० उसको मे० तुमको प० कहता हूं ज० यथात थ्य वा० मूर्ख ज० जैसे दु० दुष्कर्मके करने वाले वे० भोगवते हैं क० कर्मों को पु० पूर्वमें कीये हुवे ॥१॥

ते दुब्भिगंधे कसिणे य फासे । कम्मोवगा कुणिमे आवसंति त्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्ति अज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो

अहावरं सासयदुक्खधम्मं । तं मे पवक्खामि अहातहेणं ॥ बाला जहा दुक्कडकम्मकारी । वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥१॥ हत्थेहि पाएहिय बंधिऊण । उदरं विकत्त

कर्म उपार्जन करके इष्ट वस्त्रादि विषय से रहित अधम स्पर्शवाली नरक भूमि में दुर्गंध से भराहुवा पुद्गल भक्षण करते और पूर्वोक्त दुःख सहन करे. ऐसा तीर्थंकर की आज्ञानुसार कहता हूं. यह नरक विभक्ति नामक पंचम अध्ययन का प्रथम उद्देशा पूर्ण हुआ आगे भी नरक का भाव बताते हैं अब यहां सम भावकी जीवे वहां सम दुःख भोगवे ऐसा नरक का शाश्वता दुःख जैसा मैंने कहा वीर प्रभु से सुना है वैसा ही कहूंगा और दुष्कृत करनेवाला अज्ञानी पूर्वभव में किया हुआ कर्म का फल जैसे भोगवते हैं वैसे ही कहूंगा ॥ १ ॥ वहां परमाधामी देव अज्ञानी को हाथ पांव से बांधकर तीक्ष्ण छुरी से

१ हस्त दे पा० पाँव से य च थे बांधकर उ० उदर को वि० काटते हैं खु० छुरी और खड्ग से गि०प० कर कर बा० अज्ञानी का नि० भरता शरीर को व० चर्म का थि० थइत पि० पृष्ठ में उ० लपेटता है ॥२॥ बा० हस्त प० कापते हैं स मूल से से० उनका थू० बडा वि विकाश मु० मुख में आ० डालते हैं र रथ में जु० जोतकर स० याद कराते हैं बा० अज्ञानी को आ० रोश करके वि० विंधते हैं तु० आरसे पि० पृष्ठ में ॥३॥ अ० लोहाका गोला जैसा त० तपा हुआ अ०आगसमान स० आग सहित स० उसकी उपमा

ति खुरासिएहिं ॥ गिण्हंतु बालस्स विहत्तुदेह । वर्द्ध थिर पिट्ठतो उद्धरंति ॥ २ ॥ बाहू पकप्पति समूलतो से । थूलं वियास मुहे आडहंति ॥ रहंसि जुत्त सरयंति बाल । आरुस्स विज्झति तुदेण पिट्ठ ॥ ३ ॥ अय व तत्तं जलियं सजोइ । तओवमं भूमि

उन के उदर का टुकड़ा करे तथा उस को पकड़कर काष्टादिक से मारकर इस तरह खण्ड खण्ड कर देवे कि जैसे पीछे का चमड़ा आगे आजावे या आगे का चमड़ा पीछे जावे ॥ २ ॥ वे परमाधामी नारकीके हाथ को मूल से काटते हैं, उन का मुख खोल कर बड़ा लोह का गोला तपाकर डालते हैं, उन के पूर्व कृत कर्मों को याद कराके क्रोध के रथ में जोतते हैं और अत्यंत क्रुद्ध बनकर नारकी को पृष्ठ भाग में आर से विंधते हैं ॥ ३ ॥ तपाहुआ लोहा सरीसी भूमि में चलते २ जलने से वे करुणोत्पादक शब्द करतेहैं,

कर्मी ॥ ६ ॥ कं० कंदू में प० डालकर प० पकाते हैं बा० अज्ञानी त० तब वि० जलते हुवे पु० फीर उ० उछलते हैं ते० वे ड० द्रोणकाकादि से प० खाये हुवे अ० दूसरी दिशा से ख० खाते हैं स० सिंहव्याघ्रादि ॥ ७ ॥ स० चिताना आकार का वि० अग्नि का स्थान ज० जो सो० शोकसे तपाहुवा क० दीनता से अ० आक्रंद करते हैं अ० नीचे मस्तक क० करके वि० छेदके अ० लोहे के शस्त्र से स० टुकडे करते हैं

ति निपातिणीहिं ॥ सताषणी नाम चिरद्वितीया । सतप्पति जत्थ असाहुकम्मा ॥६॥
कंदूसु पक्खिप्प पयति बाला । ततोविदड्ढा पुण उप्पयति ॥ ते ढंकुकाएहिं पखज्जमा
णा । अवरेहिं खजंति सणप्फएहिं ॥ ७ ॥ समूसियं नाम विधूमट्ठाणं । ज सोयत
कुंभीमें चले जाते तो वहां वे खराब कर्म करनेवाले नारकी बहुत दुःख पाते हैं ॥ ६ ॥ वे पास परमाधामी नारकी को कंदू नामक पात्र में डालकर पचाते हैं उस समय वे चने की मुवाफिक ऊंचे उछलते हैं और वहां आकाश में ढंक कंक प्रमुख पक्षी उसे खोद खाते हैं और जो वहां से अन्य दिशा में जावे तो वहां व्याघ्रादि प्राणी उसे खा जाते हैं ॥ ७ ॥ नरक में ऊंचे चिता के आकारका एक अग्नि का स्थान है उस में जाकर शोक से तप्त होते हुवे करुणाजनक शब्दों से आक्रंद करते हैं और परमाधामी नारकी का मस्तक नीचा करके और शरीर का वैक्रेय रूप बनाकर मुद्गलादि शस्त्रों से लोहे की समान छोटे छोटे टुकडे करते

भू० जमीन में ध० जाते वे० वे ह० भक्ते हुवे ६० दीनतासे प० रुदन करतेहैं व० पापसे चो० प्रेराया हुवा व० वधा हुवा सु० मुसिर में जु० जुतापा हुवा ॥ ४ ॥ बा० अज्ञानी ग० बल रहित भू० जमीन म० जाते प० प्रबलीव लो० लोहपथ त० तपा हुवा ज० जिस म० विषम स्थान में प० पकते पे० मोकर जैसे दं० दंडसे पु० आगे क० करते हैं ॥ ५ ॥ ते० वे स० असह्य प० जाते सि० पत्थर से ह० मारते हैं नि० नीचे गिराते सं० संतापनी ना० नाम की चि० चिरकाल तक मं० दु खी होते हैं ज० जहां म० असाधु

मणुकमंता ॥ ते दज्झमाणा कलुणं थणंति । उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥
बाला बला भूमि मणुक्कमंता । पविज्जल लोहपहं च तत्तं ॥ जंसि भिदुग्गोसि पवज्ज
माणा । पेसेव दंडेहिं पुरा करंति ॥ ५ ॥ ते संपगाढंसि पवज्जमाणा । सिलाहि हम्म-

जैसे ही भार से प्रेरापे हुवे लोहे का रथ में जोतने से गलीया बैल की समान अराडा करतेहैं ॥ ४ ॥ वे नि विधी परमाधामी कृष्ण लोह समान रुधिर और पर का कीचरूपमी भूमि में नारकियों को चलातेहैं, उस में कुंभी पाक शाल्मली वृक्ष आदि विषम स्थान आजाने से पावि पे न चल सके तो उन्हे जोकर या गलीया बैल की मुवाफिक दण्डादिक से ताडना करके आगे चलातेहैं ॥ ५ ॥ दुःख से भरपूर मार्ग में आगे चलातेहुवे उन को घोर शिला से मारकर नीचे गिराते हैं पावि व संतापनी नामक

यही अ० जिसमें म जलती अ अग्नि म काष्ठ बिना चि रहते हैं प बंधाये हुये प० बहुत कू क्रूर कर्मी अ० अरडाट करन वाले के० कोई चिं लंबी स्थितिवाले ॥ ११ ॥ चि० चिता म० बडी स० तैयार कर छि० डालते हैं ते० वे तं० उन क० करुणा जनक र० विलाप करते को आ० विलयहोवे त० वहां स० असाधुकर्मी स घृत ज जैसे प० पडा हुवा जो० अग्नि में ॥ १२ ॥ स० सदैव क० पूर्ण पु० और

सयाजल नाम निह महंतं । जसि जलन्तो अगणी अकट्ठो ॥ चिट्ठुति बद्धा बहुकूर कम्मा । अरहस्सरा केइ चिरट्ठितीया ॥ ११ ॥ चिया महंतीउ समारभित्ता । छिब्भं ति ते तं कलुणं रसंत ॥ आवट्टति तत्थ असाहुकम्मा । सप्पी जहा पडियं जोइम ज्झे ॥ १२ ॥ सदा कसिण पुण घम्मठाणं । गाढोवणीयं अइदुक्खधम्मं ॥ हत्थे

पावे वैसे ही नरक के बीच शूली से विंधाये हुए दीन स्वर से अरडाट करते हुवे दुःखी होते हैं आभ्यन्तर और बाह्य दुःख से ग्लान होते हुवे एकान्त दुःख भोगते हैं ॥ १० ॥ वहां नारकी में सर्वत्र जलताहुवा प्राणी को वध करने का एक स्थान है उस में काष्ट नहीं होने पर भी अग्नि जलती रहती है वहां पर बहुत क्रूर कर्म करने से बंधाये हुवे, रौद्र आक्रंद स्वर करनेवाले तथा बहुत कालकी स्थितिवाले जीव रहते हैं ॥ ११ ॥ परमाधामी देवता एक बडी चिता करके करुणा जनक आक्रंद करनेवाले नारकी को उन चिता में डालते हैं और जैसे अग्नि में डालाहुवा घृत विलय होजाता है वैसे ही व असाधु कर्म करनेवाले विलय होते हैं भरूपवाला घृत तो सर्वथा विलय होजाता है परंतु नारकी मरण शरण नहीं होते हैं ॥ १२ ॥ नरक के

॥ ८ ॥ स ऊच स्थान ह० हरी वि० कटे हुवे शरीर वाले प० दलियों मे ख० खाया जाता है अ० स्नेह समान भाव वाले सं० संजीवनी ना० नायक नि० बहुत स्थिति वाली जं० जिसमें प० प्राणी ह० मारे जाते हैं पा पापी ॥ ९ ॥ ति० तीक्ष्ण सू० शूलों से अ० दुःख देते हैं व बश में आया हुवा सो० शूकर को ल० भाल करके ल० वे सू० शूलसे वि० विधाय दुःख क करुणा जनक थ० आक्रन्द करते हैं ए० एकान्त दु० दुःख दु० नामकार क मि० ग्लानी ॥ १० ॥ स० सदैव ज० जलती हुइ नि० घात स्थान म०

या कलुण थणति ॥ अहोसिर कट्टु विगतिऊण । अयवसत्थेहिं समोसयंति ॥ ८ ॥
समूसिया तत्थ विसूणियगा । पक्खीहिं खज्जंति अहो मुहहिं ॥ संजीवणी नाम चिरट्ठि
तीया । जंसि पया हम्मइ पावचेया ॥ ९ ॥ तिक्खाहिं सूलाहिं भितावयंति । वसोग
य सोयरयं व लद्धुं ॥ ते सूलविद्धा कलुणं थणंति । एगंत दुक्ख दुहओ गिलाणा॥ १० ॥

है ॥ ८ ॥ जैसे कसाइ मृतक बकरे का शरीर को ऊच स्थंभ पर बांधकर उस का चर्म नीकाल लेता है वैसे ही परमाधामी नारकी को ऊंच स्थंभ पर बांधकर उन के सर्व शरीर का चमडा नीकाल लेते हैं और उस चर्म रहित शरीर को तीक्ष्ण चंच वैसी चांचवाले पक्षी खाते हैं इतना होने पर भी वे नरक के जीव मरते नहीं हैं क्यों कि नरक संजीवनी नामक कुम्भी है, उस में रहे हुवे प्राणी को परमाधामी छेदे भेदे परंतु मरे नहीं और पारा की मुवाफिक उन का शरीर फिर मिल जावे ॥ ९ ॥ वे परमाधामी नारकी के शरीर को तीक्ष्ण शूलादिक से छेदन देते हैं, जैसे शूकर को पाश में [illegible]

त० सब आ० रुष्टा वि० भेदे क० मर्मस्थान में ॥ १५ ॥ बा० अज्ञको ब बलात्कारसे मू० भूमिमें अ० घसते प० विषम क० कंटक वाली म विशाल वि बंधाये हुवे त० श्रापसे वि० मूर्च्छित स० प्रेरित को को कुन्फर ब० बलिस्थान क करते हैं ॥ १६ ॥ वे वैक्रेय म० महा दुःख में ए० एक आ० लम्बा प० पर्वत अं० अंतरिक्ष में ह० मारे जाते हैं त० तहां ब० बहुत कू० क्रूर कर्मी प० बहुत स० हजार मु० मुहूर्त तक ॥ १७ ॥ सं० पीडित दु० दुष्कर्म करने वाले ध० आक्रंद करते हैं अ अहो रात्रि प० दुःखी होते

बालाघला भूमि मणुक्कमता । पविज्जल कंटइल महंत ॥ विबद्ध तप्पेहिं विवण्णचित्ते । समीरिया कोट्ट बलिं करिंति ॥ १६ ॥ वेतालिए नाम महाभितावे । एगायते पव्वय मतालिक्खे ॥ हम्मति तत्था बहुकुरकम्मा । पर सहस्साण मुहुत्तगाणं ॥ १७ ॥ स

आकर उन के मर्म स्थान छेदते हैं ॥ १५ ॥ नारकी को कण्टकवाली महा विशाल विषम भूमि में चलाते हैं और अनेक प्रकारके श्राप से बांधकरके और अनेक प्रकारके पापमें मूर्च्छित नारकियों को कुटकरके बालिकी तरह उन के टुकडे उडाते हैं ॥ १६ ॥ परमाधामी उन नेरीयों को दुःख देने के लिये महा विशाल और आकाशतक पहूंच ऐसा ऊंचा पर्वत वैक्रेय से बनाते हैं उस पर्वत पर से पडते हुवे नारकी कुच्छ भी नहीं देख सकते हैं, मात्र हस्त स्पर्श होता है, तथा पडते हुवे परमाधामी बहुत दुःख देते हैं इस तरह का दुःख बहुत कालपर्यंत नरक के जीव भोगते हैं ॥ १७ ॥ अत्यंत दुःखी होनेवाले, तथा अहोरात्रि

न० गर्मी का स्थान मा० मनमुत कर्मों से उ०लाय गय अ० अति दुःख क स्वभाव वाले ह० हाथ मे पां० पांवसे ब० बांध करके स शत्रु जैसे द० दण्डसे स० मारते हैं ॥ १३ ॥ भ० तोडते हैं बा० अज्ञानी का ब० प्रहार से पु० पृष्ठको सी० मस्तक भी भिं० तोडते हैं अ० लोहके घन से ते वे भि० भग्न शरीरी फ पटिये की तरह त० वहां त तप्त आ आरों से पि० प्रवर्तते हैं ॥ १४ ॥ अ० प्रवर्ता करके रु० रौद्र अ० असाधु कर्मी उ शाप से चो० प्रेरया हुवा ह० हस्ती को व० चलाते हैं ए० एक दु० बैठकर दु० दो

हिं पाएहि य बंधिऊण । सत्तुव दण्डेहिं समारभंति ॥१३॥ भंजति बालस्स वहेण पुट्ठी । सीसंपि भिंदाति अओघणेहिं ॥ ते भिन्नदहा फलग व तत्था । तत्ताहिं आराहिं णियाजयंति ॥ १४ ॥ अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा । उसु चोइया हत्थिवहं वहंति ॥ एग दुरूहित्तु दुवे ततो वा । आरुस्स विज्झाति ककाणओसो ॥ १५ ॥

सपूर्ण स्थान सदैव अधर्ममय महा दुःख के सागर हैं यहां परमाधामी उन के हाथ और पाँव बांधकर के शत्रु की तरह दंड से ताडना करते हैं ॥ १३ ॥ वे परमाधामी नारकी की पीठ को तथा उन के मस्तक को लोहे का घन से या लकडी आदि के प्रहार से तोडते हैं और उन भग्न शरीरी, पटिये की मुआफिक दोनों बाजुओं से छेदाये हुवे नारकी को तपीहुए आरों से प्रेरणा करते हुवे उष्ण कथिरादिक का मार्ग में प्रवर्ताते हैं ॥ १४ ॥ जैसे मावत बाणादिक से हाथी को चलाता है वैसे ही रौद्र असाधु कर्म के करनेवाले परमाधामी नारकियों को चलाते हैं और उन के पर एक, दो, तीन ऐसे मारूढ हो करके क्रोध के वश में

स स्या अस्स ना० नामकी न० नदी भ विपम प० रुधिरादि कीचड वाली सो कोरा वि० प्रदीप्त स व० वस जं० जिस में अ० विपम प० प्रवेश करते ए० अकेला अ० शरण रहित भ० गमन क० करता है ॥२१॥ए० ये फा०स्पर्श फु०स्पर्शते हैं बा०अज्ञानी को नि निरंतर त तहां चि लम्बी स्थिति वाला ण नहीं ह हणाता हुवा हो० होवे था प्राण ए० अकेला ही स स्वयं प अनुभवता है दु दुःखको २२॥ जं० जो जा० जैसा पू पूर्वे अ० किया क० कर्म त० वही आ० आता है स परंपरा से ए० एकांत

म्मा अवूरए सकालियाहि वद्धा ॥ २० ॥ सयाजला नाम नदी भिदुग्गा । पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥ जंसि भिदुग्गसि पवज्जमाणा । एगाय ताणुक्कमण करंति ॥२१॥ एयाइ फासाइ फुसंति बाल । निरंतर तत्थ चिरट्ठितीयं॥ ण हम्ममाणस्सउ होइताण । एगो सयं पच्चणुहोइ दुक्खं ॥ २२ ॥ जं जारिस पुव्व मकासि कम्म । तमेव

है उस में पीगलाहुवा लोह सरिखा ऊष्ण जल है, कि जो पीने से बहुत खारा तथा ऊष्ण लगता है ऐसी विपम नदी में भेराये हुवे अकेले ही शरण रहित चलते हुवे दुःख भोगते हैं ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त दुःख रूप स्पर्श नारकियोंको सहन करने पडते हैं और बहुत स्थितिवाले, और हणातेहुवे नारकियों को वहां कोई शरण नहीं है परंतु अकेले ही दुःख भोगते हैं ॥ २२ ॥ पूर्व भव में जो कर्म जैसा किया वह कर्म वैसा ही परंपरा से आता है परंतु नरक में तो एकान्त दुःख रूप भवकी उपार्जना करके वे नरक के जीव अनंत

ए० एकान्त कू० दुःखोत्पत्ति का स्थान वाली न० नरक में म० सियाल कू० कूटसे (पास से) स० सदा वि० विषम ह० हणाते हुवे ॥ १८ ॥ मं० तोडते हैं पु० पूर्व के अ० वैरी स० रोष सहित स मुद्गल ते० वे म० मुसल म० ग्रहण करके वे० वे भि० भग्नशरीरी रु रुधिर व० वमते उ अधोमुख वाले ध० पृथ्वी तल में प पडते हैं ॥ १९ ॥ अ० क्षुधित म० बडे सि शृगाल पा० धृष्ट त वहां स० सदैव म० क्रोध युक्त ख० खाते हैं त० वहां ब० बहुत कू० क्रूर कर्मी अ नजीक सं० सांकल से ब० बधाये हुवे ॥ २० ॥

घाहिया दुक्कडिणो थणंति । अहोयराओ परितप्पमाणा ॥ एगंत कूडे नरए महंते कूडेण तत्था विसमे हताओ ॥ १८ ॥ भंजंति णं पुव्वमरी सरोसं । समुग्गरे ते मुसले गहेतुं ॥ ते भिन्नदेहा रुहिरं वमंता । उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १९ ॥ अणासिया नाम महासियाला । पागब्भिणो तत्थ सया सकोवा ॥ खज्जंति तत्था बहु कूर क-

परिवश ऐसे नरक के दुष्कर्म करनेवाले जीव एकान्त दुःखोत्पत्तिवाले विशाल स्थान में पाशादिक से हणाते हुवे आक्रंद करते हैं ॥ १८ ॥ पूर्व जन्मके वैरी सरीखे वे परमाधामी रोष सहित मुद्गल और मुसल लेकर नारकियोंको तोड डालते हैं, और वे भग्न शरीरी रुधिरको वमते हुवे अधोमुख करके पृथ्वीमें पडते हैं ॥१९॥ वहां पर नजीक सांकलों से बंधे हुवे क्षुधित सियाल रहते हैं वे नीचे पडे हुवे क्रूर कर्म करनेवाले नारकियों को कोपित होकर खाजाते हैं ॥ २० ॥ वहां पर खराकार पानी से भरपूर ऐसी विषम नदी रूप स्थानक

पाक स० पद स० सर्व प० इत इ ऐसा वे आमकार के पास्के का० कास पु० पुव मार्ग भा० भाचरे
षि० ऐसा ते० करता हूं ॥ २५ ॥ ५ ॥ ✽ ✽

त्तिबेमि ॥ २५ ॥ इति निरयविभत्ति अज्झयणस्स बीओद्देसो सम्मत्तो । इति निरयविभत्ति णामं पञ्चममज्झयण सम्मत्तं ॥ ५ ॥ ✽ ✽

स्वामी के कथनानुसार कहता हूं यह नरक विभक्ति नामक पंचम अध्ययन समाप्त हुआ इस में नरक के दुःख को उन दुःखों का श्री महावीर ने उपदेश दिया इस लिये श्री महावीर परमात्मा के गुणोत्कीर्तन रूपषष्ठम अध्ययन कहते हैं ॥ ५ ॥ ✽ ✽

दुःख वास्ते भ० मम भ० उपार्ज कर वे० वेदते हैं दु० दुःखी त० यह अ० अनंत दुःख ॥ २१ ॥ ए० इनको सो० सुन कर न० नरकको धी० धीरको न० नहीं हिं० हिंसा करना किं० किसी स सर्व लोकमें ए० एकांत दृष्टि अ परिग्रह रहित बु० जान कर के लो० लोक के व० वश में न० नहीं ग० जावे ॥ २४ ॥ ए० ऐसे ति० तिर्यंच में म मनुष्य में सु० देवलोक में च० चतुर्गतिक में अ० अनंत त० उसका अ० अनुरूप वि

आगच्छाति सपराए ॥ एगंतदुक्खं भवमज्झणिच्चा । वेदति दुक्खी तमणंतदुक्खं ॥२३॥ एताणि सोच्चा णरगाणि धीरे । न हिंसए किंचण सव्वलोए ॥ एगंतदिट्ठी अपरिग्गहेउ । बुज्झिज्ज लोयस्स वसं न गच्छे ॥ २४ ॥ एवं तिरिक्खे मणुया सुरसुं । चतुरंतणंत तयणुव्विवागं ॥ ससव्वमेयं इति वेयइत्ता । कंखेज्ज कालं धुवमायरेज्ज

दुःख वेदते हैं ॥ २३ ॥ नरक के ऐसे तीव्र दुःख मानकर के धीर पुरुष सर्व लोक में रहे हुवे प्राणी को हने नहीं वैसे ही एकान्त सम्यक्त्व धारक परिग्रहादि रहित जीव कषायादि लोक को जानकर उस के वश में पडे नहीं ॥ २४ ॥ वैसे ही मनुष्य, देव और तिर्यंच मिलने से चतुर्गतिक संसार कहाजाता है उस में तदनुरूप सर्व कर्म विपाक को मानकर पण्डित पुरुष जैसे भगवन्तने काल कहाहुवा है वैसे ही उस की वांछना करे और अवस्था मरण होवे वहांतक चारित्र को आचरे. ऐसा मैं भी ....न् महावीर

कु० निपुण (सु० सुमती) म० महर्षि अ० अनंतज्ञानी अ० अनंतदर्शी ज० यशस्वी को च० चक्षुः पथ-
प में रहे हुवे जा० जानो ध० धर्म धि धृति पे० देखो ॥ ३ ॥ उ० ऊर्ध्व अ० नीची ति० तिर्यक् दि०
दिशा में त० त्रस प० प जे० जो था स्थावर जे० जो पा० प्राणी से० उनको नि० नित्य अ० अनित्य
से स० ज्ञान करके प० महाप्राज्ञ दी दीप (द्वीप) जैसे ध० धर्म स० समता से व० कहा ॥ ४ ॥ से०
वे० स० सर्वदर्शी अ० वीर्य ज्ञा० ज्ञानी वि० विशुद्ध संयमी धि० धृतिमान् ठि० स्थितात्मा स०

समिस्सणो चक्खुपहट्ठियस्स । जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं

तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेह पाणा ॥ सेणिच्चणिच्चेहि सामिक्ख पन्ने । दी

वेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥ से सव्वदंसी अभूयणाणी । णिरामगंधे धिइम

उसके जानने वाले, महर्षि कुशल, अनंत ज्ञानी और अनंत दर्शी ये ऐसे यशस्वी केवल ज्ञानीके धर्मको
तुम जानो वैसे ही उनकी धृतिको देखो ॥ ३ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशामें त्रस और स्थावर
प्राणी रहे हुवे हैं उनको सम्यक् जाननेवाले श्रीमहावीर देवने नित्य, अनित्य, द्रव्य पर्यायादि भेदोंसे दीपक
द्विप समान समता धर्म कहा ॥ ४ ॥ वे वीर प्रभु सर्व लोक के देखनेवाले, बावीस परीषह के सन्मुख हो उनको
जीतकर केवल ज्ञानीने, मूल और उत्तर गुणको विशुद्ध पालनेवाले, धैर्यवन्त, स्थिरात्मा प्रमाद-रहित ——

वीरस्तवाख्य षष्ठमध्ययनम् ।

पुच्छिंसु णं समणा माहणाय । अगारिणोय परतित्थिआ य ॥ से केइ णेगंत हियं धम्म माहु । अणेलिसं साहु समिक्खयाए ॥१॥ कहं च णाणं कह दंसणं से । सील कहं नायसुतस्स आसी ॥ जाणासि णं भिक्खु जहातहेणं । अहासुतं बूहि जहाणिसंतं ॥ २ ॥ सेयन्ने से कुसले (सुपन्ने) महेसी । अणंतनाणी य अणंतदंसी ॥ ज

पु० पूछते हैं स० साधु मा० ब्राह्मण अ० गृहस्थ प० परतीर्थिक से० वे के० कोई ए० एकांत हि० हितकर्ता ध० धर्म आ० कहा अ० उत्तम सा० अच्छा स० सम्यक् प्रकारसे अ० कहा ॥ १ ॥ क० कैसा णा० ज्ञान क० कैसा द० दर्शन से० उनको सी० शील क० कैसा ना० ज्ञात पुत्र का आ० था जा० जानते हो भि० साधु ज० यथातथ्य अ० जैसा सुना बू० कहो ज० जैसा अ० अवधारा ॥ २ ॥ से० खेदज्ञ से० वह

पूर्वोक्त नरकके दुःखों को सुन करके संसारके भयसे भयभीत बने हुवे श्रमण, ब्राह्मण, गृहस्थ और परतीर्थिक सुधर्मा स्वामीको पूछते हैं कि यह एकान्तहितका करने वाला प्रधान धर्म साधु समीक्षासे किसने कहा है?॥१॥ श्री वीर प्रभुका ज्ञान, दर्शन और यमनियम रूप शील कैसा था? हे स्वामिन् जो जो मैंने पूछा है उसे आप यथातथ्य जानते हो इसलिये जैसा आपने सुना तथा अवधारा होवे वैसा कहो ॥ उनका पूछने पर सुधर्मा स्वामी वीरके गुण कहते हैं ॥२॥ श्रीमहावीर प्रभु संसारी जीवोंको कर्मोंसे उत्पन्न हुआ जो खेद

॥७॥ से वह प० मज्ञाले अ० अक्षय सा० समुद्र जैसे म० महोदधि जैसे अ० अनन्त अपार ज्ञान वाले अ० अकषाइ मु० मुक्त (भि० साधु) स० शक्र दे देवों का अ० अधिपति जु ज्योतिमन्त ॥ ८ ॥ से० वह वी० वीर्य से पु० प्रति पूर्ण वीर्य वाले सु० मेरु जैसे प० पर्वत स सर्व में से० श्रेष्ठ सु० देवता मु० आनन्द करने वाले वि० शोभते अ० अनेक गुणो सहित ॥०॥ स० सो स० सहस्र जो० योजन में ति०तिन काण्ड

सव आसुपन्ने ॥ इवेव देवाण महाणुभावे । सहस्सणेता दिविण विसिट्ठे ॥ ७ ॥ से पण्णया अक्खय सागरेवा । महोयहीवावि अणंतपारे ॥ अणाइलेया अकसाइ मुक्के (भिक्खु) सक्के व देवाहिवई जुइम ॥ ८ ॥ से वीरिएण पडिपुन्नवीरिए । सु दंसणे वा णगसव्व सेट्ठे ॥ सुरालएवासि मुदागरे से । विरायए णेग गुणोववेए ॥९॥

श्री महावीर प्रभु सहस्र मनुष्यो में इन्द्र समान महानुभाववाले थे ॥ ७ ॥ श्री वीर प्रभु का ज्ञान विस्तीर्ण प्रज्ञावाला स्वयंभू रमण समुद्र की मुवाफिक अक्षय महावाला था वैसे ही भगवान् कालुष्यता रहित थे (अकसाइ होने पर भिक्षा से आजीविका करनेवाले थे) जैसे देवता का स्वामी शक्रेन्द्र दीप्तिमान है वैसे ही श्री वीर प्रभु थे ॥ ८ ॥ जैसे सुदर्शन (मेरु) पर्वत सर्व पर्वतों में श्रेष्ठ है, और देवलोक के निवासी को यह पर्वत आनंद करनेवाला है और ऐसे अन्य भी अनेक गुणों से सहित है वैसे ही श्री वीर प्रभु वीर्यांत राय कर्म क्षय से प्रतिपूर्ण वीर्यवान् थे अर्थात तपश्चरणादिक में बलवान थे ॥ ९ ॥ मेरु पर्वत सब मिलाकर

प्रधान स सर्व स० जगत् में वि० विद्वान् गं० ग्रंथ रहित अ० भय रहित अ० आयुः रहित ॥ ५ ॥ स०
वह भू० भूति प्रज्ञ (अनन्त ज्ञानी) अ० अप्रतिबद्ध वि० विहारी ओ० आपको तीरने वाले धी० धीर अ० अ
नंत च० चक्षु अ० प्रधान त० तपता है सू० सूर्य व अग्नि वे० देवता जैसे त० अंधकार का प० प्रकाश करता है
॥ ६ ॥ अ० प्रधान ध० धर्म इ० यह जि० जिनदेव का णे० भणित मु० मुनि का० काश्यप गोत्रीसे आ०
केवली इं० इन्द्र दे० देवता का म० महानुभाव स० सहस्र का णे० नायक दि० स्वर्ग में वि० विशिष्ट

ठितप्पा ॥ अणुत्तरे सव्व जगंसि विज्जं । गंथाअतीते अभए अणाऊ ॥ ५ ॥ से
भूइपण्णे अणिए अचारी । ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ॥ अणुत्तरे तप्पति सूरिएवा
। वइरोयणिंदेव तमं पगासे ॥ ६ ॥ अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं । णेया मुणी का

निश्चय ज्ञाता, बाह्याभ्यंतर ग्रंथ रहित, सात प्रकार के भय से रहित तथा आयुःकर्म करके रहित थे
॥ ५ ॥ वीर प्रभु भूतिप्रज्ञ अर्थात् अनन्त ज्ञानी, तथा अप्रतिबन्ध विहारी थे संसार तीरनेवाले, धीर ज्ञान
रूप चक्षु के धारक थे. जैसे सूर्य सब से अधिक तपता है वैसे ही प्रधान ज्ञान करके तपम थे जैसे
अग्नि अंधकार को नाश करके अधिक प्रकाश करती है वैसे ही श्री महावीर, यथावस्थित पदार्थ के प्रका
शक थे ॥ ६ ॥ श्री काश्यप गोत्रिय केवल ज्ञानी महावीर श्री ऋषभ देव स्वामी से प्ररूपाया हुवा प्रधान
धर्म के नेता थे. जैसे इन्द्र सहस्रों देवता का नायक तथा महा प्रभावान देवताओं में प्रधान है वैसे ही

भोगते हैं प० महेन्द्र ॥ ११ ॥ से० यह प० पर्वत स० शब्द म० महा प्रकाशक वि० विराजता है कं० सुवर्ण ब० देदीप्यान अ० प्रधान गि० पर्वतों में प० मेखलासे दु० विषम गि० पर्वत प० प्रधान से० यह भ० देदीप्यमान भो० पृथ्वीपर ॥१२॥ म० पृथ्वी म० मध्यमें ठि० रहा हुवा ण० मेरुपर्वत प० प्रकाश सु० सूर्य सु० शुद्ध लेश्यी ए० ऐसे सि० लक्ष्मीसहित भू० अनेकवर्ण म० मनोरम म० भावन अ० सूर ॥१३॥ सु० सुदर्शन ए० वैसे ज०

॥ ११ ॥ से पव्वए सद्दमहप्पगासे । विरायती कंचण मट्ठवन्ने ॥ अणुत्तरे गिरिसु य

पव्वदुग्गे । गिरिवरे से जलिएव भोमे ॥ १२ ॥ महीइमज्झंमि ठिते णगिंदे । पन्ना

य ते सुरिय सुद्धलेसे ॥ एवं सिरीए उस भूरिवन्ने । मणोरमे जोतइ अच्चिमाली॥१३॥

और रतिसुख भोगते हैं ॥ ११ ॥ और भी वह पर्वत मेन्दर, मेरु, सुदर्शन सुरगिरि इत्यादि नामों से प्रसिद्ध होता हुवा शोभता है तथा सुवर्ण की समान देदीप्यमान शुभ्रमान है उस में प्रधान मेखला रही हुई है जिस से सामान्य जीव को चढने में बड़ा विषम है और अच्छी मणि और औषधियों से देदीप्यमान भूमि तरिसा है ॥ १२ ॥ वह नगेन्द्र [मेरु पर्वत] पृथ्वी के मध्य भाग में रहाहुवा है, और सूर्य समान कान्ति वाला है वैसे ही लक्ष्मी से सुमेरु पर्वत अनेक वर्णवाला और मन को आनंद देनेवाला है तथा जैसे सूर्य सर्व दिशा में प्रकाश करता है वैसे ही वह पर्वत दशोंदिशाको प्रकाशमान करता है ॥ १३ ॥ सुदर्शन

पं० पश्चम रा पे० धमा मैसा है मे० वह सो० योजन ण० निन्याणु स० सहस्र ऊ० ऊंचा ह० नाच स० सहस्र ए० एक ॥ ११ ॥ पु० स्पर्श कर ण० आकाश का चि० रहा है भू० भूमिपर ज० जिसको सू० सूर्यादि अ० प्रदक्षिणा देते हैं से० वह हे० सुवर्ण वर्ण ब० बहुत नं० नंदनवनादि ज० जिसमें र० आनंद वे०

सर्य सहस्साणउ जायणाणं । तिकंडगो पउग वेजयंते ॥ से जोयणेणवणत्तति सह स्से । उद्धस्सिता हेट्ठ सहस्स मग ॥ १० ॥ पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्ठिए । जं सूरिया अणुपरिवट्यति ॥ से हेमवन्ने बहुनंदणय । जसि रतिं वदयाति महिंदा

एक मस्स पायन का है उस के तीन काण्ड हैं एक भूमिमय, दूसरा सुवर्णमय और तीसरा वैडूर्य मणिमय है उस में पण्डग वन ध्वजा समान शोभता है यह मेरु पर्वत नन्याणु सहस्र योजन का ऊंचा है और नीचे एक सहस्र योजन का है ॥ १० ॥ मेरु पर्वत पृथ्वी से लगाकर आकाश को स्पर्शकर रहा हुवा है उस के चारों ओर १,१२१ योजन के अंतर पर सूर्य प्रमुख ज्योतिषी देव परिभ्रमण कर रहे हैं वह मेरु पर्वत सुवर्णमय है और उस में चार वन रहे हैं यथात् भूमि तल में भद्रशाल वन है उस से पांच सो योजन ऊपर नंदन वन है वहां से साढे बांसठ हजार योजन ऊपर सोमनस वन है और उस से छत्तीस हजार योजन ऊपर शिखर पर पण्डग वन है वहां पर देवेन्द्र क्रीडा करने को आते हैं

हस्ति में ए० ऐरावण णा० कहा णा० प्रसिद्ध सी सिं० नि० मृगोंमें स० नदियों में ग० ... वे० गरुड वे० वेणुदेव नि० निर्वाण वादियों में णा० ज्ञात पुत्र ॥२१॥ जो योद्धाओं णा० श्रेष्ठ प० जैसे वी० वासुदेव पु० पुष्प में म० जैसे अ० कमल आ० कहा स० क्षत्रियों में से० श्रेष्ठ दं० चक्रवर्ती इ० ऋषियों में से० श्रेष्ठ त० वैसे व० वर्द्धमान ॥२२॥ दा० दान में से० श्रेष्ठ अ० अभयप्रधान स० सत्य में अ० निरवद्य व० वचन त० तप में उ० श्रेष्ठ वं० ब्रह्मचर्य ला० लोक में उत्तम स० साधु ना० ज्ञात पुत्र ॥२३॥ ठि० स्थितिमें से० श्रेष्ठ ल० लवसत्तमदेवता स० सभा सु० सौधर्मी स० सभामेंसे० श्रेष्ठ नि० निर्वाण से० श्रेष्ठ म० जैसे

स्सिलाण गंगा ॥ पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे । निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे । पुप्फेसु वा जह अरविंद माहु ॥ खत्तीण सेट्ठे जह दंत-
वक्के । इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥ दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं । सच्चेसु वा
अणवज्जं वयंति ॥ तवेसु वा उत्तम बंभचेरं । लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥

है वैसे ही मोक्ष मार्ग के स्थापन करनेवाले में महावीर प्रभु श्रेष्ठथे ॥२१॥ जैसे योद्धाओं में वासुदेव प्रसिद्ध है, पुष्प में अरविन्द और क्षत्रिय में चक्रवर्ती श्रेष्ठ हैं; वैसे ही ऋषियों में वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ थे ॥ २२ ॥ जैसे दान में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्यवचन में निरवद्य वचन और तप में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है वैसे ही लोकमें उत्तम वैसे श्री श्रमण ज्ञात पुत्र श्रेष्ठ थे ॥ २३ ॥ जैसे स्थिति में पांच अनुत्तर विमान वासी देव की

ना ज्ञान से सी० शील से मु० दीर्घमाही ॥१८॥ म० मेघगर्जना स० शब्दमें प० प्रधान चं० चंद्रमा जैसे ता० तारामें प० महानुभाव गं० गंधमें च० चंदन भा० कहा से० श्रेष्ठ ए० ऐसे मु० साधु का अ० अमतीझी आ० कहा ॥ १९ ॥ ज० जैसे स० स्वयम्भू उ० समुद्रमें से० श्रेष्ठ ना० नाग कुमारमें ध० धरणेन्द्र भा० कहा से० श्रेष्ठ खो० इक्षुरस र० सर्व रस में ज० श्रेष्ठ त० तप में मु० साधु ज० श्रेष्ठ ॥ २० ॥ ह०

ठ । नाणेण सीलेण य भूतिपन्ने ॥ १८ ॥ थणियंव सद्दाण अणुत्तरेउ । चंदेव ता राण महाणुभावे ॥ गंधेसु वा चंदण माहु सेट्ठं । एवं मुणीणं अपडिन्न माहु ॥१९॥ जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे । नागेसु वा धरणिंद माहुसेट्ठे ॥ खोउदए वा रसवेजयंते । तवोवहाणे मुणि वेजयंते ॥ २० ॥ हत्थीसु एरावण माहु णाए । सीहो मियाणं स

दर्शन और शील से श्री महावीर प्रभु श्रेष्ठ थे ॥ १८ ॥ जैसे सर्व शब्दों में मेघ की गर्जना का शब्द प्रधान है, तारागण में चंद्र श्रेष्ठ है और गंध में बावना चंदन की गंध श्रेष्ठ है वैसे ही सब साधु में अमतीझी श्री महावीर स्वामी श्रेष्ठ थे ॥ १९ ॥ जैसे सर्व समुद्र में स्वयंभू रमण श्रेष्ठ है, नाग कुमारों में धरणेन्द्र श्रेष्ठ है और रस में इक्षु का रस श्रेष्ठ है वैसे ही तप उपधान से सर्व मुनियों में श्री महावीर प्रभु श्रेष्ठ थे ॥ २० ॥ जैसे हस्ती में ऐरावण हस्ती प्रख्यात है, पशु में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षी में

पा० पाप न० नहीं का कराते ॥ २६ ॥ कि० क्रियावादि अ० अक्रियावादि ... मज्ञानवादि प०जानकर ठा०स्थान से वे स० सर्ववादि इ ऐसा वे०जानकर उ सावधान होकर से संयम दी दिन रा०रात ॥२७॥से० वे वा०निवारा इ०स्त्री सग स रात्रि भोजन सहित उ०उपधानतप दु०दुःख स० क्षयार्थ लो० लोक वि० जानकर आ०यह पा परलोक स०सर्व प०प्रभु वा०निवारा स० सर्वद्वार ॥२८॥ सो०

आणियेता अरहा महेसी । ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥ किरियाकिरिय वे
णइयाणुवायं । अण्णाणियाण पाडियच्च ठाणं ॥ से सव्ववायं इति वेयइत्ता । उवट्ठिए
सजमदीहरायं ॥ २७ ॥ से वारिया इत्थि सराइभत्तं । उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए
॥ लोगं विदित्ता आरं पारं च । सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥ २८ ॥ सोच्चा य धम्मं

को दूर करके श्री वीर प्रभु कुच्छभी पाप करते नहीं वैसे ही कराते भी नहीं ॥ २६ ॥ क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी, और विनयवादी के ३६३ पाखण्डी मत को दुर्गति में लेजाने का कारण जान तथा सर्व वाद को जानकर श्रीमहावीर देव चारित्र रूप संयममें दिनरात जावजीव तक सावधान हुवे ॥२७॥ श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभुने स्त्री सहित रात्रि भोजन उपलक्षण से प्राणातिपातादि को दूर किये और दुःख को क्षय करने के लिये तपवन्त हुवे यह लोक तथा परलोक को जानकर सर्व पाप के स्थान को प्रभुने सब से दूर किये ॥ २८ ॥ अब श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य को कहते है अहो शिष्यों ! अर्थ और

स० सर्व धर्म में न नहीं णा० ज्ञात पुत्रसे प० परम णा० ज्ञानी ॥ २४ ॥ पु० पृथ्वीवत् धु० क्षय करते हैं वि० प्रभुजि न० नहीं स० संचय क० करते हैं आ० दीर्घ प्रज्ञा त० तीरे स० समुद्र म० महाभवोघ अ० अभयकरनेवाले वी० वीर अ० अनन्त च० नेत्र ॥२५॥ को० क्रोध च० और मा० मान त० तथा मा० माया लो० लोभ च० चार अ० आध्यात्म दो० दोष ए० ये व० वमे अ० अर्हंत म० महर्षि ण० नहीं कु० करते

ठिइण सेट्ठा लवसत्तमवा। सभासुहम्माव सभाण सेट्ठा ॥ निव्वाण सेट्ठा जह स व्व धम्मा। ण णाय पुत्ता परमत्थी णाणी ॥ २४ ॥ पुढोवमे धुणइ विगयगेहि। न सण्णिहिं कुव्वति आसुपन्ने ॥ तरिउं समुद्द च महाभवोघं। अभयंकरे वीर अणंत चक्खू ॥ २२ ॥ कोहं च माणं च तहेव मायं। लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा ॥ ए

स्थिति श्रेष्ठ है, सर्व सभा में सौधर्मी सभा और सर्व धर्म में निर्वाण श्रेष्ठ है, वैसे ही ज्ञात पुत्र श्री महावीर से अन्य कोई ज्ञानी नहीं है ॥ २४ ॥ जैसे पृथ्वी सर्व पदार्थ को आधार भूत है वैसी उपमावाले श्री महावीर अष्ट प्रकार के कर्मों को क्षय करते थे और वे विगत गृद्धि थे और वे केवल ज्ञानी किंचिन्मात्र संचय नहीं करनेवाले थे और अनंत ज्ञान रूप चक्षुवाले श्री महावीर प्रभु भवोघ रूपी समुद्र को तिर कर

अज्ञानवादि प०जानकर ठा०स्थान स ... राधि भोजन सहित उ०उपधानवंत दु०दुःख ... ० दी०दिन रा०रात ॥२७॥से० वे वा०निवारा इ० स्त्री सग स राधि भोजन सहित उ०उपधानवंत ... ० ॥ सो० सयार्थ सो० लोक वि० जानकर आ०यह पा परलोक स०सर्व प०प्रभु वा०निवारा स०सर्वद्वार ॥२८॥ सो०

किरियाकिरिय वे आणियंता अरहा महेसी । ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २९ ॥ सोच्चाय धम्मं ॥ लोगं विदित्ता आरं पारं च । सव्व पभू वारिय सव्ववार ॥ २८ ॥ से वारिया इत्थि सराइभत्त । उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए ॥ २७ ॥ से सव्ववायं इति वेयइत्ता । उवट्ठिए णइयाणुवायं । अण्णाणियाण पडियच्च ठाणं ॥

क्रियावादी, अज्ञानवादी, और विनयवादी के ३६३ पाखण्डी मत को दुर्गति में लेजाने का कारण जान तथा सर्व वाद को जानकर श्रीमहावीर देव चारित्र रूप संयममें दिनरात जावनीव तक सावधान हुवे ॥२७॥ श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभुने स्त्री सहित रात्रि भोजन उपलक्षण से प्राणातिपातादि को दूर किये और दुःख को क्षय करने के लिये तपवन्त हुवे यह लोक तथा परलोक को जानकर सर्व पाप के स्थान को प्रभुने तप से दूर किये ॥ २८ ॥ अब श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य को कहते है अहो शिष्यों ! अर्थ और क्रियावादी, अ को दूर करके भी वीर प्रभु कुच्छभी पाप करते नहीं वैसे ही कराते भी नहीं ॥ २९ ॥

स० सर्व धर्म में न० नहीं णा० ज्ञात पुत्तसे प० परम णा० ज्ञानी ॥ २४ ॥ पु० पृथ्वीवत् धु० क्षय करते हैं वि० अगृद्धि न० नहीं स०संचय कु०करते हैं आ०दीर्घ प्रज्ञ त० तीरे स० समुद्र म० महाभवोघ अ० अभयकरनेवाले वी० वीर अ०अनंत च० नेत्र ॥२५॥ को० क्रोध च० और मा० मान त० तथा मा० माया लो० लोभ च० चार अ० आध्यात्म दो० दोष ए० ये वं० वमे अ० अर्हत म० महर्षि ण० नहीं कु० करते

ठिइण सेट्ठा लवसत्तमावा । सभासुहम्माव सभाण सेट्ठा ॥ निव्वाण सेट्ठा जह स
व्व धम्मा । ण णाय पुत्ता परमत्थी णाणी ॥ २४ ॥ पुढोवमे धुणइ विगयगेहि । न
सण्णिहिं कुव्वति आसुपन्ने ॥ तरिउ समुद्द च महाभवोघं । अभयंकरे वीर अणत
चक्खू ॥ २२ ॥ कोहं च माणं च तहेव मायं । लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा ॥ ए-

स्थिति श्रेष्ठ है, सर्व सभा में सौधर्मा सभा और सर्व धर्म में निर्वाण श्रेष्ठ है, वैसे ही ज्ञात पुत्र श्री महावीर से अन्य कोई ज्ञानी नहीं है ॥ २४ ॥ जैसे पृथ्वी सर्व पदार्थ को आधार भूत है वैसी उपमावाले श्री महावीर आठ प्रकार के कर्मों को क्षय करते थे और वे विगत गृद्धि थे और वे केवल ज्ञानी किंचिन्मात्र संचय नहीं करनेवाले थे और अनंत ज्ञान रूप चक्षुवाले श्री महावीर प्रभु भवौघ रूपी समुद्र को तिर कर के सर्व जीवों का भय दूर करनेवाले थे ॥ २५ ॥ क्रोध, मान,

अज्ञानवादि प०जानकर ठा०स्थान से वे स० सर्ववादि ह ऐसा वे०जानकर उ सावधान होकर से संयम श्री०दिन रा०रात ॥२७॥से० वे वा०निवारा ह स्त्री सग स रात्रि भोजन सहित उ०उपधानवंत दु०दुःख स० क्षयार्थ लो० लोक वि० जानकर आ०यह पा०परलोक स०सर्व प प्रभु वा०निवारा स० सर्वप्रकार ॥२८॥ सो०

आणिधंता अरहा महेसी । ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ ॥ २९ ॥ किरियाकिरिय वे

णइयाणुवायं । अण्णाणियाण पडियच्च ठाणं ॥ से सव्ववायं इति वेयइत्ता । उवट्ठिए

संजमदीहरायं ॥ २७ ॥ से वारिया इत्थि सराइभत्त । उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए

॥ लोगं विदित्ता आरं पारं च । सव्व पभू वारिय सव्ववार ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्मं

को दूर करके श्री वीर प्रभु कुच्छभी पाप करते नहीं वैसे ही कराते भी नहीं ॥ २९ ॥ क्रियावादी, अ क्रियावादी, अज्ञानवादी, और विनयवादी के ३६३ पाखण्डी मत को दुर्गति में लेजाने का कारण जान तथा सर्व वाद को जानकर श्रीमहावीर देव चारित्र रूप संयममें दिनरात जावजीव तक सावधान हुवे ॥२७॥ श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभुने स्त्री सहित रात्रि भोजन उपलक्षण से प्राणातिपातादि को दूर किये और दुःख को क्षय करने के लिये तपस्वी हुवे यह लोक तथा परलोक को जानकर सर्व पाप के स्थान को प्रभुने तप से दूर किये ॥ २८ ॥ अब श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य को कहते हैं अहो शिष्यों ! अर्थ और

सुनकर ध० धर्म अ० अर्हंत भा० भाषित स० सम्यक् प्रकारे अ० अर्थ प० पद शुद्ध सं० उसे स० श्रद्धाकरके अ० मनुष्य अ० आयुष्य रहित इ० इन्द्र दे० देव भा० होवेंगे सि० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २९ ॥

अरहंत भासिय । समाहित अट्ठपदोपसुद्ध ॥ तं सद्दहाणाय जणा अणाऊ । इंदाव देवाहिवं आगमिस्संति त्तिबेमि ॥२९॥ इति वीरत्थुई नाम छट्ठमज्झयणं सम्मत्तं॥६॥

पद से शुद्ध ऐसा श्री अरिहंत भाषित धर्म को सुनकर के और उस को सत्य श्रद्ध करके बहुत मनुष्य आयुष्य रहित सिद्ध हुवे अथवा तो आगामिक काल में इन्द्र, देवाधिपादिक की पदवी प्राप्त करेंगे ॥ २९ ॥ यह वीरस्तवाख्य नामक षष्ठ अध्ययन समाप्त हुआ इस में महावीर स्वामी को सुशील कहे अब आगे जो कुशीलियें होते हैं. वे अरहट घटिका न्याय से संसार में परिभ्रमण करते हैं इस लिये कुशील परिभाषा नामक सप्तम अध्ययन कहते हैं.

॥ कुशील परिभाषा नामकं सप्तम मध्ययनम् ॥

पु० पृथ्वी भा पानी भ० भग्नि वा वायु त० तृण रु० वृक्ष बी बीज त त्रस पा प्राणी जे० जो अं अंडज जे० जो ज० जरायुज पा० प्राणी स० स्वेदज जे० जो र० रसज अ० जानो ॥ १ ॥ ए० इन का० कायाको प० प्रभुजी ए० इन में जा०जानो प०देखो सा० साता ए० इस का०काया से आ० आत्मदण्ड में ए० इन में वि० परिभ्रमण करते हैं ॥ २ ॥ जा जाति प० पथ अ० परिभ्रमण करता त० त्रस

पुढवी य आऊ अगणी य वाऊ। तण रुक्ख बीया य तसा-य पाणा ॥ जे अंडया जे य ज राउ पाणा । संसेयया जे रसयाभिहाणा ॥ १ ॥ एयाइं कायाइं पवेदिताइं । एतेसु जाणे पडिलेह सायं ॥ एतेण काएण य आयदंडे । एतेसु या विप्परियासुविंति ॥ २ ॥

पृथ्वी काय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय इन चारों का सूक्ष्म और बादर ऐसे दो २ भेद, तृण, वृक्ष, बीज, शाली प्रमुख वनस्पति काय और द्विइन्द्रियादिक त्रस प्राणी जिन के अनेक भेद हैं:— अण्डे से उत्पन्न होनेवाले पक्षी आदि, जरसे उत्पन्न होनेवाले गाय प्रमुख, स्वेद से उत्पन्न होनेवाले यूकादि, तथा रसज ॥ १ ॥ पूर्वोक्त षट्काय श्री तीर्थंकर देवने प्ररूपी है येही षट्कायाके जीव सुख को वांच्छते हैं इन जीवों की जो कोई मन, वचन, और काया का किसी दण्ड से घात करता है, वही वारम्वार इनही काय में परिभ्रमण करता है ॥२॥ एकेन्द्रिय से पचेन्द्रियतक की जाति में परिभ्रमण करता हुवा त्रस

या० स्थावर वि० घात को प० पाता है से० वे जा० जाति जाति में ब० बहुत कू० क्रूरकर्मी जं० जो कु० करता है मि० मरता है ते० उस से बा० मूर्ख ॥ ३ ॥ अ० इस लो० लोक में अ० अथवा प० दूसरे स० स एस भव स० तथा ✱ अन्यथा से संसार में उत्पन्न हुवे प० वारंवार ते० वे ब० बांधते हैं वे० भोगवते हैं दु दुष्कर्मों ॥ ४ ॥ जे० जो मा माता को पि० पिता को हि० छोड कर स० श्रमण व्रत अ०

जाईपह अणुपरियट्टमाणे । तस थावरेहिं विणिघाय मेति ॥ से जातिजातिं बहुकू रकम्मे । जं कुव्वति मिज्जति तेण बाले ॥ ३ ॥ अस्सि च लोए अदुवा परत्था । सयग्गसो वा तह अन्नहा वा ॥ संसारमावन्न परंपरं ते । बंधंति वेदंति य दुन्नियाणि ॥ ४ ॥ जे मायरं वा पियरं च हिच्चा । समणव्वए अगणिं समारभिज्जा ॥ अहाहु से

और स्थावर में उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होता है वहां उत्पन्न हुवे बाद उस क्रूरकर्मी ने यहां जो जो पाप किये थे उन पाप से वह विनाश पाता है ॥ ३ ॥ जीव जो कर्म करता है उस का फल उसे इसी भव में मिलता है, अथवा परभव में, अथवा तो बहुत भव में मिलता है जिस विधि से कर्म किया होवे उस विधि से जीव कर्म भोगता है और अन्य विधि से भी भोगता है इस तरह अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करता हुवा जीव नया कर्म बांधता है, और उन्हें वेदता है ॥ ४ ॥ माता

अग्नि को स० आरम करते हैं अ० अथ मा० कहा से० वे कु० कुशील धर्मी भू० प्राणी को जे० जो हिं० सा करते हैं आ० आत्मसुख के लिये ॥ ५ ॥ उ० अग्नि का आरंभ करने वाले पा० प्राणी नि० इने नि० बुझाते म अग्नि नि इणाते हैं त० इसलिये मे० मेधावी स जान कर ध० धर्म को प० नहीं प० पंडित अ अग्नि को स० आरंभ करे ॥ ६ ॥ पु० पृथ्वी जी० प्राणी आ० अप् जी० प्राणी पा० प्राणी स० करते स० पड़ते हैं सं० किटीमादि क० काष्ठमें स० रहे हुवे ए० इतने को द० जलाने अ० अग्निको स० आरम

लोए कुसील धम्मे । भूताइ जे हिंसति आयसाते ॥ ५ ॥ उज्जालओ पाण निवातए ज्जा । निव्वावओ अगणि निवायवेज्जा ॥ तम्हाउ मेहावि समिक्ख धम्मं ण पण्डिए अगणि समारभिज्जा ॥ ६ ॥ पुढवीवि जीवा आऊवी जीवा । पाणाइ सपाइम सपयंति ॥

निवा को छोड़ करके हम साधु हैं ऐसा मानते हुवे अग्निकाय का जो आरंभ करते हैं और अपनी आत्मा का सुख के लिये प्राणी की घात करते हैं वे इस लोक में कुशीलधर्मी (अनाचारी) हैं ऐसा श्री वीतंकर देवने कहा है ॥ ५ ॥ अग्नि को प्रदीप्त करते त्रस और स्थावर जीवों का अतिपात होता है, वैसे ही उस को बुझाते अनेक त्रस और स्थावर जीव हणाते हैं इसलिये पण्डित पुरुषों को हिंसा का त्याग करके अग्नि काया का समारंभ करना नहीं ॥ ६ ॥ तेउकाय का आरंभ करने में पृथ्वीकाय के जीव, अप्काय के जीव, पतंगिये प्रमुख उड़ते हुवे प्राणी, और काष्ट के आश्रित रहे हुवे अनेक द्वियीन्द्रिक का

करता है ॥ ७ ॥ ह० हरिकाय मू० मूल वि० विलम्बक (मीनाकार) आ० आहार दे० देहार्थ पु० प्र थम सि० कदाचित् जे० जो छि० छेदते हैं आ० आत्म सुख के लिये प० मानकर प० धीठपने पा० प्राणी को प० बहुत अ० घातक ॥ ८ ॥ जा० उत्पत्ति बु० वृद्धि वि० विनाश करते हुवे बी० बीज अ० असपति आ० आत्म देही अ० अन आ० कहा से० सब ले० लोक में अ० अनार्यपर्मी बी० बीज जे० जो हिं० घात करता है आ० आत्म सुख के लिये ॥९॥ ग० गर्भमें मि० मरते हैं बु० बोलता बु० अनबोलता ण० मनुष्य प० पंचशिखी

ससेयया कट्ठसमस्सियाय । एते दहे अगणि समारभंते ॥ ७ ॥ हरियाणि भू-ताणि विलम्बगाणि । आहार देहाय पुढो सियाइ ॥ जे छिंदति आयसुहं पडुच्च । प गब्भि पाणे बहुणंतिवाती ॥ ८ ॥ जातिं च वुड्ढिं विणासयंते । बीयाइ असंजय आयदंडे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे । बीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ९ ॥ ग

विनाश होता है अर्थात् वे प्राणी उस में जलते हैं ॥ ७ ॥ जो जीव आत्मसुख को मानकर आहार और शरीर के लिये मीनाकार (जैसे गर्भस्थ जीव कलल अर्बुद आदि में वृद्धि पाता है वैसे ही वनस्पति है) सजीव वनस्पति की घात करता है, वह पुरुष धीठापने से बहुत प्राणी की घात करनेवाला होता है ॥८॥ जो असंयति कोमल मूलादिक तथा घास मकानादिक तथा बीज का विनाश करता है वह पुरुष अपना आत्मा का घातक होता है और जो अपना सुख के लिये बीजादिक की घात करता है उस को श्री तीर्थंकर गणधर महाराजने अनार्यधर्मी कहा है ॥ ९ ॥ वनस्पति के घातक जीव में से कितनेक तो गर्भ में

करता है ॥ ७ ॥ ह० हरितरूप मू० मूल वि० विरूपक (जीवाकार) आ० आहार दे० देहार्थ पु० अ-
लग सि० स्यात् जे० जो छि० छेदते हैं आ० आत्म सुख केलिये प० जानकर प० धीठपने पा० प्राणी को
प० बहुत अ० घातक ॥ ८ ॥ जा० उत्पत्ति बु० वृद्धि वि० विनाश करते हुवे बी० बीज अ० असंयति आ०
आत्म दंडी अ० अब आ० कहा से० वह लो० लोक में अ० अनार्यधर्मी बी० बीज जे० जो हिं० घात करता है आ०
आत्म सुख के लिये ॥ ९ ॥ ग० गर्भ में मि० मरते हैं बु० बोलता बु० अबोलता प० मनुष्य पं० पंचशिखी

संसेयया कट्ठसमस्सियाय । एते दहे अगणि समारभंते ॥ ७ ॥ हरियाणि भू-
ताणि विलंबगाणि । आहार देहाय पुढो सियाइं ॥ जे छिंदति आयसुहं पडुच्च । प-
गब्भि पाणे बहुणतिवाती ॥ ८ ॥ जातिं च वुड्ढिं विणासयंते । बीयाइ असंजय
आयदंडे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे । बीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ९ ॥ ग

विनाश होता है अर्थात् वे प्राणी उस में मरते हैं ॥ ७ ॥ जो जीव आत्मसुख को जानकर आहार और
शरीर के लिये जीवाकार (जैसे गर्भस्थ जीव कलल अर्बुद आदि में वृद्धि पाता है वैसे ही वनस्पति है)
सजीव वनस्पति की घात करता है, वह पुरुष धीठाइपने से बहुत प्राणी की घात करनेवाला होता है ॥८॥
जो वनस्पति कोमल मूलादिक तथा शाखा प्रशाखादिक तथा बीज का विनाश करता है वह पुरुष अपना
आत्मा का घातक होता है और जो अपना सुख के लिये बीजादिक की घात करता है उस को श्री
तीर्थंकर गणधर महाराजने अनार्यधर्मी कहा है ॥ ९ ॥ वनस्पति के घातक जीव में से कितनेक तो गर्भ में

कु० कुमार यु०युवान म०मध्यम थे०वृद्ध (पो० पुरुष) च०मरते हैं ते०वे आ०आयुष्य क्षयसे प०मलीन॥१०॥ स०समझो ज० जीवो मा० मनुष्यत्व द० देखकर भ० भय बा० अज्ञानवाले अ०मिलना दुर्लभ ए० एकान्त दु० दुःख ज० ज्वरित लो० लोक स० स्वकर्म से वि० विपरीतता उ० पाते हैं ॥ ११ ॥ इ० यहां ए० कि कितनेक मु० मूर्ख प० करते हैं मो० मोक्ष आ० लवण व० वर्जकर ए० कितनेक उ० पानी

इमाइ मिज्झति गुया गुयाणा । णरा परे पंचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगा य (पोरुसाय) चयंति ते आउक्खए पलीणा ॥ १० ॥ संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं दट्ठु भयं बालिसेणं अलंभो ॥ एगंत दुक्खे जरिएव लोए । सक्कम्मणा विप्परिया सुवेइ ॥ ११ ॥ इहेग मूढा पवयंति मोक्खं । आहार संपज्जण वज्जणेणं ॥ एगेयसी

ही मरजाते हैं, कितनेक बोलते अणबोलते मरजाते हैं, कितनेक बाल्यावस्था में ही मरजाते हैं, और कितनेक युवा वय, मध्यम वय और स्थविर इन सर्व अवस्थाओं में अपने किये हुवे कर्मों को भोगकर शरीर का त्याग करते हैं ॥ १० ॥ अहो जीवो! तुम बुझो कि इस संसार में मनुष्य जन्म की प्राप्ति बहुत कठिन है वैसे ही नरक तिर्यंचादि गति में अज्ञानवाले सदसद् विवेक की प्राप्ति होना दुर्लभ है यह लोक ज्वराक्रान्त मनुष्य की तरह एकान्त दुःख से भरपूर है और वे अपने २ कर्मानुसार संसार में वारम्वार नाश पाते हैं ॥११॥ इस लोक में कोई मूर्ख कहते हैं कि पांच प्रकार के लवण का त्याग करने से मुक्ति होती है कितनेक

से सेवने से हु० अग्नि से प० कितनेक प० करते हैं मो० मोक्ष ॥ १२ ॥ पा० प्रातः स्नान से ण० नहीं मा० मोक्ष खा० खार लो० लवन अ० नहींभागवनेसे ते० वे म० मदिरा म० मांस ल० लसुन च० और भो० भोगकर अ० अन्यत्र वा० स्थान में प० वसते हैं ॥ १३ ॥ उ० पानी से जे० जो सि० मुक्ति उ० कहते हैं सा० शाम पा० प्रभात च० और उ० पानी फु० स्पर्शता द० पानी का फा० स्पर्श से सि०

उदगसेवणेण । हुएण एगे पवयंति मोक्खं ॥ १२ ॥ पाओसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो । खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥ ते मज्जमंसं लसणं च भोच्चा । अन्नत्थवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥ उदगेण जे सिद्धि मुदाहरंति । सायं च पायं च उदगं फुसंता ॥ उदगस्स फासेण सियाय सिद्धी । सिज्झंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४ ॥ मच्छाय कु

शीतल पानी का सेवन करने से मुक्ति बताते हैं और कितनेक हुताशन (अग्नि) का होम करने से मुक्ति बताते हैं ॥ १२ ॥ अब पूर्वोक्त दर्शनी को उत्तर देते हैं प्रातःस्नानादिक से मोक्ष नहीं होता है क्यों कि पानी सेवने से तदाश्रित जीवों का विनाश होता है खार या लवण नहीं खाने से भी मोक्ष नहीं है क्यों कि ऐसा होने से जहां लवण नहीं होता है वहां के जीवों की मुक्ति होना चाहिये जो मद्य, मांस, और लसुन खाकर मोक्ष की इच्छा करते हैं वे इस संसार में ही परिभ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ प्रभात में सन्ध्या में और मध्याह्न में पानी से स्नान करते हुवे पानी से ही जो मुक्ति मानते हैं वे मुग्ध हैं क्योंकि यदि पानी के स्पर्श से सिद्धि होती होवे तो सब काल पानी में रहे हुवे मत्स्य कच्छादि की मुक्ति होना

होवे सि० मुक्ति सि० सिद्ध होवेंगे पा० प्राणी ब० बहुत द० पानी से ॥ १४ ॥ म मच्छ कु कूर्म सि० सर्प म० नल काग उ० मेंढक द० जल मानुष अ० अयोग्य ए० यह कु कुशल व० कहते हैं उ पानी से मे० भा सि० मुक्ति उ० कहते हैं ॥ १५ ॥ उ पानी ज० यदि क० कर्म मेल ह० दूर करता है ए० ऐसे सु पुण्य इ इच्छा मि० मात्र अं० अंध णे० नेता अ० अनुसरने वाले पा० प्राणी चे० निश्चय वि० हणते हैं मं० मूर्ख ॥ १६ ॥ पा० पाप क कर्म प० करे सि० शीतपानी ज० यदि तं० उसको ह०

म्माय सिरीसिवाय । मग्गूय उट्टा दगरक्खसाय ॥ अट्ठाणमेयं कुसला वयंति । उद गेण जे सिद्धि मुदाहरंति ॥ १५ ॥ उदयं जइ कम्ममलं हरेज्जा । एवं सुहं इच्छामि त्तमेव ॥ अंधं व णेयार मणुस्सरित्ता । पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ॥ १६ ॥ पा

चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता है ॥ १४ ॥ यदि उदक का स्पर्श से सिद्धि होती होवे तो मत्स्य, कूर्म, सर्प, नलकाग, मेंमक, जलमानुषादि कि जो पानी में रहते हैं वे भी मोक्षगामी होवेंगे इस लिये श्री तीर्थंकर देवने कहा है कि अज्ञानी पुरुषों जिस रीति से मुक्ति बताते हैं सो अयोग्य है ॥ १५ ॥ यदि पानी अ शुभ कर्म रूप मेल को हरण करे तो शुभ कर्म को भी दूर करे और जो पुण्य को दूर न कर सके तो पापको कैसे दूर कर सके इसलिये उन का जो कथन पानी से सिद्धि होने का है यह इच्छामात्र है जैसे जात्यंध पुरुष मार्ग बतानेवाला होवे और जैसे उसकी पीछे चलने से इच्छित मार्ग न मिले वैसे ही

हरे सि॰ सिद्ध होवेंगे ए॰ कितनेक द॰ पानी स॰ मातक मु॰ मृषा व॰ बोले अ॰ जलसे सिद्धि आ॰ क ही ॥ १७ ॥ हु॰ अग्नि से जे॰ जो सि मुक्ति उ॰ कहते हैं सा॰ श्याम पा॰ प्रभात च॰ मध्यान्ह अ॰ अग्नि को फु॰ स्पर्शता हुवा ए॰ ऐसे सि॰ कदाचित् सि॰ सिद्धि॰ ह॰ होवे त॰ तो अ॰ अग्नि को फु॰ स्पर्शता हुवा कु॰ कुकर्मियों को अ॰ अपि ॥ १८ ॥ अ॰ अपरिक्षक दि॰ दृष्ट ण॰ नहीं हु॰ निश्चय ए॰

वाइं कम्माइं पकुव्वतेहिं । सीओदगं तु जइ तं हरिज्जा ॥ सिज्झंसु एगे दगसत्तघात्ती । मुस वयंते जलसिद्धि माहु ॥ १७ ॥ हुतेण जे सिद्धि मुदाहरंति । सायं च पायं अगणिं फुसंता ॥ एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा । अगणिं फुसंताण कुकम्मिणंपि ॥ १८ ॥ अपरिक्ख दिट्ठं णहु एव सिद्धी । एहिंति ते घायमबुज्झमाणा ॥ भूएहिं

पर्य शुद्धि मे प्राणी का विनाशक मूर्ख मनुष्य ऐसा मोक्ष मार्ग का सेवन करता हुवा मोक्ष मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता है ॥ १६ ॥ चाहे जितना पाप कर्म करे परंतु यदि त्रिसंध्या में कोई शीतल जल से स्नान करे तो उन के सर्व पाप का नाश होजाता है यदि ऐसा ही मानाजाय तो कोई जीवघातक पानी के योग से मुक्ति में चलेजावे इस लिये जो उदक से सिद्धि मानते हैं वे मृषा बोलते हैं ॥ १७ ॥ कोई अग्निहोत्री नामक दर्शनियों कहते हैं कि संध्या, प्रभात और मध्यान्ह ऐसे तीन काल में अग्नि का स्पर्श करनेवाले की सिद्धि होती है. यदि उन के दर्शन से ऐसा ही, मानाजाय तो अग्नि का स्पर्श करनेवाले कुकर्मी लोग

ऐसे सि० सिद्धि प्र० पाते हैं ते वे धा० पाप अ० अज्ञानी मू० जीवोंसे जा० जानकर त० देखो सा० साता पि० विद्वान म० ग्रहणकर त० त्रस था० स्थावर ॥१९॥ प० आक्रंद करते हैं लु० छेदाते हैं त० त्रास पाते हैं क० कर्मी पु० पृथक् ज० जीवों प० जानकर भि० साधु त० इसलिये वि० विद्वान वि० विरत आ० आत्म गुप्त द० देखकर त० उसको प० दूरकरे ॥२०॥ जे० जो ध० धर्म से ल० प्राप्त करके वि० दोष लगाकर

जाणं पडिलेह सातं। विन्नं गहाय तस थावरेहिं ॥ १९ ॥ थणंति लुप्पंति तसंति कम्मी। पुढो जगा परिसखाय भिक्खू ॥ तम्हा विऊ विरतो आयगुत्ते। दट्ठु तसे य पडिसहरेजा ॥ २० ॥ जे धम्म लद्धं विणिहाय भुंजे। वियडेण साहट्टु य जे सिणाइ ॥

क्षारादिक की भी सिद्धि होना चाहिये ॥ १८ ॥ जो लोक ऐसा कहते कि पानी और अग्नि का स्पर्श से मुक्ति मिलती है वे बिना विचारे बोलते हैं ऐसे कारणों से कदापि सिद्धि नहीं होती है और ऐसा जो कहनेवाला अनंत संसार में परिभ्रमण करता है. इस लिये त्रस और स्थावर जीवों को सातापिय है, और असाता अप्रिय है, ऐसा जानकर और विवेक को आदरकर पण्डित पुरुषों को जीवघात करना नहीं ॥ १९ ॥ अब जो कुशीलियें हैं वे प्राणी को उपमर्दन करने में ही सुख मानते हैं उन को क्या फल होता है सो बताते हैं नरकादिगति को प्राप्त होकरके वे कमवाले जीव आक्रंद करते हैं, छेदाते हैं पीडित होते हैं व नाशभाग करते हैं इस लिये पृथक् २ जीवों को जानकर जो साधु पण्डित, आत्म गुप्त, विरत, उपशम वन्त होवे वह त्रस स्थावर जीवों को देख कर उन की हिंसा से निवर्ते ॥ २० ॥ श्री तीर्थंकर भगवान् कहते

है सा० स्वादुक अ० अन आ कहा से० वह सा साधुपना से दू० दूर ॥ २३ ॥ कु अच्छे प रों में जे० जो धा० दोड़ता है सा० स्वादुक आ सुनाता है ध धर्म उ० उदर के गि० गृद्ध अ० मय आ० कहा से० वह आ० अच्छा संयम के स० शतांश जो० जो स० समे अ० अशनके हे० हेतु ॥ २४ ॥ णि० निकलकर दी० दीन प० दूसरे के भो० भोजनमें मु० मुख मगाछिक उ० उदर के गि० गृद्ध नी० शाल गि० गृद्ध म० बड़ा व० सूकर अ० शीघ्र ए० जाता है घा० घात ॥ २५ ॥ अ० अन्न का

पसु धम्मं च ॥ कुलाइ जे धावइ साउगाइ । अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥
कुलाइ जे धावइ साउगाई । आघाति धम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से आयरियाण
सयसे । जो लावएज्जा असणस्स हेउ ॥ २४ ॥ णिक्खम्म दीणे पर भोयणमि । मुह
मगल्लीए उदराणुगिद्धे ॥ नीवारगिद्धेव महावराहे । अदूरए एहइ घातमेव ॥२५॥

रसगृद्धि में आसक्त होकर अच्छा आहार लेने के लिये बड़े कुल में परिभ्रमण करते हैं वे साधुपना से दूर हैं ॥ २३ ॥ जो साधु स्वादुक कुल में रस सम्पटी बन गोचरी करने को जाते हैं वे पेटार्थी जिस को जैसा धर्म रुचे वैसा धर्म कहते हैं, और जो साधु आहार के लिये दूसरे की पास प्रशंसा कराते हैं वे साधुपना से सो में भाग दूर हैं ॥ २४ ॥ जो अपना गृह कुटुम्ब का त्याग करके अन्य के गृह के भोजन में गृद्ध बनते हैं वे उदर पोषणार्थ गृहस्थ की प्रशंसा करते हैं और जैसे सूकर चावल का कण में गृद्ध होता हुवा तुरत घात को प्राप्त होता है वैसे ही वे कुशीलिये संसार में अनंत जन्म मरण करते हैं ॥ २५ ॥

पा० पानीस्थ से० पक्वादिक अन्न० भक्तिमिय मा० करता है से० सेवक जैसे पा० पार्श्वस्थ चे० निश्चय कु० कुशी लिये नि० निस्सारी हो० होता है ज० जैसे पु० पुलाक ॥ २६ ॥ अ० अज्ञात कुलका पिं० आहार से रि० सहन करे णो० नहीं पू० पूजा त० तप से आ० इच्छे स० शब्द से रू० रूप से अ० असक्तमान स० सर्व का० काम में वि० स्वयंकर मे० प्रवर्तना ॥ २७ ॥ स० सर्व सं० संग अ० छोडकर धी० धीर स० सर्व

भत्तस्स पाणस्सिहलोइयस्स । अणुप्पियं भासति सेवमाणे ॥ पासत्थयं चेव कुसीलयं च । निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥ २६ ॥ अण्णात पिंडेणहियासएज्जा । णो पूयणं तवसा आवहेज्जा ॥ सद्देहिं रूवेहिं असज्जमाण । सव्वेहि कामेहि विणीय गेहिं ॥ २७ ॥ सव्वाइ संगाइं अइच्च धीरे । सव्वाइ दुक्खाइं तितिक्खमाणे ॥ अखिले

वे कुशीलिये अन्न के लिये, पानी के लिये तथा पक्वादि के लिये जिस को जैसा रुचे वैसा बोलते हैं जैसे धान्य रहित तुष निस्सार होता है वैसेही वे कुशीलिये सदाचारसे भ्रष्ट पार्श्वस्थ भावको प्राप्त होते हैं ॥२६॥ अब सुशील साधु का आचरण बताते हैं अज्ञात कुल में आहार पानी लेवे और अन्तप्रान्त आहार से संयम पाले परंतु दीनपना धारन करे नहीं, रागादिक मुझे पूजे ऐसी वाञ्छना कर तपस्या करे नहीं और शब्द रूप में अनासक्त बन कर सर्व काम भोग में अमूर्छित होकर हुआ विचरे ॥ २७ ॥ वह साधु सर्व संग से

दु० दुःख ति० सहन करता अ० संपूर्ण अ० अगृद्ध अ० अप्रतिबद्ध अ० अभय क० करे भि० साधु अ० निर्लेपी ॥ २८ ॥ भा० भार जा० निर्वाह मु० साधु मुं० भोगवे कं० वांच्छे पा० पाप का वि० विवेक भि० साधु दु० दुःख से पु० स्पर्शाया धु० धूत (मोक्ष) आ० आदरे स० संग्राम में सी० अग्र प० दूसरे को द० दमे ॥ २९ ॥ अ० हणाया हुवा फ० पाटिये जैसे व० रहे स० समागम कं० इच्छते हैं अं०

अगिद्धे अप्पिएयचारी । अभयकरे भिक्खु अणाविलप्पा ॥ २८ ॥ भारस्स जाता मु
णी भुजएज्जा । कखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू ॥ दुक्खेण पुट्ठे धुय माइएज्जा । स-
गामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९ ॥ अविहम्ममाणे फलगाव तट्ठी । समागम कखाति अ-

रहित, विवेकवन्त, सर्व दुःख को सहन करनेवाला, ज्ञानादि से संपूर्ण, काम भोग की अभिलाषा रहित, अप्रतिबद्ध विहारी, सर्व जीव का अभय का करनेवाला विषय कषाय रहित होवे ॥ २८ ॥ साधु संयम का निर्वाह के लिये शुद्ध निर्दोष आहार भोगवे और पूर्व में आचरे हुवे पापकर्म को पृथक् करना वांच्छे परीषह आने पर संयम ग्रहण करे और जैसे संग्राम का अग्रभाग में रहाहुवा सुभट शत्रुका पराभव करता है, वैसे ही साधु कर्म का पराभव करे ॥२९॥ परीषहोपसर्गसे हणावा हुवा साधु फलगवत् उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करे और पण्डित मरण की वांच्छना करे जैसे अक्ष (धूरी) का क्षय से गाडा नहीं चलता है वैसे ही ज्ञानावरणी यादि आठ प्रकारका कर्मक्षय करके जीव मुक्तिमें गयेबाद पीछा नहीं आताहै ऐसाहीं श्री तीर्थंकर देवकी आ

वस्तु का लि० इरकर के क० कर्म भ० नहीं प० पाते भ० पूरी का सब मेरे स० गाथा १०० एमा
मे० करता हूं ॥ १ ॥

* * * *

तकस्स ॥ णिधूय कम्म ण पवंचुवेइ । अक्खक्खए वा सगड त्तिबेमि ॥ २० ॥ इ
ति कुसीलपरिभासियं सत्तम मज्झयणं सम्मत्त

*

अनुसार करता हूं पर कुशील पुरुष का आचार कहा, यह आचार वीर्यांतरकर्म का क्षय से होता है
इस लिये आगे सुशील पुरुषका वीर्य बतलाते हैं कुशील परिभाषा नामक सप्तम अध्ययन समाप्त हुआ

॥ वीर्याख्य मष्टमाध्ययनम् ॥

दु० दोमकार का सु० अच्छा भ० कहा वी० वीर्य प० फरमाते हैं कि किंतु वी० वीर का वी० वीर्य क० कैसे प० फरमाते हैं ॥ १ ॥ क० कर्म ए० कितनेक प० फरमाते हैं अ० अकर्म सु० सुव्रति ए० यह दो० दो ठा० स्थान में जे० जो दी० दिखते हैं म० मनुष्य ॥ २ ॥ प० प्रमादको क० कर्म आ० कहा है अ० अप्रमाद त० तथा अ० दुसरा त० तद्भाव दे० देखायें बा० अज्ञानीको प० पण्डितको ए० कहा ॥ ३ ॥ स० शस्त्र ए० कितनेक सि० सिखेहुवे अ० घात के लिये पा० प्राणी का ए० कितनेक मं०

दुहावेय सुयक्खायं । वीरियंति पवुच्चइ ॥ किंतु वीरस्स वीरत्तं । कहं चेयं पवुच्चइ ॥ १ ॥ कम्म मेगे पवेदेंति । अकम्म वावि सुव्वया ॥ एतेहिं दोहि ठाणेहिं । जेहिं दीससि मच्चिया ॥ २ ॥ पमाय कम्म माहंसु । अप्पमाय तहावर ॥ तब्भावा देसओ वावि । बाल पंडिय मेववा ॥ ३ ॥ सत्थ मेगे तु सिक्खंता । अतिवायाय पाणिण ॥

अहो जम्बू ! श्री जिनेश्वर देवने दो प्रकार का वीर्य कहा है वीर (सुभट) का वीर्य कौनसा है ? और वह किस तरह कहाजाता है ? ॥ १ ॥ हे सुव्रति ! सकर्मक और अकर्मक ऐसे वीर्य के दो स्थानक हैं और इसी में सर्व मनुष्य व्यवस्थित रहे हुवे हैं ॥ २ ॥ श्री तीर्थंकर देवने प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को अकर्म कहा है अर्थात् जो प्रमादयुक्त कर्म करता है उस का बालवीर्य कहाजाता है और प्रमाद रहित क्रिया करनेवाले का पण्डित वीर्य मानाजाता है ये दोनों वीर्य अभव्य को अनादि अनंत

... स्व ० भाषा मू० भूतका त० घातक ॥ ४ ॥ मा० कपटी क० करके मा० कपट का० कामभोग में स० आरंभ करे ह० हणने वाले छे० छेदने वाले प० पीठ आ० आत्म सा० साताऽनुगामी ॥ ५ ॥ म० मन से व० वचन से का० काया से चे० निश्चय अ० अन्तवक आ० यह लोक प० परलोक दो० भयवा दु० दोमकार के अ० असंयति ॥ ६ ॥ वे० वैर कु० करता है वे० वैरी त० तब वे० वैरसे

एगे मते अहिज्जति । पाणभूय विहेडिणो ॥ ४ ॥ माइण्णो कट्टु मायाय । कामभोगे समारंभे ॥ हंता छेत्ता पगब्भित्ता । आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसा चेव । कायसा चेव अंतसो ॥ आरओ परओ वावि । दुहावि य असंजया ॥ ६ ॥ वेराइ कुव्वइ वेरी । तओ वेरेहिं रज्जति ॥ पावोवगाय आरंभा । दुक्ख फासाय अ

और मम्म को अनादि सान्त या सादि सान्त होता है ॥ ३ ॥ अब बाल वीर्य का अधिकार कहते हैं कोई पुरुष प्राणियों की घात करने के लिये शस्त्र सप्तादिक का प्रयोग करना या ज्योतिषादि शास्त्र सीखता है कोई द्विन्द्रियादि प्राणी को विविध प्रकार से मारने के लिये मंत्र का अभ्यास करता है ॥ ४ ॥ मायावी पुरुष माया कपट करके काम भोग को सेवते हैं वे आत्मसुख के अर्थी, प्राणियों की घात करनेवाले, उन के अंगोपांग छेदनेवाले, तथा उदरादि फाडनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ मन, वचन और काया से अशक्त होने पर तंदुल मत्स्य की मुवाफिक जो मन से ही कर्म बांधता है, वह इस लोक में तथा पर लोक में पाप करने, कराने से असंयति कहलाता है ॥ ६ ॥ जीव की घात करनेवाला पुरुष अन्य

र० आनेव पाते हैं पा० पापानुगामी आ० आरम दु० दुःखका फा० स्पर्श के लिये अं० अन्ततक ॥ ७ ॥ स सांपराइक णि० इच्छते हैं अ० आत्म दुष्कृत का० कर्ता रा० रागद्वेष में अ० आसक्त बा० अज्ञानी पा पाप कु० करते हैं ते० वे ब० बहुत ॥ ८ ॥ ए० यह स० कर्म सहित वी० वीर्य बा० अज्ञानी का प० क हा इ० अब अ अकर्म वि० वीर्य पं० पंडितका सु सुनो मे० मेरा॥९॥द० मुक्तिका इच्छक ब० बन्ध से मु० मुक्त स० सर्वथा छि० छेद बं० बन्धन प० नाशकरे पा० पाप क० कर्म स० शल्य क० काटते हैं अं० सर्व

तसो ॥ ७ ॥ संपराइय णियच्छंति । अत्तदुक्कडकारिणो ॥ रागदोसस्सिया बाला ।
पाव कुव्वंति ते बहु ॥ ८ ॥ एय सकम्म वीरियं । बालाणं तु पवेदितं ॥ इत्तो अक-
म्म वीरियं । पंडियाणं सुणेह मे ॥ ९ ॥ दविए बंधणुम्मुक्के । सव्वउ छिन्नबंधणे ॥

अनेक जीवों की साथ वैर करता है और उस वैर से परलोक में नया वैर उत्पन्न होता है सांपरायानुष्ठानरूप क्रिया का करनेवाला असाता वेदनीय कर्म का उदय के अवसर में दुःख का स्पर्श करनेवाला होता है अर्थात् महा दुःखी होता है ॥ ७ ॥ क्रिया दो प्रकार की है सांपरायिक और ईर्यापथिक इन दोनों प्रकार की क्रिया से कर्मबन्ध होते हैं जो अपनी आत्मा के लिये दुष्कृत करता है वह साम्परायिक बन्ध करता है सदसद् का विवेक शून्य अज्ञानीयों बहुत पाप करनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥ यह पूर्वोक्त अज्ञानियोंका सकर्म वीर्य कहा अनन्तर पण्डित पुरुषों का अकर्मक वीर्य कहताहूं सो सुनो ॥९॥ मोक्षार्थी जीव

कूर्म स० अपना अ० अंग स० अपना दे० शरीर स० संवरे ए० ऐसे पा० पाप मे० पंडित अ० आत्मा से स० संवरे ॥ १६ ॥ सा० संवरे ह० हस्त पा० पग म० मन प० पांच इन्द्रि पा० पाप प० परिणाम भा० भाषा दो० दोष ता० वैसा ॥ १७ ॥ अ० थोडा (अ० सूक्ष्म) मा० मान मा० माया तं० उसे प० मानकर प० परिहर [सु० सुना मे० मैंने इ० यहां ए० कितनेक ए० ऐसा वी० वीरका वी० वीर्य] (आ० आत्मार्थ स० समाचरे ए० ऐसा वी० वीरका वी वीर्य) सा० सा

सए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइ मेधावी । अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥ साहरे हत्थ पाए य । मणं पंचेंदियाणिय ॥ पावक च परीणाम । भासा दोसंच तारिसं ॥ १७ ॥ अणु (अइ) माणं च मायं च । तं पडिण्णाय पंडिए ॥ (सुयमे इह, मेगेसिं । एय वीरस्स वीरियं) (आय तट्ठं समादाय) (एयं वीरस्स वीरिय) सासा गारव णिहु

रे वैसे ही पण्डित पुरुष सम्यक् दर्शनादिक भावना से पापकर्म को मरण कालपर्यंत दूर करे ॥ १६ ॥ मुनि काचबा की तरह हस्त, पाद अंगोपांग, मन, पंचेन्द्रिय, पापकारी परिणाम, तथा भाषा दोष को संवरे ॥ १७ ॥ अल्प मान, माया, क्रोध, लोभ या अति मान, माया क्रोध, लोभ को जानकर त्याग करना यही वीर पुरुष का वीर्य कहा गया है अथवा मोक्षार्थी पुरुष चारित्र को अच्छी तरह अंगीकार करके क्रोधादिक जीतने का उद्यम करे यही वीर पुरुष का वीर्य है और साता गर्व रहित,

आचरे ॥ १८ ॥ पा० प्राणी ...
श० शा० गर्व जि० मायक उ० उपशान्त जि० भाचरे ... भाया पुक्त न० नहीं मु० मृषा बू० बोले ए० प्रकरे म० अदत्त भ नहीं मा० ग्रहण करे सा माया युक्त न० नहीं मु० मृषा बू० बोले ए० यह ध० धर्म सु० संयमी का ॥ १९ ॥ अ० उल्लंघते हैं वा० वचन से म० मन से न० नहीं प० पाछे म० सर्व स० संवृत दं० दमनेन्द्रिय आ० संयम को सु० अच्छी तरह आचरे ॥ २० ॥ क० किया क० कराता हुआ मा आगे पा० पाप स० सर्व तं० उसे णा० अच्छा जा० जानते हैं आ० आत्मगुप्त जि० जितेन्द्रिय ॥ २१ ॥ जे० जो अ० मूर्ख म० महा भाग्यवन्त वी० वीर अ०

ए। उवसंते णिहेचरे ॥ १८ ॥ पाणेय णाइवाएज्जा। अदिन्नं पियणादए ॥ सादियं ण मुसं बूया। एस धम्मे वुसीमओ ॥१९॥ अतिक्कमंति वायाए। मणसा वि न पत्थ-ए ॥ सव्वओ संवुडे दंते। आयाणं सुसमाहरे ॥ २० ॥ कडं च कज्जमाणं च। आगमिस्सं च पावगं ॥ सव्वं तं णाणुजाणंति। आयगुत्ता जिइंदिया ॥ २१ ॥ जे

तथा माया रहित पुरुष संयमानुष्ठान आचरे ॥ १८ ॥ प्राणियों का प्राण नहरणे, दंतशोधन भी विना दिया न लेवे, और माया सहित मृषा न बोले यही संयमवन्त साधु का धर्म कहा है ॥ १९ ॥ संयमी मुनि मन, वचन, और काया से महाव्रत को उल्लंघना वांच्छे नहीं और गुप्तेन्द्रिय बनकर सम्यक् ज्ञानादिक को तथा शुद्ध आहार को ग्रहण करे ॥२०॥ आत्मगुप्त, महानुभाव, साधु अपने को उद्देश कर जो पाप किया होवे, कराता होवे या भविष्यमें करायगा उसे मन वचन और कायासे अच्छा माने नहीं ॥२१॥

असम्यक्त्वी अ० अशुद्ध ते० उनका प० वीर्य स सफल हो० होता है स० सर्वतः ॥ २२ ॥ जे० जो बु० बुद्धिवन्त म० भाग्यवन्त वी० वीर स० सम्यक्त्वी सु० शुद्ध ते० उनका प० वीर्य अ० निष्फल हो० होता है स० सर्वतः ॥ २३ ॥ ते० उनका त० तप अ० अशुद्ध नि० निकल कर जे० जो म० महत् कु० कुल ध० जो प० निरर्थक वि० मानते हैं न० नहीं सि० प्रशंसनीय प० कहे ॥२४॥

अबुद्धा महाभागा । वीरा असमत्तदसिणो ॥ असुद्ध तेसिं परक्कंत । सफलं होइ सव्वसो ॥ २२ ॥ जेय बुद्धा महाभागा । वीरा सम्मत्तदसिणो ॥ सुद्ध तेसिं परक्कंत । अफलं होइ सव्वसो ॥ २३ ॥ तेसिंपि तवो असुद्धो । निक्खंता जे महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति । नसिलोगं पवेज्जए ॥ २४ ॥ अप्पपिंडासि पाणासि । अप्पं

कितनेक इस जगत्में व्याकरणादि शास्त्र पढकर विद्वान होते हैं, परंतु तत्त्व के अजान होनेसे वे मिथ्या मार्ग में पराक्रम फोरते हैं इस लिये उन का ऐसा कर्तव्य कर्म बंधक होता है ॥ २२ ॥ और पुण्यात्मा भाग्य शाली तत्त्वज्ञ जो पराक्रम करते हैं सो कर्मबंध रहित होते हैं ॥ २३ ॥ जो महत् कुलका त्याग करके साधु होते हैं, और महिमा पूजा के लिये तपस्यादिक करते हैं, उन का तप अशुद्ध जानना और जो आत्म-श्लाघा भी इच्छा न करते हुवे तप करते हैं, उन का तप शुद्ध जानना ॥ २४ ॥ अल्प आहार पानी करने

अ० अल्पाहारी पा० अल्पपानी पीनेवाला भ० अल्प बो० बोले सु० सुव्रत ... ॥ २८ ॥ झा० ध्यान जो० जोगे स० श्रवी दं० दमनेन्द्रिय वी० अगृद्धि स सदा भ० मत्तावंत ॥ २८ ॥ झा० ध्यान जो० जोगे स० मवर्ते वि० निग्रही का० काय वि० त्यागे ति० परीषह प० परम ण० मान कर आ० मोक्ष तक प० मवर्ते वि० ऐसा पे० करता हूं ॥ २९ ॥

भासेज्ज सुव्वए ॥ संते भिनिव्वुडे दंते । वीतगिद्धी सदाजए ॥ २५ ॥ झाणजो ग समाहट्टु । कायं विउसेज्ज सव्वसो ॥ तितिक्खं परमं णच्चा। आमोक्खाए परिव्वए जासि त्तिबेमि ॥ २६ ॥ इति वीरिइ नाम अट्ठमज्झयणं सम्मत्त

वाला, अल्प पानी का भोगनेवाला, पर को हितकारक वचन बोलनेवाला, सुव्रति, समाधान शीतल परिणामी, इन्द्रियों का दमनेवाला, सदा रस लोलुप रहित साधु शुभ ध्यान को आदरकर, काया का अशुभ योग की प्रवृत्ति का त्याग कर परिषह सहन करना यह प्रधान धर्म है, ऐसा जानकर जहाँ तक मोक्ष न होवे वहाँ तक दीक्षा पाले ऐसा श्री तीर्थंकर देव की आज्ञानुसार मैं कहता हूं यह वीर्यारूप अष्टम अध्ययन समाप्त हुवा इस अध्ययन में बाल वीर्य और पण्डित वीर्य का वर्णन करा जो धर्म में उद्यम कियाजाता है उसे पण्डित वीर्य कहते हैं इस लिये धर्म नामक नवमा अध्ययन कहते हैं. ॥ ९ ॥

॥ धर्म नामकं नवम मध्ययनम् ॥

क० कौनसा ध० धर्म अ० कहा मा० महात्मा म० बुद्धिमन् अं० सरल ध० धर्म ज० यथा तथ्य जि जिनेश्वर का (सा० लोकों) त० उसे सु० सुनो मे० मुझे ॥ १ ॥ मा० ब्राह्मण ख० क्षत्रिय वे० वैश्य चं० चांडाल अ० अथवा वो० बुक्कस ए० तापस वे० याचक सु० शुद्र मे० जो आ० आरंभ णि० निश्रित ॥ २ ॥ प० परिग्रह नि० गृद्ध वे० वैर [पा० पाप] वे० उन में प० वृद्धि होती है आ० आरम

कयरे धम्मे अक्खाए । माहणेण मतीमता ॥ अजुधम्मं जहातच्च । जिणाणं (जण्णगा) त सुणेहमे ॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा । चंडाला अदु वोक्कसा ॥ एसिया वेसिया सुद्दा । जेय आरंभ णिस्सिया ॥ २ ॥ परिग्गह निविट्ठाण । वेर (पाव) तेसिं

श्री जम्बू स्वामी सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं कि अहो पूज्य ! केवली भगवन्त श्री महावीर देवने कैसा धर्म कहा ? श्री जम्बू स्वामीने जब ऐसा प्रश्न किया तब सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं कि—वीत राग भाषित धर्म सरल शुद्ध तथ्य यथातथ्य है ऐसा श्री तीर्थंकर का धर्म में कहता हूं, उसे सुनो अथवा अहो लोकों मैं कहता हूं उसे सुनो ॥ १ ॥ इस जगत् में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल, बुक्कस, [वर्ण शंकर] तापस, वैश्य और शूद्र इत्यादि आरंभ के करनेवाले हैं ॥ २ ॥ आरंभ जीव [illegible]

सं० आसक्त का० कामी न० नहीं वे वे दु० दुःख के वि० विमोचक ॥ ३ ॥ आ मरण का कि० कृत्य मा० करके ना० ज्ञाति वि० विषयासक्त अ० अन्य ह० हरते हैं तं० उसका वि० धन क कर्मी क० कर्म से कि० दुःख पाता है ॥४॥ मा० माता पि० पिता ण्डु० पुत्रवधू भा० भाई भ० भार्या पु पुत्र ओ० अगजात न० नहीं ते० वे त० तुझे ता० रक्षणार्थ लु० दुःख पाते हैं स कर्मसे ॥ ५ ॥ ए यह अ० अर्थ स० देखकर प०

पवड्ढइ ॥ आरंभसंभिया कामा । न ते दुक्खविमोयगा ॥ ३ ॥ आघाय किच्च मा हेउं । नाइओ विसएसिणो ॥ अन्ने हरंति तं वित्तं । कम्मी कम्मेहिं किच्चति ॥ ४ ॥ माया पिया ण्हुसा भाया । भज्जा पुत्ताय ओरसा ॥ नालं ते तव ताणाय । लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एय मट्ठं सपेहाए । परमट्ठाणुगामियं ॥ निममो निरहंकारो ।

लुब्ध बनकर के जो जीवों की घात करते हैं वे इस संसार में उन जीवों की साथ वैर की वृद्धि करते हैं अथवा पाप की वृद्धि करते हैं जो कामभोग हैं वे आरंभ से भरे हुवे हैं; इस लिये कामभोग में आसक्त पुरुष संसार का दुःख से मुक्त नहीं होते हैं ॥३॥ विषयासक्त ज्ञाति स्वजनादि उस मृतक पुरुष को अग्निसंस्कारादि करके उस का उपार्जित किया हुवा द्रव्य ले जाते हैं और धन का कमानेवाला अपना कर्मों से संसार में पीड़ित होता है ॥ ४ ॥ माता, पिता, पुत्रवधू, भ्राता, भार्या, पुत्र और अंगजात ये सर्व कर्म भोगवनेवाले जीव को शरणभूत नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ धर्म रहित जीव को रखने में कोई समर्थ नहीं है.

पुरुषार्थ गामी नि० निर्ममत्वी नि० निरहंकारी च० विचरे भि० साधु जि० जिनाज्ञा में ॥ ६ ॥ चि० छो
इकर वि० धन पु पुत्र णा० ज्ञाति प० परिग्रह चि छोड़कर सं० अन्तक (ण० अनन्तक) सो०
शोक नि० निरपेक्षी प० प्रवर्ते ॥ ७ ॥ पु० पृथ्वी आ० अप् ते० तेउ वा० वायु त० तृण रु० वृक्ष बी०
बीज अं० अंडज पो० पोतज ज० जरायुज र० रसज सं० संस्वेदज उ० उद्भिज ॥ ८ ॥ ए० इन छ०

चरे भिक्खू जिणाहियं ॥६॥ चिच्चा वित्तं च पुत्ते य। णाइओ य परिग्गहं ॥ चिच्चा
ण अतगं (णतग) सोय। निरवेक्खो परिव्वए॥ ७ ॥ पुढवी आउगणि वाउ।
तण रुक्खस्स बीयगा॥ अंडया पोय जराउ। रस ससेय उब्भिया॥ ८ ॥ एतेहिं छ-

ऐसा सम्यक् प्रकार से विचार करके मोक्षानुगामी साधु निर्ममत्व और निरहंकारी होता हुआ जिन भाषित
संयम मार्ग को आचरे ॥ ६ ॥ धन, पुत्र, ज्ञाति, स्वजन परिग्रह तथा अनंत शोक का त्याग करके पुत्रादिक
की अपेक्षा रहित विचरे ॥ ७ ॥ पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, तृण, वृक्ष, बीज आदि वनस्पति
काय, तथा अण्डज, पोतज, जरायुज, संस्वेदज और उद्भिज ये त्रस काय इन छही काया के सूक्ष्म बादर
पर्याप्त, अपर्याप्त, इत्यादि भेदों को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से मन, वचन और काया करके
[illegible] करने से पूर्वोक्त जीवों की विराधना होती है [illegible]

उसको वि० विद्वान् प० जानकर म० मनसे का० कायासे व० वचनसे प० नहीं आ० आरंभी प० नहीं प० परिग्रही ॥ ९ ॥ मु० मृषावाद म० मैथुन उ० परिग्रह अ० अदत्त स० शस्त्र आ० आदान लो० लोकमें तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १० ॥ प० माया म० लोभ य क्रोध उ० मान धू० त्यजे आ० आदान लो० लोकमें तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ ११ ॥ धो० धोना र रंगना व० नखादिका सुधारना वि० जुलाब व० वमन अं०

हिं काएहिं । त विज्ज परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्केण । ण रंभी ण परिग्गही ॥ ९ ॥

मुसावाय वहिद्धं च । उग्गहं च अजाइयं ॥ सत्था दाणाइं लोगंसि । त विज्जं परिजाणिया ॥ १० ॥ पलिउंचण च भयणं च । थंडिल्लुस्सयणाणिय ॥ धूणादाणाइं लोगंसि । त विज्जं परिजाणिया ॥ ११ ॥ धोयण रयण चेव । वत्थीकम्म विरेयणं ॥

ये पांच इस लोक में शस्त्ररूप तथा कर्म ग्रहण करने के कारण हैं उसे पण्डित ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागे ॥ १० ॥ क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों कषायें लोक में कर्म ग्रहण करने के कारण हैं इस लिये पण्डित उसे ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागे ॥ ११ ॥ हस्त, पाँव वस्त्रादि धोना, रंगना, नख रोमादिक का अच्छा करना, जुलाब लेना, वमन करना, अंजन करना, ये संस्कार तथा अन्य शरीरादि संस्कारों संयम के उपघात करने वाले हैं ऐसा जानकर उसका

प्रमार्ग गामी नि० निर्ममत्वी नि० निरहंकारी च० विचर भि० साधु भि० भिनाज्ञा में ॥ ६ ॥ चि० छोडकर ध० धन पु० पुत्र णा० ज्ञाति प० परिग्रह चि० छोडकर अं० अन्तक (प० अनन्तक) सो० शोक नि० निरपेक्षी प० प्रवर्ते ॥ ७ ॥ पु० पृथ्वी आ० अप् ते० तेउ वा० वायु त० तृण रु० वृक्ष बी० बीज अं० अंडज पो० पोतज ज० जरायुज र० रसज सं० स्वेदज उ० उद्भिज ॥ ८ ॥ ए० इन छ०

परे भिक्खू जिणाहियं ॥६॥ चिच्चा वित्तं च पुत्ते य। णाइओ य परिग्गहं ॥ चिच्चा ण अतगं (णतगं) सोय। निरवेक्खो परिव्वए ॥ ७ ॥ पुढवी आउगणि वाऊ। तण रुक्खस्स बीयगा ॥ अंडया पोय जराऊ। रस संसेय उब्भिया ॥ ८ ॥ एतेहिं छ-

ऐसा सम्यक् प्रकार से विचार करके मोक्षानुगामी साधु निर्ममत्व और निरहंकारी होता हुवा जिन भाषित संयम मार्ग को आचरे ॥ ६ ॥ धन, पुत्र, ज्ञाति, स्वजन परिग्रह तथा अनंत शोक का त्याग करके पुत्रादिक की अपेक्षा रहित विचरे ॥ ७ ॥ पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, तृण, वृक्ष, बीज आदि वनस्पति काय, तथा अण्डज, पोतज, जरायुज, संस्वेदज और उद्भिज ये त्रस काय इन छवी काया के सूक्ष्म बादर पर्याप्ता, अपर्याप्ता, इत्यादि भेदों को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे मन, वचन और काया करके आरंभ परिग्रह करे नहीं क्यों कि आरंभ परिग्रह करने से पूर्वोक्त जीवों की विराधना होती है यह

उ० प्रसाक्त क० पीठी तं०उसे वि०विद्वान् प० जानकर ॥१५॥ सं०मसपारी क०कीड़ कि०क्रिया प० प्रश्न ह० निर्णय सा० शैय्यांतर पिं० आहार स० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १६ ॥ अ० अर्थोपार्जन न० नहीं सि० सीखे वे० अधर्मप्रापक पो० नहीं व० बोले ह० हस्तकर्म वि० विवाद तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १७ ॥ पा० परगसी छ० छत्र णा० गृत वा० पखा प० अन्य से क्रिया अ० अन्योन्यसे तं० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १८ ॥ उ० बड़ीनीत पा० लघुनीत ह० हरिकाय में प० नहीं क०

परिजाणिया ॥ १५ ॥ सपसारी कयकिरिए । पसिणाय तणाणिय ॥ सागारियं च पिंड च । तं विज्ज परिजाणिया ॥ १६ ॥ अठ्ठावय न सिक्खिज्जा । वेहाईयं च णो वए ॥ हत्थकम्म विवाय च । त विज्ज परिजाणिया ॥ १७ ॥ पाणहा उयछत्ते च । णालीय वालवीयण ॥ परकिरिय अन्नमन्न च । त विज्ज परिजाणिया ॥१८॥

कारण मानकर परिहार करना ॥ १५ ॥ गृह[illegible] का काय करना, गृहस्थ का कार्यकी प्रशंसा करना, ज्योतिषादिक का निर्णय करना, तथा शैय्यात[illegible] पिण्ड का आहार लेना इन सब को कर्मबन्ध का कारण जानकर त्यागना ॥ १६ ॥ अर्थ कमानेका [illegible] ॥ (या तो द्यूत क्रीडा) सीखें नहीं, हिंसाकारी वचन बोलें नहीं हस्त कर्म, कलह तथा किसी प्र[illegible] के विवाद पण्डित पुरुषों जानकर करें नहीं ॥ १७ ॥ पाँव में पगरखी, पावड़ी, मौजे विगेरह [illegible] इस त[illegible]र का निवारन के लिये छत्र धारन करना, द्यूत खेलना, पंखा से हवा करना, अपना कार्य [illegible] त किया ॥ [illegible]राना, या तो परस्पर कार्य करना इन सब

भजन प० शरीर शृंगार स० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥१२॥ ग० सुगंध म० माला सि० स्नान दं० दा तन त० तथा प० परिग्रह इ० स्त्रीकर्म तं० उसे वि० विद्वान् प० जा नकर ॥ १३ ॥ उ० उद्देशिक की० मोल लीया हुवा पा० उधार लीया हुवा घे० निश्चय आ० लाया हुवा पू० आधाकर्मी अ० अशुद्ध उ० उसे वि० विद्वान् प० जानकर ॥ १४ ॥ आ० बलीष्ट आहार अ० भजन दि गि गृद्धि उ० उपघातकर्म

धमणाजणपलीमंथं । त विज्ज परिजाणिया ॥ १२ ॥ गध मल्लसिणाण च । दंतप

वखालण तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्म च । त विज्ज परिजाणि या ॥ १३ ॥ उद्देसियं

कीयगडं । पामिच्च चेव आहडं ॥ पूयं अणेसणिज्ज च । त वि ज्ज परिजाणिया ॥१४॥

आसूणि मक्खिराग च । गिद्धुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलण च कक्कं च । त विज्जं

परिहार करे ॥ १२ ॥ गंध, कुसुमादिक की माला, स्नान, दंतप्रक्षालन, परिग्रह, स्त्री कर्म इत्यादिक को परिज्ञा से जानकर उस का त्याग करे ॥ १३ ॥ साधु के निमित्त कियाहुवा, मोल लियाहुवा, उधार लिया हुवा, सामने लायाहुवा, तथा पूति कर्मवाला आहार अनेषणिक जानकर साधु को ग्रहण करना नहीं ॥१४॥ जिस वस्तु खाने से विकार उत्पन्न होवे वैसी वस्तु, आंख का अंजनादिक, रस लोलुपता, दूसरे की घात करना, हस्तपादादिक का धोना, तथा लोद्र पीठी आदि से शरीर का साफ करना, इन को कर्मबन्ध का

व० मसाधन क० पाग व०चस वि०मद्वान् प० मानकर ॥१५॥ स०मसयारि क०कीहुइ कि०क्रिया प० मप्त त निर्णय सा० शैय्यातर पि० माहार त० चसे वि० विद्वान् प० मानकर ॥ १६ ॥ अ० अर्थोपार्जन न० नहीं सि० सीखे वे० अधर्मवाक्य णो० नहीं व० बोले ह० हस्तकर्म वि० विवाद तं० चसे वि० विद्वान् प० मानकर ॥ १७ ॥ पा० परगसी छ० छत्र णा० धूत बा० पखा प० मन्य से क्रिया अ० अन्योन्यसे तं० चसे वि० विद्वान् प० मानकर ॥ १८ ॥ उ० वडीनीत पा० लघुनीत ह० हरिकाय में प० नहीं क०

परिजाणिया ॥ १५ ॥ सपसारी कयकिरिए । पसिणायय तणाणिय ॥ सागारियं च पिंड च । तं विज्ज परिजाणिया ॥ १६ ॥ अट्ठावयं न सिक्खिज्जा । वेहाईयं च णो वए ॥ हत्थकम्म विवाय च । त विज्ज परिजाणिया ॥ १७ ॥ पाणहा उयछत्तं च । णालीय वालवीयण ॥ परकिरिय [illegible]क्षमम च । त विज्ज परिजाणिया ॥१८॥

कारण जानकर परिहार करना ॥ १५ ॥ गृह[illegible] काय करना, गृहस्थ का कार्यकी प्रशंसा करना, ज्योतिषादिक का निर्णय करना, तथा शैय्या[illegible] पिण्ड का आहार लेना इन सब को कर्मबन्ध का कारण जानकर त्यागना ॥ १६ ॥ अर्थ कमानेका [illegible] ॥ (या ता धूत क्रीडा) सीखें नहीं, हिंसाकारी वचन बोलें नहीं हस्त कर्म, कलह तथा किसी प्रक[illegible]रण क[illegible] विवाद पण्डित पुरुषों जानकर करें नहीं ॥ १७ ॥ पाँव में पगरखी, पावडी, मोजे विगेरह [illegible] इस [illegible] का निवारन के लिये छत्र धारन करना, धूत खेलना, पंखा से हवा करना, अपना कार्य [illegible]त किया ॥ [illegible]से वचन बोले [illegible]रना, या तो परस्पर कार्य करना इन सब

अणुचिंतिय वियागरे ॥ २५ ॥ तत्थिमा तइया भासा । जं वदित्ता णुतप्पति ॥ जं छन्नं त न वत्तव्व । एसा आणा णियंठिया ॥ २६ ॥ होलावायं सहीवायं । गोयवायं च नो वदे ॥ तुमं तुमंति अमणुन्नं । सव्वसो तं ण वत्तए ॥ २७ ॥ अकुसीले सया भिक्खू । णेव संसग्गियं भए ॥ सुहरूवा तत्थुवस्सग्गा । पडिबुज्झेज्ज ते विऊ ॥ २८ ॥

प० नहीं प० प्रकाशे म० मर्म भा० भाषा स्थान वि० ऐसे अ० विचार कर वि० बोले ॥२५॥ त० उसमें इ० यह त० तीसरी भा० भाषा जं० जो व० बोलनेसे अ० दु:ख होता है जं० जो छ० हिंसक तं० उसे न० नहीं व० बोले ए० यह आ० आज्ञा नि० निर्ग्रन्थ की ॥ २६ ॥ हो० मूर्ख स० मित्र गो० नीच गोत्रिय नो० नहीं व० बोले तु० तू अ० अमनोज्ञ स० सर्वथा तं० उसे ण० नहीं व० बोले ॥ २७ ॥ अ० अकुशील स० सदा भि० साधु

॥ २५ ॥ सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार ये चार भाषा हैं इन में से तीसरी मिश्र भाषा की जिससे अपने को पश्चाताप करना पडे वैसी भाषा बोले नहीं तथा हिंसाकारी वचन बोले नहीं यही तीर्थंकर देव की आज्ञा है ॥ २६ ॥ रे मूर्ख, रे सखी, अरे नीच गोत्रिय, अरे तूं ऐसे अमनोज्ञ शब्द बोलने का त्याग करे क्यों की साधु को ऐसा वचन बोलना योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ पण्डित सदा ब्रह्मचारी रहे और जिन शासन से विरुद्ध अनाचारी पार्श्वस्थ का संसर्ग करे नहीं क्यों कि इस से सुखरूप संयम के घात करने वाले उपसर्ग उत्पन्न होते हैं इसलिये संयम का घातक संसर्ग को मान कर उन का परिहार करे.

प० नहीं सं० संसर्ग म० सेवे सु० सुखरूप व० वहां उ० उपसर्ग प० जाने से वे वि० विद्वान् ॥ २८ ॥ न० नहीं अं० अंतराय प० गृहस्थ के घर में णि० बैठे गा० गाम के कु० कुमार कि० क्रीडा न० नहीं म० समय प्रसारे इ० ऐसे मु० साधु ॥ २९ ॥ अ० अनुत्सुक उ० अच्छे भोग में ज० यत्नावंत प० प्रवर्ते च० विचरे अ० अप्रमादी पु० स्पर्शाया हुवा त० वहां हि० सहनकरे ॥ ३० ॥ ह० हणाया हुवा ण० नहीं कु० क्रोध करे बु० बोलाया हुवा न० नहीं सं० प्रज्वले सु समभाव से अ सहन करे ण नहीं को०

ननत्थ अंतराएणं । परगेहेण णिसीयए ॥ गामकुमारियं किड्ड । नातिवेल हसे मुणी ॥ २९ ॥ अणुस्सओ उरालेसु । जयमाणो परिव्वए ॥ चरियाए अप्पमत्तो । पुट्ठो तत्थ हियासए ॥ ३० ॥ हम्ममाणो ण कुप्पेज्जा । बुच्चमाणो न संजले ॥

॥२८॥ साधु गृहस्थ के घर वृद्धावस्था तथा रोगादिक कारण विना बैठे नहीं * वैसे ही ग्राममें बालक क्रीडा, हास्य, कंदर्प, हस्त स्पर्श आदि भी करे नहीं, तथा मतिस्मेसनादिक की मर्यादा को भी उल्लंघे नहीं ॥ २९ ॥ गृहस्थ के प्रधान कामभोगों में अनासक्त होता हुवा, तथा संयम में यत्न करता हुवा अप्रमत्तपने विचरे. और विहार करने में जो जो उपसर्ग परीषह आवें उन्हें अदीनपने से सहन करे ॥ ३० ॥ कोई लकडी मुष्टयादिक से प्रहार करे या तो कोई दुर्वचन से आक्रोश उत्पन्न करे; परंतु उन के पर क्रोध

* लब्धिवन्त साधु धर्मोपदेश करने के लिये गृहस्थ के गृह में बैठे ऐसा टीकाकार कहते हैं

मि बोले ॥२८॥

कोलाहल क० करे ॥ ३१ ॥ क० मात्र सुने का० काम भोगको प० नहीं प० वांच्छे वि० विवेक ए० ऐसा आ० कहा आ० आचरणीय सि० सीखे बु० गुरु की अ० पास स० सदा ॥३२॥ सु० सुनने की इच्छावाला उ० रहे सु० गीतार्थ सु० सुतपस्वी वी० वीर मे जो अ० आत्मार्थी धि० धैर्यवन्त जि० जितेन्द्रिय ॥३३॥ गि० गृह में दी० ज्ञान अ० नहीं देखता हुवा पु० पुरुष दा० आदानीय न० मनुष्य ते० वे वी० वीर बं० बंधन

सुमणे अहियासिज्जा । णय कोलाहल करे ॥ ३१ ॥ लद्धे कामे ण पत्थेज्जा । विवेगे एवं माहिए ॥ आयरियाइ सिक्खेज्जा । बुद्धाण अंतिए सया ॥ ३२ ॥ सुस्सूसमाणो उवासेज्जा । सुप्पन्न सुतवस्सियं ॥ वीरा जे अत्तपन्नेसी । धितिमंता जिइन्दिया ॥३३॥ गिहेदीवम पासंता । पुरिसा दाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुक्का । नावकंखंति

करे नहीं और अच्छा मन से सब सहन करे वैसे ही परीषह का दुःख से कोलाहल भी नहीं करे ॥ ३१ ॥ प्राप्त काम भोगों को साधु भोगवे नहीं यही विवेक श्री तीर्थंकर देवने कहा है आचरणीय जो ज्ञानदर्शन चारित्र उन को आचार्यादिक की पास से सीखे ॥ ३२ ॥ जो साधु धीर, सत्यधर्म के गवेषनेवाले, धर्मवंत तथा जीतेन्द्रिय होवे वे शास्त्र सुनने के इच्छुक बनकर गीतार्थ तथा सम्यक् तप के करनेवाले गुरु की सेवा करे ॥ ३३ ॥ सत्यधर्म की गवेषणा करनेवाले मनुष्य गृहवास में ज्ञान रूप दीपक को अथवा संसार में से उद्धार होने का द्वार नहीं देखते हैं, इस से वे साधुपना धारन करते हैं। फिर रागद्वेष रूपी बंधन से मुक्त जीव

गे मुक्त न० नहीं भ० इच्छते हैं जी० जीवितव्य ॥ २४ ॥ अ० अगृद्ध स० शब्द फा० स्पर्श में आ० आरं भ में अ० अनासक्त स० सर्व त० उनको स० धर्मसे अ गया हुवा ज जो ए यह छ कहा प० प्रवृत्त ॥ २५ ॥ अ० प्रवृत्त मा० मान मा माया च० और त० उसे प० जानकर पं पंडित गा० गर्व स० सर्व णि० निर्वाण स साधे मु० साधु त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २६ ॥

जीविय ॥ २४ ॥ अगिद्धे सद्दफासेसु । आरंभेसु अणिस्सिए ॥ सव्वं तं समयातीत । जमेतं लवियं बहु ॥ २५ ॥ अइमाणं च मायं च । तं परिण्णाय पंडिए ॥ गारवाणि य सव्वाणि । णिव्वाणं संधए मुणी—त्तिबेमि ॥ २६ ॥ इति धम्मनाम नवम मज्झयणं समत्तं

असंयम जीवितव्य की वांच्छा नहीं करते हैं ॥ २४ ॥ शब्द, रूप, गंध, रस, और स्पर्श इत्यादि में अमूच्छित तथा आरंभ में अनासक्त प्रवर्तना और अध्ययन का प्रारंभ से लगाकर जो जो कहा है सो सो जनागम से विरुद्ध है, ऐसा जानकर उस का आचार करे नहीं ॥ २५ ॥ अतीत क्रोध, मान, माया तथा लोभ और रस गारव, ऋद्धि गारव तथा साता गारव का सर्वथा परिहार करे और मुक्ति की वांच्छना करे यह धर्म नामा नवम अध्ययन समाप्त हुवा इस में धर्म का अधिकार कहा यह धर्म समाधि विना नहीं हो सकता है इस लिये समाधि का स्वरूप बतानेवाला दशमा अध्ययन कहते हैं

समाधि नामक दशम मध्ययनम्

मा० कहा म० मतीमान् अ० जान कर ध० धर्म अं० सरल स० समाधि त० उसे सु० सुन अ० अप्र तिज्ञ भि० साधु स० समाधि प० प्राप्त अ० नियाणा रहित सु० अच्छी तरह प० प्रवर्ते ॥ १ ॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् दि० दिशा में त० त्रस था० स्थावर जे० जो पा० प्राणी है ह० हस्त पा० पाँव से से० संयम में रहा हुआ अ० अदत्त प० दूसरे से णो० नहीं ग० ग्रहण करे ॥ २ ॥ सु० सूक्ष्म्यात प०

आघ मईम मणुवीय धम्म । अजू समाहिं तमिण सुणेह ॥ अप्पडिन्ने भिक्खू समाहि पत्ते । अणियाणभूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्ढ अहेय तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जेय पाणा ॥ हत्थेहिं पाएहिं य सजामित्ता । अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा ॥२॥

श्री केवली भगवन्तने केवलज्ञान से जानकर धर्म कहा है कि जहां सरलता है, वहां समाधि है ऐसी समाधि मैंने श्री केवली भगवन्त से सुनी है वैसे ही तुझे कहता हूं सो सुन जो साधु संयम पालने में इहलोक की तथा परलोक की वांच्छा न करे तथा आश्रव रहित होता हुआ संयम पाले वही साधु समाधि वाला कहा जाता है ॥ १ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो त्रस और स्थावर जीव रहे हुवे हैं उन को हाथ, पाँव से या समस्त शरीर से हिंसा न करे वैसे ही अदत्तादानादि सूक्ष्म अंगीकार करे ॥ २ ॥

धर्म सि० सितिमिच्छा वि० रहित कम० मास हुवे च० विचरे आ० आत्म तुल्य प० प्रजा आ० आय न० नहीं कु० करे इ० इस जी० जीवितव्यार्थी च० उपचय न० नहीं कु० करे सु० सुतपस्वी भि० साधु ॥३॥ त० सर्वेन्द्रिय नि० निवृत्त प० प्रजा च० विचरे मु० साधु स० सर्वथा वि० रहित पा० देखो पा० प्राणी दु० पृथक् २ स० सत्व दु० दुःख से अ० पीड़ाता हुवा प० दुःखी ॥ ४ ॥ ए० इन में बा० अज्ञानी (ए० ऐसे अज्ञानी) प० करते हुवे आ० पर्यटन करते हैं (आ० दुःख पाते हैं) क० कर्म पा० पाप अ० अति

सुयक्खाय धम्मे वितिगिच्छतिण्णे । लाढे चरे आयतुले पयासु ॥ आयं न कुज्जा इह जीवियट्ठी । चय न कुज्जा सुतवस्सि भिक्खू ॥ ३ ॥ सव्विंदियाभिनिव्वुडे पयासु ॥ चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ॥ पासाहि पाणेय पुढोवि सत्ते । दुक्खेण अट्टे परितप्पमा णे ॥ ४ ॥ एतेसु बालेय (एव बालेय) पकुव्वमाणे । आवट्टति (आउट्टति) क-

सम्यक्त्व पुरुष वीतरागभाषित धर्म को अच्छा कहा है ऐसा माने, तथा उस में संदेह रहित होवे, और सर्व जीवों को आत्म तुल्य मानता हुवा निर्दोष आहार की गवेषणा करके विचरे असंयम जीवितव्य के लिये पापाश्रव करे नहीं वैसे ही सुतपस्वी साधु धन धान्यादिकका संचय भी करे नहीं ॥ ३ ॥ समाधिवन्त पुरुष स्त्रियोंमें निरभिलाषी होता हुवा सर्वथा प्रकारसे बाह्याभ्यन्तर संग रहित विचरे. दुःखसे दुःखी तथा संसार रूप कीचडमें फसते हुवे प्राणि को पृथक् २ देख कर के उन की रक्षा करे ॥ ४ ॥ इस तरह पृथिव्या

पाव की० करता है पा० पाप कर्म नि० उदीरणा करता हुवा क० करता है क० कर्म ॥ ५ ॥ आ० दीन वृत्ति (भा० दीन भोगनी) क० करते हैं पा० पाप मं० मानकरके ए० एकांत स० समाधि आ० कहा बु० तत्त्वज्ञ स० समाधि र० रक्त वि० विवेकी पा० प्राणी अ० अतिपात वि० विरत ठि० स्थितात्मा (ठि० स्थिर सूत्र) ॥ ६ ॥ स० सर्व ज० जगत स० समता से पे० देखने वाला प० प्रिया प्रिय क० किसको णो०

म्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्म । निउजमाणे उ करेइ कम्म ॥ ५ ॥ आदीणवित्ती व (आदीणभोइस्वि) करेति पावं । मंताउ एगंत समाहि माहु ॥ बुद्धे समाहीपरते विवेगे । पाणातिवाता विरते ठियप्पा (ठियची) ॥ ६ ॥ सव्वं जगं

रिक जीव को अनेक संघट्टन परितापादिक से दुःख देता हुवा उसी पाप में दुःखी होता है अर्थात् वैसे ही दुःखों का भोक्ता बनता है. अब पाप का स्वरूप कहते हैं जीवों की घात स्वयं करके, या अन्य की घात करा के, या घात करनेवाले की अनुमोदना करके जीव ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकार के कर्म बांधता है ॥ ५ ॥ आदीनवृत्तिवाला (दीनता से आहार का लेनेवाला) भी रस लोलुपता से पाप कर्म बांधता है ऐसा मानकर श्री तीर्थंकर देवने आहारादिक में भी आसक्ति न करना ऐसा एकान्त समाधि मार्ग बतलाया है इस तरह समाधि में रहनेवाला तत्त्वज्ञ प्राणातिपातादिक की घात नहीं करता हुवा संयम में स्थितात्मा रहे ॥ ६ ॥ और सर्व जीवों को अपनी आत्मा समान देखे, किसी जीव पर प्रीति

नहीं कु० करे, उ० सावधान होकर दी० दीनता पु० और वि० सहताहुआ से० पूजा सि० श्लाघा क० कामी म ७ ॥ आ० आधा कर्मी चे० निश्चय नि० लेने को नि० परिभ्रमण करे वि० सुता हुआ इ० स्त्री में स० आसक्त पु० और बा० अज्ञानी प० परिग्रह चे० निश्चय प० करता हुआ ॥ ८ ॥ वे० वेरानुगृद्धि (आ० आरंभ में आसक्त) णि० संचय क० करता है इ० यहां से० चु० मरकर दु० दुःख म० परमार्थ से

तं समयाणुपेही । पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥ उट्ठाय दीणे य पुणो विसण्णो ।
सपूयणं चेव सिलोयकामी ॥ ७ ॥ आहाकडं चेव निकाममीणे । नियामचारीय वि
सण्णमेसी ॥ इत्थीसु सत्तेय पुढोय बाले । परिग्गहं चेव पकुव्वमाणे ॥ ८ ॥ वेराणु
गिद्धे (आरंभसत्तो) णिचयं करेति । इओ चुतेसु दुहमट्ठ दुग्गं ॥ तम्हाउ मेधावि

भाव तथा अप्रीति भाव भी न करे, वे ही समाधिधर्म पाल सकते हैं परंतु कितनेक संयम अंगीकार किये बाद उसे पालने में असमर्थ होने से छोड कर कुंडरीक की तरह संसारमें संलग्न होवे हैं कितनेक धन धान्यादिक से पूजा चाहते हैं तथा लोक में अपनी श्लाघा कराने के लिये व्याकरण ज्योतिषादिक कुशास्त्र का अभ्यास करते हैं ॥ ७ ॥ वह असमाधिवाला पुरुष आधाकर्मी आदि दोष को अत्यंत वांछता हुआ, तथा उस में परिभ्रमण करता हुआ संसार रुपी कीचड में फसा रहता है और भी वह मूर्ख स्त्री का, हावभाव में आसक्त बनकर के स्त्री के लिये धन धान्यादिक का संचय करता हुआ पाप का संचय करता है ॥ ८ ॥ जो

मूर्ख म० अहो रात्रि प० संताप मा० आर्तध्यान मू० मूर्ख अ० अजरामरवत् ॥ १८ ॥ ध० ढोर
॰ धन प० पशु स० सर्व से० स्नेहो० ब० बंधु जे० जो पि० पिता मि० मित्र ला० लालन पालन करता
ते० वे ए० जाते हैं मो० मोह अ० दूसरे ज० मनुष्य तं० उसका ह० हरते हैं वि० धन ॥ १९ ॥
० सिंह ज० जैसे खु० क्षुद्र मि० मृग च० चरते हुवे दू० दूर च० फिरते हैं प० डरते हुवे
एसे मे० पंडित स० जानकर ध० धर्म दू० दूर पा० पाप प० वर्जे ॥ २० ॥ सं० जानता

आवक्खयं चेव अबुज्झमाणे । ममाति से साहसकारिमंदे ॥ अहोयराओ परितप्पमा-
णे ॥ अट्टेसु मूढे अजरामरेव्व ॥ १८ ॥ जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं । जे बंधवा जे
य पियाय मित्ता ॥ लालप्पती से वियएइ मोहं । अन्नेजणा तंसि हरंति वित्तं ॥ १९ ॥
सीहं जहा खुड्ड मिगा चरंता । दूरे चरंति परिसंकमाणा ॥ एवं तु मेहावि समिक्ख
धम्मं । दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥ संबुज्झमाणे उ णरे मतीमं । पावाउ अप्पा-

ानी आयुष्य का क्षय नहीं जानते हुवे ममत्व करते हैं, और रात्रिदिन पश्चाताप करते हुवे तथा आर्तध्यान कर
े अपने को अजरामर मानते हुवे संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ १८ ॥ धन पशु आदि सर्व छोड़
इसलिये उन में ममत्व मत कर और जो भाइ, माता, पिता कि जिनके लिये तू मोह में पड़ता है वे
धन का हरण करेंगे ॥ १९ ॥ जैसे वन में विचरने वाले मृगादि क्षुद्र जंतु सिंहसे डरते हुवे दूर
दूर फीरते हैं वैसे ही पण्डित पुरुष धर्म को सम्यक् प्रकारे जान कर पाप से डरते ॥ २० ॥

हुआ प० मनुष्य म० बुद्धिमंत पा० पापसे आ० आत्मा नि० दूर करे हिं० हिंसासे प० उत्पन्न हुवे दु० दोनों प्रकार के म० मानकर वे० वैरका कारण म० महाभय (स० सब नि० मोक्ष सन्मुख प० म मर्व) ॥ २१ ॥ मु० मृषा न० नहीं बू० बोले मु० साधु अ० आत्मार्थी नि० निर्वाण ए० यह क० संपूर्ण स० समाधि स० स्वयं न० नहीं कु० करे न० नहीं का० करावे क० करते को न० नहीं अ० अच्छा माने ॥ २२ ॥ सु० शुद्ध ए० एषणा जा० पावे म० नहीं दू० दूषित करे अ०

य निव्वएज्जा ॥ हिंसप्पसूयाइ दुहाइ मत्ता । वेराणुबंधीणि महब्भयाणि (सनिव्वा णमूएओ परिव्वएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणी अत्तगामी । णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ॥ सयं न कुज्जा ण न कारवेज्जा । करंतमन्नंपि य णाणुजाणे॥ २२॥ सुद्धे सि या जाए न दूसएज्जा । अमुच्छिए णय अब्भुववन्ने ॥ धितिमं विमुक्के णय पूयणट्ठी ।

बुद्धिमान साधु सम्यक् धर्म को जानकर सावद्यानुष्ठान से निवर्ते, और हिंसा से उत्पन्न हुवा दुःख को कर्म बंध का कारण मानकर पापसे निवर्ते (जैसे निवृत्ति वाला और किसी व्यापार में प्रवृत्ति नहीं करता है वैसे ही साधु सावद्यानुष्ठान से रहित विचरे) ॥ २१ ॥ मोक्षगामी साधु मृषा बोले नहीं, क्योंकि मृषा से निवर्तना यही मोक्ष रूप समाधिका संपूर्ण कारण है इसलिये साधु स्वयं मृषा बोले नहीं अन्य की पास मृषा बोलावे नहीं मृषा बोलने वाले को अच्छा भी माने नहीं ॥ २२ ॥ शुद्ध निर्दोष आहार की प्राप्ति होने पर

मं० मूर्ख म० भरो रात्रि प० पश्चाताप म० आर्तध्यान मू० मूर्ख म० अमरापरस्त् ॥ १८ ॥ ज० छोड वि० धन प० पशु स० सर्व जे० जो बं० बंधु जे० जो पि० पिता मि० मित्र ला० लालन पालन करता है से० वे ए० नाचते हैं मो० मोर अ० दूसरे म० मनुष्य तं० उसका ह० हरते हैं वि० धन ॥ १९ ॥ सी० सिंह ज० जैसे खु० छुद्र मि० मृग च० चरते हुवे दू० दूर च० फिरते हैं प० डरते हुवे ए० एसे मे० पंडित स० जानकर ध० धर्म दू० दूर पा० पाप प० वर्जे ॥ २० ॥ सं० जानता

आउक्खयं चेव अबुज्झमाणे । ममाति से साहसकारिमंदे ॥ अहोयराओ परितप्पमाणे ॥ अट्टेसु, मूढे अजरामरेव्व ॥ १८ ॥ जहाहि वित्तं पसवोय सव्वं । जे बंधवा जेय पियाय मित्ता ॥ लालप्पती से वि य एइ मोहं । अन्नेजणा तंसि हराति वित्तं ॥ १९ ॥ सीहं जहा खुड्ड मिगा चरंता । दूरे चरंति परिसंकमाणा ॥ एवं तु मेहावि समिक्ख धम्मं । दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥ संबुज्झमाणे उ णरे मतीमं । पावाउ अप्पा-

अज्ञानी आयुष्य का क्षय नहीं जानते हुवे ममत्व करते हैं, और रात्रिदिन पश्चाताप करते हुवे वथा आर्तध्यान कर करके अपने को अजरामर मानते हुवे संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ १८ ॥ धन पशु आदि सर्व छोड़ेंगे इसलिये उन में ममत्व मत कर. और जो भाई, माता, पिता कि जिनके लिये तू मोह में पड़ता है वे तेरा धन का हरण करेंगे ॥ १९ ॥ जैसे वन में विचरने वाले मृगादि क्षुद्र जंतु सिंहसे डरते हुवे दूर दूर फिरते हैं वैसे ही पण्डित पुरुष धर्म को सम्यक् प्रकारे जान कर पाप से दूर रहे ॥ २० ॥

हुआ प० प्रविवेक पा० पापसे मा० आत्मा नि० दूर कर हिं० हिंसासे प० उत्पन्न हुवे दु० होवे मनुष्य ... प्रकार के वे० जानकर वे० वैरका कारण म० महाभय (स० सब नि० मोक्ष सन्मुख ए० न सर्व) ॥ २१ ॥ मु० मृषा न० नहीं बू० बोले मु० साधु अ० आत्मार्थी णि० निर्वाण ए० यह कृ० कृ २१ स० समाधि स० स्वयं न० नहीं कु० करे न० नहीं का० करावे क० करते को न० नहीं अ० अच्छा जाने ॥ २२ ॥ सु० शुद्ध ए० एषणा जा० पावे न० नहीं दू० दूषित करे अ०

प निव्वइएज्जा ॥ हिंसप्पसूयाइं दुहाइं मत्ता । वेराणुबंधीणि महब्भयाणि (सनिव्वा
णमूयओ परिव्वएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणी अत्तगामी । णिव्वाणमेयं कसिणं
समाहिं ॥ सयं न कुज्जा ण न कारवेज्जा । करंतमन्नंपिय णाणुजाणे॥ २२॥ सुद्धे सि-
या जाए न दूसएज्जा । अमुच्छिए णय अज्झोववन्ने ॥ धितिमं विमुक्के णय पूयणट्ठी ।

बुद्धिमान साधु सम्यक् धर्म को जानकर सावद्यानुष्ठान से निवर्ते, और हिंसा से उत्पन्न हुआ दुःख को कर्म बंध का कारण जानकर पापसे निवर्ते (जैसे निवृत्ति वाला जीव किसी व्यापार में प्रवृत्ति नहीं करता है वैसे ही साधु सावद्यानुष्ठान से रहित विचरे) ॥ २१ ॥ मोक्षगामी साधु मृषा बोले नहीं, क्यों कि मृषा से निवर्तना यही मोक्ष रूप समाधिका संपूर्ण कारण है इसलिये साधु स्वयं मृषा बोले नहीं अन्य की पास मृषा बोलावे नहीं मृषा बोलने वाले को अच्छा भी जाने नहीं ॥ २२ ॥ शुद्ध निर्दोष आहार की प्राप्ति होने पर

पदार्थ | मू० मूर्त म० ... वि० दुर्विमंत वि० विमुक्त प० नहीं पू० पूजार्थी न० नहीं सि० श्लोकाभिलाषी प० प्रवर्ते ॥ २१ ॥ नि० निकलकर गे० गृह से नि० निरापेक्षी का० शरीर वि० मूर्छित प० नहीं अ० वांछे वोसिरावे नि नियाणा छि० छेदे णो० नहीं जी० जीवितव्य णो० नहीं म० मरण अ० वांछी च० विचरे भि० साधु व० संसार से वि० विमुक्त त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २४ ॥

न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ २३ ॥ निक्खम गेहाउ निरावकंखी । कायं विउ सेज्ज नियाणं छिन्ने ॥ णो जीवियं णो मरणावकंखी । चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के त्तिबेमि ॥ २४ ॥ इति समाहिनाम दशममज्झयणं सम्मत्तं ॥ १० ॥

उससे राग द्वेष करे नहीं, और उस में मूर्छित नहीं होता हुवा अपनी श्लाघा की वांछा करे नहीं बाह्याभ्यंतर सम्बन्ध से सर्वथा मुक्त होना यही समाधि का स्थान है ॥ २१ ॥ जीवितव्य का निरपेक्षी साधु गृहवास से निकलकर—चारित्र अङ्गीकार कर—के नियाणा रहित काया को वोसिरावे, और जीवन मरण की इच्छा नहीं करता हुवा संसार से मुक्त बन करके विचरे ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह आत्मसमाधि नामक दशम अध्ययन समाप्त हुवा इसमें ज्ञान दर्शन चारित्र रूप समाधि का वर्णन कहा जो इसका सेवन करेगा वह मुक्ति को जावेगा इसलिये आगे मो मार्ग नामक एकादश अध्ययन कहते हैं

॥ मोक्षमार्ग नामक मेकादश मध्ययनम् ॥

क० कौनसा म० मार्ग अ० कहा मा० महात्मा म० बुद्धिमान जं० जिस म० मार्ग को उ० सरल पा० प्राप्तकर ओ० ओघको त० तरते हैं दु० दुस्तर ॥ १ ॥ तं० उस म० मार्ग को अ० प्रधान सु०शुद्ध स० सर्व दु० दुःखको मुक्त करने वाला जा०जानते हो भ०यथा भि०साधु तं०उसे णो०हमको बू० कहो म० महामुनि ॥ २ ॥ ज०यदि णो०हमको के०कोई पु०पूछे दे०देव अ०अथवा म० मनुष्य

कयरे मग्गे अक्खाए । माहणेण मइमता ॥ जं मग्गं उज्जुं पाविचा । ओहं तरति दुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्धं । सव्व दुक्खविमोक्खणं ॥ जाणासि णं जहा भिक्खू । तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥ जइ णो केइ पुच्छिज्जा । देवा अदुव माणुसा ॥ तेसिं

श्री सुधर्मा स्वामीको जम्बू स्वामी पूछते हैं कि अहो पूज्य भगवंत! केवलज्ञानी श्री महावीर प्रभुने मोक्षका कौनसा मार्ग बतलाया है कि जिसको प्राप्त करके प्राणी दुस्तर संसारको तीरसके ॥ १ ॥ जो मार्ग श्री जिनेश्वर देवने कहा है वह शुद्ध निर्दोष सर्व दुःखसे मुक्त करने वाला है ऐसा मार्ग अहो महामुनि! जैसे तुम जानते हो वैसे हमको कहो ॥ २ ॥ यद्यपि मुझे तो आपकी प्रतीत है कि यह मार्ग अच्छा है

वे० उनको क० कौनसा म० मार्ग मा० कहे ऊ करो णो० हमको ॥३॥ न० यदि के० कोइ पु० पूछे दे० देव म० अथवा मा० मनुष्य ते० उनको प० उत्तरदो म० मार्गकासार सु० सुनो मे० मुझे ॥ ४ ॥ अ० अनुक्रमसे म० महाघोर का० काश्यपने प० कहा ज० जिसको आ० ग्रहण कर इ० यहां से पु० पूर्व स० समुद्र व० व्यापारी ॥ ५ ॥ अ० तीरे त० तीरते हैं ए० कितनेक त० तीरेंगे अ० आगमिक काल में प्र० उसे सो० सुनकर प्र० कहता हूं मं० मैं वे० उसे सु० सुनो

तु क्यर मग्ग । आइक्खेज्ज कहाहि णो ॥ ३ ॥ जइणो केइ पुच्छिज्जा । देवा अदुव माणुसा ॥ तेसिं म पडिसाहिज्जा । मग्गासार सुणेह मे ॥४॥ अणुपुव्वेण महाघोर । कासवेण पवेइय ॥ जमादाय इओ पुव्व । समुद्द ववहारिणो ॥ ५ ॥ अतरिंसु तरंते

परंतु अन्य कोई देव वा मनुष्य पूछे तो उनको कौनसा मार्ग कहूं, सो मुझे हे भगवत् ! कहो ॥ ३ ॥ ऐसा जम्बू स्वामीने पूछा तब सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं; कि अहो जम्बू यदि कोई मनुष्य या देव ऐसा मार्ग की बात पूछे तो उनको यह मार्ग बतलाना कि जो मैं कहता हूं, इसको तुम सुनो ॥ ४ ॥ श्री महावीर देव स्वामि जो दुष्कर मार्ग में कहता हूं उसे अनुक्रमसे सुनो जैसे व्यवहारी पुरुष जहाज से उत्तर समुद्रको तीरते हैं वैसे ही जिन प्ररूपित धर्मका आश्रय ग्रहण कर अतीत कालमें अनेक पुरुषों संसार समुद्र को तीरें ॥ ५ ॥ जिस मोक्ष मार्गको अवलम्बन करके अतीत कालमें अनंता जीव तीरे वर्तमान कालमें

प० पृथक्‌ ॥ पु० पृथ्वी कायके भी० जीव पु० पृथक्‌ स० जीव आ० अप्‌काय त० वसे अ० अग्नि वा० वायु काय पु० पृथक्‌ स० जीव त० तृण रु० वृक्ष स० बीज सहित ॥ ७ ॥ अ० अथ त० त्रस पा० प्राणी ए० ऐसे छ० छकाय आ० कही ए० इतनी जी० जीवकाय ण० नहीं अ० दूसरीकोइ वि० विद्यमान है ॥ ८ ॥ स० सर्व अ० अनुयुक्ति से म० बुद्धिमान प० देखकर स० सर्व अ० अप्रिय दु० दुःख अ० इसलिये स० सर्व

गे । तरिस्संति अणागया ॥ स सोच्चा पडिवक्खामि । अंतवो तं सुणेह मे ॥ ६ ॥ पुढवी जीवा पुढो सत्ता । आउ जीवा तहागणी ॥ वाउ जीवा पुढो सत्ता । तणरु-क्खा सबीयगा ॥ ७ ॥ अहावरा तसा पाणा । एव छकाय आहिया ॥ एतावए जी-वकाए । णावरे कोइ विजइ ॥८॥ सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं । मतिमं पडिलेहिया ॥ स

जीव रहे हैं आगामिक कालमें अनेक जीवेंगे ऐसा मोक्ष मार्ग को सुनकर मैं तुमको कहता हूं सो हे जीवों तुम सुनो ॥ ६ ॥ पृथ्वी काय, अप्‌ काय, तेउ काय, वायुकाय, तृण, वृक्ष तथा बीजवाली वनस्पती काय, और त्रस प्राणी, ऐसे श्री तीर्थंकर देवने छकाय कही है. इन सिवाय अन्य कोई जीवनिकाय ऐसा है ॥७-८॥ बुद्धिमान पुरुष इन छकाके जीवोंको सम्यक्‌ प्रकारसे जान कर और सब को दुःख अप्रिय है ऐसा विचार कर सब की रक्षा करे ॥ ९ ॥ किसी जीवकी हिंसा करना नहीं यही ज्ञानी पुरुषोंका

म० हिंसा न करे ॥ ९ ॥ ए० यह ही खु० निश्चय ण० ज्ञानीका सा० सार ज० जो न० नहीं ... म०
करता है कं० किसीकी अ०अहिंसा स० समता ए० इतना वि० जानकर ॥१०॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर
तिर्यक् जे० जो के० कोई त० त्रस था०स्थावर स० सर्वथा वि०निवृति वि०जाने सं०शान्ति को नि०निर्वा०
मा० कहा ॥११॥ प० समर्थ दो० दोषोंको नि० दूर करके ण० नहीं वि० विरोध करे कें० किसीसे म०
मनसे व० वचनसे चे० निश्चय का० कायासे चे० निश्चय अं० अंत तक ॥ १२ ॥ सं० सवृति से० वे म०

एयं खु णाणिणो सारं । जं न हिंसति कंचण ॥ अहिंसा समयं चेव । एतावंत्त विजाणिया ॥ १० उड्ढं अहेयं तिरियं । जे केइ तस थावरा ॥ सव्वत्थ विरतिं विज्जा । संति निव्वाणमाहियं ॥ ११ ॥ पभू दोसे निराकिच्चा । ण विरुज्झेज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव । कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥ संवुडे से महापन्ने । धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं ।

...रे ऐसा अहिंसा और समतामय धर्मको जानकर दयामें यत्न करना॥१०॥ ऊर्ध्व, अधो, और तिर्यक् दशामें जो कोई त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं उनकी हिंसासें निवृत्तिको ही निर्वाण कहा गया है ॥ ११ ॥ इन्द्रियों को जीतने में समर्थ साधु मिथ्यात्वादि दोषों को दूर करके मन वचन और काया से किसी जीव... विरोध करे नहीं ॥ १२ ॥ आश्रव का निरोध करनेवाला महा मज्ञावन्त धीर लिय...

महावीरी धी॰ धीर द॰ दच ए॰ एषणा च॰ विचरे ए॰ एषणा स॰ समितिमें णि॰ नित्य व॰ वर्जे अ॰ अनेषणिक ॥१३॥ भू॰ भाणी का स॰ समारम करके त॰ उनको उ॰ उद्देशकर जं॰ जो क॰ किया ता॰ वैसा ण॰ नहीं गि॰ ग्रहण करे अ॰ आहार पा॰ पानी सु साधु ॥ १४ ॥ पू॰ आधा कर्मी न॰ नहीं से॰ सेवे ए॰ यह ध॰ धर्म वु॰ सब साधु जं॰ जो किं॰ किंचित् अ वांच्छे स॰ सर्वथा तं॰ उसे न॰ नहीं मो॰ भोगवना ॥१५॥ ह॰ हणतेको ण॰ नहीं अ॰ अच्छा जाने आ॰ आत्मगुप्त जि॰ जितेन्द्रिय ठा॰ स्थान सं॰ है

वज्जयंते अणेसण ॥ १३ ॥ भूयाइ च समारभ । तमुद्दिस्साय जं कडं ॥ तारिस तु ण गिण्हेज्जा । अन्नपाण सुसजए ॥१४॥ पूईकम्मं न सेविज्जा । एस धम्मे वुसीमओ ॥ ज किंचि अभिकखेज्जा । सव्वसो तं न मोचए ॥ १५ ॥ हणत पाणुजा

हुवा आहार ग्रहण कर, और समिति पूर्वक अनेषणिक आहार को वर्जता हुवा शुद्ध संयम पाले ॥ १३ ॥ जीवों का आरंभ करके जो आहार बनाया होवे वैसा आहार संयति साधु लेवे नहीं ॥ १४ ॥ पूतिकर्मवाला आहार सेवे नहीं यही धर्म संयमवन्त पुरुषों का कहागया है जो कोइ शुद्ध आहार अशुद्धादि दोषों सेशंकित बनाहुवा होवे तो उसे भी भोगवना कल्पे नहीं ॥ १५ ॥ ग्राम या नगर में रहते हुवे किसी साधु को वहांपर कोई कूपखननादि करानेवाला पुरुष धर्मश्रद्धावन्त पूछेकि इसमें धर्म है या नहीं ! ऐसा प्रश्न का आत्मगुप्त, जितेन्द्रिय साधु उत्तर देवे नहीं वैसे ही ऐसा हिंसावाला कार्य को अनुमोदे भी नहीं

विष ते० उनको आ० आयान्तराय होती है त० इससमय प० नहीं है बो० नहीं व० बोले ॥ १९ ॥ जे० जो दा० दान को प० प्रशंसते हैं व० वधको इ० इच्छते है पा० प्राणीका जे० जो प० निषेध कर ते हैं वि० वृत्ति का छेद क० करते हैं ते० वे ॥ २० ॥ दु० दोनकार का भी ते० ते म० नहीं मो० बोलते हैं अ० है न० नहीं है पु० फीर आ० आय र० कर्म का हे० छोडकर नि० निर्वाण को पा० पाते हैं ते० ते ॥२१॥ नि मोक्ष को प० प्रधान ऽ जानकर ण०नक्षत्र में चं०चन्द्रमा स०इसलिये स०सदा द० दान्त

[illegible]तरायति । तम्हा णत्थित्ति णोवए ॥ १९ ॥ जेय दान पसंसंति । वह मिच्छती पाणिणं ॥ जेय ण पडिसेहंति । वित्तिच्छेयं करंति ते ॥२०॥ दुहओवि ते ण भासंति अत्थि वा नत्थि वा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाणं । निव्वाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निव्वाणं परमं बुद्धा । णक्खत्ताणव चंदिमा ॥ तम्हा सया जए दंते । निव्वाणं संधए

होवे इस लिये ऐसा अनुष्ठान में पुण्य नहीं है, ऐसा भी कहे नहीं ॥ १९ ॥ इस तरह जो दान की प्रशंसा करता है, वह प्राणी का वध करता है और जो दान का निषेध करता है, वह अनेक जीवों की आजीविका का छेद करता है ॥ २० ॥ ऐसा दान में पुण्य है व नहीं है ऐसी दोनों प्रकार की भाषा साधु बोले नहीं इस से कर्म रूपी रज आती है ऐसा जानकर जो साधु उस का त्याग करता है वह निर्वाण प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ जैसे नक्षत्र में चंद्रमा प्रधान है वैसे ही सर्व गतियों में सिद्धि प्रधान है इस

वत द० दमता हुवा नि० निर्मम सं० साधे मु० मुनि ॥ २२ ॥ वु० बहते हुवे पा० माणी को कि० पीड
ते हुवे स० स्वरूप स आ० करते हैं सा० भच्छा त० उसे दी० द्वीप प० प्रतिष्ठा प० करते हैं ॥ २३ ॥
धा आत्म गुप्त स० सदा द० दमन करने वाला छि० छेद्या सो० श्रोत म० अनाश्रव जे० जो प० धर्म
सु० शुद्ध अ० कहते हैं प० प्रतिपूर्ण अ निरुपम ॥ २४ ॥ त० उसे अ० जानता अ० अज्ञान बु० पंडित
मानता हुवा बु० पंडित मो० हम म० मानते हुवे अं० दूर ते वे स० समाधिसे ॥ २५ ॥ ते० वे बी० बीज

मुणी ॥ २२ ॥ वुज्झमाणाण पाणाण । किच्चताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं
दीवं । पतिट्ठे सा पवुच्चइ ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते । छिन्न सोए अणासवे ॥ जे ध-
म्म सुद्ध मक्खाति । पडिपुन्न मणालिसं ॥ २४ ॥ तमेव अविजाणता । अबुद्धा बुद्ध
माणिणा ॥ बुद्धा मोत्तिय मन्नेता । अतएते समाहिए ॥ २५ ॥ ते य बीओदग चेव ।

लिये संयमवन्त साधु को सदा मोक्ष साधना अर्थात् मोक्ष के लिये सब क्रिया करना ॥ २२ ॥ संसार
समुद्र में बहते हुवे या अपने २ कर्मों से छेदन भेदनादिक दुःख पाते हुवे अशरण जीवों को सम्यक्
दर्शनादिक धर्म द्वीप समान है यही संसार समुद्र के परिभ्रमण का मिटानेवाला है ॥ २३ ॥ आत्म
गुप्त, संवरी, संसार का प्रवाह को तोडनेवाला, आश्रव रहित जो साधु होवे वही सर्व विरतिरूप निरूपम
धर्म कहसकता है ॥ २४ ॥ शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्म को नहीं जाननेवाले मूर्ख अपने को पण्डित मानते हुवे
[illegible] ऐसा मानते हुवे भाव समाधि से दूर रहते हैं ॥ २५ ॥ जो शाक्यादिक अन्य

द० पानी पे० निश्चय त० उसको उ० उद्देशकर के जं० जो क० किया हुवा भो० भोगवकर झा० आर्त ध्यान झि० ध्याते हैं अ० शुद्धिहीन अ० असमाधिवंत ॥ २६ ॥ ज० जैसे ढ० ढंक कं० कंक कु० कुरल म मंगु का० काक म० मच्छके लीये झि० ध्याते हैं झा० ध्यान ते० उनका क० कलुष अ० अधम ॥ २७ ॥ ए० ऐसे स श्रमण ए० कितनेक मि० मिथ्यादृष्टी अ० अनार्य वि० विषय ए० एषणा झि० ध्यावे हैं कं० कंक जैसे क० कलुष अ० अधम ॥२८॥ सु० शुद्ध म मार्ग की वि० विराधना कर इ० यहां

तमुद्दिस्साय जं कडं ॥ भोच्चा झाणं झियायंति । अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥ जहा ढकाय क्काय । कुललामगुकासिद्दा ॥ मच्छेसण झियायति । झाण ते क्लुसाधम ॥ २७ ॥ एवं तु समणा एगे । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ विसएसण झियायति । कंका वा क्लुसाहमा ॥ २८ ॥ ढसु मग्ग विराहित्ता । इह मेगेउ दुम्मती ॥

दर्शनी तथा स्वतीर्थिक पार्श्वस्थादिक सचित्त पानी, बीज तथा स्वतः को उद्देश कर कियाहुवा अशनादिक को भोगव कर आर्तध्यान ध्याते हैं वे धर्म के अखेदज्ञ तथा असमाधिवन्त हैं ऐसा जानना ॥ २६ ॥ जैसे ढंक, कंक, कुरल, मंगु इत्यादि सर्व पक्षी मत्स्य को भखेपने के लिये ध्यान करते हैं परन्तु उन का ध्यान कालुष्यता युक्त तथा अधम है वैसे ही कितनेक मिथ्यादृष्टि अनार्य साधु कंकादि पक्षि जैसे [illegible] ध्यान ध्यावे हैं ॥ २७–२८ ॥ [illegible] संसार में कितनेक दराचारी अपने [illegible] [illegible]न का

प० कितनेक दु० दुर्मति उ० उन्मार्ग में ग० गये हुवे दु० दुःख घा० घात ए० प्राप्त होते हैं तं० उसको प० वैसे ॥ २९ ॥ ज० जैसे आ० छिद्रवाली ना० नाव में आ० जाति अंध दु० बैठकर इ० इच्छा है पा० पार जाने को अं० बीच में ही वि० नाश पाता है ॥ ३० ॥ ए० ऐसे स० श्रमण ए० कितनेक मि० मिथ्यादृष्टि अ० अनार्य सो० स्रोत क० संपूर्ण आ० प्राप्त हुवे आ० आगामिक म० महाभय ॥ ३१ ॥ इ० इस ध० धर्म को ना० ग्रहण कर का० काश्यपने प० कहा हुवा त० तीरे सो० स्रोत म० महाघोर अ० आत्म

उम्मग्गगता दुक्खं । घायमेसंति त तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं । जाइ अंधो दुरुहिया ॥ इच्छइ पारमागतुं । अंतराय विसीयंति ॥ ३० ॥ एवं तु समणा एगे । मिच्छदिट्ठी अणारिया ॥ सोय कसिणमावन्ना । आगंतारो महब्भयं ॥ ३१ ॥ इमं च धम्म मादाय । कासवेण पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं । अत्तत्ताए परिव्वए ॥ ३२ ॥

अनुपम है ऐसा धर्म की विराधना करके तथा जिनभाषित तत्व से विपरीत मार्ग में जाकर के बहु प्रकार के कर्म से संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ २९ ॥ जैसे कोई जात्यन्ध पुरुष छिद्रवाली नाव में बैठकर समुद्र पार होने की इच्छा करे, परंतु बीच में ही डूब जाता है, वैसे ही कितनेक मिथ्यादृष्टि अनार्य साधु कर्मरूप आश्रव को संपूर्णतया प्राप्त हो करके आगामिकाल में अत्यंत भय व नरकादिक दुःख को प्राप्त करेंगे ॥ ३ – ३१ ॥ श्री काश्यप गोत्रिय महावीर देव का प्ररूपा हुवा

रक्षण करते ए० प्रवर्ते ॥ १२ ॥ वि० विरत गा० इन्द्रियादि ध० धर्म से जे० जो के० कोइ ज० जगत में ज० जीव ते० उनको अ० आत्म तुल्य था० बलवीर्य कु० फोरता हुआ प० प्रवर्ते ॥ १३ ॥ अ० बहुत मा० मान मा० माया स० उसे प० जानकर पं० पंडित स० सर्व ए० यह नि० दूर करके णि० निर्वाण सं० साथे मु० साधु ॥ १४ ॥ सं० साधे [स० भजे] सा० साधु ध० धर्म पा० पाप धर्म को णि० दूरकरे

विरए गामधम्मेहिं । जे केइ जगईजगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए । थामं कुव्व परिव्वए ॥ १२ ॥ अइमाणं च मायं च । तं परिन्नाय पंडिए ॥ सव्व मेयं णिराकिच्चा । णिव्वाणं संधए मुणी ॥ १४ ॥ संधए (सद्दए) साहुधम्मं च । पावध-

धर्म को अंगीकार करनेवाला स्थावियक संसार समुद्र को उत्तीर्ण होता है इस लिये आत्मरक्षपाल साधु मोक्षमार्ग में प्रवर्ते ॥ १२ ॥ इन्द्रियों के विषय से निवर्ता हुआ साधु इस जगत्में जो त्रस स्थावर जीव हैं उन को अपनी आत्मा समान जाने, और उन की रक्षा के लिये पराक्रम करता हुआ विचरे ॥ १३ ॥ पंडित पुरुष क्रोध, मान, माया और लोभ इन सब को दूर करके मोक्ष की वांच्छा करे ॥ १४ ॥ साधु धर्म को सम्यक् प्रकार से जानकर वृद्धि करे. (साधु धर्मको सम्यक् प्रकारसे भजे) पाप धर्म का तिरस्कार करे और तप में पराक्रम करता हुवा क्रोध, मान, माया लोभ की प्रार्थना करे नहीं ॥ १५ ॥ जो तीर्थंकर अतीतकाल में हुवे हैं आगामिकाल में होवेंगे और वर्तमानकाल में विचररहे हैं उन का भावकम्पन स्थान

ध्म णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए भिक्खू । कोहं माणं च पत्थए ॥ २५ ॥ जेय बुद्धा अतिक्कता । जेय बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइट्ठाणं । भूयाणं जगती जहा॥२६॥ अहणं वयमावन्नं । फासा उच्चावया फुसे ॥ ण तेसु विणिहण्णेज्जा। वाएणव महागिरी ॥ २७ ॥ संवुडे से महापन्ने । धीरे दत्तेसणं चरे ॥ निव्वुडे कालमाकंखी । ए-

उ० उपधान में वी० वीर्यवन्त भि० साधु को० क्रोध मा० मान प० मार्वे ॥ २५ ॥ जे० जो बु० बुद्ध अ० होगये जे० जो बु० बुद्ध अ० होवेंगे स० हैं ते० उनका प० प्रतिष्ठान भू० जीवों को ज० पृथ्वी ज० जैसे ॥ २६ ॥ अ० अथ व० व्रतको मास फा० स्पर्श उ० विविध फु० स्पर्शे ण० नहीं ते उनसे वि० चूके वा० पवनसे जैसे म० मेरु पर्वत ॥ २७ ॥ सं० संवृत्ति से० वे महाप्रज्ञ धी० धीर द० दत्त ए० एषणा च० विचरे

शान्ति ही है जैसे सब जीवों को आधारभूत पृथ्वीरूप स्थान है वैसे ही सर्व तीर्थंकर देवों को जीव दयारूप शान्ति का स्थान आधारभूत है ॥ २६ ॥ जैसे सुमेरु पर्वत भयंकर पवन से भी कम्पित नहीं होता है, वैसे ही व्रत अंगीकार साधु तप विषमादिक अनुकूल प्रतिकूल परीषह आने पर भी संयम से पतित होवे नहीं ॥ २७ ॥ संवरवन्त, महा प्रज्ञावन्त तथा धीर साधु दीया हुवा आहार की गवेषणा करता हुवा विचरे और कषायों से निवृत्त हो करके कालपर्यंत संयम में रहे, ऐसा केवली भगवन्त का दर्शन है ऐसा श्री

नि॰ निग्रंथ का॰ मृत्युको कांक्षता प॰ ऐसा के॰ केवली का म॰ मत चि॰ ऐसा बे॰ कहता हूं ॥ ३८ ॥

१४ केवलिणो मय त्तिबेमि ॥ ३८ ॥ इति मोक्खमग्गाणाम मेकादसमज्झयण

सम्मत्त ॥ ११ ॥ * * *

महावीर देव के कथनानुसार मैं कहता हूं यह श्री मोक्षमार्ग नामक एकादश अध्ययन समाप्त हुवा इस में मोक्ष मार्ग का स्वरूप कहा जो कुमार्ग को परिहरता है वही मोक्ष मार्ग को अंगीकार कर सकता है इस लिये समवसरण नामक द्वादश अध्ययन कहता है * * *

उ० उपधान में वी० वीर्यवन्त मि० साधु को० क्रोध मा० मान प० मारे ॥ १८ ॥ जे० जो बु० बुद्ध भ० होगये जे० जो बु० बुद्ध भ० होवेंगे स० हैं ते० उनका प० प्रतिष्ठान भू० जीवों को ज० पृथ्वी ज० जैसे ॥ १२ ॥ अ० अब य० व्रतको प्राप्त फा० स्पर्श उ० विविध फु० स्पर्शे ण० नहीं ते उनसे वि० चूके वा० पवनसे जैसे म० मेरु पर्वत ॥ १७ ॥ स० संवृत्ति से० वे महाप्रज्ञ धी० धीर द० दत्त ए० एषणा च० विचरे

म्म णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए भिक्खू । कोह माण च पत्थए ॥ ३५ ॥ जेय बुद्धा अतिक्कता । जेय बुद्धा अणागया ॥ सति तेसिं पइट्ठाण । भूयाण जगती जहा॥३६॥ अहण्णं वयमावन्न । फासा उच्चावया फुसे ॥ ण तेसु विणिहण्णेज्जा। वाएणव महागि री ॥ ३७ ॥ संवुडे से महापन्ने । धीरे दत्तेसण चरे ॥ निव्वुडे कालमाकंखी । ए-

शान्ति ही है जैसे सब जीवों को आधारभूत पृथ्वीरूप स्थान है वैसे ही सर्व तीर्थंकर देवों को जीव दयारूप शान्ति का स्थान आधारभूत है ॥ ३६ ॥ जैसे सुमेरु पर्वत भयंकर पवन से भी कम्पित नहीं होता है, वैसे ही व्रत प्रतिपन्न साधु सम विषमादिक अनुकूल प्रतिकूल परीषह आने पर भी संयम से पतित होवे नहीं ॥ ३७ ॥ संवरवन्त, महा प्रज्ञावन्त तथा धीर साधु दीया हुवा आहार की गवेषणा करता हुवा विचरे और कषायों से निवृत्त हो करके कालपर्यंत संयम में रहे, ऐसा केवली भगवन्त का दर्शन है ऐसा भी

अ० पुरे मा सा० अच्छा व बोलते हुवे ने०भो इये ये ज० मनुष्य वे० विनयवादी भ० अनेके पु० पु छाये हुवे भा० मान वि० विनयवाद ॥२॥ भ० मूर्ख ते० वे व०कहा भ० अर्थ स० स्वतः मा०कहवेवें भ० हमारा ल० कर्मकी भ०शंका करके भ०आगामिक काले णो०नहीं कि०क्रिया आ० कहतेहैं भ० अक्रियावादी

इया अणेगे। पुट्ठावि भाव विणइंसु णाम ॥ २ ॥ अणोवसंखा इति ते उदाहु। अट्ठे सउ भासइ अम्ह एव ॥ लवावसकीय अणागएहिं। णो किरिय माहंसु अकिरियवाई ॥ ४ ॥ सम्मिस्समावं व गिरागहीए। से मुम्मुई होइ अणाणुवाई ॥ इम दुपक्खं

वाले तथा अच्छा को बुरा कहनेवाले विनयवादी के बत्तीस भेद हैं उन को कोई पूछते हैं तो विनय को ही प्रमा[illegible] [illegible]ाते हैं ॥ ३ ॥ इस तरह माननेवाले मूढ कहते हैं कि हमारा दर्शन में ही जो लोक मानते हैं उन [illegible] [illegible] होती है अब अक्रियवादी का मत कहते हैं शाक्याकादिक बौद्ध दर्शनवाले अतीत अनागतकाल को ही मानते हैं वर्तमानकाल को नहीं मानते हैं क्यों कि क्षणिकपना से सर्व पदार्थ क्षणिक है, ऐसे वचनों से जो कुच्छ कियाजाता है, वह सब अनागत है अब जो कर्म करने का है वह सो वर्तमानकाल है, और वर्तमानकाल में जो क्रिया करे उस से ही कर्म लगे इस लिये उन के मत में क्रिया नहीं है ऐसा सिद्ध हुवा और क्रिया विना शुभाशुभ कर्म का बंध भी नहीं हो सकता है इस तरह अक्रियावादी नास्तिक मतवाले नहीं शंकित होते हैं ये क्रिया से कर्मबन्ध नहीं मानते हैं इस लिये न अक्रियावादी कहाये गये हैं ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त परवादियों जिस बाबत को ग्रहण करते है उस का ही

॥ समवसरण नामक द्वादश मध्ययनम् ॥

० चार स० समवसरन इ० ये पा० परतीर्थिक जा० जो पु० पृथक् २ व० बोलते हैं कि० क्रियावादी
१० अक्रियावादी वि० विनयवादी त० तीसरा अ० अज्ञानवादी अ० कहते हैं च० चौथा ॥ १ ॥ अ० अ
ानी कु० कुशल स० हैं अ० मूर्ख नो० नहीं वि० भ्रान्ति ति० रहित अ० अज्ञान आ० कहा अ० अज्ञानि
ो अ० बिना विचारे मु० मृषा व० बोलते हैं ॥ २ ॥ स० सत्य को अ० असत्य चिं० विचार करने वाले

चत्तारि समोसरणाणिमाणि । पावादुया जाइ पुढो वयंति ॥ किरियं अकिरियं विणिय-
ति तइयं । अन्नाणमाहंसु चउत्थमेव ॥ १ ॥ अण्णाणिया ता कुसला वि संता । अस
गुयागो वितिगिच्छतिण्णा ॥ अकोविया आहु अकोवियेहिं । अणाणुवीइत्तु मुसं वयंति
॥ २ ॥ सच्चं असच्चं इति चिंतयंता । असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे जणा वेण-

इस जगत में क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी, और अज्ञानवादी ऐसे चार परतीर्थियों का पृथक्
समुदाय रहा हुआ है ॥ १ ॥ अब अज्ञानवादी का मत कहते हैं अज्ञानवादी अज्ञानी होने पर स्वतः को ज्ञा
नी मान कर बैठते हैं परन्तु वे असंबंध भाषी हैं, क्योंकि उनकी भ्रान्ति इस से दूर नहीं हुए है वे सम्यक्
धर्म न जानने में असमर्थ होने से अज्ञानवन्ते हुवे हैं और अपने शिष्यों को भी वैसा ही उपदेश
... भाषण करते हैं ॥ २ ॥ सत्य को असत्य मानने

भ० भरा होता है ण० नहीं पं० चंद्रमा प० सूर्य [जाता है हीं० हीन होता है वा० अथवा से० नदी ण० नहीं सं० बहती है ण०नहीं व०वाता है वा० वायु वं० वंध्य णि० निश्चय क०संपूर्ण लो० लोक ॥ ७ ॥ ज० जैसे अं० अंध स० सहित जो० दीप रू० रूप णो० नहीं प० देखता ही० नेत्र हीन सं० होने परभी ते० वे ए० ऐसा अ० अक्रियावादी कि० क्रिया को ण० नहीं प० देखते हैं नि० बुद्धि हीन ॥ ८ ॥ सं० ज्योतिष सु० स्वप्न ल० लक्षण नि० निमित्त दे० देह उ० उत्पात अ० अष्टांग निमित्त व० बहुत अ०

देति ण अयंति वाया । वझो णियतो कसिणे हु लोए ॥७॥ जहाहि अंधे सह जोति णावि । रूवाइ णो पस्सति हीणणेत्ते॥ सतंपि ते एव मकिरियवाई । किरिय ण पस्स ति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥ संवच्छरं सुविण लक्खण च । निमित्तदेहं च उपाइय च ॥

होता है पक्ष्म न चलता है, न क्षीण होता है नदी समुद्र के जल झरते नहीं, पवनवाता नहीं यह जो दिखता है वह सब भास है, संपूर्ण लोक वंध्य है अर्थात् सब शून्य है ॥ ७ ॥ जैसे जन्मान्ध पुरुष दीपक होने पर भी चक्षु की हीनता से रूपादिक (घटपटादिक) पदार्थ विद्यमान होते हुवे भी नहीं देख सकता है, वैसे ही बुद्धि हीन अक्रियावादी क्रिया का अस्तित्व होने पर भी मिथ्यात्वादि दोषों करके नहीं देख सकते हैं ॥ ८ ॥ (१) ज्योतिष शास्त्र चन्द्रादिक के विषय का (२) स्वप्न शास्त्र-स्वप्न के शुभाशुभ फल(३) लक्षण शास्त्र-शरीर का लक्षण(४)निमित्त शास्त्र शकुनादि[५] शरीर शास्त्र-तीलमसादिक का शुभाशुभ कथन (६) उत्पात-आकाश में शुभाशुभ चिन्हका कथन[७]भूमिकम्प और[८] अंग स्फुरण इन अष्टांग शास्त्रों

इममेगपक्खे । आहसु छलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव मक्खंति अबुज्झमाणा विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मायइत्ता बहवे मणूसा । भमंति संसार मणोवदग्गं ॥६॥ णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति । ण चंदिमा वड्ढति हीयत्ति वा ॥ सलिला ण सं-

॥ ५ ॥ स० मिश्रभाव गि० वचनसे ग० ग्रहणकर से० वह मु० मूक हो० होजावे अ० अज्ञानवादी इ० यह दु० दो प० पक्ष प० पक्ष ए० एक प० पक्ष आ० कहते हैं छ० छ आ० स्थान च० और क० कर्म ॥ ५ ॥ ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं अ० बुद्धिहीन वि० विविध प्रकार अ० अक्रियावादी जे० जो मा० ग्रहण कर ब० बहुत म० मनुष्य भ० भ्रमते हैं सं० संसार में अ० अनंत काल ॥ ६ ॥ ण० नहीं आ० सूर्य उ० उगता है ण० नहीं

निषेध करते हैं जैसे सांख्य दर्शनी आत्मा को अक्रिय मान करके प्रकृतिसंग से मोक्ष होने का पुनः स्थापन करते हैं इस तरह वे मिश्रभाव को प्राप्त होते हैं और प्रश्न करनेवाले को उत्तर देने में असमर्थ होने से मौन भाव को धारण करते हैं इतना होने परभी अपने कदाग्रह को नहीं तजते हुवे हमारा दर्शन एक पक्षी है द्वी पक्षी [सर्व पक्षी] है इस सिवाय अन्य कोई मत सत्य नहीं है इस तरह प्रपंचकरके अपना मत स्थापन करते है ॥ ५ ॥ वे बौद्धादिक तत्त्व के अज्ञान विविध प्रकार के कुशास्त्र की प्ररूपणा करते हैं, और मताग्राही बन करके मिथ्यात्व में मोहित होते हुवे अनंत संसार परिभ्रमण करते हैं ॥ ६ ॥ अब शून्यवादी का मत कहते हैं वे कहते हैं कि न तो सूर्य का उदय होता है और न उस का अस्त

त्रिम प० मोक्ष ॥ ११ ॥ ते० वे च० चक्षु लो० लोक में णा० नायक म० मार्ग अ० कहते हैं हि० हित प० मीवों का त० वैसे भव सा० शाश्वत आ० कहा लो० लोक में जं० जिसमें प० जीवों मा० मनुष्य सं० रहे हुवे ॥ १२ ॥ जे० जो र० राक्षस ज० यमलोक से० जो सु० देवता गं० गंधर्व का० पृथ्वीकायादि

विज्जाचरणं पमोक्खं ॥ ११ ॥ ते चक्खुलोगसिह णायगा उ। मग्गाणुसासंति हि

त पयाणं ॥ तहातहा सासय माहु लोए। जंसि पया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥ जे

रक्खसा वा जमलोइया वा। जे वासुरा गंधव्वा य काया ॥ आगासगामी य पुढोसिया

का स्थापन करते हैं वे श्रमण ब्राह्मण इस तरह कहते हैं कि जैसी २ क्रिया है वैसा २ स्वर्ग नरकादिक का फल है और इस जगत् में जो कोई सुख दुःख रहे हुवे हैं वे सब अपने किये हुवे हैं परंतु अन्य भवितव्यतादि के किये हुवे नहीं हैं जब तीर्थंकरादि ज्ञान और क्रिया इन दोनों से मुक्ति मानते हैं ॥ ११ ॥ वे तीर्थंकर इस लोक में चक्षु समान हैं और इस के नायक हैं वे प्राणियों को हितकारक मोक्ष मार्ग कहते हैं,, कि अहो मनुष्यों! पंचास्तिकायरूप इस लोक में नाना प्रकार के प्राणी रागद्वेष से व्याप्त रहे हुवे हैं ॥ १२ ॥ राक्षस (व्यंतरादि) यम लौकिक (परमाधार्मिक) सुर [वैमानिक ज्योतिषादिक] गंधर्व [विद्याधरादिक] पृथ्वी कायादिक आकाशगामी (पक्षी वायुप्रमुख) पृथिव्याश्रित अप् तेउ वायु द्वीन्द्रि

पढकर लो० लोक में जा० जानते हैं अ० अनागतादिक ॥ ९ ॥ के० कोई नि० निमित्त स० सत्य भ० होते हैं के० किसिको तं० वह वि० विपरीत णा० ज्ञान ते० वे वि० विद्या भावको अ० नहीं पढते हुवे मा० कहते हैं वि० विद्या प० मोक्ष (जा० जानते हैं लो० लोक में व० बोलते हैं मं० मूर्ख) ॥ १० ॥ ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं स० जानकर लो० लोक को त० वैसे वैसे स० श्रमण मा० ब्राह्मण स० स्वतः का क० किया हुवा न नहीं अ० अन्यका क० किया हुवा दु० दुःख मा० कहते हैं वि० ज्ञान च० चा

अट्ठंगमेयं महवे अहिज्जा । लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ९ ॥ केई निमित्ता तहिया भवंति । केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ ते विज्जभावं अणहिज्जमाणा । आहंसु विज्जा परिमोक्खमेव ॥ (जाणासु लोगंसि वयंति मंदा)॥ १० ॥ ते एवमक्खंति समिच्च लोगं । तहातहा समणा माहणा य ॥ सयं कडं णण्णकडं च दुक्खं । आहंसु

का पठनकरके बहुतसे मनुष्य अनागतादिक वस्तु को जानते हैं; परंतु शून्यवादी तो इतना भी नहीं जानते हैं ॥ ९ ॥ इस में से कितनेक निमित्त सत्य हो जाते हैं और कितनेक विपरीत भी हो जाते हैं वे विद्या का अध्ययन नहीं करते हुवे विद्या मोक्ष ही है ऐसा कहते हैं [कितनेक ऐसा कहते हैं कि हमही इस लोक में समस्त भाव को जानते हैं] ॥ १० ॥ अब क्रियावादीका मत कहते हैं कितनेक क्रियावादी अपने अभिप्राय से लोक का स्वरूप मानकर के हम ही यथावस्थित तत्व के जाननेवाले हैं ऐसा कहकर क्रिया

है पा० पाप ॥ १५ ॥ ते० वे भ० अतीत व० वर्तमान म० भागामिक लो० लोक को जा० जानते हैं त० यथावस्थित णे० नेता अ० अन्य का अ० स्वयंबुद्ध बु० बुद्ध ते० वे अं० अंत के करने वाले भ० होते हैं ॥ १६ ॥ ते० वे ण० नहीं कु० करते हैं ण० नहीं का० कराते हैं भू० प्राणी की० सं० शंका से दु० दुर्गच्छा करते हुवे स० सदा ज० यत्नावंत वि० विनयवंत होते हैं धी० धीर वि० विनीत धी० धीर [वि०

लोभमया (भया) वतीता। सतोसिणो नो पकरेंति पावं ॥ १५ ॥ ते तथिउप्पन्नमणा गयाइं। लोगस्स जाणति तहागयाइं ॥ णेतारो अन्नेसि अणन्नणेया। बुद्धाहु ते अंतकडा भवंति ॥ १६ ॥ ते णेव कुव्वति ण कारवंति। भूताहि संकाइ दुगुंछमाणा ॥ सया

तोषी होने से पापकर्म नहीं करते हैं ॥ १५ ॥ जो पुरुष ऐसे होते हैं उन को क्या फल होता है सो बताते हैं वे पुरुष अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों काल आश्रित यथावस्थित वस्तु को जानते हैं, अन्य जीवों को संसार से उत्तीर्ण कराने के लिये नेता बनते हैं, और स्वतः तत्त्व को जानते हुवे कर्म के अन्त कर्त्ता बनते हैं ॥ १६ ॥ वे वीतराग सम्यक्ज्ञानी प्राणी की घात का भय से पाप का तिरस्कार करते हुवे स्वयं हिंसा करे नहीं, अन्य की पास कराते नहीं, और हिंसा करनवाले को अच्छा माने नहीं वैसे ही सब मतामत जानना वैसे धीर पुरुष सदाकाल यत्नावन्त होवे तथा संयम में विनयवन्त

पर... होते... था... ने॰ नहीं... स्नात... धीर में॰...

आश्रित जे॰ जो पु॰ वारवार वि॰ विपरीत ड॰ जाते हैं ॥ १२ ॥ ज॰ ... पानी अ॰ अपार जा॰ जानो भ॰ संसार ग॰ गहन दु॰ दुष्कर ज॰ जि ... ग॰ समुद्र दु॰ दोनो ही लो॰ लोक में अ॰ परिभ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ ... को ख॰ क्षय करते हैं बा॰ अज्ञानी अ॰ अकर्म से क॰ कर्म को ख॰ खपाते हैं ... लोभ मा॰ माया (भ॰ भय) अ॰ व्यतीत सं॰ संतोषी नो॰ नहीं प॰ करता

जे । पुणो २ विप्परियासुवेति ॥ १२ ॥ जमाहु ओहं सलिलं अपारगं । जाणाहि णं भवगहणं दुमोक्खं ॥ जंसि विसन्ना विसयं गणाहिं । दुहओवि लोयं अणुसंचरंति ॥ १४॥ न कम्मणा कम्म खवेंति बाला । अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो॥ मेधाविणो

पारिक वे सब अपने २ कर्म से चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ श्री तीर्थंकर ने इस संसार को स्वयंभूरमण समुद्र की तरह अपार और दुस्तर कहा है, उसे तुम जानो इस में स्वतंत्र ... हे सकर्मक जीव पंचेन्द्रिय संबंधि विषयों में आसक्त बनकर त्रस स्थावर रूपी लोक में परिभ्रमण करते हैं ॥ १४ ॥ अज्ञानी जीव सावद्यारंभ से पूर्वकृत कर्मों का क्षय नहीं करते हैं और धीर पुरुष आस्रव का निरोध से कर्म का क्षय करते हैं. परिग्रह से रहित [लोभ तथा भय से रहित] पण्डित पुरुष से

धर्म्म कु० करे अ० विचार कर ध० धर्म ॥१९॥ अ० आत्मा को जो० जो जाननेवाले लो० लो अ० अनेक
ग० गति जो० जो आ० जाननेवाले आ० आगति जो जो सा० शाश्वत जा० जाननेवाले अ० अशाश्वत जा० जाति
म० मरण च० मनुष्य उ० उत्पत्ति ॥ २० ॥ अ० अधोगति स० जीवों का वि० दुःख जो० जो आ
आश्रव जा० जानता है स० संवर दु० दुःख जो जो जा० जानता है नि० निर्जरा सो० वह भा० कहने
को अ० योग्य है कि क्रियावाद ॥ २१ ॥ स० शब्द में रू० रूप में अ० अनासक्त गं० गंध में र० रसमें

जो जाणति जोय लोअं । गइं च जो जाणइ आगइं च ॥ जो सासयं जाण असासयं
च । जातिं मरणं च जणोववायं ॥ २० ॥ अहोवि सत्ताण विउट्टणं च । जो आसवं
जाणति संवरं च ॥ दुक्खं च जो जाणति निज्जरं च । सो भासिउ मरिहइ किरियवायं
॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो । गंधेसु रसेसु अदुस्समाणे ॥ णो जीवितं णो मरणा

वाले महान पुरुषों की सेवा करनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष आत्मा, लोक, गति, आगति, शाश्वत
पदार्थ, अशाश्वत पदार्थ, जन्म, मरण और देव नरकादि में उत्पत्ति को जानता है तथा नरकादि में रहे हुवे
प्राणियों की पीड़ा, आश्रव, संवर, दुःख और निर्जरा जानता है वह पुरुष ही क्रियावाद को बोलने योग्य
है ॥ २० २१ ॥ शब्द, रूप, रस और स्पर्श इन में अनासक्त साधु जीवित और मरण की वांछना नहीं
करता हुवा, संयम का रक्षण करके माया कपट से रहित होता हुवा संयम पाले ऐसा मैं श्री तीर्थंकर

निवसते हैं धी०धीर) ह होते हैं ए०कितनेका१७॥ इ० छोटे पा० जीव वु०हद पा जीव ते०उनको मा०
आत्मवत् पा०देखता हैं स० सर्व लो० लोक में उ० उपेक्षा करता है लो० लोकमें इ० यह म० महान् बु०
बुद्ध अ० अप्रमादी प० प्रवर्ते ॥ १८ ॥ जे० जो आ० आत्मा को प० दूसरे को ण० जानकर अ० स
मर्थ अ० स्वयं हो० है अ० समर्थ प दुसरे को तं० उसको जो दीपवत् स० सदा म० सेवे ने जो पा०

जता विप्पणमंति धीरा ॥(विण्णत्ति वीरा) विण्णत्तिधीरा य हवंति एगे ॥ १७ ॥ उह
रेय पाणे वुड्ढेय पाणे । ते आत्तओ पासइ सव्वलोए॥ उव्वेहति लोगमिण महतं । बुद्धेऽ
पमत्तेसु परिव्वएज्जा ॥ १८ ॥ जे आयओ परओ वावि णच्चा । अलमप्पणो होंति अल
परोसि ॥ तं जोइभूत च सया वसेज्जा । जे पाउ कुज्जा अणुवीति धम्मं ॥ १९ ॥ अत्ताण

बने. परंतु अन्य कितनेक ज्ञान मात्र से ही धीर बनते हैं और क्रिया को छोड़ देते हैं ॥ १७ ॥ इस सं
सार में जो पृथिव्यादि तथा द्वीन्द्रियादि छोटे जीव हैं और हस्ती मनुष्य बड़े जीव हैं उन सबको पण्डित पुरुष
अपनी आत्मा तुल्य देखे इस संसार में सर्व स्थानक अशाश्वता है, किसी जीव को सुख नहीं है,
एसा लोक का विचार करके तत्त्वज्ञ पुरुष संयम में विचरे ॥ १८ ॥ जो कोई अपनी आत्मा को तथा
अन्य की आत्मा को सम्यक् रीति से जानते हैं वे स्वतः का तथा अन्य का उद्धार करने में समर्थ बनते
हैं और जो वीतराग प्राप्ति धर्म को सम्यक् प्रकार से जानकर प्रगट करते हैं, वे चंद्रसूर्य समान ज्योति

म०मनवार्थभाषी चि०उपशमा हुवाको जे०जो उ०उदीरे अं०अंधा जैसे द०दंड प०रस्तामें ग०ग्रहणकरे अ०अ ज्ञान पा०दुःख पावारे पा०पापकर्मी॥५॥ जे०जो वि०कलहकारी अ०अन्याय भाषी न०नहीं से०वह स०सरिसा हो०होता है अ०कलह रहित उ०उपपातकारी ह०लज्जावत ए०एकान्त द्रष्टी अ०माया रहित॥६॥स०वह पे०म नोहर सु० सूक्ष्मदर्शी पु० पुरुषार्थी ज० जातीवंत चे०निक्षेप सु सरलाचारी ब० बहुत भी अ०शिक्षा करने

हुभासी। विओसियं जेउ उदीरएज्जा॥ अंधेव से दंड पहगहाय । अविओसिए घासति पावकम्मी॥ ५ ॥ जे विग्गहीए अनायभासी। न से समे होइ अझंझपत्ते ॥ उववाय कारी य हरीमणे य। एगतादिट्ठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥ स पेसले सुहुमे पुरिसजाए। जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुपि अणुसासिएजे तहच्चा। समे हु से होइ अझंझपत्ते

रणा करनेवाला होवे वह पापकर्मी पुरुष जैसे अंध पुरुष लकडी ग्रहण करके मार्ग में जाता हुवा कंटकादि से पीडित होवे वैसे ही चतुर्गतिक संसार में दुःखित होवे ॥ ५ ॥ जो साधु कलहप्रिय तथा अन्यायभाषी होता है वह समभावी नहीं होता है इस लिये साधु को ऐसा नहीं होना चाहिये साधु को आचार्य की आज्ञा का पालक बनना चाहिये तथा लज्जावन्त, जीवादिक पदार्थ का ज्ञाता और माया रहित होना चा हिये ॥ ६ ॥ आचार्यादिक से अनुशासित होने पर भी जो साधु सदैव चित्त को प्रसन्न रखता है वह साधु गुणवन्त, सूक्ष्म भाव को देखनेवाला, पुरुषार्थ का साधक, अच्छे कुल में उत्पत्तिवाला, तथा सरल है

आत्ममान से वि० वोले अ० खराव स्थान हो० होता है व० बहुत गु० गुणों का (णि० अभिनिवेस) जे० जो णा० ज्ञान की सं० शंका से मु० मृषा व बोले ॥ २ ॥ जे० जो पु० पुछाया हुवा प० छल करके प० करते हैं आ० आत्मार्थ को ण० निश्चय वं० ठग कर के अ० असाधु ते०वे सा० साधु मानता हु वा मा० मायावी ए० प्राप्त होता है अ० अनंत घा० घात को ॥ ४ ॥ जे० जो को० क्रोधी हो० होता है

काहयते । जे आत्तभावेण वियागरेज्जा ॥ अट्ठाणिए होइ बहुगुणाण (णिवेसे) जे णा

ण संकाइ मुस वदेज्जा ॥३॥ जे यावि पुट्ठा पलिउंचयति । आयाणमट्ठ खलु वंचइत्ता ॥

असाहुणो ते इह साहुमाणी । मायण्णि एसति अणत घातं ॥ ४ ॥ जे कोहणे होइ जग

कहते हैं और जो जिनागम में शंका करके मृषा बोलते हैं वे ज्ञानादिक गुणों का आस्थान कुभाजन माने जाते हैं ॥ ३ ॥ जब कोई पूछे कि तुम इसे किस की पास से सिखे, तब जो अपना आचार्य का नाम छिपाकर अन्य का नाम कहे सो वे मोक्ष का अर्थ को वंचते हैं अर्थात् मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते हैं और इस लोक में जो असाधु होता हुवा अपने को साधु करके मानता है वह भी अनंतकाल पर्यंत संसार में परिभ्रमण करता है ॥ ४ ॥ जो कोई क्रोधी व जगतार्थ भाषी + होवे जो कोई उपशान्त क्रोध की उदी

+ जिस में जैसा दोष होवे वैसा कहे जैसे काणा को काणा, अंधे को अंधा, कुष्टि को कुष्टि इत्यादि बोलनेवाला

अ॰अनतार्थभाषी वि॰उपशमा हुवाको जे॰जो उ॰उदीरे अं॰अंधा जैसे द॰दंड प॰रस्तामें अ॰ग्रहणकरे अ॰अ
शान्त पा॰कुशल पाणारे पा॰पापकर्मी॥५॥ जे॰जो वि॰कलहकारी अ॰अन्याय भाषी न॰नहीं से॰वह स॰सरिखा
हो॰होता है अ॰कलह रहित उ॰उपपातकारी ह॰लज्जावंत ए॰एकान्त दृष्टी अ॰माया रहित॥६॥स॰वह पे॰म-
नोहर सु॰सूक्ष्मदर्शी पु॰ पुरुषार्थी ज॰ जातीवंत पे॰निर्मेय सु॰सरलाचारी ब॰बहुत भी अ॰शिक्षा करने

हुमासी । विओसियं जेउ उवीरएज्जा ॥ अंधेव से दंड पहंगहाय । अविओसिए घासति
पावकम्मी ॥ ५ ॥ जे विग्गहीए अनायभासी । न से समे होइ अझंझपत्ते ॥ उववाय
कारी य हरीमणे य । एगंतदिट्ठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥ स पेसले सुहुमे पुरिसजाए ।
जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुंपि अणुसासिए जे तहच्चा । समे हु से होइ अझंझपत्ते

रणा करनेवाला होने वह पापकर्मी पुरुष जैसे अंध पुरुष लकडी ग्रहण करके मार्ग में जाता हुवा कंटकादि से
पीडित होवे वैसे ही चतुर्गतिक संसार में दुःखित होवे ॥ ५ ॥ जो साधु कलहप्रिय तथा अन्यायभाषी
होता है वह समभावी नहीं होता है इस लिये साधु को ऐसा नहीं होना चाहिये साधु को आचार्य की
आज्ञा का पालक बनना चाहिये तथा लज्जावन्त, जीवादिक पदार्थ का ज्ञाता और माया रहित होना चा
हिये ॥ ६ ॥ आचार्यादिक से अनुशासित होने पर भी जो साधु सदैव चित्त को प्रसन्न रखता है वह
साधु गणवन्त. सत्य मार्ग को देखनेवाला, पुरुषार्थ का साधक, अच्छे कुल में उत्पत्तिवाला, तथा सरल है

से जे० जो त० तैसा ही स० सरिसा से० वह हो० होता है अ० कष्ट रहित ॥ ७ ॥ जे० जो कोई अ० आत्मा को व० संयमवंत म० जानकर सं० मानकर वा०वाद अ० परीक्षा कियेबिना कु०करे त० तपसे अ०मैं स० सहित म० जानकर अ० अन्य ज० मनुष्य को प० देखता है बिं० गुण शून्य ॥ ८ ॥ ए० एकान्त कू० पाशसे से वह प० दुःख पाता है ण० नहीं वि० विद्यमान है मो० साधुपना में गो० गोत्र में जे०

॥ ७ ॥ जेआवि अप्प वसुमति मत्ता । सखाय वाय अपरिक्ख कुज्जा ॥ तवेण वाहं सहिउत्ति मत्ता । अण्ण जण पस्सति बिंबभूय ॥ ८ ॥ एगत कूडेण उ से पलेइ । ण विज्जति मोणपयंसि गोत्ते ॥ जे माणणट्ठेण विउक्कसेज्जा । वसुमअतरेण अबुज्झ

एमा जानना ॥ ७ ॥ जो कोई अपना आत्मा को संयमवन्त मान कर, तथा ज्ञानमय जानकर परमार्थ की परीक्षा किये बिना अभिमान करता है अथवा मैं ही तप करनेवाला हूं ऐसा अभिमान रखकरके अन्य मनुष्यों को बिंबभूत (गुणशून्य) मानता है वह कुपाशरूप संसार में परिभ्रमण करता है संयम में कदापि स्थित नहीं होता है, वैसे ही ऊंच गोत्र में भी नहीं प्रवर्तता है जो कोई मान, पूजा के लिये वि विध प्रकार का अभिमान करता है, और संयम ग्रहण किये बाद मंद विपाक के उदय से अन्य किसी मदस्थान में आसक्त होता है वह परमार्थ को नहीं जानता हुवा अज्ञानी संसार में परिभ्रमण करता है ॥८ ९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, उग्रपुत्रादि ऊंच कुलमें उत्पन्न होनेवाले कोई दीक्षा अंगीकार करके शुद्ध निर्दोष

गा ग० पनार्थ वि० मदकरे व० संयम को अ० अन्य प्रकार से अ० अज्ञानी ॥९॥ जे० जो मा० ब्राह्मण ख० क्षत्रिय जाति उ० उग्रपुत्र ले० राजपुत्र जे० जो प० प्रव्रज्या लेनेवाला है प० दूसरे का दीया हुवा भो० भोगवने वाला गो० गोत्र प० नहीं जे० जो थ० अभिमान करे मा० मानबद्ध ॥ १० ॥ न० नहीं त० उसका जा० जाती कु० कुल ता० रक्षणा ण० नहीं अ० अन्यत्र वि० ज्ञान च० चारित्र सु० अच्छा आ० चरा हुवा णि० निकल कर से० वह से० सेवता है गा० आरंभ कर्म ण० नहीं से० वह पा० पारगामी हो० होवे है वि० कर्म मुक्त करने केलीये ॥ ११ ॥ णि० निष्किंचन भि० साधु सु० अंत प्रांतआहारी जे०

माणे ॥ ९ ॥ जे माहणो खत्तियजायए वा । तहुग्गपुत्ते तह लेच्छई वा ॥ जे पव्व- इए परदत्तभोई । गोत्तेण्ण जे थब्भति माणबद्धे ॥ १० ॥ न तस्स जाई व कुल व ताण । णण्णत्थ विज्जा चरण सुचिन्न ॥ णिक्खम्म से सेवइ गारिकम्म । ण स पारए होइ विमोयणाए ॥ ११॥ णिक्किंचणे भिक्खू सुलूहजीवी । जे गारव होइ सिलोअ

आहार की गवेषणा करनेवाला होवे वह अपना कुल गोत्र में मद करे नहीं ॥ १० ॥ सम्यक् ज्ञान व चारित्र विना अन्य कोई जाति व कुल शरणभूत नहीं है जो कोई चारित्र अंगीकार करके जाति गोत्रा दिक का मद करता है वह संसार का पारगामी नहीं हो सकता है ॥ ११ ॥ अंतप्रांतादि आहार का करनेवाला जो कोई निष्परिग्रही साधु गर्व या श्लाघा का कामी होवे वह संयम को नहीं जानता हुवा आ

मा गा० गवरंत हा० हासादे सि० स्त्रया का कामी आ० जीवार्थी ए० इसको अ० अज्ञान पु० वारंवार विप्परि
तता को उ० प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥ जे० जोमा० बोलने वाला भि० साधु सु० प्रियवादी प० बुद्धीमान हो०
होता है वि पंडित भा० अवसर का ज्ञान सु० धर्म वासना वाला म० अन्य म० मनुष्य को प० प्रज्ञा से
प० तीरस्कार करे ॥ १३ ॥ ए० एसे न० नहीं से० वह हो० होता है स० समाधि प्राप्त जे० जो प०
महावन्त भि० साधु वि० गर्वकरे अ० अथवा जे० जो ला० लाभसे म० मद से अ० व्याप्त अ० अन्य

गामी ॥ आजीव मेयं तु अबुज्झमाणो । पुणो पुणो विप्परियासुवेंति ॥१२॥ जे मा
सवं भिक्खू सुसाहुवादी । पडिहाणव होइ विसारएय ॥ अगाढपण्णे सुविभावियं
प्पा । अन्न जणं पन्नसा परिहवेज्जा ॥ १३ ॥ एवं ण से होइ समाहिपत्ते । जे पन्नवं
भिक्खू विउक्कसेज्जा ॥ अहवा वि जे लाभमयावलित्ते । अन्न जणं खिंसति बालप

नीविका प्राप्त करनेवाला संसार में परिभ्रमण करता है ॥ १२ ॥ जो साधु भाषा के गुणदोष का जा
ननेवाला, प्रिय वचन बोलनेवाला, मतिमा [बुद्धि] का पारगामी, विशारद, द्रव्य क्षेत्र काल और भाव
का माननेवाला तथा धर्म वासना से सुवासित आत्मावाला होवे परंतु जो अपना जानपना से अन्य का
तिरस्कार करता होवे तो वह पुरुष समाधि नहीं प्राप्त कर सकता है और जो साधु महावन्त हो करके
[illegible] भी अन्य को निंदता होवे तो
गर्व करता है अथवा जो साधु मंत्र को जप

अ॰ मनका खि॰ खिन्नता है बा अज्ञानी ॥ १४ ॥ प॰ प्रज्ञामद त॰ तपमद णि॰ दूरकरे गो॰ गोत्रमद मि साधु भा आजीविका च॰ चौथा मा॰ कहा से॰ वह पं॰ पण्डित उ॰ उत्तम पो॰ पुरुषमें से॰ वह ॥ १५ ॥ ए॰ इन म॰ मद को वि॰ दूर करके धी॰ धीर ण॰ नहीं ता॰ उसे से॰ सेवते हैं सु॰ वैर्यवन्त ते वे स॰ सर्व गो॰ गोत्र अ॰ रहित म॰ महर्षि उ॰ ऊंच अ॰ अगोत्र ग॰ गति उ॰ जाते हैं ॥ १६ ॥ भि॰ साधु मु॰ संस्कार रहित क॰ किया हुवा (त यथा तथ्य) दि॰ देखा हुवा ध॰ धर्म गा॰ ग्राम

मे ॥ १४ ॥ पन्नामयं चेव तवोमयं च । णिन्नामए गोयमयं च भिक्खू ॥ आजीव
ग चेव चउत्थ माहु ॥ से पंडिए उत्तम पोग्गले से ॥ १५ ॥ एयाइं मयाइं विगिंच
धीरा । ण ताणि सेवंति सुधीर धम्मा ॥ ते सव्वगोत्तावगया महेसी । उच्च अगोत्त
च गतिं उवेंति ॥१६॥ भिक्खू मुयच्चे कय (तह) दिट्ठधम्मे । गाम च णगरं च अ

वह साधु बाल-अज्ञानी है ऐसा जानना ॥ १४ ॥ जो साधु प्रज्ञा का मद, तप का मद, गोत्र का मद, और चौथा आजीविका (अर्थ) का मद नहीं करता है वह साधु उत्तम पुरुष में निस्पृही व पण्डित है ऐसा मानना ॥ १५ ॥ धीर पुरुष पूर्वोक्त गोत्रादिक मद का त्याग करे ऐसा गोत्रादिक मद से रहित महर्षि ऊंच और अगोत्रवासी सिद्धगति में जाते हैं ॥ १६ ॥ शरीरादि संस्कार रहित तथा यथावस्थित पदार्थ देखनेवाला, (दृष्टधर्मी) ग्राम नगर में प्रवेश करके आहार की यदि अयदि

पुव्वविस्सा ॥ से एसण जाण मणेसण च । अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू । बहुजणे वा तह एगचारी ॥ एगत मोणेण वियागरेज्जा । एगस्स जंतो गति रागतीय ॥ १८॥ सयं समेच्चा अदु वा वि सोच्चा । भासेज्ज धम्म हियय पयाण ॥ जे गरहिया सणियाणप्पओगा । ण ताणि सेवंति सुधीर

ण० नगर म० प्रवेश कर मे० ग्र ए एपणा जा० जानकर अ० अनेपणा भ अन्नका पा० पानी का अ० अगृद्ध ॥ १७ ॥ अ० अरति र० रति अ० दूर करके भि० साधु ब० बहुत म० मनुष्यों त० तथा ए० एकल विहारी ए० एकान्त मो० संयम से वि बोले ए० अकेला ज० जीव की ग० गति आ० आगति ॥ १८ ॥ स स्वय स० जानकर भ अथवा सो० सुनकर भा० बोले ध० धर्म हि० हितकर प० जीवों

को जानता हुआ और उस में अनासक्त होता हुआ विचरे ॥ १७ ॥ अन्तप्रान्त आहारादि मिले और उस में यदि साधु को रति अरति उत्पन्न होजावे तो बहुत समुदायवाला या एकल विहारी साधु उस सहन करके एकान्त निरवद्य धर्म को तथा जीव अकेला जाता है और अकेला आता है ऐसा जाने ॥ १८ ॥ धीर पुरुष धर्म का स्वरूप स्वयं सम्यक् प्रकार से जानकर या गुर्वादिक की पास से

म प० जो ग० निन्दा स० नियाण सहित प क्रिया प० नहीं ता० उन्हें से० सेवते हैं सु० धैर्यवत ॥१९॥ के० कितनेक का छ० अभिप्राय अ० नहिं मानकर सु० क्षुद्र ग० जावे अ नहीं श्रद्धता हुवा आ० आयुष्यकी का० दीर्घस्थीति व० भोगवे ल० भास कर अ० अनुमान प० दूसरे का अ० परमार्थ ॥ २० ॥ क कर्म छ० स्वच्छन्दता वि० दूरकरे धी० धैर्यवन्त वि० दूरकरे स० सर्वथा आ० आत्म भाव को रू० रूपादि में लु०नाश पाता है भ०भयकर वि० ज्ञान अ० ग्रहण कर त० त्रस था० स्थावर में ॥२१॥

धम्मा ॥ १९ ॥ केसिंचि तक्काइ अबुज्झभाव । खुद्दपि गच्छेज्ज असद्दहाणे ॥ आउ-स्स कालाइचार वधाए । लद्धाणु माणे य परेसु अट्ठे ॥ २० ॥ कम्मं च छन्द विगिंच धीरे । विणइज्जओ सव्वह आयभाव ॥ रूवेहिं लुप्पति भयावहेहिं । विज्जं गहाय तस थावरेहिं ॥ २१ ॥ न पूयण चेव सिलोयकामी । पियमप्पिय कस्सइ णो करेज्जा ॥

॥ २० ॥ बुद्धिमान् साधु श्रोता का अनुमान व अभिप्राय मानकर धर्मोपदेश करे और उन का सर्वथा प्रकार से मिथ्यात्व भाव (विषयासक्ति) दूर करे. इस लोक में तथा पर लोक में भय उत्पन्न करनेवाले मनोहर रूपों में आसक्त धर्म से भ्रष्ट होवे हैं, ऐसा जीवों को हितकारक धर्म कहे ॥ २१ ॥ धर्मोपदेशना करनेवाला साधु सत्कार, पूजा श्लाघा की इच्छा करे नहीं किसी को रागद्वेष उत्पन्न होवे, वैसी भाषा भी बोले नहीं अनर्थकारी भाषा का त्याग करे, और क्षोभ तथा आलस्य रहित होता हुवा सत्यधर्म

न० नहीं पू० पूजा चे० निश्चय सि० श्लाघा का कामी पि० मिया प्रिय क० किसी का णो० नहीं क० करे म० सर्व अ अनर्थ प० वर्जे अ० अव्याकुलता रहित अ० अकषायी भि० साधु॥२२॥ आ० यथा तथ्य स दखता हुवा स० सर्व पा० प्राणी में णि० त्याग करके दं० दंड णो० नहीं जी० जीवितव्य णा० नहीं म०मरण अ०इच्छे प० प्रवर्ते व० माया वि०रहित चि० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २३ ॥ १३ ॥

सव्वे अणट्ठं परिवज्जयते । अणाउलेया अकसाई भिक्खू ॥ २२ ॥ आहत्तहियं समु पेहमाणे । सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंडं ॥ णो जीवियं णो मरणाहिकंखी । परिव्वएज्जा वलयाविप्पमुक्के त्तिबेमि ॥ २३ ॥ इति आहत्तहियं णाम तियदसमज्झयणं सम्मत्तं ॥ १३ ॥

की प्ररूपणा कर ॥ २२ ॥ यथातथ्य धर्म को विचारता हुवा त्रस स्थावर जीवों के विनाश का त्याग करे जीवितव्य तथा मरण की कांक्षा रहित मन करके मिथ्यात्व को वमता हुवा विचरे. ऐसा मैं भी तीर्थंकर की आज्ञानुसार कहता हूं यह यथातथ्य नामक त्रयोदश अध्ययन समाप्त हुवा इस में यथातथ्य का स्वरूप कहा यह सत्यपना बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग बिना नहीं हो सकता है इस लिये आगे ग्रंथ का परित्याग बताते हैं ॥ १३ ॥

॥ ग्रंथाख्यं चतुर्दश मध्ययनम् ॥

म० ग्रंथ वि० छोडकर इ यहां सि० सिखता हुआ ब सावधान हो प्र० ब्रह्मचर्य व० रहे उ०उपाय कारी वि० विनय सु० सिखे चे० जो छ० छेद प्रमाद न नहीं कु० करे ॥ १ ॥ ज० यथा दि० पक्षि का बच्चा अ० पांख रहित सा० ग्रोस्थान से ए० उडने को म० असमर्थ तं० उसको म० असमर्थ त० छोटा म० पांख रहित को ढं० ढंकादि ज० उडने को असमर्थ से ह० लेजावे ॥२॥ ए० एसे से० नव दिक्षीत शिष्य

गंथ विहाय इह सिक्खमाणो । उट्ठाय सुबम्भचेरं वसेज्जा ॥ उवायकारी विणयं सुसिक्खे । जे छेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ जहा दियापोत मपत्तजातं । सावासगा पविउं मन्नमाणं ॥ तम चाइयं तरुण मपत्तजातं । ढंकाइ अव्वत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

जो पण्डित पुरुषों हैं वे इस जिन भवन में धन धान्यादिक बाह्य और क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रह को छोड कर ग्रहण शिक्षा रूप शीख को शीखते हुवे संयम में उद्यम करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, गुरु का विनय करते है, और संयम में कुछ भी प्रमाद नहीं करते हैं ॥ १ ॥ अब गुरु के उपदेश बिना अपने छंद गच्छ से बाहिर निकलकर जो अकेला विचरता है, उस को बहुत दोषों की प्राप्ति होती है सो दृष्टांत से बतावे हैं जैसे पक्षि का पांख बिना का छोटा बच्चा अपना घोंसला में से उडने को चाहता है, परंतु शक्ति हीन होने से नहीं उड सकता है इतने में कोई मांसाहारी ढंकादि पक्षियों उस छोटे बच्चे का विनाश करे. वैसे ही नव दीक्षित अगीतार्थ साधु को ढंकादि पक्षि समान अन्य अनेक

अ० नहीं सम्भाषा हुवा ध० धर्म को नि० निकाला हुवा वु० वशीभूत म० मानता हुवा दि० पक्षी का छा० बच को अ० पांख रहित इ० हरेंगे पा० पापकर्मी अ० कितनेक ॥ ३ ॥ ओ० समीप इ० इच्छे म० मनुष्य म० समाधि अ० नहीं रहता हुवा प० नहीं अं० अत करते हैं ण० मानकर ओ० प्रकाश करे द० मोक्षार्थी का वि० अनुष्ठान ण० नहीं णि० निकल ब० बाहिर आ० दीर्घ प्रज्ञी ॥४॥ जे० जो ठा० कायोत्स में स० शैय्यासन में प० पराक्रम करे सु० अच्छा साधु जु० युक्त स० समिति में गु० गुप्ति में आ० आ

एवं तु सेहपि अपुट्ठ धम्म । निस्सारियं वुसिम मन्नमाणा ॥ दियस्स छात्र च अपत्त जायं । हरिसु ण पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥ ओसाण मिच्छे मणुए समाहिं । अणोसिए णंतकराति णच्चा ॥ ओभासमाणे दवियस्स वित्त । ण णिक्कसे बहिया आसुपन्ने ॥४॥ जे ठाणओ य सयणासणे य । परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते ॥ समितीसु गुत्तीसु य आय

पारागिर मार्गों सयम से भरू करे ॥ २ १ ॥ इस लिये चारित्रवान साधु को गुरु पास रहना सो बताते हैं पारजीर दर्शि गुरु की पास रहने की तथा समाधिकी वाच्छना करने वाला ही साधु कहा जाता है गुरु कुल वासमें नहीं रहने वाला मूल ... की वृद्धि करता है, ऐसा जानकर पण्डित पुरुष सदाकाल गुरु की सेवा करता हुवा धर्म ... परन्तु गच्छसे बाहिर निकलने की इच्छा करे नहीं अर्थात् स्वच्छन्दी बने नहीं ॥ ४ ॥ वैराग्य प्राप्त होये बाद अच्छा आचरवान् साधु ... करने, शयन तथा मसनादिक में

स्पर्दी ति उपदेशता हुवा पु० पृथक् व० बोले ॥ ८ ॥ स० शब्द सो सुनकर अ० भयका भे० भयकर अ० अनाश्रवी ते० उसमें प० प्रवर्ते नि० निद्रा भि० साधु न० नहीं प० प्रमाद कु० करे क० कैसे वि० वि विगिच्छा स रहित ॥ ६ ॥ ड० बालक से वु० वृद्ध से अ० शिक्षापण दीया हुवा रा० आचार्य से स० बरशी वयवाले स० सम्यक् थि० स्थिरता ण० नहीं अ० प्रतिपालना करे णि० बहते हुवे म० अ पारगामी स०बर ॥ ७ ॥ वि० परतीर्थिक से स० शास्त्र अ० शिक्षा हुवा द० बालक से वु० वृद्ध से

फ्ते । वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥ ५ ॥ सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि । अणासवे तेसु परिव्वएज्जा ॥ निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा । कहंकहं वा वितिगिच्छतिण्णे ॥ ६ ॥ डहरेण वुड्ढेण णुसासिए उ । रातीणिएणावि समव्वएण ॥ सम्मं तयं थिरतो णाभिगच्छे । णिज्जतए वावि अपारए से ॥ ७ ॥ विउट्ठितेण समयाणुसिट्ठे । डहरेण

पराक्रम करे पंच समिति तीन गुप्तिका जानने वाला साधु स्वय विवेकवान् बने और अन्यको भी समिति गुप्ति पालनेका तथा उसका फल पृथक् २ बतावे ॥ ५ ॥ मनोहर या भैरव शब्दोंमें रागद्वेष रहित साधु शुद्ध संयम पाले निद्रारूप प्रमाद करे नहीं इस तरह प्रवर्तता हुवा संदेह रहित होवे ॥ ६ ॥ सदैव गुरुकी पास रहने वाला साधुको कोई लघुवयका, वृद्ध, आचार्य या समवय वाला साधु शिक्षा देवे और जो स्वीकार न करे तो वह साधु संसारका अन्तकर्ता नहीं होता है ॥ ७ ॥ किसी साधुको मिथ्या दृष्टि या

चो० मेराया हुवा म० मत्यंत काम करने वाली से प० पानी लाने वाली से अ० साधु को स० शास्त्र म० शिक्षा हुवा॥८॥ प० नहीं वे० उसमें कु० कोप करे प० नहीं प०प्रहार करे ण० नहीं कि०किंचित् फ० कठोर व० बोले त० तैसे क० करूंगा प० करे से०श्रेयमे० मेरा ण०नहीं प०प्रमाद कु०करे॥९॥ व०वनमें मू०मूर्ख को ज० जैसे अ० ज्ञानी म० मार्ग भ० कहते हैं हि० हित प० जीवों का ते० उससे मे० मेरा इ० यह से० श्रेय बु० ज्ञानी स० अच्छी सा० शिक्षा देते हैं ॥ १० ॥ म० अब ते० वह मू०मूर्ख से भ० ज्ञानी की का०

तुट्ठेण उ चोइए य ॥ अब्भुट्ठियाए घडदासिए वा । अगारिणं व समयाणुसिट्ठे ॥ ८ ॥
णतेसु कुज्झे णय पव्वहेज्जा । णयावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥ तहा करिस्संति पडिस्सु
णेज्जा । सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ ९ ॥ वणंसि मूढस्स जहा अमूढा मग्गाणु
सासंति हितं पयाणं ॥ तेणे व मज्झं इण मेव सेयं । जमे बुहा समणुसासयंति ॥१०॥

गृहस्थ कहे कि तुम जो यह आचरण करते हो वह हमारे शास्त्रसे विरुद्ध है वा कोई वृद्ध तथा बालक शिक्षा देवे या मत्यंत कामकरने वालीया जलवाने वाली दासी कहेकी तुम्हारा ऐसा आचरण तो गृहस्थ भी न करे ऐसी प्रेरणा करे तो साधु उसपर कोपित न होवे वैसे ही उसे लकडीसे मारे भी नहीं, कठोर वचन बोले नहीं परंतु शिक्षा देने वालेको ऐसा कहे कि जैसा तुम कहते हो वैसे ही करूंगा इस तरह उसके वचन मा न्यकरे और उसकी शिक्षाको श्रेय कारी मानकर प्रमाद करे नहीं ॥९॥ जैसे गहन वनमें परिभ्रमण करने वाला मार्गका अज्ञान पुरुषको अन्य जानने वाला हितकारी मार्ग बताता है वैसे यह आचार्यादिक मुझे इसही तरह जो हित शिक्षा देते हैं यह श्रेयकारी है ॥ १० ॥ जैसे वह मूढ पुरुष मार्ग प्राप्त करके मार्ग

करनी पू० पूजा स० विशेष युक्त ए० यह उपमा वी० वहां उ० कहा पा० धारन अ०मानकर प० परमार्थ उ० आता है स० सम्यक् ॥ ११ ॥ ने० नेता अ० जैसे अं० अन्धकारवाली रा० रात्रि में म० मार्ग ण० नहीं जा० जानता है अ० नहीं देखने से से० वह सू० सूर्य का अ० उदय से म० मार्ग वि० जानता है प० प्रकाश होने से ॥ १२ ॥ ए० ऐसे से० नव दीक्षित अ० नहीं सर्वांग हुवा ध० धर्ममें ध० धर्म को न० न

अह तेण मूढेण अमूढगस्स । कायन्व पूया सविसेसजुत्ता ॥ एओवम तत्थ उदा हु धीरे । अणुगम्म अत्थं उवणेति सम्मं ॥ ११ ॥ णेता जहा अंधकारंसि राओ । मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे ॥ से सूरिअस्स अब्भुग्गमेण । मग्गं वियाणाइ पगासियसि ॥ १२ ॥ एवंतु सेहेवि अपुट्ठधम्मे । धम्मं न जाणाइ अबुज्झमाणे ॥ से

बताने वाले का उपकार मानकर उसकी पूजा सत्कार करता है, वैसे ही इसने मुझे मिथ्यात्व रूपी गहन वनमें से सम्यक् उपदेश देकर मुक्त किया है ऐसा मानकर उसकी पूजाकरे, ऐसा श्रीतीर्थंकर देवने कहा है॥११॥ जैसे मार्गका जानने वाला पुरुष चक्षु सहित होने पर भी अंधकारमय रात्रिमें नहीं देख सकता है, और वही पुरुष सूर्योदय हुवे बाद सर्व जगत में प्रकाश होनेसे मार्गको जान सकता है, वैसे ही नवदीक्षित साधु अगीतार्थ और अपण्डित होने से श्रुद सूत्रका अर्थ नहीं जान सकता है पीछसे गुरुकी समीप रहने वाला वही साधु समस्त सूत्र अर्थका स्वरूप जानकर पण्डित होता है सूर्योदय होनेसे निर्मल नेत्र वाला पुरुष सब

हीं जा० मानता है म० अज्ञानी से० वह को० पवित्र जि० जिन वचन से प० पश्चात् सू० सूर्योदय से पा० देखता है च० चक्षु से ॥ १३ ॥ उ० ऊंची अ० नीची ति० तिर्यक् दि० दिशा में त० त्रस से० जो पा० स्थावर जे० जो पा प्राणी स० सदा ज० यत्नावंत हो० उसमें प० विचरे म० मन से पा० द्वेष अ० मनुकंपावान् ॥ १४ ॥ का० काल से पु० पूछे स० सम्यक् प० जीवों का आ० कहता हुवा द० मोक्ष का सि० अनुष्ठान तं० उसको सो० सुनता हुवा पु० पृथक् प० प्रवेशकरे सं० जानकर के० केवली की स०

कोविए जिणवयणेण पच्छा । सूरोदए पासति चक्खुणे वा ॥ १३ ॥ उड्ढं अहेयं ति रिय दिसासु । तसाय जे थावर जेय पाणा ॥ सया जए तेसु परिव्वएज्जा । मणप्पओ से अविकम्पमाण ॥ १४ ॥ कालेण पुच्छे समियं पयासु । आइक्खमाणो दवियस्स

मार्ग जानता है वैसे ही शिष्य आगम रूप सूर्यका प्रकाश होनेसे निर्मल धर्म मार्गको जानताहै ॥ १२ १३ ॥ इस तरह प्रवृत्ति करने वाला शिष्य ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशाओंमें जो कोई त्रस और स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं उनकी रक्षा करता हुवा विचरे, उसमें किंचिन्मात्र भी द्वेष करे नहीं, और एकाग्र भाव सहित रहे ॥ १४ ॥ जीवोंमें सम्यक् रीतिसे प्रवृत्ति करने वाला आचार्यकी पास जाकर, अवसर का जानकार शिष्य इस अर्थकी पृच्छा करे और आचार्य भी मुक्ति गमन योग्य पुरुषके आचार करते हुवे प्रशंसीक वंदनीक होवे. आचार्यादिकके पास से श्रवण करने वाला शिष्य भी पृथक् २ अर्थ विचार और केवली भाषित स

तमाधि को)॥ १८ ॥ म० इस में सु० सावधान होके ति० तीन करण से ता० रक्षक ए० इस में सं० शांति नि० निरोध आ० कहा ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं ति० त्रिलोकदर्शी प० नहीं पु० फीर ए० आवे हैं प० प्रमाद सगको॥ १६ ॥ नि० जानकर से०वह भि०साधु स०सम्यक् अ०अर्थ प०प्रतिमावन्त हो० होता है वि० विद्वान आ० आत्मार्थी वो० तप मो० संयम उ० प्राप्त कर सु० शुद्ध से उ० प्राप्त होता है

विचं ॥ तं सोयकारी पुढो पवेसे । सखा इम केवलियं समाहिं ॥१५॥ अस्सिं सु ठिच्चा तिविहेण तायी । एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एव मक्खंति तिलोगदंसी । ण भुज्जमेयंति पमायसगं ॥ १६ ॥ निसम्म से भिक्खू समीहियट्ठ । पडिभानवं हो इ विसारए य ॥ आयाणअट्ठी वोदाणमोणं । उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥ १७ ॥

न्वक ज्ञानादि लक्षण युक्त समाधिको हृदयमें स्थापन करे ॥ १८ ॥ गुरुकुल वासमें रहने वाला साधु मन वचन और कायास पद् कायाका रक्षक बने इस तरह समिति गुप्तिमें रहने वाला साधुको शान्ति तथा कर्म क्षय होवे ऐसा कहा जाता है श्री त्रिलोकदर्शी सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि क्षणमात्र भी प्रमादका संग करना नहीं ॥ १६ ॥ यह गुरुकुल निवासी साधुका आचार अवधारकर और समाधि अर्थात् मोक्षको जान कर प्रतिभावान् व विशारद (पण्डित) होवे और ज्ञानार्थी बन कर तथा तप व संयम प्राप्त कर शुद्ध निर्दोष आहार से मोक्षमें जावे ॥ १७ ॥ जो धर्म को सम्यक् रीतिसे जानकर उसकी प्ररूपणा करते हैं वे संसारके

मो॰ मोक्ष को ॥ १७ ॥ ध॰ जान कर ध॰ धर्म को वि॰ कहते हैं बु॰ बुद्ध ते॰ वे अं॰ अंत करने वाले भ॰ होते हैं ते वे पा॰ पारगामी दो॰ दोनो से मा॰ मुक्त होने से सं॰ अच्छी रीत से मानकर प॰ प्रश्न उ॰ कहते हैं ॥ १८ ॥ णो॰ नहीं च्छा॰ ढांके णो॰ नहीं लू॰ छुपावे मा॰ मान ण॰ नहीं से॰ सेवे प॰ प्रकाशे ण॰ नहीं प॰ बुद्धि से प॰ हास्य कु॰ करे ण॰ नहीं आ॰ आशि र्वाद वि॰ बोले ॥ १९ ॥ भू॰ जीवों की स धका दु॰ दुगंच्छा करता हुवा ण॰ नहीं णि॰ बोले मं॰ मंत्र पद्से गा॰ गोत्रको ण॰ नहीं किं॰ किंचित् इ॰ इच्छ म॰ मनुष्य ध॰ प्रभा में अ॰ असाधु ध॰ धर्म को

संखाइ धम्म च वियागरति । बुद्धा हु त अतकरा भवति ॥ ते पारगा दोण्हवि मोय णाए । संसोधित पण्ह मुदाहरंति ॥ १८ ॥ णो च्छायए णो विय लूसएज्जा। माण ण सेवज्ञ पगासणं च ॥ णयावि पन्ने परिहास कुज्जा । ण यासियावाय वियागरेज्जा॥१९॥ भूताभिसंकाइ दुगुंछमाणे । ण णिव्वहे मंतपदेण गोय ॥ ण किंचि मिच्छे मणुए पया

भवरूपी होते हैं जो पूर्वापर अविरुद्ध प्रश्न कहते हैं वे स्वतः को तथा अन्यका मुक्त करने वाले होते हैं ॥१८॥ धर्म प्ररूपक पुरुष सूत्र अर्थको छुपावे नहीं अर्थात् अन्यथा प्ररूपे नहीं, अन्यका गुणको छुपावे नहीं, मान करे नहीं, अपनी मोटाइ प्रकाशे नहीं, स्वतःको प्रज्ञावन्त मानकर अन्यका उपहास्य करे नहीं, और आशीर्वादभी देवे नहीं ॥ १९ ॥ जीवोंकी घात होगा ऐसी शंका करके यह धर्म प्ररूपक आशीर्वाद बोले नहीं, विद्या मंत्रसे संयमकी मापना करे नहीं, व्याख्यान करता हुवा श्रोता जनोंकी पाससे किंचित् वस्तुकी, इच्छा

ण० नहीं सं० बोले ॥ २० ॥ हा० हास्य णो० नहीं सं० करे पा० पाप धर्म ओ० यथातथ्य फ कठोर वि० सत्ये णो नहीं तु० उन्माद करे णो० नहीं वि० श्लाघा करे अ० अनाकुल अ० अकषायी भि० साधु ॥ २१ ॥ सं० शंका करे अ० अशंकित भाव से भि० साधु वि स्याद्वाद को वि० करे भा० दोषा पा ध० धर्म स० सावधान हुवा वि० बोले स० समय का जान ॥ २२ ॥ अ० अनुसरते हुवे त० जैसा ना०

सु । असाहु धम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥ हासंपि णो सधाति पावधम्मे । ओए तहीय फरुसं वियाणे ॥ णो तुच्छए णोय विकथइज्जा । अणाउलेया अकसाई भिक्खू ॥ २१ ॥ सकेज्ज या सक्तिभाव भिक्खू । विभज्जवायं च वियागरेज्जा ॥ मासादुय धम्मसमुट्ठितेहिं । वियागरेज्जा समयासुपन्ने ॥ २२ ॥ अणुगच्छमाणे वि तहंवि

करे नहीं, वैसे ही हिंसा रूप धर्म की प्ररूपणा करे नहीं ॥ २० ॥ और भी स्वतः को तथा अन्य को हास्य उत्पन्न होवे वैसी कथा करे नहीं, पाप धर्म [सावद्य धर्म] बोले नहीं, रागद्वेष रहित होता हुवा सत्य वचन भी कठोर होवे तो उसे ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागे, उन्माद करे नहीं, आत्म श्लाघा करे नहीं, धर्म कथ्य करने में आकुल व्याकुल होवे नहीं, और कषाय रहित होवे ॥ २१ ॥ धर्म प्ररूपक साधु सूत्रार्थ में निःशंकित होने पर शंका रखे अर्थात् गर्व करे नहीं, स्याद्वाद धर्म की प्ररूपणा करे, सभा में सत्य और व्यवहार भाषा बोले, तथा राजा या रंक पूछने पर सब को समभाव से उत्तर देवे ॥ २२ ॥ इस तरह दो प्रकार की भाषा से धर्मोपदेश करतेहुवेको जो कोई पण्डित पुरुष होवे वह तो अच्छी

माने त० जैसे जैसे मा० साधु अ० मधुर वचन से ण०नहीं कु०करे भा० भाषा से वि तिरस्कार कर नि०
भरन न० नहीं दी० बहुत वक्त लगावे ॥ २१ ॥ स अच्छी तरह करे प० प्रतिपूर्ण भा० बोलने
वाला नि० सुनकर स० सम्यक् अ अर्थदर्शी आ आज्ञा सु० शुद्ध व० वचन मि० करता हुवा
भ० बोले पा पाप वि० विवेक भि० साधु ॥ २४ ॥ अ० यथा सु कहा हुवा सु सीखे ज०
बोले ण०नहीं अ० बहुत समय व०बोले से० वह दि० दृष्टिवान् दृ० दृष्टि ण०नहीं लू० दोष लगावे से०वह

जाणे । तहातहा साहु अकक्कसेण ॥ ण कुव्वइ भास विहिंसइज्जा । निरुद्धग वावि
न दीहइज्जा ॥ २३ ॥ समालवेज्जा पडिपुण्णभासी । निसामिया समिया अट्ठदंसी ।
आणाइ सुद्ध वयण भिउंजे । अभिसंधए पावविवेगभिक्खू ॥ २४ ॥ अहा बुइया
ई सुसिक्खएज्जा । जइज्ज या णातिवेल वदेज्जा ॥ से दिट्ठिम दिट्ठि ण लूसएज्जा । से

तरह समझे, परन्तु यदि मूर्ख उसे विपरीत जाने-समझे नहीं तो साधु उसे मधुर भाषा से उस मार्ग पर
लावे परंतु उस का तिरस्कार करे नहीं और अल्प सूत्रार्थ में बहुत काल व्यतीत करे नहीं ॥ २२ ॥
जो कोई संक्षिप्त में न समझ सके तो उसे विस्तार पूर्वक समझावे सत्पदार्थ को जाननेवाला तीर्थंकरकी
आज्ञा से आचार्यादिक की पास से निर्दोष वचन श्रवणकर बोले. इस तरह कथन करनेवाला साधु पाप का
विवेक जो आप सत्कारादि उसे छोडे ॥ २४ ॥ नहीं इमने जैसा कथन किया है वैसा सीखे, और उस

मा मानता है मा० बोलने को तं० उस स० समाधिको ॥२५॥ अ० दोष लगावे नहीं णो० प० प्रच्छन्न भाषी णो० नहीं सु० सूत्र अ० अर्थ क० करे ता० रक्षक स० गुरु भक्ति अ० विचार कर भा० वचन सु० श्रुत स० सम्यक् प० कहे ॥ २६ ॥ से० वह सु० शुद्धसूत्री उ० उपधानवंत ध०

जाणइ भासिउ तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पच्छन्नभासी । णो सुत्तमत्थं च करेज्ज ताई ॥ सत्थारभत्ती अणुवीइ वायं । सुयं च सम्मं पडिवायएति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च । धम्मं च जे विंदति तत्थतत्थ ॥ आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते

को पालने का यत्न करे, मर्यादा का उल्लंघन करे नहीं, सम्यक् दृष्टिवन्त पुरुष अपना दर्शन में दोष लगे नहीं वैसी प्ररूपणा करे. इस तरह बोलनेवाला पुरुष तीर्थंकर भाषित धर्म का कथन करना जानता है ॥ २५ ॥ षट्काया का रक्षक साधु आगम का अर्थ कहता हुआ अपशब्दों से सूत्रार्थ दूषित करे नहीं, वैसे ही सूत्रार्थ को गोपवे भी नहीं, सूत्र का अर्थ अन्यथा भी करे नहीं, गुरु की भक्ति होवे वैसा वचन बोले और जैसा गुरु की पास सूत्र का अर्थ सुना होवे वैसा ही अर्थ प्रकाशे, अन्यथा किंचिन्मात्र बोले नहीं ॥ २६ ॥ जो शुद्ध सूत्र का प्रकाशक व उपधान साधु यथातथ्य वचन को जानता है, वह साधु उपसर्ग आगार मार्ग में ग्रहण करने योग्य वस्त को आदरनेवाला होता है वैसा निपुण, स्पष्ट वक्ता, तथा विचार

माने त० तैसे तैसे सा० साधु म० मधुर वचन से ण० नहीं कु० करे भा० भाषा से वि० तिरस्कार करे नि भस्स न० नहीं दी० बहुत वक्त लगावे ॥ २३ ॥ स० अच्छी तरह को प० प्रतिपूर्ण भा० बोलने वाला नि० सुनकर स० सम्यक् अ० अर्थदर्शी आ० आज्ञा सु० शुद्ध व० वचन भि० कहता हुवा अ० चाहे पा० पाप वि० विवेक भि० साधु ॥ २४ ॥ अ० यथा तु करा हुवा सु० शीखे ण० बोले ण० नहीं अ० बहुत समय प० बोले से० वह दि० गृहितार्थ द्र० दृष्टि ण० नहीं लू० दोष लगावे से० वह

जाणे । तहातहा साहु अकक्कसेण ॥ ण कुव्वइ भास विहिंसइज्जा । निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ॥ २३ ॥ समालवेज्जा पडिपुण्णभासी । निसामिया समिया अट्ठदंसी । आणाइ सुद्ध वयण भिउंजे । अभिसंधए पावविवेगभिक्खू ॥ २४ ॥ अहा बुइयाई सुसिक्खएज्जा । जइज्ज या णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिट्ठिमं दिट्ठि ण लूसएज्जा । से

तरह समने, परंतु यदि मूर्ख उसे विपरीत जाने-समजे नहीं तो साधु उसे मधुर भाषा से तत्त्व मार्ग बत लावे परंतु उस का तिरस्कार करे नहीं और अल्प सूत्रार्थ में बहुत काल व्यतीत करे नहीं ॥ २३ ॥ जो कोई मतिभ्रम में न समज सके तो उसे विस्तार पूर्वक समझावे सत्पदार्थ को जाननेवाला तीर्थंकरकी आज्ञा से आचार्यादिक की पास से निर्दोष वचन श्रवणकर बोले. इस तरह कथन करनेवाला साधु पाप का विपाक और स्याम मत्कारादि उसे छोडे ॥ २४ ॥ सर्वज्ञ प्रभुने जैसा कथन किया है वैसा शीखे, और उस

॥ आदानीयाख्यं पञ्चदश मध्ययनम् ॥

ज० जो भ० भूतकाल को प० वर्तमान काल को आ०आगामिक काल को णा० नायक स० सर्व भ०
नता है तं०उस ता०रक्षक दं०दर्शनावर्णीयको तं०क्षय करे ॥ १ ॥ अं० अंत करे वि० वितिगिच्छा का
जो जा० जानते हैं निरूपम अ० निरूपम ज्ञान का अ० कहनेवाला ण० नहीं से० वह हो०
ता है त० वहां वहां ॥ २ ॥ त० वहां वहां सु० अच्छा कहा हुआ से० वे स० सर्व सु० अच्छा
स० सदा स० सत्य से सं० संपन्न मि० मैत्री भू० जीवों से क० करे ॥ ३॥ भू० जीवों से न०

जमतीतं पडुप्पन्नं। आगमिस्सं च णायओ ॥ सव्वमन्नति तं ताई । दंसणावरण तए
॥ १ ॥ अंतए वितिगिच्छाए । जे जाणति अणेलिसं ॥ अणेलिसस्स अक्खाया । ण
से होइ तहिं तहिं ॥ २ ॥ तहिंतहिं सुयक्खायं । सेय सच्चे सुआहिए ॥ सया सच्चेण
संपन्ने । मित्तिं भूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ भूएहिं न विरुज्झेज्जा । एस धम्मे वुसीमओ ।

जिनोंने चार घनघातिक कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया है तथा अतीत, अनागत और वर्तमान
के पदार्थ स्वरूपको यथातथ्य जाना है, ऐसे परमज्ञान के धारक केवलज्ञानी अन्य कोई भी
ार्शिक मत में नहीं हैं ॥ १ २ ॥ श्री वीतराग प्रभुने जो जो भाव कहे हैं वे सत्य है, उस में किसी प्र
र का विरोध नहीं है ऐसा सदाकाल सत्यभाषी सब जीवों को अपनी आत्मा तुल्य माने ॥ ३ ॥ अस

धम जे० जो सि० मानता है त० तहां आ० ग्रहण करे म०वचन कु०कुशल वि० विवेकी स०वह अ० योग्य है म० कहने को तं० उसको स० समाधि त्ति ऐसा बे० कहता हूं ॥ २७ ॥ *

स अरिहइ भासिउ त समाहिं तिबेमि ॥ २७ ॥ इति गथनामं चउद्दहमज्झयण *

सम्मत्त ॥ १४ ॥ *

पूरक आगमनाम्न पुरुष ही तीर्थंकर भाषित समाधि धर्म को कहने योग्य है ऐसा मैं श्री महावीर प्रभु के कथनानुसार कहता हूं ॥ २७ ॥ यह ग्रंथ नामक चतुर्दश अध्ययन समाप्त हुवा, आगे सम्यक् रीति से चारित्र ग्रहण करना इस लिये आदान नामक पन्दरहवां अध्ययन कहते हैं ॥ १४ ॥ * *

क० कर्म ना समाचनार्थ जा० जानता है वि० जानकार से० वह० म० महावीर जे० जो जा० नहीं जा० जन्मता है ण० नहीं मि० मरता है ॥७॥ ण० नहीं मि० मरता है म० महावीर ज० जिसको न० नहीं अ० है पु० पूर्व क० किये हुवे वा० वायु अ० अग्नि में अ० जाता है पि० प्रिय लो० लोक में इ० स्त्रियों ॥८॥ इ स्त्रियोंको जे० जो ण० नहीं से० सेवते हैं आ० मोक्षगामी ते० वे ज० मनुष्यों

कुव्वओ णवं णत्थि । कम्मं नामवि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे । जे ण आइ ण मिज्जइ ॥७॥ ण मिज्जइ महावीरे । जस्स नत्थि पुरेकडं ॥ वाउव्व जलमच्चेति। पिया लोगसि इत्थीओ ॥ ८॥ इत्थीओ जे ण सेवंति । आइमोक्खा हु ते जणा ॥ ते जणा बंधणुम्मु

आते हैं ऐसा कितनेक मानते हैं इस लिये इन की शंका का निवारण करने के लिये कहते हैं समस्त क्रिया रहित जीव कर्म बंधन व निर्जरा जानकर नवीन कर्म नहीं बांधता है ऐसा जानकर वीर पुरुष ऐसा कार्य करे कि जिस से फीर जन्म मरण करना पडे नहीं ॥ ७ ॥ पूर्व कृतकर्म रहित वीर पुरुष को जन्म मरण नहीं है वे नवीन कर्म बांधने की इच्छा भी नहीं करते हैं कर्म बंध का मुख्य कारण स्त्री संसर्ग है परंतु स्त्रियों भी उस वीर पुरुष का पराभव नहीं कर सकती हैं जैसे अग्निज्वालामें से वायु निकल जानेपर भी नहीं जलता है, वैसे ही इस संसार में प्रिय स्त्रियों भी वीर पुरुष को नहीं जीत सकती हैं ॥ ८ ॥ स्त्रियों को नहीं सेवनेवाले पुरुष मोक्षगामी होते हैं फिर वे बंधन मुक्त

नहीं वि० विरोध करे ए० यह घ धर्म बु० साधु का सा० साधु भ० भगवत् को प० जानकर भ० रूप में भी० शुद्ध भा० भावना ॥ ४ ॥ भा० भावना जो० योग सु० शुद्धात्मा न० समुद्र में णा० नाव आ० कही ना० नाव जैसे ती० तीरको सं० प्राप्त हुए स सर्व दु० दुःखसे ति० मुक्त होवे हैं ॥ ५ ॥ ति० मुक्त होते हैं मे० बुद्धिमान जा० जानकार लो० लोक में पा० पापकर्म तु० मुक्त होवे हैं पा० पाप क० कर्म न० नवीन क० कर्म अ० करे नहीं ॥६॥ अ नहीं करता हुवेको ण० नवीन प० नहीं हैं

साहू जग परिन्नाय । अस्सिं जीवितभावणा ॥ ४ ॥ भावणा जोगसुद्धप्पा । जले णावा आहिया ॥ नावाव तीरसपन्ना । सव्वदुक्खा तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टइ उ मेधावी । जाणं लोगंसि पावगं ॥ तुट्टंति पावकम्माणि । नव कम्ममकुव्वए ॥ ६ ॥ अ

स्थावर जीवों की साथ विरोध करना नहीं यही संयमवन्त साधु का धर्म है साधु त्रस स्थावर जीवों को जानकर शुद्ध भावना भावे ॥ ४ ॥ भावना का योग से जिस का आत्मा शुद्ध बनाहुवा है ऐसा साधु समुद्र में रही हुइ नौका समान कहागया है जिस तरह नावा अनुकूल वायु से तीर का पहुंचती है वैसे ही संयमी साधु सर्व दुःख से मुक्त होता है ॥ ५ ॥ मर्यादावान पण्डित साधु लोक में रहेहुवे मारणानुष्ठान को जानताहुवा बंधन से मुक्त होवे वह पण्डित पुरुष नवीन कर्म को नहीं करताहुवा पूर्व संचित पापकर्म तोडे ॥ ६ ॥ कर्मक्षय हुवे बाद जीव अपना वीर्य की अवगति देख कर संसार में पुनः

प० नहीं सी० आसक्त होने छि० ऐसा हुवा सो० श्रोतः अ० अकलुप अ० अनाकुल स० सदा द० दम
नेन्द्रिय से संधि प० मास अ० अनुपम ॥ १२ ॥ अ० सयमका से० निपुण ण० नहीं वि० विरोध करे
के० किसीसे भी म० मनसे व० वचन से चे निश्चय का० कायासे च० चक्षुवन्त ॥ १३ ॥ से० वह म०
पशु म मनुष्योंकी जे० जो कं० कांक्षा अं० अतकरे अं अन्तसे खु० छुरी व० वहती है च० चाक
अन्तसे लो फिरता है ॥१४॥ अ०अत मांत आहार धी०धीर से० सेवते हैं ते० इससे अ अत करे पाप

छिन्नसोए अणाविले ॥ अणाइले सयावंते । संधिं पत्ते अणेलिस ॥ १२ ॥ अणेलिस
स्स खेयन्ने । ण विरुज्झिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव । कायसा चेव चक्खुम
॥ १३ ॥ से हु चक्खू मणुस्साण । जे कंखाए य अतए ॥ अंतेण खुरो वहति । च
क्क अंतेण लोहति ॥ १४ ॥ अताणि धीरा सेवंति । तेण अंतकरा इह ॥ इह माणु-

समान मैथुन को मानकर पण्डित पुरुषों का उस में लिप्त होना नहीं ऐसा अनाश्रवी, व अक
षायी साधु क्षोभ रहित बन करके उत्तम सिद्धगति में जाता है ॥ १२ ॥ संयम का सेवक पुरुष मन,
वचन और काया से किसी जीव की साथ विरोध करे नहीं ऐसा करनेवाला पुरुष ही चक्षुवन्त कहा
गया है जो पुरुष भोगेच्छा का नाश करता है वह सब मनुष्यों को चक्षु समान आधारभूत है,
जैसे छुरी अंत [धार] से छेदनादिक क्रिया में समर्थ होती है अथवा जैसे चक्र अन्त [लोहे का पाय]
से चलने में समर्थ होता है वैसे ही संयमी पुरुष मोहादिक के अंत से सिद्ध होता है ॥ १४ ॥ धीर पुरुष

ते० ये अ० मनुष्य बं० बंध रहित न० नहीं अ० इच्छते हैं जी० जीवितव्य ॥९॥ जी० जीवितव्य पि० दूर करके अं० अंतको पा० प्राप्त होता है क० कर्मका क कर्मसे स० सन्मुख हुवे जे० जो म० धर्म को अ० करते हैं ॥ १० ॥ अ० हित शिक्षा पु० पृथक् पा० प्राणी व० संयमवत पू पूजा में से० वे अ० अनाश्रवी य० यत्नावंत दं० दमनेन्द्रिय द० दृढ आ० आरक्त मे० मैथुन में ॥ ११ ॥ णी० चावल

- क्षा। नाव कंखति जीवियं ॥ ९ ॥ जीवियं पिट्ठओकिच्चा। अंतं पावंति कम्मुण। क-म्मुणा समुहीभूता । जे मग्ग मणुसासइ ॥ १० ॥ अणुसासण पुढो पाणी। वसुम पूयणासु ते ॥ अणासए जते दते। दढे आरय मेहुणे ॥१२॥ णीवारे व ण लीएज्जा।

जीर असंयम जीवितव्य की वांच्छा नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ वे पुरुष असंयम जीवितव्य का निषेध करके पर कर्म का अंत करते हैं और सद्‌नुष्ठान से मोक्ष सन्मुख हो वीतराग भाषित धर्म प्रकाशते हैं॥१०॥ चारित्रवान्, देवतादिक से कराहुइ अशोक वृक्षादिक पूजा को भोगनेवाले, अनाश्रवी, (पूजा सत्कार में इच्छा रहित) यत्नावन्त इन्द्रियों को दमनेवाले, दृढ संयमी, तथा मैथुन धर्म से निवर्तनेवाले-ऐसे गुणों से युक्त श्री तीर्थंकर देव का उपदेश भव्य अभव्य जीवों को सम्यक् मिथ्यात्वरूप से पृथक् २ परगमता है. जैसे भिन्न २ स्वादवाली पृथ्वी में भिन्न२ स्वादवाला जल हो जाता है, वैसे ही सर्वज्ञ का उपदेश परगमता है ॥ ११ ॥ जैसे सूवर चावल की लालच से पाश में बंधाते हैं वैसे ही [illegible]

सम्यक्त्व दु० दुर्लभ दु० दुर्लभ त० तथा अ० अध्याम से० जो ध० धर्मका अर्थ नि० करे ॥ १८ ॥ जे० जो ध० धर्म सु० शुद्ध अ० कहते हैं प० प्रतिपूर्ण अ० अनुपम अ० सपम का ज० जो ठा० स्थान त० उसको ज० जन्म कथा क० कहां से ॥ १९ ॥ क० कहां से क० कदाचित मे० मेधावी उ० उपजते हैं त० तथा गत अ० अप्रतिज्ञ च० चक्षुभूत लो० लोक का अ० अनुत्तर ॥ २० ॥ अ० अनुत्तर ठा० स्थान से० सह का०

स्स । पुणो सबोही दुल्लभा ॥ दुल्लहाओ तहच्चाओ । जे धम्मट्ठं वियागरे ॥ १८ ॥ जे धम्मं सुद्ध मक्खति । पडिपुन्न मणेलिसं ॥ अणेलिसस्स ज ठाणं । तस्स जम्मकहा कओ ॥ १९ ॥ कओ कयाइ मेधावी । उप्पज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना । चक्खू लोगस्स णुत्तरा ॥ २० ॥ अणुत्तरे य ठाणे से । कासवेण पवेदिते ॥ ज किच्चा णिव्वुडा ए

हाना बहुत दुर्लभ है ॥ १८ ॥ जो वीतरागादिक महापुरुष प्रतिपूर्ण सर्वोत्तम शुद्ध धर्म प्ररूपते हैं, और वैसा ही धर्म स्वतः समाचरते हैं, और जिन को ज्ञानदर्शन और चारित्र ही स्थानक है उन को सर्व कर्म का क्षय होजाने से जन्म मरण कहां से होवे ? अर्थात् नहीं होवे ॥ १९ ॥ कदाचित् कोई पण्डित चाहे किसी स्थान से आकर उत्पन्न होवे परन्तु जो कर्म क्षय करके मुक्ति में गये हैं, ऐसा ही नियाणा रहित धर्माचरण करने वाला होने तो वह सर्व लोक के जीवों को चक्षुभूत हो जावे ॥ २० ॥ श्री महावीर देवने प्रधान संयम

१ यहां मा० आर्य क्षेत्रमें ठा० रहे हुवे ध० धर्म की आ० आराधना करके ण० मनुष्यों ॥ १५ ॥ णि० सिद्ध दे० देवता उ० लोकोत्तर इ० यह सु० सुना मु० सुना मे० मैंने ए० कितनेक से अ० मनुष्य बिना णे० नहीं त० तैसे ॥ १६ अं० अंत क० करते हैं दु० दुःख का ए० कितनेकने आ० कहा अ० कहा पु० फिर ए० कितनेक को दु० दुर्लभ यं० जो स० मनुष्य जन्म ॥ १७ ॥ इ० यहां से वि० भ्रष्ट हुवेको पु० फिर स०

सए ठाणे । धम्ममाराहिउं णरा ॥ १५ ॥ णिट्ठियट्ठा व देवा वा । उत्तराए इमं सुय ॥
सुयं च मेयमेगेसिं । अमणुस्सेसु णो तहा ॥ १६ ॥ अंतं करति दुक्खाण । इह मे
गेसिं आहिय ॥ अघाय पुण एगेसिं । दुल्लभे य समुस्सए ॥ १७ ॥ इओ विद्धसमाण-

अंतप्रांत आहार का सेवन करते हैं, जिस से वे संसार के पारगामी होते हैं इस लिये मनुष्य लोक में आकर धर्म को आराधकर मुक्तिगामी होना ॥ १५ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि संयम का पालनेवाला सिद्धगति में या देवगति में जाता है और मनुष्यगति छोड कर अन्य स्थान में ऐसी गति नहीं मिलती है ऐसा मैंने श्री तीर्थंकर देव से सुना है ॥ १६ ॥ तीर्थंकर गणधरादिक ऐसा कहते हैं कि मनुष्य ही सर्व दुःख का अंत कर सकता है, और मनुष्य जन्मकी प्राप्ति भी बहुत कठिन है ॥ १७ ॥ मनुष्य जन्म से भ्रष्ट हुवे जीवों को फिर सम्यक्त्व, शुद्ध लेश्या, मनुष्यजन्म व मनुष्य का कर्तव्य प्राप्त

सम्मत्त्त पु० दुर्लभ दु० दुर्लभ त० तथा अ० मगाम मेळे जो प० धर्मका अर्थ नि० करे ॥ १८ ॥ जे० जो ध० धर्म सु० शुद्ध अ कहते हैं प० मतिपूर्ण अ० अनुपम अ० सपम का ज० जो ठा० स्थान त० उसको ज०जन्म कथा क० कहां से ॥ १९ ॥ क कहां से क० कदाचित् मे० मेधावी उ उपजते हैं त० तथा गत अ० अमतिश्र च० चक्षुभूत लो लोक का अ० अनुत्तर ॥ २० ॥ अ० अनुत्तर ठा० स्थान से० वह का०

स्स । पुणो सवोही दुल्लभा ॥ दुल्लहाओ तहच्चाओ । जे धम्मट्ठं वियागरे ॥ १८ ॥ जे धम्म सुद्ध मक्खति । पडिपुन्न मणेलिस ॥ अणेलिसस्स ज ठाण । तस्स जम्मकहा कओ ॥ १९ ॥ कओ कयाइ मेधावी । उप्पज्जति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना । चक्खू लोगस्स णुत्तरा ॥ २० ॥ अणुत्तरे य ठाणे से । कासवेण पवेदिते ॥ ज किच्चा णिव्वुडा ए

होना बहुत दुर्लभ है ॥ १८ ॥ जो वीतरागादिक महापुरुष मतिपूर्ण सर्वोत्तम शुद्ध धर्म मरूपते हैं, और वैसा ही धर्म स्वतः समाचरते हैं, और जिन को ज्ञानदर्शन और चारित्र ही स्थानक है उन को सर्व कर्म का क्षय होजाने से जन्म मरण कहां से होवे ? अर्थात् नहीं होवे ॥ १९ ॥ कदाचित् कोई पण्डित चाहे किसी स्थान से आकर उत्पन्न होवे; परंतु जो कर्म क्षय करके मुक्ति में गये हैं; वैसा ही नियाणा रहित धर्माचरण करने वाला होवे तो वह सर्व लोक के जीवों को चक्षुभूत हो जावे ॥ २० ॥ श्री महावीर देवने मधान संयम

काश्यपने प० कहा हुआ ध० जिसको फि० पाल करके नि० निपुण प० कितनेक नि० भव पर्यंत पा०प्राप्त होते हैं प०पंडित ॥ २१ ॥ पं० पंडित वी० वीर्य छ प्राप्त कर नि० घात करनेको प० प्रवर्तक धु० स्तप करे पु० पूर्व कीये हुवे क० कर्म ण० नविन ण० नहीं कु० करता है ॥ २२ ॥ ण० नहीं कु०करता है म० महावीर अ० अनुक्रम मे क० किये हुए र० रज (पाप) र० पापसे सं एकठे किये हुवे क० कर्म को हे० क्षय करके जं० जो म० सयमको ॥ २३ ॥ ज० जो प० संयम स० सर्व सा० साधुका स० उस प संयमको स० शल्य छेदने वालाको सा० आराध करके त० उसको ति० तीरे दे० देवता अ० हुवे ते०

गे। निट्ठ पावंति पंडिया ॥ २१ ॥ पंडिए वीरियं लद्धु। निग्घायाय पवत्तग ॥ धुणे पुव्व कड कम्म। णवं वावि ण कुव्वति ॥ २२ ॥ ण कुव्वति महावीरे। अणुपुव्व कडं रय ॥ रयसा संमुहीभूता। कम्म हेचाण ज मय ॥ २३ ॥ ज मय सव्व साहूण । त मय

कहा है इस को पालनेवाले पंडित भव के अंत करनेवाले होते हैं ॥२१॥ निर्जरा करनेवाला साधुपंडित वीर्य प्राप्त करके पूर्वकृत कर्म दूर करे, और नविन कर्म बांधे नहीं ॥ २२ ॥ धीर पुरुष मिथ्यात्व अविरत प्रमादादि पाप कर्म करे नहीं और पापरूप रज से जो अष्ट प्रकारके कर्म बंधे हुवे हैं उन्हे छोड कर संयम पाकर मोक्ष सन्मुख होवे ॥ २३ ॥ साधु पुरुषों का संयमानुष्ठान कर्म छेदनेवाला है उस को सम्यक् प्रकार से साधकर के बहुत जीव मोक्ष में गये हैं अथवा वा वैमानिक देवलोक में उत्पन्न हो करके एका

ने ॥ २४ ॥ भ० हुवे पु० पहिले धी० धीर भा० आगामिक काल में सु० सुव्रता दु दुर्लभ मा० मार्ग का
अं० अन्त पा० दूर करके ति तीरे चि० ऐसा मैं कहता हूं ॥ २५ ॥ *

सल्लगत्ताण ॥ साहइत्ताण त तिन्ना । देवाता अभविंसु ते ॥ २४ ॥ अभविंसु पुरा धीरा।
आगामिस्साविं सुव्वता ॥ दुन्निबोहस्स मग्गस्स । अंतं पाउकरा तिन्ने त्तियेमि ॥ २५ ॥
इति आयाणीयणाम पन्नरसमज्झयण सम्मत्त ॥ १५ ॥ * *

वतारी हुवे हैं ॥ २४ ॥ ऐसे सयम के आराधक अतीत काल में अनंत हुवे, आगामी काल में होवेंगे, और वर्तमान काल में होरहे हैं वे ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप दुर्लभ मार्ग को प्राप्त करके ससार समुद्र को तीरे हैं, तीरते हैं, और तीरेंगे, ऐसा मैं श्री तीर्थंकर देव के कथनानुसार कहता हूं ॥ २५ ॥ यह आदानीय नामक पन्दरवा अध्ययन समाप्त हुवा इस में सम्यक् क्रिया की विधि तथा मिथ्यात्व क्रिया का निषेध कहा ऐसी क्रिया को आचरनेवाला साधु कहाजाता है इस लिये गाहा नामक सोलवा अध्ययन कहते हैं ॥ १५ ॥ * * *

॥ गाथा नामकं षोडश मध्ययनम् ॥

अ० अथ आ० कहा भ० भगवान् ए० ऐसा से० वह दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसरावी बु० काया वाला व० कहना मा० माहण स० श्रमण भि० साधु णि० निर्ग्रन्थ त्ति ऐसा प० कहो भ० भगवान् क० कैसे दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसरावी बु० काया वाला व० कहना मा० माहण स० श्रमण भि० साधु णि० निर्ग्रन्थ व० उसे ना० हमको बू० कहो म० महामुनि ॥ १ ॥ इ० ऐसा वि० विरत स० सर्व पा० पाप क० कर्म से पि० राग दो० द्वेष क० कलह अ० अभ्याख्यान पे० पैशुन्य प० परपरिवाद अ०

अहाह भगवं एवं—से दंते दविए वोसट्ठकाए त्ति वच्चे—माहणेत्ति वा, समणेत्ति वा, भिक्खूत्ति वा, णिग्गंथेत्ति वा पडिआह भंते—कहंतु दंते, दविए, वोसट्ठकाए त्ति वच्चे—माहणेत्ति वा, समणेत्ति वा, भिक्खूत्ति वा, णिग्गंथेत्ति वा, तं नो बूहि महामुणी ॥ १ ॥ इति विरए—सव्व पाव कम्मेहिं—पिज्ज, दोस, कलह, अब्भक्खाण पेसुन्न, परपरिवाय,

श्री श्रमण भगवन्त महावीर देवने सभा में ऐसा फरमाया कि जो पुरुष इन्द्रियों को दमनेवाला, मोक्षार्थी, तथा ममत्व त्यागी होवे उन को माहण, श्रमण, भिक्षु, व निर्ग्रंथ कहना तब शिष्य प्रश्न करते हैं कि अहो पूज्य! इन चारों नामवाले के गुण मुझे भिन्न २ करके बतलाओ ॥ १ ॥ इस तरह शिष्य ने जब प्रश्न किया तब भगवान् उत्तर देते हैं राग द्वेष क्लेश अभ्याख्यान पैशुन्य, (चाडि) परपरिवाद

अराति र० रति मा० माया मृपा मि० मिथ्यादर्शनशल्य वि० विरत स समिति स० सहित स० सदा ज यत्नावत णो नहीं कु० कोप करे णो नहीं मा० मानी मा० माहण त्ति ऐसा व कहना ॥ २ ॥ ए अत्र स० श्रमण अ अप्रतिबंध विहारी अ० नियाणा रहित आ० कषाय रहित अ० अति पाव (हिंसा मु मृषावाद प० मैथुन परिग्रह को० क्रोध मा० मान मा० माया लो० लोभ पि० राग दो० द्वेष इ ऐसे अ० जो आ आ कर्म बन्ध अ आत्मा का प० प्रदोषके हे० हेतु त० वे आ० कर्मबंध से पु० पूर्व

अरति,रति मायामोस,मिच्छादंसणसल्ल विरए,समिए सहिए, सयाजए,णो कुज्जे,णो माणी माहणत्ति वच्चे ॥ २ ॥ एत्थवि समणे—अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणं च, अतिवाय च, मुसावायं च, वहिद्धं च, कोह च, माण च, मायं च, लोह च, पिज्ज च,

[अन्यका दोष प्रकाशना] अरति, रति, माया, मृषा और मिथ्यादर्शनशल्य आदि दोषों से निवर्तने वाला समितिवान ज्ञानादि युक्त सदा यत्नावन्त, अक्रोधी तथा निरभिमानी साधु माहण कहाजाता है ॥ २ ॥ ऊपर जो माहण के गुण कहे हैं वे सब यहां जानना अब श्रमण के विशेष गुणों बताते हैं जो अप्रतिबंध विहारी, तथा नियाणा व कषाय रहित है, और जो प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यजता है, जो क्रोध मान, माया लोभ, राग व द्वेष, को संसार का कारण जानकर परिहरता है तथा जो जो कर्म बन्ध के ...

प० विरत पा० माणातिपातादि में दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसराइ हुइ काया वाला स० श्रमण त्ति ऐसा व० कहना ॥ ३ ॥ ए० अत्र भि० साधु अ० अभिमान रहित वि० विनयवंत ना० नमाने वाला दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसराइ हुइ काया वाला सं० सहन करने वाला वि० अनुकूल प्रतिकूल प० परीषह का उ० उपसर्ग अ० आध्यात्म जो० योग सु० शुद्ध अ० चारित्र वाला उ० सावधान हुवा ठि० स्थिरात्मा स० मानकर प० दूसरे का दीया हुवा भो० भोगवने वाला भि० साधु त्ति० ऐसा व०

दोस च, इच्चेव जओ जओ आदाणं अप्पणो पदेसे हेऊ तओतओ आदाणतो पुव्व प-डिविरते, पाणाइवायाए दंते दविए वोसट्ठकाए समणे त्ति वच्चे ॥ ३ ॥ एत्थावि भि-क्खू–अणुन्नए, विणीए, नामए, दंते, दविए वोसट्ठकाए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीस-होवसग्गे, अज्झप्पजोगसुद्धादाण, उवट्ठिए, ठिअप्पा, संखाए, परदत्तभोई भिक्खू त्तिवच्चे॥४॥

को नुकसान करनेवाले हैं ऐसा मानकर जो परिहरता है वह दमनेन्द्रिय, मोक्षार्थी साधु श्रमण कहाजाता है ॥ ३ ॥ उपर जो माहण व श्रमण के गुण कहे उन सब को यहां जानना, भिक्षुक के विशेष गुणों बताते हैं अभिमान रहित, विनयवन्त, दमनेन्द्रिय, निर्ममत्वी, मोक्षार्थी, विविध प्रकारके परीषह उपसर्ग सहनेवाला, आध्यात्म योगी, शुद्ध मणामी, चारित्रवन्त, पाप से बचने में सदैव कुशल, संयम धर्म में सदैव रुचि रखनेवाला, संसार की असारता जाननेवाला तथा दूसरे का दिया हुवा भोजन करनेवाला भिक्षु कहा

करना ॥ ४ ॥ ए० अब णि० निर्ग्रन्थ प० रागद्वेष रहित ए० अकेला का जान सु० सत्त्वधी स० आश्रव को छेदनेवाला सु० सुसपति सु० अच्छी समिति वाला सु सुसामायिकवत आ आत्मवाद को जान वि० पंडित दु० दोनो ही सो० आश्रवरूप स्रोत को छेदा हुवा णो० नहीं पू० पूजा स० सत्कार ला० लाभा र्थी ध० धर्मार्थी ध० धर्म का जान णि० मोक्ष को जान स० समतार्थव दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो०

एत्थवि णिग्गंथे—एगे, एगविऊ, बुद्धे, सछिन्नसोए, सुसजते, सुसमिते सु सामाइए, आयपवायपत्ते, विऊ, दुहउवि सोयपलिच्छिन्न, णो पूयणसक्कारलाभट्ठी ध म्मट्ठी, धम्मविऊ, णियागपडिवन्ने, समियचरे, दंते, दविए, वोसट्ठकाए, निग्गंथेत्ति वच्चे

माता है ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त सब गुणों यहां पर जानना विशेष निर्ग्रंथ के गुण बताते हैं—रागद्वेष रहित, स्वतः को अकेला माननेवाला, तत्त्वज्ञ आश्रव का निरोधक, गुप्तेन्द्रिय, समितिवन्त, चित्त की स्थिरतावाला, आत्म तत्त्व का जाण, ज्ञानी, द्रव्यभावका आश्रव का छेदन करनेवाला, पूजा सत्कार को नहीं वाञ्छने वाला, धर्मार्थी, धर्मज्ञ, मोक्ष मार्ग को पहुंचनेवाला, तथा अच्छा आचार पालनेवाला, दमनेन्द्रिय, निर्म मत्वी, व मोक्षार्थी साधु निर्ग्रंथ कहाजाता है ॥ ५ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी प्रमुख शिष्यों को कहते हैं कि जो मैं यह सर्वज्ञ के कथनानुसार कहता हूं उसे तुम सत्य मानो वे परोपकारी भगवन्त

प० विरत पा० प्राणातिपातादि में दं० दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसराइ हुइ काया वाला स० श्रमण त्ति० ऐसा व० कहना ॥ १ ॥ ए अत्र भि० साधु अ० अभिमान रहित वि० विनयवंत ना० नमाने वाला द दमनेन्द्रिय द० मोक्षार्थी वो० वोसराइ हुइ काया वाला से० सहन करने वाला वि० अनुकूल प्रतिकूल प० परीषह का उ० उपसर्ग अ० आध्यात्म जो० योग सु० शुद्ध अ० चारित्र वाला उ० सावधान हुवा ठि स्थिरात्मा स० जानकर प० दूसरे का दीया हुवा भो० भोगवने वाला भि० साधु त्ति० ऐसा व०

दोस य, इच्चेव जओ जओ आदाण अप्पणो पद्देसे हेऊ तओतओ आदाणतो पुव्व प-
डिविरते, पाणाइवायाए वते दविए वोसट्ठकाए समणे त्ति वच्चे ॥ २ ॥ एत्यावि भि-
क्खू–अणुन्नए, विणीए, नामए, दंते, दविए वोसट्ठकाए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीस-
होयसग्गे,अज्झप्पजोगसुद्धादाण,उवट्ठिए,ठिअप्पा,संखाए,परदत्तभोई भिक्खू त्तिवच्चे॥४॥

को नुकशान करनेवाले हैं ऐसा जानकर जो परिहरता है वह दमनेन्द्रिय, मोक्षार्थी साधु श्रमण कहाजाता है ॥ १ ॥ उपर जो माहण व श्रमण के गुण कहे उन सब को यहां जानना, भिक्षुक के विशेष गुणों बताते हैं अभिमान रहित, विनयवन्त, दमनेन्द्रिय, निर्ममत्वी, मोक्षार्थी, विविध प्रकारके परीषह उपसर्ग सहनेवाला, आध्यात्म योगी, शुद्ध मध्यात्मी, चारित्रवन्त, पाप से बचने में सदैव कुशल, संयम धर्म में सदैव स्थिर रहनेवाला, संसार की असारता जाननेवाला तथा दूसरे का दिया हुवा भोजन करनेवाला भिक्षु कहा

॥ द्वितीय " सूयगडांग सूत्र " ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कन्ध ॥

॥ पौंडरीकाख्यं सप्तदश मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवंत भ भगवान् ने ए० ऐसा अ० कहा पों० पुण्डरीक णा० नाम का अ० अध्ययन त० उसका अ० यह अ० अर्थ प परूपा ॥ १ ॥ से० वह ज० जैसे पु० पुष्करणी सि०

सुय मे आउसं तेण भगवया एव मक्खाय इह खलु पोंडरीए णामज्झयणे तस्सण अयमट्ठे पण्णते ॥ १ ॥ से जहा णामए पुक्खरिणी सिया बहुउदगा, बहु सेया, ब

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू! आयुष्यवंत भगवन्त श्री महावीर स्वामी ने पुंडरीक नामक अध्ययन का ऐसा अर्थ कहा है उसे मैंने सुना है और वही मैं तुझे कहता

वोसरा दु० काया वाला नि० निर्ग्रन्थ त्ति० ऐसा व० कहना ॥ ५ ॥ से० वह ए० ऐसा जा० जानो अ० जिसको अ० मैं भ० रक्षक त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥ से एव मेव जाणह जंमहं भयतारो त्तिबेमि ॥ इति गाहाणामं सोलसह अज्झयण सम्मत्तं ॥ १६ ॥

सब जीवों के भय का निवारण करनेवाले हैं उन के ही वचन मैं तुम को कहता हूं यह गाथा नामक सोलहवां अध्ययन समाप्त हुवा श्री सूयगडांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कंध भी समाप्त हुवा

'सूयगडांग सूत्र'

* प्रथम श्रुत स्कन्ध समाप्त *

॥ द्वितीय " सूयगडांग सूत्र " ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कन्ध ॥

॥ पौंडरीकाख्य सप्तदश मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवंत भ० भगवान् ने ए० ऐसा अ० कहा पों० पुण्डरीक णा० नाम का अ० अध्ययन त० उसका अ० यह अ० अर्थ प० परूपा ॥ १ ॥ से० वह ज० जैसे पु० पुष्करणी सि०

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु पोंडरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पण्णत्ते ॥ १ ॥ से जहा णामए पुक्खरिणी सिया बहुउदगा, बहु सेया, ब

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू ! आयुष्यवंत भगवन्त श्री महावीर स्वामी ने पुंडरीक नामक अध्ययन का ऐसा अर्थ कहा है उसे मैंने सुना है और वही मैं तुझे कहता

है ब० बहुत पानी वाली ब० बहुत कर्दम वाली ब० परिपूर्ण स० योग्य नाम वाली पु० श्वेत कमल वाली पा० निर्मल द० देखने योग्य अ० मनोहर प० प्रतिरूप ॥ २ ॥ ती० उस पु० पुष्करणी में त० तहांतहां दे० विभाग में त० तहां ? ब० बहुत पु पद्म व० श्रेष्ठ पो० श्वेत कमल वु० कहा अ० अनुक्रम से उ० रहे हुवे ऊ० ऊपर आये रु० देदीप्यमान वं० वर्ण वाले ग० गंध वाले र० रस वाले फा० स्पर्श वाले पा० निर्मल दे० देखने योग्य अ० मनोहर प० प्रतिरूप ॥ ३ ॥ ती० उस पु० पुष्करणी में

हुपुक्खला, लड्ढा, पुंडरिकिणी, पासादिया, दरिसणिया, अभिरूवा, पडिरूवा ॥ २ ॥ तीसेण पुक्खरिणीए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिंतहिं बहवे पउमवरपोंडरिया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया, ऊसिया, रूइला, वण्णमता, गंधमता, रसमता, फासमंता, पासादिया, दरिसणिया, अभिरूवा पडिरूवा ॥ ३ ॥ तीसेण पुक्खरिणीए बहुमज्झदेसभाए एग महं

है ॥ १ ॥ जैसे कोई एक बहुत पानीवाली, कीचडवाली, सब गुणों से परिपूर्ण, जैसा नाम वैसा गुणवाली श्वेतकमल से परिपूर्ण, निर्मल, दर्शनीय, मनोहर, व प्रतिरूप पुष्करणी नामक एक वावि है ॥ २ ॥ उस पुष्करणी के विभागों में श्वेत वर्ण के बहुत कमल कहे हुए हैं वे अनुक्रम से बढकर पानी के ऊपर रहे हुवे हैं, और देदीप्यमान, उत्तम वर्ण से शोभित, सुगंधित, मधुरादि रसयुक्त, कोमलादि स्पर्श युक्त, प्रसन्न कारी, देखने योग्य व स्वच्छ हैं ॥ ३ ॥ उस पुष्करणी के मध्यभाग में एक बडा श्वेत पुंडरिक कमल

प० बहुत म० मध्य दे० विभाग में ए० एक म० बडा प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० श्वेत कमल बु० कहा अ० अनुक्रम से उ० रहा हुवा ऊ० ऊपर आया हुवा रु० देदीप्यमान व० वर्ण वाला गं० गंध वाला र० रस वाला फा० स्पर्श वाला पा निर्मल जा० यावत् प० प्रतिरूप ॥ ४ ॥ स० समस्त ती० उस पु० पुष्करणी में त० यहां वहां दे० विभाग में त० यहां २ ब० बहुत प० पद्म व० श्रेष्ठ पु० पुंडरीक बु० कहे अ० अनुक्रम से उ० रहे हुवे ऊ० ऊपर आये रु० देदीप्यमान जा० यावत् प० प्रतिरूप स० समस्त ती० उस पु० पुष्करणी में ब० बहुत म० मध्य दे विभाग में ए० एक म० बडा प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक बु० कहा अ० अनुक्रम से उ० रहा हुवा जा० यावत् प० प्रतिरूप ॥ ५ ॥ अ० अथ पु० पुरुष पु पूर्व

पउमवरपोंडरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए, उस्सिते, रुइले, वण्णमंते, गंधमंते, रसमंते, फासमंते, पासादीए जाव पडिरूवे॥४॥सव्वावंति च णं तीसेण पुक्खरिणीए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिंतहिं बहवे पउमवरपोंडरीया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया, ऊसिया, रुइला, जाव पडिरूवा सव्वावंति च णं । तीसेण पुक्खरिणीए बहुमज्झदेसभाए एगं महं पउमवरपोंडरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए जाव पडिरूवे ॥ ५ ॥ अह पुरिसे पुरित्थिमाओ दिसाओ आगम्म

कहा हुवा है यह अनुक्रम से वृद्धि पाया हुवा, ऊपर आयाहुवा, मनोहर मनभकारी यावत् स्वच्छ है ॥ ४ ॥ उस पुष्करणी बावडी में सर्वत्र उपर्युक्त गुणविशिष्ट बहुत पुण्डरीक कमलों हैं उस के मध्य में एक श्रेष्ठ कमल रहा हुवा है ॥ ५ ॥ पूर्व दिशा में एक पुरुष आकर उस पुष्करणी के तीर पर खडारहा

वि० दिशा से आ० आकर उ० उस पु० पुष्करणीको ती० उस पु० पुष्करणी के ती० किनारे पर ठि० रहकर पा० देखता है त० उस म० बडा ए० एक प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक अ० अनुक्रमसे उ० रहा हुवा रू० सुन्दर आयाजा० यावत् प० प्रतिरूप त० उस सक्त से० वह पु० पुरुष ए० ऐसा व० बोला अ० मैं मं० हूं पु० पुरुष से० खेदज्ञ कु० कुशल प० पंडित वि० विवेकी मे० मेधावी अ० ज्ञानी म० मार्गस्थ म० मार्ग का ज्ञान म० मार्गकी म० गति का प० पराक्रम का जान अ० मैं ए० इस प० पद्म व० श्रेष्ठ पा० पुंडरीक उ० नीकालूंगा त्ति ऐसा क० करके व० बोल करके से० वह पु० पुरुष अ० जाता है त० उस पु० पुष्करिणी में जा० जैसे जैसे अ० जाता है ता० वैसे वैसे म० बहुत उ० पानी में म० बहुत से० कर्दम में प० दूर वी कि

त पुक्खरिणिं तासे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति तं महं एगं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं, ऊसियं, जाव पडिरूवं तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहमंसि पुरिसे खेयन्ने, कुसले, पंडिते, वियत्ते, मेहावी, अबाले, मग्गत्थे, मग्गविऊ, मग्गस्सगातिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवरपोंडरियं उन्निक्खिस्सामि त्तिकट्टु, इतिवच्चा, से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुक्खरिणिं जावंजावं च णं अभिक्कमेइ तावतावं च णं महंते उदए महंते सए, पहीणे

और उस में एक गुण विशिष्ट पुंडरीक कमल देखके बोला कि मैं खेदज्ञ-अवसर का ज्ञाता, कुशल, पंडित, विवेकी, बुद्धिमान, अबाल, मार्गस्थ, मार्ग का ज्ञानी व मार्ग में जानेका पराक्रमी पुरुष हूं इस लिये इस कमल को बावडी में से मैं निकालूंगा ऐसा कहकर वह पुरुष पुष्करणी बावडी में घुसा क्यों

मारे से अ० अमात प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक णो०नहीं व किनारेपे णो०नहीं पा० पार अं० बीच में पो० पुष्करणी का से कर्दम में नि० खुता हुवा प० प्रथम पु० पुरुष ॥ १ ॥ अ० अथ दो० दूसरा पु० पुरुष द० दक्षिण दिशा से आ० आकर त० उस पु० पुष्करणी ती० उस पु० पुष्करणी के ती० किनारे पे ठि० रहकर पा० देखता है तं० उस म बडा ए० एक प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक अ० अनुक्रम से उ० रहा हुवा पा० निर्मल जा० यावत् प० प्रतिरूप तं० उसको ए० यहां ए० एक पु० पुरुष को पा० देखता है त० उसको प० दूर ती० किनारे से अ० अमात प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक को णो०

वीर अपत्ते, पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए, णो पाराए, अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि निसण्णे पढमे पुरिसजाए ॥ १ ॥ अहावरे दोच्चे पुरिसजाए—अह पुरिसे दक्खिणाओ दिसाओ आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति—तं महं एगं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं पासादीयं जाव पडिरूवं तं च एत्थ एगं पुरिसजातं

ज्यों वह पुरुष आगे चलता गया त्यों त्यों बहुत पानी व कीचड में जाकर पुष्करणी के मध्य में फसगया वह न तो किनारे की पास रहा और न पुंडरीक को पहुंच सका यह प्रथम पुरुष की बात कही ॥ १ ॥ अब दूसरा पुरुष की बात कहते हैं अब दूसरा पुरुष दक्षिण दिशासे आकर पुष्करणी बावडी के तीर पे

नहीं इ० किनारेपे णा० नहीं पा० पार मं० बीच में पो पुष्करणी का से० कर्दम में णि० खुता हुवा त० तब स० वह पु० पुरुष त० उस पु० पुरुष को ए० ऐसा व० कहा अ० अहो इ० यह पु० पुरुष अ० अखेदज्ञ अ० अकुशल अ० अपंडित अ० अविवेकी अ० मूर्ख बा० अज्ञानी णो० नहीं म० मार्गस्थ णो० नहीं म० मार्ग का जान णो० नहीं म मार्ग की ग० गति का प० पराक्रम का जान अ० जो ए० यह पु० पुरुष अ० मैं से खेदज्ञ अ० मैं कु० कुशल जा० यावत् प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक उ० नीकालूंगा णो० नहीं ए० यह प पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक ए ऐसे उ० नीकाला जाय ज० जैसे ए० यह पुरुषने म० माना

पासति तं पहीणे तीरं, अपत्ते पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी—अहो णं इमे पुरिसे अखेयन्ने, अकुसले, अपंडिए, अवियत्ते, अमेहावी, बाले, णो मग्गत्थे, णो मग्गविऊ, णो मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू जन्नं एस पुरिसे, अहं खेयन्ने, अहं कुसले, जाव पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामि णो खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं, जहा णं एस

सरा था मरा उसने बावरी में एक गुणवाला व पद्मों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमल तथा कीचड में खूंता हुवा एक पुरुष देखा कि जो पुरुष न तो तीर की नजीक है, और न पुंडरीक कमल को पहुंचा हुवा है तब वह आनेवाला पुरुष उस खूंता हुवे को ऐसा बोला कि अरे यह अखेदज्ञ, अकुशल, मूर्ख, अविवेकी,

म० मैं म० हूं पु० पुरुष से खेदज्ञ कु० कुशल प पंडित वि० विवेकी मे० बुद्धीमान् अ० ज्ञानी म० मार्गस्थ म० मार्ग का ज्ञान म० मार्ग की ग गति का प० पराक्रम का ज्ञान अ० मैं ए० इस प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक उ० नीकालूंगा त्ति० ऐसा क० करके वं० बोलकर से० वह पु० पुरुष अ० जाता है तं० उस पु० पुष्करणी में जा० जैसा जैसा अ० जाता है ता० वैसा वैसा अ० बहुत उ० पानी में अ० बहुत से० कर्दम में प० दूर ती० किनारे से अ० अप्राप्त प० पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक णो० नहीं ह० किनारपे पा० नहीं पा० पार अं० बीच में पो पुष्करणी का से० कर्दम में वि० खूता हुआ

पुरिस जेक्ष ॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने, कुसले, पंडिए, वियत्ते, मेहावी, अबाले, मग्गत्थे, मग्गविऊ, मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू अहमेय पउमवरपोंडरीय उन्निक्खिस्सामि त्तिकट्टु इति वच्चा से पुरिस अभिक्कमे त पुक्खरिणिं जावजाव च ण अभिक्कमेइ ताव ताव च ण महंते उदए महंतेसेए, पहीणे तीर अपत्ते पउमवरपोंडरीय, णो हव्वाए, णो पारा

अज्ञानी, बाल, न मार्गस्थ न मार्ग का ज्ञान, व मार्ग उलंघने को अशक्त है, और मानता है कि मैं कुशल, पण्डित यावत् शक्तिमान हूं कि जिस से इस में से पुंडरीक कमल निकालूंगा परंतु इस तरह कमल नहीं निकाला जाता है मैं खेदज्ञ, कुशल, पंडित यावत् शक्तिमान हूं इस लिये मैं ही बावडी में से इस को नि

दा० दुसरा पु०पुरुष ॥ ७ ॥ अ० अथ अ० अपर त० तृतीय पु०पु० । जात अ० अथ पु०पुरुष प० पश्चिम दि० दिशासे आ० आकर के तं० उस पु० पुष्करणी को ती० उस पु पुष्करणी के ती किनारेपे ठि० रहकर पा० देखता है त उस ए० एक म० बडा प० पद्म प० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक म० अनुक्रमसे उ० उपर आया जा० यावत् प० पतिरूप ते० उन त० तहां दो० दो पु० पु रूप जाव पा०देखता है प०दूर ती०तीर से अ अप्राप्त प०पद्म व०श्रेष्ठ पों० वर पुंडरीक णो०नहीं ह० किनारेपे णो० नहीं पा पार णा यावत् से कीचड में पि खुंते हुवे त० तब से यह पु०

ए, अतरा पोक्खरिणीए सेयसि णिसन्ने—दोच्चे पुरिसजाते ॥ ७ ॥ अहावरे तच्चे पुरिस जाते—अह पुरिसे पच्छिमाओ दिसाओ आगम्म—तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति त एग महं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं जाव पडिरूवं। ते तत्थ दो न्नि पुरिसजाते पासति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए

कालूंगा ऐसा बोलकर वह पुष्करणी वावडीमें गया ज्यों ज्यों वह वावडीमें गया त्यों त्यों बहुत पानी व कीचड में जाकर फसगया वह न तो तीरपे रहा न कमल को प्राप्त कर सका अतराल में ही रहकर दुःखी हुवा ॥७॥ अब तीसरा पुरुष पश्चिम दिशासे आकर पुष्करणी के तीरपे खडारहा उसने पुष्करणीमें रहाहुवा पुंडरीक कमल व कीचड में खुंते हुवे दो पुरुष को देखे, तब वह पुरुष उन दोनों को ऐसा बोला अरे ये दोनों पुरुष

पुरुष ए० ऐसा व० बोला, अ भो इ० ये पुं० पुरुषों अ० असेदग, अ० अकुशल, अ० अपंडित, अ० अविवेकी, अ मूर्ख, अ० अज्ञानी, णो० नहीं म० मार्गस्थ णो० नहीं मा० मार्ग के मानने वाले, णो नहीं म० मार्ग का ग० गमन में प० पराक्रम के जान म० जो ए० ये पु० पुरुष ए ऐसे म मानते हैं अ० हम उ० उस प पद्म व० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक उ० निकालेंगे णो० नहीं ए० यह प० पद्म व० श्रेष्ठ पों पुंडरीक ए० ऐसे उ निकाला जावे म जैसे ए० ये पु० पुरुष म० मानते हैं अ० मैं से खेदज्ञ, कु० कुशल, पं० पंडित वि० विवेकी मे० पंडित अ० ज्ञानी, म० मार्ग

जाव सेयासि णिसंभ तएण से पुरिसे एव वयासी अहोणं इमे पुरिसा अखेयन्ना, अकुसला, अपंडिया, अवियत्ता अमेहावी, बाला, णो मग्गत्था, णा मग्गविऊ, णो मग्गस्सग तिपरक्कमण्णू, जन्न एते पुरिसा एव मन्न अम्हे त पउमवरपोंडरीयं उण्णिक्खिस्सामो णो य खलु एयं पउमवरपोंडरीय एव उभिक्खेतव्व, जहाण एए पुरिसा मन्ने अहम

असेदग, अकुशल, मूर्ख यावत् उत्तीर्ण होने को अशक्त हैं और वे ऐसा मानते हैं कि हम इस पुंडरीक को बावडी में से निकालेंगे परंतु इस तरह यह पुंडरीक कमल नहीं निकाला जाता है, कि जैसे वे मान रहे हैं मैं ही खेदज्ञ, कुशल, विद्वान यावत् उत्तीर्ण होने में समर्थ पुरुष हूं — लिये मैं इस पुंडरीक कमल को

दा० दूसरा पु पुरुष ॥ ७ ॥ अ० अथ अ० अपर त० तृतीय पु०पुरुष जात अ० अथ पु०पुरुष प० पश्चिम दि० दिशासे आ० आकर के तं० उस पु० पुष्करणी को ती० उस पु पुष्करणी के ती० किनारेपे ठि० रहकर पा० देखता है त उस ए० एक म० बडा प० पद्म प० श्रेष्ठ पों० पुंडरीक अ० अनुक्रमसे उ० ऊपर आया जा० यावत् प० पतिरूप ते० उन त० तहां दो० दो पु० पुरुष भाव पा देखता है प०दूर ती०तीर से अ अप्राप्त प०पद्म प०श्रेष्ठ पों० वर पुंडरीक णा०नहीं इ० किनारपे णो नहीं पा पार आ० यावत् से० कीचड में पि खुते हुवे त० तब से वह पु०

ए, अतरा पोक्खरिणीए सेयसि णिसन्ने—दोच्चे पुरिसजाते ॥ ७ ॥ अहावरे तच्चे पुरिसजाते—अह पुरिसे पच्छिमाओ दिसाओ आगम्म—त पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति त एग महं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठियं जाव पडिरूवं। ते तत्थ दो भि पुरिसजाते पासति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए

कामूंगा ऐसा बोलकर वह पुष्करणी बावडीमें गया ज्यों ज्यों वह बावडीमें गया त्यों त्यों बहुत पानी व कीचड में आकर फसगया वह न तो तीरपे रहा न कमल को प्राप्त कर सका मझधार में ही रहकर दुःखी हुवा ॥७॥ अब तीसरा पुरुष पश्चिम दिशासे आकर पुष्करणी के तीरपे खडारहा उसने पुष्करणीमें रहाहुवा पुंडरीक कमल व कीचड में खुते हुवे दो पुरुष को देखे, तब वह पुरुष उन दोनों को ऐसा बोला अरे ये दोनों पुरुष

जा० यावत् प० पराक्रम का मान अ० अन्य दिशा से अ० अनुदिशा से आ० आकर पावत् प०

सपुण से पुरिसे एवं वयासी अहोण इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गास्सगतिप रक्कमण्णू, जन्न एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे त पउमवरपोंडरीय उन्निक्खिस्सामो णो खलु एय पउमवरपोंडरीय एव उन्निक्खेयव्वं जहा ण एते पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमण्णू, अहमेय पउमवरपोंडरीय उन्निक्खिस्सामि त्तिकट्टु इति वच्चा, से पुरिसे अभिक्कमे, त पुक्खरिणिं जावजावं च ण अभिक्कमे ताव ताव च ण महंते उदए महंते सेए जाव णिसन्ने चउत्थे पुरिसजाए ॥ १ ॥ अह भिक्खू लूहे तीरट्ठी खेयन्ने जाव परक्कमण्णू अन्नतराओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा

पूर्व यावत् मार्ग में चलने में असमर्थ होने पर भी वे चाहते हैं कि हम इस कमल को बावडी में से निकालेंगे परंतु इस तरह यह पुंडरीक नहीं निकाला जाता है, जैसे कि वे मान रहे हैं मैं खेदज्ञ, कुशल यावत् पराक्रम होने को शक्तिमान हूं, इस लिये मैं इस को निकालूंगा ऐसा कहकर वह बावडी में चला और वह भी उन तीनों की तरह उस में फसकर दुःखी हुवा यह चौथा पुरुष की जात कही ॥ १ ॥ फिर संसार से अलिप्त, भावार्थी साधु किसी दिशा से या विदिशा से आकर पुष्करणी बावडी के किनारा पे

स्य, म० मार्ग का माण म मार्ग का ग० जाने में प० पराक्रमह अ० मैं प० इस प० पद्म वर पुंडरीक उ० निकालूंगा चि० ऐसा क करके इ० ऐसा व० बोलके मे० वह पु० पुरुष अ० गया तं० उस पु० पुष्करणी में जा० ज्यों २ अ० जाता है ता० त्यों २ म० बहुत उ० पानी में म० बहुत से० कीचड़ में जा० यावत् अ० बीच में पो० पुष्करणी क से कीचड़ में णि० खुता गया त० तृती

सि पुरिस सयसे, कुसले, पंडिए, वियत्ते, मेहावी, अबाले, मग्गत्थे, मग्गविऊ, मग्गस्सग तिपरक्कमण्णू, अहमेय पउमवरपोंडरीयं उम्मिक्खिस्सामि तिकट्टु इति वच्चा से पुरि-स अभिक्कमे त पुक्खरिणिं जावजावं च ण अभिक्कमे तावतावं च णं महते उदए महते सए जाव अंतरा पोक्खरिणीए सेयसि णिसन्ने—तच्चे पुरिस जाए ॥ ८ ॥ अहा-वरे चउत्थे पुरिसजाए अह पुरिसे उत्तराओ दिसाओ आगम्म त पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति त मह एगं पउमवर पोंडरीय अणुपुव्वुट्ठिय जाव प-डिरूव, से तत्थ तिण्णि पुरिस जाते पासति पहीणे तीरं अपत्ते जाव सेयसि णिसन्ने

नीकालूंगा ऐसा बोल के वह पुष्करणी बावडी में गया वह ज्यों ज्यों आगे बावडी में गया त्यों त्यों बहुत कीचड़ मेंव पानी में आकर फसगया और वह न तो किनारे का रहा और न पुंडरीकको पहूंच सका ॥ ८ ॥ अब चौथा पुरुष उत्तर दिशा में से आकर बावडी के किनारे पे खड़ा रहा और एक बड़ा पद्म वरउ र कीचड़ में खूंचे हुवे तीन पुरुष को देखे तब वह उन को ऐसा बोला कि अरे ये पुरुषों अखेदज्ञ,

श्रमण आ० आयुष्मन् अ० अर्थ पु० पुनः से० उसको जा० जानना भं० हाथ भ० ह पूज्य स०श्र
मण भ० भगवान् म० महावीर को ब० बहुत नि० साधु नि० साध्वी वं० वांदते हैं न० नमस्कार करते
हैं वं० वांदकर न० नमस्कार कर ए० ऐसे व० बोले कि० कहा ना० न्याय स० श्रमण आ०
आयुष्मन् अ० अर्थ पु० और से उसका ण० नहीं जा० जानते हैं स० श्रमण आ० आयुष्मान्

उन्निनिस्वस्सामि तिकट्टु, इति वद्या से भिक्खू णो अभिक्कमे त पुक्खारिणिं तीसे पु-
क्खरिणीए तीरे ठिच्चा सद्द कुज्जा उप्पयाहि खलु भो पउमवरपोंडरीया उप्पयाहि अ-
ह से उप्पति ते पउमवरपोंडरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए समणाउसो ? अट्ठे पुणसे
जाणितव्वे भवति भते ति समणं भगवं महावीरं बहवे निग्गथाय निग्गथीओय वदति
नमंसति वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी किट्टिए नाए समणाउसो अट्ठ पुण से ण जा-
णामो, समणाउसोति समणे भगवं महावीरे तेय बहवे निग्गंथेय निग्गथीओय आमंते

गया नहीं परंतु बावडी के तीर पे खड़ा रहकर बोला अहो पद्मवरपुंडरीक ! बाहिर निकलो ऐसा
सुनते ही वह पुंडरीक कमल बाहिर निकला ॥ १० ॥ पुष्करणी में रहाहुवा श्रेष्ठ पुंडरीक कमल का
दृष्टांत की समाप्ति करके श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने कहा कि अहो साधुओं इस दृष्टांत
का न्याय क्या है सो तुम समझो तब सब साधु साध्वी भगवन्त को वन्दणा नमस्कार कर पूछने लगे

बावडी पूर्वक स० सम्यक् कु० करके उ० ऊंचे आय मो० अहो प० पद्म वरपुंडरीक उ० ऊंचे म्मव
म० मव वे० वह उ० ऊंचे आया वे० पद्म पौं० पुंडरीक ॥ १० ॥ कि० कहाया ना० उदाहरण में स०

आगस्स त पुक्खरिणि तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा, पासति त एग महत पउमवर
पोंडरीय, जाव पडिरूवं, ते तत्थ चत्तारि पुरिस जाए पासति पहीणे तीर अपत्ते जाव
पउमवरपोंडरीय णो हव्वाए णो पाराए अतरा पुक्खरिणीए सेयसि णिसन्ने तएण से
भिक्खू त पुरिसा य एव वयासी—अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स ग
तिपरक्कमण्णु जन्न एते पुरिसा एव मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंडरीय उण्णिक्खिस्सामो
णो खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एव उण्णिखेतव्व जहा णं एते पुरिसा मन्ने, अहमसि
भिक्खू लूहे, तीरट्ठी, खेयन्ने, जाव मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू, अहमेय पउमवरपोंडरीय

तथा रहा उसने बावडी में रहाहुवा पद्म कमल व रहे हुवे चारों पुरुषों को देखे तब वह साधु वचन को
कहने लगा कि अहो ये पुरुषों अखेदज्ञ अकुशल यावत् तीरने में असक्त होने पर बावडी में से पुंडरीक
कमल निकालेंगे ऐसा मानते हैं परंतु इस तरह पुंडरीक कमल नहीं निकाला जाता है कि जिस रीतिसे
ये निकालना चाहते हैं मैं संसार से उदासी, खेदज्ञ, रूक्ष, तीरपे रहनेवाला यावत् उत्तीर्ण होने में समर्थ
हूं, इस लिये मैं ही इस पद्मों में श्रेष्ठ पुंडरीक कमल को निकालूंगा ऐसा करके वह पुरुष बावडी के

सा एवं वयासी हं भो समणाउसो! ते आइक्खामि, विभावेमि, किट्टेमि पवेदेमि, स-अट्ठं सहेउं सनिमित्तं भुज्जो २ उवदंसेमि सेवेमि ॥ ११ ॥ लोयं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो पुक्खरिणी बुइया, कम्मं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उदए बुइए, काम भोगेय खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से सेए बुइए, जण जाणवयं च खलु

स० श्रमण भ० भगवान् म० महावीर ते० उन ब० बहुत नि० निर्ग्रंथ नि० निर्ग्रन्थिनी को आ० आमंत्रण कर ए० ऐसे व० बोले ह० मैं भो० अहो स० श्रमण आ० आयुष्मन् ते० तुमको आ० कहता हूं वि० प्रगट करता हूं कि० कीर्ति करता हूं प० निवेदन करता हूं स० अर्थ सहित स० हेतु सहित स० निमित्त (कारण) सहित भु० बारबार उ० उपदेश करता हूं से० अर में० मैं कहता हूं ॥ ११ ॥ लो० लोक म० मेरे से अ० आत्मा से (स्वयं) आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् पु० पुष्करणी बु० कही क० कर्म को म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ० आयुष्मन् उ० पानी बु० कहा का० काम भोगों को म० मैंने अ० स्वयं आ० जानकर स० श्रमण आ०

कि अहो आयुष्मन् भगवन्त हम इस का अर्थ कुछ भी नहीं समझे हैं तब श्री भगवन्त महावीर स्वामी बहुत साधु साध्वी को संबोधन करके कहने लगे कि अहो साधुओ! अब मैं इस दृष्टांत का न्याय विवेचन पूर्वक हेतु, प्रयोजन, कारण, व कार्य आदि से सिद्ध करके बताता हूं, उपदेशता हूं ॥ ११ ॥ अहो साधुओ यह लोक पुष्करणी समान है, कर्म ... के पानी समान है, कामभोग कीचड़ समान है,

शत्रु नि० नीकाले शत्रु म० मर्दन किये शत्रु उ० उखेरे शत्रु नि० जीते शत्रु प० पराजिते शत्रु वे० निवर्ता हुवा दु० दुर्भिक्ष मा० मरकी भ० भय वि० रहित रा० राजाके वर्णन भ० जैसे उ० उववाईजी में से० क्षेम सि० कल्याण सु० सुभिक्ष जा० यावत् प० उपशान्त डि० स्वचक्री ड० परचक्री का र० राज्य पा० पालता हुवा वि० विचरता है त० उस र० राजा की प० सभा भ० है उ० उग्र उ० उग्र पुत्र भो० भोग भो० भोग पुत्र इ० इक्षाग इ० इक्षाग पुत्र ना० नायक ना० नायक पुत्र को० कौरव कौरव पुत्र भ० सुभट सुभट पुत्र

मल्लियकंटयं उद्दियकंटय, निहयकंटय, भकंटय, उहयसत्तू, निहयसत्तू, मल्लिय सत्तू, उद्धियसत्तू, निज्जियसत्तू, पराइयसत्तू, ववगयदुभिक्खमारिभयविप्पमुक्क, रायवन्नओ जहा उववाइए, खेमं सिवं सुभिक्खं जाव पसंतडिंबडमररज्जं, पासाहेमाणे विहरंति, तस्स णं रन्नो परिसा भवइ—उग्गा, उग्गपुत्ता, भोगा, भोगपुत्ता,

भरा है, वृक्षों से आयुधशाला भरी है, वैसा आप स्वतः बलिष्ट, सब दुश्मनों को निर्बल करनेवाला, शत्रु को जीतनेवाला, तथा शत्रु को हत, महत, पराभव कर देशपार करनेवाला, कोई एक राजा दुर्भिक्ष दुष्काल, मरकी, स्वचक्री, परचक्री का भय रहित राज्य का रक्षण करताहुवा रहता है उन की परिषदामें अनेक उग्र कुलोत्पन्न, भोग कुलोत्पन्न, इक्षागकुलोत्पन्न, नायक कुलोत्पन्न, कौरवकुलोत्पन्न, सुभटकुलोत्पन्न ब्राह्मण कुलोत्पन्न, श्रेष्टि कुलोत्पन्न, प्रशस्त उत्तम कुमार इत्यादि छोटे बडे पुरुषों उन की आज्ञा

दि० दीप्त वि० धनिक वि० विस्तीर्ण वि० बहुत ५० घरों स० शैया आ० आसन जा० यान वा० वा०
मा० सहित ब० बहुत धन ब० बहुत सुवर्ण र० चांदी आ० व्यापारादि ध० सपन्न वि० दिलते प० बहुत
भ० आहार पानी ब० बहुत दा० दासी दा०दास गो०गाय म० महिष ग०मषे प्प०बहुत प०पूर्ण जं० यन्त्र
को० भंडार को० कोठार मा० आयुधशाला ब० बलवन्त दु० दुर्बल प० शत्रु उ० नाश किया क० कंटक
म० मर्दन किया कं० कंटक उ० उच्छेद क० कंटक नि० नीकले कन्टक म० निष्कंटक हुवे उ० नाश किये

सीहे, पुरिस आसीविसे, पुरिसवरपोंडरीए, पुरिसवर-गंधहत्थी, अड्ढे, दित्ते, वित्ते,
विच्छिन्न—विउल भवण-सयणासण जाण-वाहणाइण्णे, बहु धण—बहु जातरूव-रयए
आओगपओग-संपउत्ते, विच्छड्डिय-पउर भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलग-प्प-
भूते, पडिपुण्ण-जंत-कोस-कोट्ठागारा-उधागारे, बलव-दुब्बल-पच्चामित्ते, उहय-कंटय,

पुरुष में, आशीविष सर्प सदृश, (रुष्ट हुवा अनर्थ करे) पुरुष में पुंडरीक जैसा, गंध हस्ती जैसा, न्याय से
परीपूर्ण, अनंत दीप्त, प्रसिद्ध, शैय्या आसन व स्वारि के लिये बहुत वाहन, नाव जहाज युक्त, बहुत
धन धान्य, सुवर्ण चांदि आदि सहित, व्यापार मनवाला, जिस के वहां बहुत खानपान तैयार होता है,
बहुत से लोग जिमते हैं, और जिस के वहां बहुत दास, दासी, गाय भैंस प्रमुख रहे हुवे हैं, जिसके
[illegible] जिस का भंडार द्रव्य से भरा है, धान्य से कोठार

गोल छ० छकोन अ अष्टकोन कि० कृष्ण, णी०नीला (हरित)लो०रक्त हा० पीत सु०शुक्ल सु० सुरभिगंध, दु० दुरभिगंध ति०तिक्त क०कटुक क०कसाया वा अ०अम्बठ म० मधुर क० कर्कश म० मृदु गु० गुरु ल० लघु सी० शीत उ० उष्ण नि० स्निग्ध लु रुक्ष ए ऐसे अ० असत् अ० अविद्यमान जे० जिसको तं० यह सु० कहा भ० होवे अ० अन्य जीव अ० अन्य शरीर त० इसलिये ते० वे णो० नहीं ए० ऐसा उ० जानते हैं से० अथ ज० जैसे ए० कोई एक पु० पुरुष को० म्यानमें से अ० खड्ग अ० नीकालकर उ०

ण्हेति वा, णीलेति वा लोहियहालिद्दसुक्किलेति वा, सुब्भिगंधेति वा, दुब्भिगंधेति वा तित्तेति वा कडुएति वा, कसाएति वा, अंबिलेति वा, महुरेति वा, कक्खडेति वा, मउएति वा, गुरुएति वा लहुएति वा, सीएति वा, उसिणेति वा, निद्धेति वा, लुक्खेति वा, एवं असते असविज्जमाणे जेसिं त सुयक्खायं भवति अन्नो जीवो अन्न सरीर, तम्हा ते णो एवं उवलंभति ॥ से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीओ आसिं अभि

नील, पीत, रक्त व श्वेत पाँचों वर्णोंमें से कोनसा वर्ण का है ? सुगंध दुर्गंध में से किस गंधवाला है ? तिक्त, कटुक, कषाय, अम्बट, व मधुर रस में से कोनसा रसमय है ? कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध व रुक्ष इन अष्ट स्पर्शों में से कोनसा स्पर्शवाला है ? इन प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकते हैं इस लिये मानाजाता है कि जो आत्मा को अरूपी व अविद्यमान कहते हैं, उन का पक्ष अच्छा है और

पं० पांचवा पु० पुरुष गा० ग्राममें प० पीछे से ।। ।। ७ ।। ए० ऐसे अ० असत् अ० अविद्यमान जे० जि तका सं० यह अ० असत् अ० अविद्यमान ते० उनको त० यह सु० अच्छा कहा भ० होता है अ० अन्य भ० है जी० जीव अ० अन्य स० शरीर त० इसलिये ते० वे ए० ऐसे णो० नहीं वि० जानते हैं अ० यह आ० आयुष्मन्त आ० आत्मा दी० दीर्घ ति० ऐसा ह० ह्रस्व प० परिमंडल व० वर्तुलाकार तं० त्रिकोन च० चतुष्कोन आ० लम्ब

सी पचमा पुरिसा गाम पचा गच्छति, एव असत्ते असविज्जमाणे, जेसिं त असत्ते अ-संविज्जमाण तेसिं त सुयक्खाय भवति, अन्नो भवति जीवो अन्न सरीरं, तम्हा ते ए-वं नो विप्पडिवेदेंति, अयमाउसो—आया दीहेति वा, हस्सेति वा, परिमडलेति वा, वट्टेति वा, तसेति वा, चउरंसेति वा, आयतेति वा, छलंसिएति वा, अटुंसेति वा, कि-

धारण करता है जब अन्य पांच मनुष्य मिल शरीर को स्मशान में लेजा कर जलादेते हैं तब वहांमात्र कपोत वर्ण की हड्डियों दीसती हैं, अन्य कुच्छ भी नहीं दीसता है और जलानेवाले पीछे अपने स्थानपर आजाते हैं; परंतु जलाया हुवा का जीव नहीं दीसता है शरीर की साथ विनष्ट हो जाता है इस लिये जो शरीर है वही जीव है जो जीव और शरीर को भिन्न मानते हैं वे उस का प्रमाण को भी नहीं जानते हैं यदि शरीर से जीव को भिन्न माने तो अहो आयुष्मन्तो ! इस का क्या प्रमाण है जीव क्या लम्बा है ? या तंदुल प्रमाण छोटा है ? चुडी जैसा मंडलाकार है ? या लड्डु जैसा गोल है ? सिंघोडे जैसा त्रिखुना है, या चौकी जैसा चौखुना है ? छकडी जैसा लम्बा है या छपेल है, या कैसा है ? कृष्ण

ए० ऐसे ही न० नहीं है के० कोई पुरुष उ० बताने वा० ... यह आ० आत्मा ...
म० जैसे ए० कोई एक पु० पुरुष क० करतल से आ० आमला को अ० नीकाल कर उ० बतलावे अ०
यह आ० आयुष्मन् क० कर तल अ० यह आ० आमला ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष उ०
बताने वाला अ० यह आ० आयुष्मन् आ० आत्मा इ०यह स० शरीर से० अब ज० जैसे ए०कोईएक पु०
पुरुष द० दधिसे न० मक्खन अ० नीकाल कर उ० बताता है अ० यह आ० आयुष्मन् अ० यह द०
दधि ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष जा० यावत् स० शरीर से० वह ज० जैसे ए०
कोई पुरुष ति०तिलसे ति० तेल अ० निकाल कर उ०बतलावे अ०यह आ०आयुष्मन् ते० तेल अ०यह पि०

एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं । से जहा णाम एकेइ पुरिसे करयलाओ आमलकं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अय आमलए एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इम सरीरं । से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहीओ नवनीयं अभिनिव्वट्टित्ताण उवदंसेज्जा अयमाउसो नवनीयं अय तु दही, एवमेव णत्थि केइ पुरिसे जाव सरीरं । से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहिंतो तिल्लं अभिनिव्वट्टित्ताण उवदंसेज्जा अयमाउसो तिल्लं अ

तेल को भिन्न कियाजाता है, (७) इक्षु से रस को अलग करके बताया जाता है (८) जैसे अरणि नामक काष्ठ से अग्नि अलग कीजाती है। वैसे कोई शरीर से आत्मा को भिन्न बता नहीं सकता है कि यह

बतावे म० यह आ० आयुष्मन्तो अ० खड्ग म० यह को० म्यान ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष म० नीकालकर उ० बताने वाला म० यह आ० आयुष्मन आ० आत्मा इ० यह स० शरीर से० अब ज० जैसे आ० समाननाप ए० कोई एक पु० पुरुष मुं० तृणसे इ० इसी अ० नीकाल कर उ० बतावे म० यह आ० आयुष्मन मुं० तृण इ० यह इ० इसी ए० ऐसे ही ण० नहीं है के० कोई पुरुष उ० बताने वाला अ० यह आ० आयुष्मन् आ० आत्मा इ० यह स० शरीर से० अब ज० जैसे ए० कोई एक पु० पुरुष म० मांस से म० हड्डी अ० निकाल कर उ० बतावे म० यह आ० आयुष्मन् म० मांस अ० यह म० अस्थि

निव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो असी अयं कोसी एवमेव णत्थि केइ पुरिसे अभिनिव्वट्टित्ताण उवदंसेत्तारो, अयमाउसो आया इयं सरीर। से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुंजाओ इसियं अभिनिव्वटित्ताणं उवदसेज्जा अयमाउसो मुंजे इय इसिय एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इम सरीरं। से जहा णाम एकेइ पुरिसे मंसाओ अट्ठिं अभिनिव्वटित्ताणं उवदंसेज्जा—अयमाउसो मंसे अयं अट्ठी

जो शरीर से आत्मा भिन्न मानते हैं वे नास्तिक हैं यदि शरीर से आत्मा भिन्न होता तो जैसे (१) म्यान से खड्ग निकाल कर पृथक् बतलाया जाता है कि यह म्यान और यह खड्ग (२) जैसे तृण से इसी पृथक् बतलाइ जाती है (३) जैसे मांस से हड्डी को निकालकर बतलाइ जाती है (४) हथेली में ... को अलग निकालबताया है (५) तिल से नाम

मिथ्या से० वह ह० हनने वाला सं० उसे ह० हनो स सोदो छ० छेदो, द० जलावो, प० पचावो आ० लूटो वि० विशेष लूटो स० सहसात्कारकरो वि० विपरीत करो ए० ऐसा जी० जीव प० नहीं है प० परलोक ते० वे णो० नहीं ए० ऐसा वि० अंगीकार करतेहैं तं० यम कि० क्रिया अ० अक्रिया सु० सुकृत दु० दुष्कृत क० कल्याण (पुन्य) पा० पाप सा० साधु अ० असाधु सि सिद्ध अ० असिद्ध नि० नरक अ० अनरक ए० ऐसे ते० वे वि० विविध प्रकारके क० समारंभसे वि० विविधप्रकार के का० काम

ते मिच्छा । सेईता त हणह, खणह, छणह, डहह, पयह, आलुपह, विलुंपह, सहसा कारेह, विपरामुसह, एतावताव जीवे णत्थि परलोए वा ते णो एवं विप्पडिवेदेंति त किरियाइ वा, अकिरियाइ वा, सुकडेइ वा, दुक्कडेइ वा, कल्लाणेइ वा, पावएइ वा साहुइ वा, असाहुइ वा, सिद्धाइ वा, असिद्धाइ वा, निरएइ वा अनिरएइ वा, एवं ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइ काममोगाइ समारंभति भोयणाए । एवं

उन को सुख दुःख भोगवना पडे ऐसा परलोक भी नहीं है परलोक के अभाव से पुण्य पाप कुच्छ भी नहीं है इस लिये खावो पीवो स्वेच्छाचारी बनो यहांपर श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं, कि परलोक के अभाव से पुण्य पाप नहीं माननेवाले नास्तिक क्रिया, अक्रिया, सुकृत दुष्कृत, पुण्य, पाप, साधु, असाधु, सिद्ध, असिद्ध, नरक, व अनरक, (मनुष्य, तिर्यंच देवता) को नहीं मानते हैं इस तरह वे

तस ए० ऐसे ही जा० यावत् स० शरीर स० यह अ० अन्य ए० कोई पुरुष इ० इक्षु से सा० रस को अ० निकाल कर उ० बतलावे अ० यह आ० आयुष्यन् सो० इक्षु रस अ० यह छो० छोतरे ए० ऐसे ही जा० यावत् स० शरीर से० अथ अ० जैसे ए० कोई एक पुरुष अ० अरणि से अ० अग्नि अ० नीकाल कर उ० बतलावे अ० यह आ० आयुष्यन् अ० अरणि अ० यह अ० अग्नि ए० ऐसे ही जा० यावत् अ० अविद्य मान ने० जिसको सु० अच्छा कहा अ० होवे तं० यह अ० अन्य स० शरीर त० इसलिये ते० यह मि०

य मिआए, एवमेव जाव सरीरं । से जहा णाम एकेइ पुरिसे इक्खूतो खोत-रसं अभिनिव्वाटित्ताण उवदंसेज्जा अयमाउसो, खोतरसे अयं छोए एवमेव जाव सरीर । से जहा नाम एकेइ पुरिसे अरणीतो आगिं अभिनिव्वाटित्ताण उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अय अग्गी, एवमेव जाव सरीर । एव असते असंविज्जमाणे जेसिं त सुयक्खाय भवति त अन्नो जीवो अन्न सरीर तम्हा

आत्मा है और यह शरीर है इस लिये जीव और शरीर को एकही मानने वाले सत्यवादी हैं, और दोनो को भिन्न मानने वाले मिथ्यावादी हैं इसतरह वे तज्जीवतच्छरीरवादी जीवका अस्तित्व नहीं मानते हैं और जीव घात करने में किंचित्मात्र पाप नहीं समझते हैं, इस लिये वे स्वयं घातक बनकर अन्य को उपदेश करते हैं, इसे मारो, खोदो, छेदो, भस्मीभूत करो, पकावो, लूटो, बलात्कार करो, क्यों कि जो शरीर है वही जीव है, और शरीर का विनाश होने से जीव का भी विनाश होता है, जीव का अभाव होने से

प० कितनेक पू० पूर्वमें नि०निवृत्ति करनेसे पु० पहिले ते० उनको ण० ज्ञान भ होवे स० श्रमण, म० होवेंगे अ० अनगार अ अकिंचन अ० अपुत्र अ० पशु रहित प० दूसरेका दिया भोगने वाले भि साधु पा० पाप क० कर्म णो० नहीं क० करेंगे स सावधान ते० वे अ० स्वतः अ० अविरत भ० होते हैं स० स्वयं आ० आदरे अ अन्यकी पास आ आदरावे अ० अन्य आ आदरने वाले त उसे स० अच्छा जाने ए० ऐसे ही ते० वे इ० स्त्री के कामभोगोंमें मु० मूर्च्छित गि० गृद्ध ग० अतिगृद्ध अ एकचित्ती

यणाए निकाईसु।पुव्वमेव तेसिं णाय भवति, समणा भविस्सामो अणगारा, अकिंचणा, अपुत्ता अपसू, परदत्तभोइणो, भिक्खुणो पाव कम्मं णो करिस्सामि, समुट्ठिए ते अप्पणो, अप्पडिविरया भवति सयमाइयाति, अन्नेवि आदियावेंति, अन्नपि आयत त समणुजाणति एवमेव ते इत्थिकामभोगेहिं मुच्छिया, गिद्धा, गढिया, अज्झोववन्ना

स्थानकमें हमको तुमारी पूजा करनी चाहिये इसतरहका उपदेशसे राजा आदि को भ्रमित करके अपना कार्य सिद्ध करते हैं ऐसे नास्तिक मतवादियों को दीक्षा ग्रहण करते समय ऐसा ज्ञान होता है कि हम श्रमण, अणगार, आकिंचन, पुत्र कलत्र धन धान्यादि रहित, गो महिषादि पशु रहित, व अन्य का दियाहुवा भक्ष्य आदि लेनेवाले, साधु होवेंगे पापकर्म नहीं, करेंगे इस तरह सावधान बनकर पीछे से नास्तिकता को प्राप्त होकर स्वयं अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होते हैं स्वयं सावद्यानुष्ठान का आचरण करते हैं, अन्य की पास

मार म फुरत है भ० भोजन के लिये ए० पसे ए० कितनेक पा० भृष्ट णि० नकिलकर मा० हमारा प धय प० परूपते है त० उसे स० श्रद्धन माने, त उसे प० मतीत करने वाले से ते० उसकी रा० रुचि करत थास सा० अच्छा सु० अच्छा कथा स० श्रमण, मा० माहण का० इष्ट भा० आयुष्मन् तु० तुमको पू० पूजता हूं स० यह ज० यथा अ० अशनसे पा० पानसे खा० खादिम से सा० स्वादिमसे व० वस्त्र से प० पात्रस क० कंवलसे पा० रजोहरणसे त० वहां प० कितनेक पू० पूजामें स० गृद्ध त० तहां

एगे पागब्भिया णिक्खम्म मामगं धम्मं प पन्नवेंति त सद्दहमाणा, त पतियमाणा, ते रोयमाणा साहु सुयक्खाए समणेति वा, माहणेति वा, काम खलु आउसो तुमं पूय यामि—तंजहा—असणेण वा पाणेण वा, खाइमेण वा, साइमेण वा वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कम्बलेण वा, पायपुच्छणेण वा, तत्थेगे पूयणाए समाउट्टिंसु तत्थेगे पू-

विविध प्रकार के कर्म समारंभ से नाना प्रकार के काम भोगों भोगवते हैं कितनेक नास्तिकवादी मुंड बनकर ऐसा कहते हैं, कि जो शरीर है वही आत्मा है और इस तरह श्रद्धा करते हुवे, सत्य करके मानते हुवे व उस में रुचि करते हुवे कितनेक अपना ही उपदेश करते हैं अहो ब्राह्मणो ! हमारा ही धर्म सत्य व श्रेष्ठ है परभव के दुःखों से दुःखी करनेवाले उन पुरुषों में हम को बचाकर सुखी किये हैं, इस लिये तुम हमारे उपकारी बने हुवे हो अन्न, पानी, पक्वान्न, मुखवास, वस्त्र, पात्र, कम्बल व

आ० कंम ॥ १८ ॥ अ० अब दो० दूसरा पु पुरुष भाव पं० पंचमहाभूतवादी चि० ऐसा आ० कहा जाता है पा० पूर्व सं है ए० कितनेक म० मनुष्यों भ० होते हैं अ० अनुक्रम से लो० लोक में उ०उत्पन्नहुवे तं०यह भ० यथा आ०कितनेक आर्य अ०कितनेक अनार्य ए०ऐसे जा०यावत् दु०कुरूप ए०कितनेक ते० उस में म० बडा ए० एक रा० राजा भ० होता है म० बडा चि० निरविशेष जा० यावत् से० सेनापतिका पु० पुत्र ते० उन में ए० कितनेक स० श्रद्धावन्त भ० होते हैं का० धर्मार्थी स० श्रमण

पच महब्भूतिएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाइणं वा सते गतिया मणुस्सा भवंति अणु पुव्वेणं लोय उववन्ना तंजहा आरियावेगे, अणारियावेगे, एवं जाव दुरूवावेगे तेसिं च णं महं एगे राया भवति महाएव चेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिं च णं एंगतिए सड्ढी भवति कामत समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तत्य अन्नयरेणं ध

॥ १८ ॥ अब उस पुष्करणी गत दक्षिण दिशावाला पुरुष का भावार्थ बताते हैं इस जगत् समान पुष्करणी में रहा हुवा दूसरा मनुष्य पंचभूतवादी मानना इसको सांख्य मत भी कहते हैं सब अधिकार पूर्वोक्त पुरुष सम करना जैसे इस जगत् की पूर्वादि चारों दिशाओं में आर्य, अनार्य, सुरूप, कुरूप, ऐसे अनेक प्रकार के मनुष्य रहते हैं उन में विशुद्ध कुलोत्पन्न, सुलक्षण युक्त, पुण्यात्मा, राज्याभिषेक कराया हुवा राजा अनेक ऋद्धि, सिद्धि युक्त रहता है उन की सभा में उग्र कुल में उत्पन्न यावत् सेनापति के पुत्र

सूत सु० लुब्ध रा० राग द्वेषसे व० घेराये हुए हैं० वे णो० नहीं अ० स्वतः को स० मुक्त करे हैं० वे णो० नहीं प अन्य को स मुक्त करावे णो०नहीं अ०अन्य पा० माणी भू०भूत जी०जीव स० सत्त स० मुक्त करे प० गलित पु पूर्व सं० संयाम अ० आर्य म० मार्ग अ० अमाप्त इ० ऐसे वे० वे णो० नहीं इ० इसपार णो० नहीं पा०पार मं०बीच में का०काम भोगों में वि०खूते हुवे इ०यह प०मथम पु०पुरुष जात त०तज्जीवतच्छरीरवादी

लुद्धा, रागदोसवसट्टा, ते णो अप्पाणं समुच्छेदेंति, ते णो परं समुच्छेदेंति णो अण्णाइं पाणाइं, भूयाइं, जीवाइं, सत्ताइं, समुच्छेदेंति पहीणा पुव्व संजोगं, आरिय मग्गं असंपत्ता, इति ते णो हव्वाए, णो पाराए, अंतरा कामभोगेसु विसण्णा इति पढमे पुरिसजाए तज्जीवतच्छरीरएत्ति आहिए ॥ १५ ॥ अहावरे दोच्चे पुरिसजाए

आचरण करते हैं, और ऐसा आचरण करनेवाले को अच्छा मानते हैं, वैसे ही काम भोगों में स्वयं गृद्ध व रक्त बने हुए रहते हैं वे स्वयं कर्मबंध से मुक्त नहीं हो सकते हैं, वैसे ही अन्य माणी, भूत, जीव व सत्त्व को भी मुक्त नहीं कर सकते हैं ऐसे नास्तिक लोकों पूर्व स्वभाविक से भी भ्रष्ट हुवे, और आर्य धर्म की प्राप्ति भी नहीं करसके, इस तरह उभय भ्रष्ट होने से पुष्करणी में खूंता हुवा मनुष्य की तरह वे न तो उत्तीर्ण होसके, और न किनारे पर रह सके, परंतु अंतराल में ही काम भोग रूप कीचड में खूते रहे ऐसे पुरुष रागादिक का उद्धार कर सके नहीं यह तज्जीवतच्छरीरवादी नामक प्रथम पुरुष कहा

मा०जानों ण०नहीं है दो०दोष ते०वे णो०नहीं वि०जानते है त०यह अ०पया कि०क्रिया मा०वावर्त वि० नरक ए० ऐसे वि० विविध प्रकार के क० कर्म के स० समारम में वि० विविध प्रकार के का० काम भोग का स समारंभ करते हैं भो० भोजन के लिये ए० ऐसे ते० वे अ०अनार्य वि०प्रवर्तते हुवे तं०उस को स० श्रद्धते हुवे तं० उसको प भवित करते हुवे मा० पावत् ते० वे णो० नहीं इ० किनारेपे णो० नहीं

विप्पडिवेदेंति तंजहा—किरियाइ वा जाव णिरएइ वा एवं ते विरूवरूवेहिं कम्म समारंभेहिं विरूवरूवाइं काम भोगाइं समारभंति भोयणाए एवमेव ते अणारिया वि-प्पडिवन्ना, तं सद्दहमाणा, तं पत्तियमाणा, जाव इति ते णो हव्वाए, णो पाराए, अंतरा

जो वस्तु स्वतः खरीदता है अन्य की पास खरीदाता है, जीवों की घात करता है, अन्य की पास घात कराता है, व पंचेन्द्रिय जीवों को मोल लेकर मारता है ऐसे सब कार्यों करता है, परंतु उस को हिंसा आदि का दोष नहीं लगता है ऐसा जानकर वे सांख्य दर्शनवाले स्वच्छन्दाचारी बनकर पापचारंभ में प्रवृत्ति कर रहे हैं अहो जम्बू! उन बिचारे के अज्ञानरूप आच्छादन से हृदय रूप नेत्रों आच्छादित हो रहे हैं जिस से वे सुकृत, दुष्कृत, यावत् नरक, स्वर्ग कुच्छ भी नहीं जानते हैं इस तरह वे विविध प्रकारके कर्म समारंभ अपना उपभोग के लिये करते हैं ऐसे अपना धर्म की प्ररूपणा करनेवाले अनार्य कामभोग में मूर्च्छित बनकर अपना धर्म की श्रद्धा करते, प्रतीत करते व रुचि करते इस लोक व पर लोक दोनों से

एक आ० कहा स० विद्यमान का न० नहीं है वि० विनाश अ० अविद्यमान का प० नहीं है सं० संभव ए० इस जी० जीव काय ए० इस अ० अस्तिकाय ए० इस स० सर्व लो० लोक ए० इस मु० मुख्य लो० लोक का क० कारण अ० अपि त० तृण मात्र से० वे कि० खरीदे कि० खरीदावे ह० हणे घा० हिंसा करावे प० पकावे प० पकवावे अ० अपि पु० पुरुष म० मोललेके घा० घातकरके ए० यहां

य छट्ठा पुण एगे एवमाहु, सतो णत्थि विणासो, असतो णत्थि संभवो, एतावताव जीवकाए, एतावताव अत्थिकाए, एतावताव सव्वलोए, एत मुहं लोगस्स करणयाए अवियतसो तणमायमवि । से किणं किणावेमाणे, हणं घायमाणे, पय पयावेमाणे अविअतसो पुरिस मावीकिणित्ता, घायइत्ता एत्थंपि जाणाहि णत्थित्थ दोसो, ते णो एवं

छठा आत्म छठ्ठा है और भी कितनेक कहते हैं कि विद्यमान वस्तु का नाश नहीं है, और अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति नहीं होसकती है इस तरह से सांख्य दर्शनवाले आत्मा को कर्ता नहीं मानते हैं क्यों कि यदि आत्मा कर्ता होवे तो अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति करे ये पांचभूत ही जीव हैं, कार्य के करनेवाले वेही हैं, वेही अस्तिकाय है, लोक भी उस का बनाहुवा है, और इस लोक में अपास वे ही रहे हुवे हैं इन सिवाय अन्य कुच्छ भी नहीं है कोई कहते हैं कि आत्मा नहीं है किसी का यह कथन है कि आ त्मा है । [illegible]

स० श्रद्धावान् म होवे का० धर्मार्थी स० श्रमण मा० ब्राह्मण स० विचारे ग० जाने को आ० यावत् न जैसे म० मैंने ए० यह ध० धर्म सु० अच्छा कहा सु अच्छा भरूपा भ० है इ यहां ख० निश्चय ध० धर्म पु० पुरुषादिक (ईश्वर) पु पुरुष प्रधान पु०पुरुष प्रणीत पु०पुरुष से स० उत्पन्न पु० पुरुष प० प्रधा सित पु० पुरुषानुगामी पु० पुरुष को ही अ० व्याप्त करके चि रहते हैं से अथ ज० जैसे ग० गुम्बड सि० होवे स० शरीर में जा० उत्पन्न होवे स० शरीर में स० वृद्धि होवे स शरीर को

समणाय माहणाय सपहारिंसु गमणाए जाव जहा मए एस धम्मे सुअक्खाए, सुपन्नते भवइ । इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया, पुरिसप्पणीया, पुरिससमूया, पुरिस पज्जोतिता पुरिसअभिसमण्णागया, पुरिसमेव अभिभुय चिट्ठंति, से जहा णामए गंढे सिया, सरीरे जाए,सरीरे संवुड्ढे, सरीरे अभिसमण्णागए, सरीरमेव अभिभूय चि

को भावे यह सब वर्णन पूर्वोक्त कथनानुसार जानना यहां पर ईश्वरसाक्षीवाला अपना धर्म को श्रेष्ठ बताने के लिये राजा की पास आकर कहता है—इस संसार में धर्म (सचेतना अचेतना रूप वस्तु स्वभाव) का कर्ता, बनानेवाला, उत्पादक, प्रकाशक ईश्वर ही है, जीवों के जन्म, मरण, रोग, शोक, वर्ण, गंध रस स्पर्शादि सब धर्म स्वभाव ईश्वर भाषित है किंबहुना सर्व जगत् एक ईश्वरमय ही है अर्थात् ईश्वर व्याप्त सर्व स्थान रहे हुवे हैं इस कथन को दृष्टांत से सिद्ध करते हैं जैसे [१] गुम्बड शरीर में उत्पन्न

पा० पार म० बीच में का० कामभोग में वि० खूते हुवे दो० दूसरा पु० पुरुष जात प० पंच महा
भूत सि० ऐसा आ० कहा ॥ १६ ॥ अ० अब अ० अपर त तृतीय पु० पुरुष जात ई० ईश्वरका
रणिक इ० ऐसा आ० कहा जाता है इ० यहां स निश्चय पा० पूर्व में स० है ए० कितनेक म० मनुष्य
म० हैं अ० अनुक्रम से लो० लोक में उ० उत्पन्न है त० यथा आ० आर्य ए० एक जा० यावत्
वे० उन में म० बडा ए० एक रा० राजा भ० है ना० यावत् से० सेनापति का पु पुत्र ते० उन में ए कोइ एक

कामभोगेसु विसण्णा दोच्चे पुरिसज्जाए पचमहब्भूतिएत्ति आहिए ॥ १६ ॥ अ
हावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिए इति आहिज्जइ—इह खलु पाईणं वा सतेग
तिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेण लोयं उववन्ना—तंजहा—आरियावेगे जाव तेसिं च ण
महंते एगे राया भवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं च णं एगतीए सड्ढी भवइ कामत

भ्रष्ट होकर और कामभोग में खूते रहते हैं ऐसे पुरुष पुंडरीक समान राजा का उद्धार कर सके नहीं, परंतु
संसार रूप वावडी में ही फसे रहें ॥ १६ ॥ अब तृतीय पुरुष की व्याख्या करते हैं लोक का कर्ता
ईश्वर है, ऐसा जो मानते हैं, वे ईश्वरवादी हैं इस मनुष्य लोक में पूर्वोक्त चारों दिशाओं में आर्य अनार्य
आदि अनेक प्रकार के मनुष्यों यावत् उन में किसी को राज्याभिषेक कराके अनेक पुरुषों की परिषदा
एक हुवा और भी उसमें किसी को बलवान जानकर ... ब्राह्मणादिक राजादिक को मतिमोह ...

म० अनुगामी होवे पु० पृथ्वी को अ० व्याप कर चि० रहता है ए ऐसे ही ध० धर्म पु ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि रहते हैं से अथ ज० जैसे रु०वृक्ष सि होवे पु०पृथ्वी में जा० उत्पन्न पु० पृथ्वी में सं बढे पु० पृथ्वी में अ० अनुगामी पु पृथ्वी को ही अ० व्याप कर चि रहते हैं ए ऐसे ही ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि०रहते हैं से० अथ ज० जैसे पु० वावडी सि० होवे पु० पृथ्वी जा० उत्पन्न जा० यावत् पु० पृथ्वी को अ० व्याप कर चि० रहती है ए० ऐसे ध०धर्म पु०ईश्वरादि जा०यावत् पु०पुरुष अ०व्याप कर चि० रहते हैं से० अथ ज० जैसे उ० पानी का पु० कमल सि० होवे उ० पानी में जा० उत्पन्न उ० पानी को अ० व्याप कर चि० रहते

भूय चिट्ठइ, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव आभिभूय चिट्ठति से जहा णामए रुक्खे सिया पुढविजाए पुढविसवुड्ढे पुढविअभिसमण्णागए पुढविमेव अभिभूय चिट्ठति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठंति से जहा णामए पुक्खरिणी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव आभिभूय चिट्ठति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठति से जहा णामए उदगपुक्खले सिया उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिट्ठति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया

वृद्धि पाते हैं और उस में ही व्याप्त रहते हैं (७) जैसे पानी का परपोटा पानी से होता है वहां बढता

अ० अनुगामी स० शरीर को अ० व्याप कर चि० रहते हैं ए० ऐसे ही घ० धर्म (स्वभाव) पु० ईत्य-
त्यादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्यापकर चि० रहते हैं से० अथ ज० जैसे अ० अरति सि० होवे
स० शरीर में जा० उत्पन्न स० शरीर में स० बढे, स० शरीर के अ० अनुगामी स० शरीरको व्यापकर
चि० रहती है ऐ० ऐसे ही ध० धर्म भी पु० ईत्यादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि० रहते हैं
से० अथ ज० जैसे व० वल्मिक सि० होवे पु० पृथ्वी में उ० उत्पन्न पु० पृथ्वी में स० बढे पु० पृथ्वी

ट्ठति, एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठति से जहाणामए अ-
रइ सिया, सरीरे जाया, सरीरे संवुड्ढा, सरीरे अभिसमण्णागया, सरीरमेव अभिभूय
चिट्ठति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव आभिभूय चिट्ठति से जहा णा-
मए वम्मिए सिया पुढवि जाए पुढवि संवुड्ढे, पुढवि अभिसमण्णागए, पुढविमेव अभि-

होता है, शरीर में वृद्धि पाता है, शरीर की साथ रहता है, और शरीर में ही व्याप्त रहता है [२] जैसे
अरति शरीर में उत्पन्न होती है, शरीर में ही बढती है और शरीर में ही व्याप्त रहती है [३] जैसे व
ल्मिक पृथ्वी में होता है, उस में बढता है और उस को ही व्याप्त होकर रहता है (४) जैसे वृक्ष पृथ्वी
पर ही होता है, वहां ही बढता है और वहां ही व्याप्त रहता है, (५) जैसे वापि पृथ्वी पर उत्पन्न

यथातथ्य है यह स० सत्य इ० यह त तथ्य है यह अ० यथातथ्य ए० एसे स० संज्ञा कु० करते हैं स०संज्ञा सं०स्थापते हैं स०सज्ञा सो० अच्छी तरह से स्थापते हैं त०इसलिये ते०वे त०तथा जात दु० दुःख को प० नहीं अ० तोडते हैं स०पक्षिणी प०पींजर में ज०जैसे ते०वे णो०नहीं ए ऐसे वि० जानते हैं ते० यह भ जैसे कि० क्रिया या० यावत् अ० अनरक ए० ऐसे ते० वे वि० विविध प्रकार के क० कर्म स० समारंभ में वि० विविध प्रकार के का० काम भोग को स० समारंभ करते हैं भो० भोजन के लिये ए० ऐसे ते० वे अ अनार्य वि० अविरत स० श्रद्धते हुवे जा० यावत् इ० ऐसे ते० वे णो० नहीं ह० किनारेपे

य आहातहियं, इम सच्च, इमं तहियं, इम आहातहियं; एव सन्न कुव्वति, ते एव सन्न सठवेंति, ते एव सन्न सोवट्ठवयाति, तमेव ते तज्जाइय दुक्ख णातिउट्टंति सउणी पज र जहा। ते णो एव विप्पडिवेदेंति तंजहा—किरियाइ वा जाव अणिरएइ वा, एवमेव त निरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइ कामभोगाइ समारभंति भोयणाए, एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एव सद्दहमाणा जाव इति ते णो हव्वाए णो पाराए

ईश्वर को जगत् के कर्त्ता माननेवाले वस्तुम की प्ररूपणा करने से ससार का बंधन नहीं तोड सकते हैं, जैसे पिंजरे में रही हुई पक्षिणी पींजरा का बंधन नहीं तोड सके, वैसे ही पूर्वोक्त दर्शनी पिंजरे में रहे ससार मोक्ष जा सके नहीं और अन्य को भी साथ में लेजा सके नहीं व विचारे क्रिया, अक्रिया यावत् स्वर्ग

है प० ऐसे ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि० रहते हैं से० यथ नं० जैसे उ० पानी का बु० बुद बुद सि० होवे उ० पानी में जा० उत्पन्न जा० यावत् उ० पानी को अ० व्याप कर चि० रहते हैं० प० ऐसे ध० धर्म पु० ईश्वरादि जा० यावत् पु० पुरुष को अ० व्याप कर चि० रहते हैं जं० जो इ० इस स० श्रमण णि० निर्ग्रन्थ का उ० उपदेश प० प्ररूपा वि० प्रगट किया दु० द्वादशांग ग० आचार्य का पि० भंडार त० वह ज० जैसे आ० आचारांग सू० सूयगडांग जा० यावत् दि० दृष्टिवाद स० सर्व ए० ऐसे मि० मिथ्या ण० नहीं ए० यह त० सत्य ण० नहीं ए० यह आ०

जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठति से जहा णामए उदगपुब्बुए सिया, उदगजाए जाव उदगमेव अभिभूय चिट्ठति, एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठति जंपिय इम समणाणं णिग्गथाण उद्दिट्ठ पणिय वियंजिय, दुवालसंग गणिपिडय तंजहा—आयारो सूयगडो जाव दिट्ठिवातो सव्वमेय मिच्छा, ण एयं तहिय ण ए-

है, और उस में ही व्याप्त रहता है, वैसे ही सर्व पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न हुवे, ईश्वर को व्याप्त हुवे, और ईश्वर से ही वृद्धि पावें ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है अब जो ईश्वर ने किया वह सत्य है अन्य असत्य है सो बतलाते हैं निर्ग्रन्थ साधु के लिये प्ररूपाये हुवे आचारांग यावत् दृष्टिवाद रूप द्वादशांगी वाणी ईश्वर प्रणीत नहीं है, इस लिये वह सब असत्य है

म०मरे से ए०यह ध०धर्म सु०अच्छा कहाया हुवा सु०अच्छा भरूपा हुवा म०है इ०यहां दु०दो पु०पुरुष म० है ए०एक पु०पुरुष कि०क्रिया आ०कहता है ए०एक पु०पुरुष णो०नहीं कि०क्रिया आ०कहता है जे०जो पु०पुरुष कि०क्रिया आ०कहते हैं जे०जो पु०पुरुष णो नहीं कि०क्रिया को आ०कहता है दो०दोनों ते० वे पु०पुरुष तु बरोबर ए० एक अ० अर्थी का०कारण को आ० मास बा० मूर्ख पु० फिर ए०ऐसे वि० कहते

पहारिंसु गमणाए जाव मए एस धम्मे सुअक्खाए सुपन्नते भवइ। इह खलु दुवे पुरिसा भ वंति एगे पुरिसे किरियामाइक्खइ एगे पुरिसे णो किरिया माइक्खइ जय पुरिसे किरिया माइ-क्खइ जे पुरिस णो किरिया माइक्खइ, दोवि ते पुरिसा तुल्ला एगट्ठा कारण मावन्ना बाले पुण

पना धर्म की प्ररूपणा करे वे नियतवादियों अपना धर्म की जो स्थापना करते हैं सो बतलाते हैं इस संसार में दो तरह के पुरुष होते हैं एक (१) क्रिया की स्थापना करते हैं सो दूसरा (२) अक्रिया की स्थापना करते हैं परंतु क्रिया करनेवाले और क्रिया नहीं करनेवाले दोनों तुल्य हैं, क्योंकि वे दोनों भवितव्यता के वश में रहे हुवे हैं वे नियतवादी अन्य मत की उत्थापना करते हैं जो कोई सुख दुःख की उत्पत्ति को ईश्वरादि का कारण मानते हैं और कहते हैं कि जो हम शारीरिक, मानसिक दुःख अनुभवते हैं, इष्टवियोग अनिष्ट

(१) देशादेशांतरप्राप्तिः क्रिया—एक देश से अन्य देश में जाना सो क्रिया (२) परिश्रम बिना कार्य की प्राप्ति होवे उसे अक्रिया कहते हैं

णो॰ नहीं पा॰ पार अं॰ बीच में का॰ कामभोग में वि॰ खुते हुवे ति॰ ऐसे त॰ तीसरा पु॰ पुरुष जात ई॰ ईश्वर कर्ता आ॰ कहा ॥ १७ ॥ अ॰ अब च॰ चौथा पु॰ पुरुष जात णि॰ नियतवादी आ॰ कहते हैं इ॰यहां पा॰ पूर्वादि दिशा से जा॰यावत् से॰सेनापतिको पुत्र ते॰उस में ए॰कोई स॰श्रद्धावान् भ॰ होते हैं का॰ धर्मार्थी तं॰ उस को स॰ श्रमण मा॰ ब्राह्मण स॰ विचारे ग॰ जाने को जा॰ यावत्

अतरा कामभोगेसु विसण्णेत्ति तच्चे पुरिसजाए इसरकारणिएत्ति आहिए ॥ १७ ॥
अहावरे चउत्थे पुरिसजाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाईणं वा तहेव जा
व सेणावइपुत्ता वा तेसिं च णं एगतीए सड्ढी भवइ कामं, तं समणाय माहणाय स-

नरक को नहीं मान सकते हैं वे षट्काया के जीवों का आरंभ करते हैं, पंचेन्द्रियों के भोगों में लुब्ध बनते हैं, और संसार समान पुष्करणी में फस रहे हैं वैसे अपना व अन्य का उद्धार नहीं कर सकते हैं यह तीसरा ईश्वरवादी का कथन हुवा ॥ १७ ॥ अब चतुर्थ पुरुष जात नियतवादी कहते हैं, कार्य की उत्पत्ति में भवितव्यता सिवाय अन्य कारण नहीं माननेवाले नियतवादी कहाये जाते हैं इस मनुष्य लोक में चारों दिशा में कोई पुरुष होवे यावत् राजा की सभा में सेनापति के पुत्र तक सब अधिकार पूर्ववत् जानना उस में किसी पुरुष को धर्मार्थी जानकर कितनेक श्रमण, ब्राह्मणादिक राज्य को उपदेश देने को जावे और व

अ० हूं दु० दुःख भोगता हूं सो शोक करता हूं ज़ू० झूरता हूं ति० रोताहूं पी० पीडित होता हूं प० परितापि होता हूं णो० नहीं म० मैं ए० ऐसे अ० कीया प० दूसरा ज० जो दु० दुःख भोगता है मा० यावत् प परितापि होता है णो० नहीं प० दूसरा अ० कीया ए० ऐसे मे० मेधावि स० कारण सहित प० अन्य का० कारण ए० ऐसे वि० मानते हैं का० कारण को मा० प्राप्त से० वह पं०कहता हूं पा० पूर्वादि दिशामें ज० जो त त्रस था०स्थावर पा०प्राणी ते० वे भ० समूह को

मानज्ञ अहमसि दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तिप्पामि वा, पीडामि वा परितप्पामि वा णो अह एव मकासि परो वा जं दुक्खइ वा जाव परितप्पइ वा, णो परो एव मकासि एव से मेहावि सकारण वा परकारणं वा एव विप्पडिवेदेंति कारण मावन्ने से वेमि पाईण वा जे तसथावरा पाणा ते एव सघायमागच्छंति, ते

शोकादि अनुभवता हूं यह सब मैंने नहीं किया या दूसरा दुःख देता या परिताप उपजाता है, वह भी दूसरने नहीं किया है इस तरह अपना या पर का दुःख का कारण भवितव्यता है ऐसा पण्डित पुरुष जाने भवितव्यता बिना अन्य कोई सुख दुःख देनेवाला नहीं है ऐसा भी देखने में आता है कि पाप करनेवाले सुखी, और सुकृत करनेवाले दुःखी होते हैं इस लिये भवितव्यता ही प्रधान है वे कहते हैं कि पूर्वादिक चारों दिशा में जो त्रस स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं और वे जो शरीरादि धारण करते हैं, बाल,

है का० कारण को आ० मात्र अ० में अ० हूं दु० दुःख भोगता हूं सो० शोक करता हूं जू० झूरता हूं ति० रोता हूं पी० पीडाता हूं प० परितापित होता हूं अ० में ए० ऐसा अ० कीया प० दूसरा जं० जो दु० दुःख भोगता है सो० शोक करता है जू० झूरता है ति० रोता है पी० पीडाता है प० परितापित होता है प० दूसरा अ० कीया ए० ऐसे से० वह बा० मूर्ख स० कारण सहित ए० ऐसा वि० करता है का० कारण को आ० मात्र मे० मेधावि पु० फीर ए० ऐसा वि० कहता है का० कारण को आ० मात्र अ० में

विप्पडिवेदेति, कारण मावन्ने अहमंसि दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तिप्पामि वा, पीडामि वा, परितप्पामि वा, अहमेय मकासि परो वा जं दुक्खइ वा, सोयइ या, जूरइ वा, तिप्पइ वा, पीडइ वा, परितप्पइ वा, परोएव मकासि एवं से बाले सकारण वा एवं विप्पडिवेदेति कारण मावन्ने । मेहावि पुण एव विप्पडिवेदेति कारण

संयोग से शोक अनुभवते हैं, झूरते हैं, तपते हैं, बाह्याभ्यंतर पीडा अनुभवते हैं, परितापना सहते हैं, और वे जो सुख दुःख अनुभवते हैं वे सब अपना किया हुवा है, अथवा अन्य कोई झूरे, दुःख अनुभवे, आदि जो दुःख होवे वे सब उस का ही किया हुवा है, या अन्य कोई अपने को दुःख देवा है वह भी अपना किया हुवा है, इस तरह स्वकारण व परकारण माननेवाले बाल-अज्ञानी हैं इस तरह से सुख दुःखादि में पूर्वोक्त कारण माननेवाले का तिरस्कार कर नियतवादी अपना मत की स्थापना करते हैं जीवों को जो सुख दुःख उत्पन्न होते हैं, उन में भवितव्यता सिवाय अन्य कुछ भी कारण नहीं है मैं दुःख

अ० है दु० दुःख भोगता है सो शोक करता है भू० झूरता है ति० रोताहै पी० पीड़ित होता है प० परितापि होता है णो० नहीं अ० मैं ए० ऐसे अ० कीया प० दूसरा ज० जो दु० दुःख भोगता है जा० यावत् प परितापि होता है णो० नहीं प० दूसरा अ० कीया ए० ऐसे मे० मेधावि स० कारण सहित प० अन्य का० कारण ए० ऐसे वि० मानते हैं का० कारण को मा० माह्र से० सद वे०कहता है पा० पूर्वादि दिशामें जे० जो त त्रस था०स्थावर पा०प्राणी ते० वे स० समूह को

मावक्से अहमसि दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तिप्पामि वा, पीढामि वा परितप्पामि वा णो अह एव मकासि, परो वा जं दुक्खइ वा जाव परितप्पइ वा, णो परो एव मकासि एव से मेहावि सकारण वा परकारणं वा एव विप्पडिवेदेंति कारण मावक्से से बेमि पाईण वा जे तसथावरा पाणा ते एवं सघायमागच्छति, ते

शोकादि अनुभवता हूं यह सब मैंने नहीं किया या दूसरा दुःख देता या परिताप उपजाता है, वह भी दूसरने नहीं किया है इस तरह अपना या पर का दुःख का कारण भवितव्यता है ऐसा पण्डित पुरुष जाने भवितव्यता विना अन्य कोई सुख दुःख देनेवाला नहीं है ऐसा भी देखने में आता है कि पाप करनेवाले सुखी, और सुकृत करनेवाले दुःखी होते हैं इस लिये भवितव्यता ही प्रधान है वे कहते हैं कि पूर्वादिक चारों दिशा में जो त्रस स्थावर प्राणी रहे हुवे हैं और वे जो शरीरादि धारण करते हैं, बाल,

२ का० कारण को मा० मान अ० मैं अ० हूं दु० दुःख भोगाता हूं सो० शोक करता हूं जू० झूरता हूं ति० रोता हूं पी० पीडाता हूं प० परितापित होता हूं अ० मैं ए० एसा अ० कीया प० दूसरा अं० आ दु० दुःख भोगता है सो० शोक करता है जू० झूरता है ति० रोता है पी० पीडाता है प० परितापित होता है प० दूसरा अ० कीया ए० ऐसे से० वह बा० मूर्ख स० कारण सहित ए० ऐसा वि० करता है का० कारण को मा० मान मे० मेधावि पु० फीर ए ऐसा वि० करता है का कारण को मा० मान अ० मैं

विप्पडिवेदेंति, कारण मावन्ने अहमंसि दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तिप्पामि वा, पीडामि वा, परितप्पामि वा, अहमेय मकासि परो वा ज दुक्खइ वा, सोयइ वा, जूरइ वा, तिप्पइ वा, पीडइ वा, परितप्पइ वा, परोएय मकासि, एवं से बाले सकारणं वा एवं विप्पडिवेदेंति कारण मावन्ने । मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारण

संयोग से शोक अनुभवते हैं, झूरते हैं, तपते हैं, बाह्याभ्यंतर पीडा अनुभवते हैं, परितापना पाते हैं, और य जो सुख दुःख अनुभवते हैं वे सब अपना किया हुवा है, अथवा अन्य कोई झूरे, दुःख अनुभवे, यावित् या दुःख होवे वे सब उस का ही किया हुवा है, या अन्य कोई अपने को दुःख देता है यह भी अपना किया हुवा है, इस तरह स्वकारण व परकारण मानने वाले बाल अज्ञानी हैं इस तरह से सुख दुःखादि में एकान्त कारण माननेवाले का तिरस्कार कर नियतवादी अपना मत की स्थापना करते हैं जीवों को जो सुख दुःख उत्पन्न होते हैं उस में भवितव्यता सिवाय अन्य कोई भी कारण नहीं है वे सुख

कारण ए० एस त० व अ० अनाय वि० विप्पड प० ...स को त अश्रवे हुवे जा० यावत् ते० वे णो० नहीं ह० किनारेपे णो० नहीं पा० पार अं० बीच में का० काम भोग में वि० खुते हुवे च० चौथा पु० पुरुष जात णि० नियत वादी त्ति० ऐसा आ० कहा ॥ १८ ॥ इ० इतने च० चार पु० पुरुष जात णा० विविध प० बुद्धि णा० विविध छ० छन्द णा० विविध सी० शील णा० विविध दि० द्रष्टि णा० विविध रु० रुचि णा० विविध आ० आरंभ णा० विविध अ० अध्यवसाय स० सहित प० छोडकर पु० पूर्व

समारंभति भोयणाए, एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं त सद्दहमाणा जाव इति ते णो हव्वाए णो पाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा, चउत्थे पुरिसजाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ १८ ॥ इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना, णाणाछंदा, णाणा सीला, णाणादिट्ठी, णाणारुई, णाणारंभा, णाणाअज्झवसाणा, पहीणपुव्वस

वे पुष्करणी में रहाहुवा चतुर्थ पुरुष समान न तो किनारे के रहे, और न पार होसके, बीचमें ही कामभोगमें खुंत गये अर्थात् इस लोक से भ्रष्ट हुवे और मुक्ति में जा सके नहीं यह चतुर्थ नियतवादी कहा ॥१८॥ विविध प्रकार की प्रज्ञावाले, अभिप्रायवाले, शील-आचारवाले, दृष्टिवाले, रुचिवाले, आरंभ के करनेवाले और अध्यवसाय करके युक्त ऐसे पूर्वोक्त चार पुरुषों कहे. वे अपने २ धर्म में सावध बने हुवे पूर्व संयोग पुत्र कलत्रादिक का संबंध को छोड कर व आर्यमार्ग को आभास बनकर न तीर पे रहे, न पार पहुंच सके, परंतु

मा० जाते हैं से० वे वि० विपर्याय आ० माते हैं ते० वे ए० ऐसे वि० विवेक को मा० माते हैं ते० वे रि० अवस्था मा माते हैं वे० वे स० संगत को य० जाते हैं उ० उपेक्षासे णो० नहीं वि० जानते हैं स० पर न० यथा कि० क्रिया मा० यावत णि० नरक भ० अनरक ते० वे वि० विविध मकार क० कर्म स० समारम से वि विविध मकार का० काम भोग का स० समारम करते हैं भो० भोजन

एव विपरियासमावज्जति ते एव विवेगमागच्छति, ते एवं विहाणमागच्छति, ते एव सगातियंति उवेहाए णो एव विप्पडिवेदेंति तजहा किरियाति वा जाव णिरएति वा अणिरएति वा, एवं ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारभेहिं विरूवरूवाइ कामभोगाइ

यौवन व वृद्धावस्थादि नाना मकार की पर्याय को माप्त होते हैं, शरीर में पृथक् भाव होता है, कुन्म भंग, वामनादि अवस्था विशेष होती है, ये सब भवितव्यता से होते हैं भवितव्यता से ही इन सब भावों को अनुभवते हैं अब श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि नियतवादी पुरुष मात्र नियत का अनुसरण करके पर लोक का भय नहीं रखते हुवे सावद्यानुष्ठान करते हैं वे क्रिया, अक्रिया, सिद्धि, असिद्धि यावत् नरक, अनरक को कुच्छ भी नहीं मानते हैं इस तरह सर्व दोष भवितव्यता पर रख करके भोग उपभोग के लिये नाना मकार के कर्म समारंभ करते हैं इस रीति से अनार्य पुरुष कामभोग में गृद्ध बन करके अपना धर्म को अच्छा करके मानते

में आ० आकर अ० सन्मुख होकर ए० कितनेक भि० भिक्षाचर्या में स० सावधान हुवे स० सत्ववत ए० कितनेक णा० ज्ञाति उ० उपकरण को वि० छोडकर भि० भिक्षाचर्यार्थ स० सावधान हुवे अ० असत्ववंत ए० कितनेक णा० ज्ञाति उ० उपकरण को वि० छोडकर भि० भिक्षाचर्यार्थ स० सावधान हुवे जे० जो ते० वे स० सत् अ० असत् णा० ज्ञाति अ० ज्ञाति रहित उ० उपकरण को वि० छोडकर भि० भिक्षाचर्यार्थ स० सावधान हुवे ॥ २० ॥ पु० पहिले ते० उन से णा० ज्ञान भ० है तं० वह अ० जैसे इ० यहां पु० पुरुष अ० अन्योन्य अ० स्वतः केसिये वि० मानते हैं व यह ज० जैसे खे० क्षेत्र मे० मेरा व०

अप्पयरो वा, भुज्जयरो वा, तहप्पगारेहिं कुलेहिं, आगम्म अभिभूय एगे भिक्खायरि-याए समुट्ठिता सतोवावि एगे णायउय उवगरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए स-मुट्ठिता असतो वावि एगे णायउय उवगरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए समुट्ठि ता, जेतेसतो वा, असतो वा, णायउय, अणायउय, उवगरणं च विप्पजहाय भिक्खा रियाए समुट्ठिता ॥ २० ॥ पुव्वमेव तेहिं णाय भवइ त जहा—इह खलु पुरिसे अन्न

गृहादि परिग्रह अल्प या बहुत होवे, वैसे ही मनुष्य और देव अल्प या बहुत होवे, या मातापिता स्व जनादि होवे या न होवें, परंतु वैराग्य आने पर ज्ञाति, स्वजन, धन, धान्यादिक, सब को छोड कर दीक्षा अङ्गीकार करते हैं ॥ २० ॥ उस पुरुष को चारित्र ग्रहण करते समय ऐसा ज्ञान होवे कि यह अन्य क्षेत्र

सें० संयोग आ० आर्य म० मार्ग को अ असमाप्त से० वे णो० नहीं इ० किनारपे णो० नहीं पा० पार अं० बीच में का० काम भोग में नि० खूते हुवे ॥ ११ ॥ से० वह बे० कहता हूं पा० पूर्वादि जा० यावत् सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं त० वह जं० जैसे आ० कितनेक आर्य अ० कितनेक अनार्य उ० कितनेक ऊंचगोत्री नी० कितनेक नीच गोत्री का० दीर्घ काया वाले ह० छोटी काया वाले सु० अच्छा वर्ण वाले दु० खराब वर्ण वाले सु० सुरूप दु० कुरूप ते० उसमें से० क्षेत्र व० गृहादि प० परीग्रह भ० हैं त० उसको अ० अल्प मु० बहुत मन ना० देश प० परीग्रह भ० हैं तं० उस को अ० अल्प मु० बहुत त० तथा प्रकार कु० कुल

जोगा आरिय मग्गं असमत्ता इति ते णा इव्वाए णो पाराए अतरा कामभोगेसु वि सण्णा ॥ ११ ॥ से बेमि पाईण वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति—तंजहा—आरियावेगे, अणारियावेगे, उच्चागोयावेगे, णीयागोयावेगे, कायमंतावेगे हस्समंतावेगे, सुवन्नावेगे, दुवन्नावेगे, सुरूवावेगे, दुरूवावेगे, तेसिं च णं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाणि भवंति, तं अप्पयरो वा, भुज्जयरो वा, तेसिं च णं जण जाणवयाइं परिग्गहियाइं भवंति, तं

कामभोगों में खूंते रहें वे परलौकिक पार पुरुष कहे ॥ ११ ॥ अब पांचवा स्वतीर्थिक कहते हैं इस मनुष्य लोक की चारों दिशाओं में कितनेक मनुष्य रहते हैं जैसे कि—आर्य, अनार्य, ऊंच, नीच गोत्र में उत्पन्न होनेवाले, लम्बीकायावाले, ठिंगने, अच्छे वर्णवाले सुरूप व कुरूप उन मार्गान्तरिक पुरुष को क्षेत्र

जैसे म० मेरा अ० अन्य कोई दु० दुःख रो रोग स० उत्पन्न होवे अ० अनिष्ट कर्ता अ० आघात कर्ता अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःखरूप णो० नहीं सु० सुख भ० भय है० भाो भ० भय रक्षक का० काम भोग भ० मेरे अ० अन्य तर दु० दुःखका रो रोग प० विभाग करो अ० अ० अनिष्ट अ० आघातकारी अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःख णा० नहीं सु० सुख त० तहां दु० दुःख भोगता हूं सो० शोक करता हूं भू० झुरता हूं त० रोता हूं पी० पीडा पाता हूं प० परिताप पाता हूं इ० यह म० मुझे अ० दूसरे दु० दुःख से रो० रोग से प० दूर करो अ०

ज्जा तंजहा—इह खलु मम अन्नमरे दुक्खे, रोगातके समुप्पज्जेज्जा अणिट्ठे, अक्ते, अप्पिए, असुभे अमणुन्ने, अमणामे, दुक्खे, णोसुहे, से हंता भयंतारो कामभोगाइं मम अन्नयरं दुक्खं, रोयातंक परियाइयह अणिट्ठं, अकंतं, अप्पियं, असुभं, अमणुन्नं, अमणामं, दुक्खं, णो सुहं, तहिं दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तप्पामि वा, पीडामि वा, परितप्पामि वा, इमाओ मम अण्णयराओ दुक्खाओ रोगातकाओ पडिमोयहा अणि

कि:—इस दुःख से मैं बहुत दुःखित होता हूं यावत् मुझे बहुत परिताप होता है इस लिये अहो काम भोगो ! मेरा दुःख का तुम विभाग कर लेवो, और मुझे ऐसे अनिष्टकारी, अप्रियकारी दुःखों से मुक्त करो इस तरह काम भोगादिक को प्रार्थना करता है परंतु कामभोगों ने आजदिन पर्यंत किसी को मुक्त

गृहादि मे० मेरे हि० चांदी मे० मेरी सु० सुवर्ण मे० मेरा ध० धन मे० मेरा ध० धान्य मे० मेरा कं० कांसी के भाजन मे० मेरे दू० वस्त्र मे० मेरे वि० बहुत ध० धन क० कनक र० रत्न म० मणि मो० मौक्तिक स० शंख सि० शील प० प्रवाल र० रक्त र० रत्न सं० सब सा० सर्व मे० मेरे स० शब्द मे० मेरे रू० रूप मे० मेरा गं० गंध मे० मेरी र० रस मे० मेरा फा० स्पर्श मे० मेरा ए० ये म० मेरे का० काम भोग अ० मैं ए० इस का ॥ ॥ से० वह मे० पंडित पु० पहिले अ० स्वतः की ए० ऐसे स० जाने म०

मम ममट्ठाए एव विप्पडिवेदेति, तं जहा—खेत्तमे, वत्थूमे, हिरण्णंमे, सुवन्नमे, धणमे, धण्णंमे, कंसमे, दूसमे, विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्त रयणसंतसारसावतेयंमे, सद्दामे, रूवामे, गंधामे, रसामे, फासामे, एते खलु मम कामभोगा, अहमवि एतेसिं ॥ २१ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो एव समभिजाणे

गृह, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कांसिका भाजन, वस्त्र, बहुत धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शील, प्रवाल, व पद्म रागादि धन मेरे उपभोग के लिये होवेंगे तथा शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्शादि काम भोग मेरे हैं मैं इन का हूं ॥ २१ ॥ अब पण्डित पुरुष ऐसा विचार करे कि ये कामभोग मेरे हैं, या नहीं मन विचारता है कि मेरे शरीर में किसी प्रकार का अस्पष्ट अनिष्ट आक्रान्तकारी ...

जैसे म० मेरा अ० अन्य कोई दु० दुःख रो० रोग स० उत्पन्न होवे अ० अनिष्ट कर्ता अ० आमांत करा अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःखरूप णो० नहीं सु० सुख अ० वर है० भयो म० भय रक्षक का० काम भोग म० मेरे अ० अन्य तर दु० दुःखका रो० रोग प० विभाग करो अ० अ० अनिष्ट अ० आक्रांतकारी अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःख णो० नहीं सु० सुख त० वरो दु० दुःख भोगता हूं सो० शोक करता हूं झू० झुरता हूं त० रोता हूं पी० पीडा पाता हूं प० परिताप पाता हूं० इ० यह म० मुझे अ० दूसरे दु० दुःख से रो० रोग से प० दूर करो अ०

जा तंजहा—इह खलु मम अन्नयरे दुक्खे, रोगातके समुप्पज्जा अणिट्ठे, अकन्ते, अप्पिए, असुभे अमणुन्ने, अमणामे, दुक्खे, णोसुहे, से हता भयंतारो कामभोगाइं मम अन्नयरं दुक्खं, रोगातंकं परियाइयह अणिट्ठं, अकन्तं, अप्पियं, असुभं, अमणुन्नं, अम णामं, दुक्खं, णो सुहं, तहिं दुक्खामि वा, सोयामि वा, जूरामि वा, तप्पामि वा, पीडामि वा, परितप्पामि वा, इमाओ मम अण्णयराओ दुक्खाओ रोगातकाओ पडिमोयआ अणि

का—इस दुःख से मैं बहुत दुःखित होता हूं यावत् मुझे बहुत परिताप होता है इस लिये उसे भाग भोगो ! मेरा दुःख का तुम विभाग कर लेओ, और मुझे ऐसे अनिष्टकारी, अप्रियकारी दुःखों से मुक्त करो इस तरह काम भोगादिक को प्रार्थना करता है परंतु कामभोगों ने आजदिन पर्यंत किसी को मुक्त

यानिष्ट कर्ता अ० आक्रांत कर्ता अ० अप्रिय अ० अशुभ अ० अमनोज्ञ अ० पीडाकारी दु० दुःख णो० नहीं सु सुख ए० ऐसे णो० नहीं ल० प्राप्त पु० पहिले भ० होता है इ० यहां का० कामभोग णो० नहीं ता० त्राण णो० नहीं स० सरण पु० पुरुष ए० कदापि पु० पहिले का० काम भोग को वि० छोडते हैं का० कामभोग ए० कदापि पु० पहिले पु० पुरुषको वि० छोडते हैं अ० अन्य का० कामभोग अ० अन्य अ० मैं अ० हूं कि० क्यों पु० फिर व हम अ० अन्य का० कामभोग में मु० मूर्च्छित होते हैं इ० ऐसा से जानकर व० हम का० काम भोगको पि० दूर करेंगे से वह मे० पंडित जा० जाने

ट्ठाओ, अकन्ताओ, अप्पियाओ, असुभाओ, अमणुन्नाओ, अमणामाओ, दुक्खाओ, णो सुहाओ, एवमेव णो लद्धपुव्व भवइ॥ इहखलु कामभोगा णो ताणाए वा णो सरणाएवा पुरिसे वा एगता पुव्वि कामभोगे विप्पजहति, कामभोगा वा एगता पुव्वि पुरिसं विप्प जहंति, अन्ने खलु कामभोगा अन्नो अहमंसि से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं काम भोगेहिं मुच्छामो इति संखाए णं वयं च कामभोगेहिं विप्पजहिस्सामो से मेहावि जा-

किया होवे ऐसा सुनने में नहीं आया तब वे मेरा दुःख क्या दूर करेंगे वे कामभोगों मेरा रक्षण करने को व मुझे शरण देने को समर्थ नहीं हैं, क्यों कि, वृद्धावस्था या राजादिक उपद्रव में कितनेक पुरुषों को कामभोग छोडने पडते हैं अथवा द्रव्यादिक का अभाव में वे कामभोगों पुरुष को छोडदेते हैं. इस लिये कामभोग [illegible]

मा० भोग अ० संयोग ए० ये इ० यह उ० भाग रा० रामको से० यह अ० जैसे मा० मेरी माता पि० मेरे पिता भा० मेरा भाई भ० मेरी भगिनी भ० मेरी भार्या पु० मेरा पुत्र धु० मेरी पुत्री पे० मेरा नो कर न० मेरा मित्र सु मेरी पुत्र-वधू सु० मेरा मित्र पि० प्रिय सु० मेरा सखा स० स्वजन स० संग स० मेरा सब ए० इतने म० मेरे णा० ज्ञाति से अ० मैं ए उनका ए० ऐसा से० वह मे० पंडित पु० पहिले अ० आत्मा से स० जाने म० मेरे अ अन्य प्रकारके दु० दुःख रो० रोग स० उत्पन्न होवे अ० अनिष्ट जा० यावत्

णेज्जा बाहिरगमेत्तं। इणमेव उवणीयतरागं त जहा—माया मे, पिया मे, भा-
या मे, भगिणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, पेसा मे, नत्ता मे, सुण्हा मे, सुहा मे, पिया मे,
सहा मे, सयणसंगंथसंथुया मे, एते खलु मम णायओ, अहमवि एतेसिं एवं से मेहावि
पुव्वमेव अप्पणाएवं समभिजाणेज्जा, इह खलु मम अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुप्पज्जेज्जा

भी बुद्धिमान पुरुष क्षेत्रादिक नवविध परिग्रह बाह्य है ऐसा जाने ॥ २ ॥ अब नजीक के स्वजन संबंधि का वर्णन करते हैं पहिले अज्ञानावस्था में मनुष्य ऐसा जानता था कि ये माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, मित्र, दास, दासी, सुहृद, प्रियकर, सहायक वगैरह सब मेरे हैं और मैं इन का हूं परंतु ज्ञान उत्पन्न हुवे बाद विचार करे कि यदि मेरे शरीर में अनिष्टकारी, अप्रियकारी, व प्राण का

दु॰ दुःख णो॰ नहीं सु सुख से॰ वे ह॰ अहो भ॰ भयके रक्षक णा॰ ज्ञातियों इ॰ यह म॰ मेरे अ॰ अन्यतर दु॰ दुःख रो॰ रोग प॰ विभाग करो अ॰ अनिष्ट जा॰ यावत् णो॰ नहीं सु॰ सुख त॰ तहां दु॰ दुःख भोगता हूं सो॰ शोक करता हूं जा यावत् प॰ परिताप पाता हूं इ॰ इन में॰ मुझ अ॰ अन्य प्रकार के दु॰ दुःख से रो॰ रोग से प॰ दूरकरो अ॰ अनिष्ट जा॰ यावत् णो॰ नहीं सु॰ सुख ए॰ ऐसे णो॰ नहीं ल॰ प्राप्त पु॰ परिसेभ॰ है ते॰ उन भ॰ भय रक्षक म॰ मधी णा॰ ज्ञातिके अ॰ अन्यतर दु॰ दुःख रो॰ राग स॰ उत्पन्न हुवे अ॰ अनिष्ट जा॰ यावत् णो॰ नहीं सु॰ सुख से॰ वे ह॰ अहो अ॰ मैं प॰ उन भ॰ भय रक्षक णा॰ ज्ञातियों का इ॰ यह म॰ दूसरा दु॰

अणिट्ठे जाव दुक्ख णो सुहे से हंता भयतारो णायओ इम मम अन्नयर दुक्खं रोयातं कं परियाइयह, अणिट्ठं जाव णो सुहं तहिं दुक्खामित्रा, सोयामित्रा जाव परितप्पामित्रा, इमाओ मे अन्नयराओ दुक्खाओ रोयातंको परिमोएह अणिट्ठाओ जाव णो सुहाओ एव मेव णो लद्धपुव्व भवइ तेसिंवावि भयंतराण मम णाययाणं अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुप्पज्जेज्जा, अणिट्ठे जाव णो सुहे, से हंता अहमेतेसिं भयंतराणं णाययाणं इमं अन्नयरं

नाश करनेवाला व्याधि उत्पन्न होजावे, और इन स्वजन ज्ञातियों से प्रार्थना करूं कि मैं इस दुःख से अति ही पीडित हो रहा हूं, अत्यंत घबरा रहा हूं, मुझे मृत्यु का भय हो रहा है, इस लिये मेरे दुःखों का विभाग करो और इस से मुझे मुक्त करो ऐसी अनेक प्रार्थना करे परंतु वे ज्ञाति लोगों इन को दुःख

दु॰ख रो॰ रोग प॰विभाग करताहूं अ॰अनिष्ट मा॰यावत् णो॰नहीं सु॰सुख मा॰मुझे दु॰दुःख होवे मा॰यावत् प॰ मुझे प॰ परिताप होवे इ॰यह अ॰ दूसरे दु॰दुःखसे रो॰ रोगसे प॰ विभाग करके मे॰ मुझे अ॰अनिष्ट से जा॰ यावत् णो॰ नहीं सु॰ सुख से ए॰ ऐसे णो॰ नहीं ल॰ भास पु॰ पहिले अ॰ है अ॰ दूसरेका दु॰ दुःख अ॰ अन्योन्य प॰ विभाग करता है अ॰दूसरे से क॰किया हुवा अ॰ दूसरा नो॰ नहीं प॰ वेदता है प॰ प्रत्येक जा॰ जन्मते हैं प॰प्रत्येक म॰ मरते हैं प॰प्रत्येक च॰ चवते हैं प॰प्रत्येक उ॰ उपजते हैं प॰प्रत्येक सं॰

दुक्ख रोयातंक परियाइयामि अणिट्ठ जाव णो सुहं, मामे दुक्खतु वा जाव मामे परितप्पं तु वा इमाउणं अण्णयराओ दुक्खाओ रोयातकाओ परिमोएमि अणिट्ठाओ जाव णो सुहाओ, एवमेव णो लद्धपुव्व भवइ अन्नस्स दुक्ख अन्नो न परियाइयति, अन्नेन कडं अन्नो नो पडिसंवेदेति पत्तेय जायति य, पत्तेय मरइ, पत्तेय चयइ, पत्तेयं उववज्जइ, पत्तेय

से मुक्त करने को समर्थ हो सके नहीं अथवा मेरे स्वजन, ज्ञाति, मोभिय को ऐसा रोग उत्पन्न हो जावे तो मैं उन के दुःख का विभाग करके उन को मुक्त करूं ऐसा विचार करे परंतु उन के दुःखों का विभाग कर सके नहीं अन्य का दुःख अन्य नहीं ले सकता है, वैसे ही अन्य का किया हुवा अन्य नहीं भोगन सकता है, जो करता है वही भोगता है, क्यों कि जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अ

दु० दुःख णो०नहीं सु०सुख से०वे ह०अहो भ०भयके रक्षण णा०ज्ञातियों इ०यह म० मेरे अ० अन्यतर दु० दुःख रो०रोग प०विभाग करो भ०अनिष्ट भा०पावत् णो० नहीं सु०सुख त०तरां दु०दुःख भोगता हूं सो०शोक करता हूं या पावत् प०परिताप पाता हूं इ०इन में०मुझ अ० अन्य प्रकार के दु० दुःख से रो० रोग से प० दूरकरो अ०अनिष्ट भा०पावत् णो०नहीं सु सुख ए०ऐसे णो० नहीं ल०प्राप्त पु०पहिले भ०हे त० उन भ० भय रक्षक भ०मेरी णा०ज्ञातिके अ०अन्यतर दु०दुःख रो०रोग स० उत्पन्न हुवे अ० अनिष्ट भा०पावत् णो० नहीं सु०सुख से० वे इ० अहो अ० मैं ए० उन भ० भय रक्षक णा० ज्ञातियों का इ० यह अ० दूसरा दु०

अणिट्ठे जाव दुक्ख णो सुहे से हंता भयतारो णायओ इमं मम अन्नयरं दुक्खं रोयातंकं परियाइयह, अणिट्ठं जाव णो सुहं ताहं दुक्खामिवा, सोयामिवा जाव परितप्पामिवा, इमाओ मे अन्नयराओ दुक्खाओ रोयातंकाओ परिमोएह अणिट्ठाओ जाव णो सुहाओ एव मेव णो लद्धपुव्वं भवइ तेसिंवावि भयंतराणं मम णाययाणं अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुप्पज्जेज्जा, अणिट्ठे जाव णो सुहे, से हंता अहमेतेसिं भयंतराणं णाययाणं इमं अन्नयरं

नाश करनेवाला व्याधि उत्पन्न होजावे, और इन स्वजन ज्ञातियों से प्रार्थना करे कि मैं इस दुःख से अति ही पीडित हो रहा हूं, अत्यंत घबरा रहा हूं, मुझे मृत्यु का भय हो रहा है, इस लिये मेरे दुःखों का विभाग करो और इस से मुझे मुक्त करो ऐसी अनेक प्रार्थना करे परंतु वे ज्ञाति लोगों इन को दुःख

दुःख रो रोग प०विभाग करताहूं म०अनिष्ट आ०यावत् णो•नहीं सु०सुख मा०मुझे दु०दुःख होवे आ०यावत् म० मुझे प० परिताप होवे इ०यह अ दूसरे दु०दुःखसे रो० रोगसे प० विभाग करके मे० मुझे अ०अनिष्ट से ना यावत् णो० नहीं सु० सुख से ए० ऐसे णो० नहीं ल माख पु० परिले म है अ० दूसरेका दु० दुःख अ अन्योन्य प० विभाग करता है अ०दूसरे से क०किया हुवा अ दूसरा नो• नहीं प० वेदता है प० प्रत्येक जा० जन्मते हैं प०प्रत्येक म०मरते हैं प०प्रत्येक च० चवते हैं प०प्रत्येक उ०उपजते हैं प०प्रत्येक सं

दुक्ख रोयातंक परियाइयामि अणिट्ठ जाव णो सुह, मामे दुक्खतु वा जाव मामे परितप्पं तु वा इमाउणं अण्णयराओ दुक्खाओ रोयातकाओ परिमोएमि अणिट्ठाओ जाव णो सुहाओ, एवमेव णो लद्धपुव्व भवइ अन्नस्स दुक्ख अन्नो न परियाइयति, अन्नन कड अन्नो नो पडिसंवेदेंति पत्तेय जायति य, पत्तेयं मरइ, पत्तेय चयइ, पत्तेयं उववज्जइ, पत्तेय

मे मुक्त करने को समर्थ हो सके नहीं अथवा मेरे स्वजन, ज्ञाति, गोत्रिय को ऐसा रोग उत्पन्न हो जावे तो मैं उन के दुःख का विभाग करके उन को मुक्त करू ऐसा विचार करे परंतु उन के दुःखों का विभाग कर सके नहीं अन्य का दुःख अन्य नहीं ले सकता है, वैसे ही अन्य का किया हुवा अन्य नहीं भोगन सकता है, जो करता है वही भोगता है, क्यों कि जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अ

दुःख प० प्रत्येक स० सहा प० प्रत्येक म० विचार ए० ऐसे वि० जानो व० वेदना इ० ऐसे स निश्चय णा० ज्ञाति भ० संयोग णो० नहीं ता० त्राणके लिये णो० नहीं स० शरणके लिये पु० पुरुष ए० एकदा पु० पहिले णा० ज्ञाति संयोग वि० छोडते हैं णा० ज्ञाति संयोग ए० एकदा पु० पहिले पु० पुरुष को वि० छोडते हैं अ० दूसरे णा० ज्ञाति संयोग अ० अन्य अ० मैं भ० हूं से० वे कि० क्या पु० फिर अ० हम अ अन्योन्य णा० ज्ञातिसंयोगसे मु० मूर्च्छित होवे हैं इ० ऐसे से जानकर अ० हम णा० ज्ञाति

सहा, पत्तेय सहा, पत्तेय मझा, एव विन्नू वेदणा इति, खलु णातिसंजोगा णो ताणाए वा, णो सरणाए वा पुरिसेवा एगता पुव्वि णातिसंजोए विप्पजहति, णातिसंजोगा वा एगताए पुव्वि पुरिसं विप्पजहंति, अन्ने खलु णातिसंजोगा, अन्नो अहमंसि, से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं णातिसंजोगेहिं मुच्छामो इति संखाए ण वयं णातिसंजोग विप्पजहिस्सामो

अकेला मन धान्यादि त्यजता है अकेला ही उपार्जन करता है, सब को भिन्न २ ज्ञानोत्पत्ति होती है, सब का चित्त का व्यापार भी भिन्न है, तथा प्रत्येक २ को सुख दुःख रूप वेदना का अनुभव होता है; इस लिये ज्ञाति का संयोग जीव को शरण नहीं हो सकता है कदाचित् ज्ञाति का संयोग पुरुष को त्यजता है, या कभी पुरुष को ज्ञाति का संयोग छोडना पडता है ये ज्ञाति का संयोग मेरे से भिन्न है मैं भी इस में मूर्च्छित होता हूं

संयोग को वि० जोडेंगे से० वह मे० पंडित भा० माने मा० काम प० पर इ० उस व० नजीक रा रागको व वह न० जैसे इ०मरे हस्त पा० मेरे पाँव बा० मेरेबाहु उ० मेरी छाती व मेरा पेट सी मेरा शीर्ष सी० मेरा सील मा मेरा आयुष्य प० मेरा बल ब० मेरारंग त० मेरी त्वचा छा० मेरी कान्ती सो० मेरेकान च० मरे चक्षु घ० मेरा नाक जि मेरी जीभ्या फा मेरा स्पर्श मे० ममत्व व० वयसे प० हीन होते हैं व० वह ज जैसे आ आयुष्य से ब० बलसे व० वर्णसे त० त्वचासे छा० कान्ती से सो

से मेहावि जाणेज्जा बाहिरगमेयं इणमेव उवणियतराग तंजहा—हत्था मे, पायामे, बाहामे उरूमे, उदरमे, सीसंमे, सीलम्मे, आउमे, बलमे, वण्णोमे, तयामे, छायामे, सोयमे, चक्खूमे, घाणंमे, जिब्भामे, फासामे, ममाइज्जासि वयाउ पडिजूरइ तं जहा-आउओ, बलाओ, वण्णाओ, तयाओ, छायाओ, सोयाओ, जाव फासाओ, सुसं

रूप विशेष वैराग्य का कारण बतलाते हैं हस्त, पाँव, बाहु, छाति, उदर, जंघा, व मस्तक मेरे सुंदर हैं, मेरा शील (कुलाचार) अत्युत्तम है, आयुष्य दीर्घ है, मेरा शरीर का बल बहुत है, वर्ण सुशोभित है, त्वचा कोमल व सतेज है, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिव्हा व स्पर्श ये पाँचों इन्द्रियों भाति ही सुंदर व अपना विषय ग्रहण करनेवाली हैं ये सब अंगोपांग मेरे सुंदर व स्वच्छ हैं, मेरे जैसा अन्य कोई नहीं है ऐसी ममता करे, परंतु वे सब सुंदर अवयव वय की क्षीणता से जीर्ण होते हैं जैसे कर्पूरादि की संधि होने से उन का

कानसे आ० यावत् फा स्पर्श से मु० मच्छायन्यसे सं० सभी वि० विसभी भ० होती है म० बालित रं०रंग के गा० गाम भ० होते हैं कि० कृष्ण के० केश प० पीत भ० होते हैं त० यह ज० जैसे भं० ओ पिं० भिय इ० यह स० शरीर उ० उदारिक आ० आहारसे च पृथी पाया हुवा ए ऐसे भ० अनुक्रमसे वि० क्रमसे याम्य भ०होगा ए०ऐसा सं०जानकर से० वह भि० साधु भि० भिक्षाचर्यामें स० सावधान हुवा दु० दोनों को लोकको जा० जाने तं० यह ज०जैसे जी० जीव अ०अजीव त० त्रस था० स्थावर ॥२२॥ इ०

विता, सव्वीविसधी भवइ, मलितरंगेगाए भवइ, किण्हाकेसा पलिया भवंति तंजहा—ज पियं इम सरीरग, उराल, आहारावइय, एयंपिय अणुपुव्वेण विप्पजहियव्व भविस्सति एय ससाए से भिक्खू भिक्खायरियाए समुट्ठिए दुहओ लोग जाणेज्जा, तंजहा जीवा चेव अजीवाचेव, तसाचेव थावराचेव ॥ २२ ॥ इह खलु गारत्था सारभा सपरिग्ग-

वर्ण गंध रस स्पर्श में क्षीणता आती है वैसे ही यह मापी आयुष्य, बल, वर्ण सत्वा, यावत् पांचोंन्द्रियों से क्षीण हो२ सर्व अंगोपांग हीन हो जाने से, व कृष्ण वर्ण के केश पलित (श्वेत) वर्ण के हो जाने से उस का शरीर से स्वतः को दुर्गन्धा उत्पन्न होवे सो अन्य का कहना ही क्या, ऐसा शरीर को अच्छे २ भोजन आदिक से बनाया परंतु आखिर उसे छोड़ना पड़ेगा, इस तरह जानकर रागद्वेषादिक अंतरंग व मन धा न्यादिक बाह्य परिग्रह को त्यजकर भिक्षाचर्या-साधुपना में सावधान होवे ऐसा साधु जीव अजीव या त्रस स्थावर रूप दो प्रकार का लोक के जानता है ॥ २२ ॥ अब जीवों के उपमर्दक बतलाते हैं इस संसार में

यहां स० निश्चय गा० गृहस्थ सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही जे० जो इ० ये त० त्रस था स्थावर पा० प्राणी का ते० वे स० स्वयं स० आरंभ करते हैं अ० दूसरे से स आरंभ कराते हैं अ० अन्य को पि० अपि स० आरंभ करते को स० अच्छा जानते हैं इ० यहां स० निश्चय गा० गृहस्थी सा० आरंभी स० परिग्रही स० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही जे० जो इ० यह का० कामभोग स० सचित्त

ह्रिया संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहावि, जे इमे तसा थावरा पाणा ते सय समारभंति, अन्नेणावि समारभावेंति, अण्णंपि समारभंतं समणुजाणंति ॥ इह खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा, संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा जे इमे कामभोगा सचित्ता वा अचित्ता वा—ते सयं परिगिण्हंति, अन्नेणावि परिगि

जो गृहस्थ होते हैं वे आरंभी व सपरिग्रही होते हैं वैसे ही कितनेक श्रमण ब्राह्मणादिक भी सारंभी व सपरिग्रही होते हैं वे इस लोक में रहे हुवे त्रस स्थावर जीवों की घात करते हैं, अन्य की पास घात कराते हैं, और घात करनेवाले को अच्छा जानते हैं वैसे ही सचित्त अचित्त परिग्रह आप स्वयं रखते हैं, अन्य की पास परिग्रह रखवाते हैं और परिग्रह रखनेवाले को अच्छा मानते हैं गृहस्थ आरंभी और परिग्रह के धारक हैं वैसे ही कितने श्रमण ब्राह्मण भी है मैं अनारंभी निष्परिग्रही साधु हूं इस लिये

अ० अचित्त ते०वे स० स्वय प० ग्रहण करते हैं अ० दूसरे से प० ग्रहण कराते हैं अ० दूसरे अ० ग्रहण करते को स० अच्छा मानते हैं इ० यहां ख० निश्चय गा गृहस्थी सा० आरंभी स० परिग्रही स० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही अ० मैं ख० निश्चय अ० अनारंभी अ० अपरिग्रही जे० जो ख निश्चय गा० गृहस्थ सा० आरंभी स० परिग्रही स० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही ए० य चे० निश्चय नि० नेश्राय मे ब० ब्रह्मचर्य में सं० रहेंगे क० किस त० उस हे० हेतु को ज० जैसे पु० पहिले त० तैसे अ० पीछे अ० पीछे त० तैसे पु०

प्व्हावेंति, अक्षपि परिगिण्हत समणुजाणति ॥ इह खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारम्भा सपरिग्गहा, अहं खलु अणारंभे, अपरिग्गहे, जे खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा, संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा एते चेव निस्साए बम्भचेर वा सवसिस्सामो, कस्सण त हेउ जहा पुव्व तहा अयर

आरंभी व परिग्रही गृहस्थ व श्रमण ब्राह्मण की नेश्राय में रहकर ब्रह्मचर्य पालूंगा अर्थात् निरारंभी निष्परिग्रही बनकर के धर्मका आधारभूत देहको रखनेको आहारादिक केलिये गृहस्थकी नेश्राय करूंगा यहां शिष्य प्रश्न करता है कि अहो पूज्य उन की नेश्राय में रहने का क्या कारण है ? तब आचार्य उत्तर देते हैं कि, गृहस्थ को सदाकाल सावद्यादि दोष रहे हुवे हैं, और श्रमण ब्राह्मण भी दीक्षा लीये बाद व गृहस्थपना मे दोष युक्त रहते हैं इस लिये निरारंभी साधु को ऐसे पुरुषों का आश्रय ग्रहण करना, पर

परित्म में सरल ए० ये अ० अमर्ति अ० अप्ताबधान पु० फिर भी त० तैसे पे० निश्चय जे० जो स० निश्चय गा० गृहस्थी सा० आरंभी स० परिग्रही सं० हैं ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण सा० आरंभी स० परिग्रही दु० दोप्रकार का पा०पाप कु०करते हैं इ०ऐसा स०मानकर दो० दोनो ही अ० मन्त्र में अ भरण भाव इ० ऐसा भि०साधु री० मवर्ते से०यह पे०करता हूं पा०पूर्वादि दिशा में आ०यावत् ए० ऐसे से० वह प मानकर क० कर्म ए० ऐसे से० ये य० विविक्त कर्म ए० ऐसे से० वे अं० अंतकर्ता

जहा अवर तहा पुव्व, अजू एते अणुवरया अणुवट्ठिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगत्तिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा दुहतो पावाइं कुव्वंति इति सखाए दोहिंवि अतेहिं अदिस्समाणो इति भिक्खू रीएज्जा से बेमि पाईण वा जाव एवं से परिण्णाय कम्मे एव से ववेयकम्म, एव से वि अंत

गृहस्थ तो अत्यक्षपना से आरंभी परिग्रही रहे हुवे हैं और जो कोई चारित्र अंगीकार किये बाद आधा कर्मी आदि आहार लेवें या तो सावद्य कर्म करें तो वे भी गृहस्थ सदृश हैं सारंभी और सपरिग्रही गृहस्थ व श्रमण ब्राह्मणादिक पाप के करनेवाले होते हैं ऐसा मानकर आरंभ व परिग्रह से दूर रहता हुवा साधु संयम में विचरे. इस तरह पूर्वादि दिशाओं से आया हुवा भिक्षु रागद्वेष रहित संयम में प्रवर्तता हुवा परिज्ञातकर्मी होवे, ऐसे ही वह कर्म का अंत करनेवाला होवे और योग का निरोध करके निर्जरा

भ० है ति० ऐसा अ० कहा ॥ २१ ॥ त० तहाँ ख० निश्चय भ० भगवानने छ० छजीव निकाय का हे० हेतु को प० प्ररूपा तं० वह ज० जैसे पु० पृथ्वी काय आ० यावत् त० त्रस काय से० वे ज० जैसे म० मेरे अ० दुःख द० दंडसे अ० अस्थि से मु० मुष्टि से ले० पत्थर से क० ठीकरेसे आ० आक्रोश करने वाले को ह० हणने वाले को त० तर्जना करने वाले को ता० ताडन करने वाले को प० परिताप देने वाले का कि० किलामना करने वाले को उ० उद्वेग उपजाने वाले को जा० यावत् लो० रोम उ० उखेडना भी हिं०

कारए भवति ति भक्साय ॥ २२ ॥ तत्थ खलु भगवता छज्जीवनिकायहेऊ पण्णत्ता तंजहा—पुढवी काय जाव तसकाए से जहा नामए मम अस्साय दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा, आउट्टिज्जमाणस्स वा, हम्ममाणस्स वा, तज्जिज्जमाणस्स वा, तालिज्जमाणस्स वा, परियाविज्जमाणस्स वा, किलामिज्जमाणस्स वा,

भय उत्पन्न होवे ऐसा भी तीर्थंकर देवने फरमाया है ॥ २१ ॥ प्राणातिपात से कर्मबंध होते हैं इस लिये षट्काया का स्वरूप भी श्रमण भगवानने हेतु पूर्वक कहा है पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और त्रस काय य छकायोंके उनको दुःख देनेसे जो वेदना होती है वह दृष्टांत से बतलाते हैं जैसे कोई पुरुष मुझे दंड से, अस्थि से, मुष्टि से, कंकर से व ठीकरे से आक्रोश करे, हणे, तर्जना करे, ताडना करे, परिताप उपजावे किलामना उत्पन्न करे, [illegible]

हिंसा करने वाले को दु० दुःख भ० भय प० वेदताई इ० ऐसा जा० जानकर स० सर्व जी० जीव स० सर्व भूत स० सर्व प्राणी स० सर्व सत्व दं० दण्ड से जा० यावत् क० ठीकरेसे आ० आक्रोश कराये हुवे ह० हणाये हुवे उ० उद्वेग पाये हुवे जा० यावत् लो० रोम उ० उखाडना भी हिं० हिंसा कारक दु० दुःख भ० भय प० वेदते हैं ए० ऐसा ज० जानकर स० सर्व प्राणी जा० यावत् स० सत्व न० नहीं हं० हणना न० नहीं अ० ताडना न० नहीं प० पात्र करना न० नहीं प० परीताप उपजाना न० नहीं उ० उद्वेग

उद्दविज्जमाणस्स वा, जाव लोमुक्खणणमायमवि, हिंसाकारग, दुक्ख भयं पडिसंवे-देमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा, सव्वे भूता, सव्वे पाणा, सव्वे सत्ता दडेण वा जाव कवालेण वा आउडिज्जमाणा वा, हम्ममाणा वा, उद्दविज्जमाणा वा, जाव लोमुक्खणण मायमवि हिंसाकारग दुक्ख भयं पडिसवेदेंति, एव नच्चा सव्वे पाणा, जाव सत्ता, णहतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, णपरिघेतव्वा, णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा ॥ सेबेमि जे-

भय वेदता हूं वैसे ही पंचेन्द्रियादि सर्व जीव, वनस्पत्यादि सर्व भूत, द्विइन्द्रियादिक सर्व प्राणी, व पृथिव्यादिक सर्व सत्व को दण्ड यावत् ठीकरी से आक्रोश करते, हणते, ताडना करते, तर्जना करते यावत् शरीर में एक रोम नीकालने जितना हिंसा का कारण से वे जीवों दुःख अनुभवते हैं—अर्थात् जो दुःख मुझे होता है वही दुःख अन्य जीवों को होता है ऐसा जानकर कोई भी प्राणी, भूत, जीव, व सत्व को हणना

म० है ति० ऐसा भ० कहा ॥ २१ ॥ त० तहां ख० निश्चय भ० भगवानने छ० छजीव निकायका हे० हेतु को प० प्ररूपा त पर ज० जैसे पु० पृथ्वी काय आ० यावत् त० त्रस काय से० वे न० जैसे म० मेरे अ० दुःख द० दंडसे अ० अस्थि से मु० मुष्टि से ले० पत्थर से क० ठीकरेसे आ० आक्रोश करते को ह० हणने वाले को त० तर्जना करने वाले को ता० ताडन करने वाले को प० परीताप देने वाले को कि० किलामना देने वाले को उ० उद्वेग उपजाने वाले को जा० यावत् लो० रोम उ० उखेडना भी दु०

कारए भवति ति मक्खाय ॥ २३ ॥ तत्थ खलु भगवता छज्जीवनिकायहेउ पण्णत्ता तजहा–पुढवी काय जाव तसकाए से जहा नामए मम अस्साय दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलूण वा, कवालेण वा, आउट्टिज्जमाणस्स वा, हम्ममाणस्स वा, तज्जिज्जमाणस्स वा, ताडिज्जमाणस्स वा, परियाविज्जमाणस्स वा, किलाविज्जमाणस्स वा,

भंत कर्ता होय ऐसा श्री तीर्थंकर देवने फरमाया है ॥ २१ ॥ प्राणातिपात से कर्मबंध होते हैं इस लिये षट्काया का स्वरूप श्री श्रमण भगवानने देख के कहा है पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और त्रस काय य छकायों उनको दुःख देनेसे जो वेदना होती है वह दृष्टांत से बतलाते हैं जैसे कोई पुरुष मुझे दंड से, अस्थि से, मुष्टि से, कंकर से व ठीकर से आक्रोश करे हणे, तर्जना करे ताडना करे परिताप

ए० ऐसे से० वह भि०साधु वि० विरत पा० प्राणातिपात से जा० यावत् वि० विरत प० परिग्रह से णो० नहीं दं० दातण से दं० मुख धोवे णो० नहीं अं० अंजन करे णो० नहीं व० वमन णो० नहीं धो० धूप णो० नहीं तं० उसको प० धूम्रपानकरे ॥ २५ ॥ से० वह भि० साधु अ० अक्रिय अ० अहिंसक अ० अक्रोधी अ० अमानी अ० अमायी अ० अलोभी उ० उपशांत प० निवृत्ति णो० नहीं आ० वांछा पु० पहिले कु० करे इ०इस दि० दृष्टिसे सु० सुना से मु० मननसे णा० ज्ञानसे वि० विज्ञान से इ० इनसे

धातो जस्स विरते परिग्गहातो, णो दंतपक्खालणेणं दंतपक्खालेज्जा, णो अंजणं, णो वमनं, णो धूवणं, णो तं परिआविएज्जा ॥ २५ ॥ से भिक्खू अकिरिए, अलूसए, अकोहे, अमाणे, अमाए, अलोहे, उवसंते, परिनिव्वुडे, णो आससं पुरतो कुज्जा, इमेणमे दिट्ठेण वा, सुएण वा, मुएण वा, णाएण वा, विनाएण वा, इमेण वा, सुचरिय तवनियमबंभ

ऐसा धर्म को जानकर साधु को प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन व परिग्रह से निवर्तना, दातन से दंत प्रक्षालन करना नहीं, आंख में अंजन लगाना नहीं, वमन रेचनादिक क्रिया करना नहीं, शरीर वस्त्रादिक को धूप करना नहीं, तथा खासी आदि मिटाने को धूम्र पान भी करना नहीं ॥ २५ ॥ सावद्य क्रिया रहित, अहिंसक, क्रोध, मान, माया व लोभ रहित तथा समाधिवंत साधु जन्मान्तर में काम भोगों की वांछना करे नहीं और भी इस जन्म में आमोसही लब्धि की प्राप्ति होने से तपस्या का फल प्रत्यक्ष दीखता है उस से, अथवा सिद्धांत के पठन से, उस के मनन से, ज्ञान से, विज्ञान से, तप, नियम, ब्रह्म

उपस्थान से० वे वे० कहता हूं जे० जो अ० अतीत जे० जो प० वर्तमान जे० जो आ० आगामिक अ० अर्हन्त भ० भगवान् स० सर्व ते० वे ए० ऐसा अ० कहते हैं ए० ऐसा भा० बोलते हैं ए० ऐसा प० प्रगट करते हैं ए० ऐसा प० प्ररूपते हैं स० सर्व प्राणी भा० यावत् स० सत्व ण० नहीं ह० हणना ण० नहीं अ०ताडना ण०नहीं प०घात करना ण०नहीं प०परीताप उपजाना ण०नहीं उ०उद्वेग उपजाना ए०यह ध० धर्म धु० निश्चय णी० नित्य सा०शाश्वत स०समस्त लो०लोक को से०सेयज्ञसे प०प्ररूपाया है ॥२४॥

थ अतिता जेय पडुप्पन्ना, जेय आगमिस्सामि अरिहंता भगवंता सव्वे ते एव माइ-क्खंति, एव भासंति, एव पण्णवेंति, एव परूवेंति सव्वे पाणा जाव सत्ता, णहंतव्वा, णअज्जावेयव्वा, णपरिघेतव्वा, णपरितावेयव्वा, णउद्दवेयव्वा, एस धम्मे धुवे णीतिए सासए समिच लोगं खेयण्णेहिं पवेदेंति ॥ २४ ॥ एवं से भिक्खू विरते पाणातिवा

नहीं, ताडना नहीं, वर्जना नहीं, परिताप उपजाना नहीं यावत् उद्वेग करना नहीं श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—अतीत काल में जो तीर्थंकर होगये है, वर्तमान में जो हैं, और आगामिक काल में जो होवेंगे वे सब ऐसा प्ररूपते हैं, ऐसा उपदेश देते हैं, कि किसी प्राण, भूत, जीव व सत्व को हणना नहीं, परिताप देना नहीं, उद्वेग उपजाना नहीं, जीव को काया से रहित करना नहीं षट्काया के जीवों को दुःख रूप समुद्र में दुःखी होते ... लोक को श्री तीर्थंकर देखते ऐसा निश्चय ... व नित्य धर्म कहा है ॥२४॥

रतिसे मा० माया मृषा से मि० मिथ्या दर्शन शल्य से इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म बन्ध से उ० उपशान्त उ० सावधान प० निवृत्त से० वह भि० साधु ॥ २७ ॥ जे० जो इ० ये त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी भ० हैं ते० उनको णो० नहीं स० स्वयं स० आरंभ करते हैं णो० नहीं अ० दूसरे से स० आरंभ कराते हैं अ० दूसरे स० आरंभ करते को न० नहीं स अच्छा मानते हैं इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म बन्धसे उ०उपशान्त उ० सावधान प०निवृत्त से० वह भि०साधु ॥२८॥ जे०जो इ० ये

कलहाओ, अब्भक्खाणाओ, पेसुन्नाओ, परपरिवायाओ, अरइरईओ, मायामोसाओ, मिच्छादंसणसल्लाओ, इति से महतो आयाणाओ उवसंते, उवट्ठिए, पडिविरते से भिक्खू ॥२७॥ जे इमे तस थावरा पाणा भवंति ते णो सयं समारभंति, णो अण्णेहिं समारंभावेंति अन्नं समारभंतं न समणुजाणंति इति से महतो आयाणाओ उवसंते उवट्ठिए पडिविरते से भिक्खू ॥ २८ ॥ जे इमे कामभोगा सचित्ता वा अचित्ता वा ते णो

क्रोध, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति, अरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शन शल्य इन महान् आश्रव के कारणों से निवर्त्तनेवाला, सावधान व व्रती पुरुष साधु कहलाता है ॥ २७ ॥ जो त्रस स्थावर जीवों की हिंसा नहीं करते हैं, अन्य की पास नहीं कराते हैं और अन्य हिंसा करनेवाले को अच्छा भी नहीं मानते हैं वे ही महान् आश्रव के कारणों से निवर्तनेवाले साधु कहे जाते हैं ॥ २८ ॥

प०निवृत्त॥१०॥से॰वा भि०साधु आ०माने अ०अन्न पा०पानी खा०खादिम सा० स्वादिम अ० इस के लिये ए० एक सा० स्वधर्मी को स० उद्देश कर पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्त्व को स० आरंभ कर स० उद्देश कर की० मोल लीया पा० उधार लीया अ छीनलीया अ० बिना रजा लीया अ० सामे लाया हुवा आ० ऐसा करके तं० उसे चे० दीया हुवा सि० होवे तं० उसे णो०नहीं स० स्वयं भुं० भोगता है णो० नहीं अ० अन्य से भुं० भोगवाता है अ० दूसरे भु० भोगवे को ण० नहीं स० अच्छा

ण समणुजाणइ इति से महतो आयाणाओ उवसते उवट्ठिए पडिविरते ॥ २० ॥ से भिक्खू जाणेज्जा असण वा पाण वा खाइमं वा साइमं वा अस्सिं पडियाए एगं साह-म्मिय समुद्दिस्स पाणाइ भूयाइं जीवाइ सत्ताइ समारंभ समुद्दिस्स कीत, पामिच्च, अ च्छिज्ज, अणिसट्ठं, अभिहडं, आहट्टु देसिय तचेतियं सिया त णो सय भुंजइ, णो अण्णे-ण भुंजावेइ अण्णपि भुंजंत ण समणुजाणइ इति से महतो अयाणाओ उवसते उ

क्रिया करनेवाले को अच्छा भी जाने नहीं इस तरह आनाश्रवी बने ॥ १० ॥ साधु को मालुम पडे कि अमुक गृहस्थ के यहां अशन, पान, खादिम, स्वादिम अमुक साधु के लिये प्राण, भूत, जीव व सत्त्व की घात कर बनाया है, मोल लिया है, उधार लिया है, बलात्कार से लिया है, मालिक की आज्ञा बिना लिया है, साधु को सन्मुख लाकर दिया, ऐसा आधाकर्मादि दोषों से दुषित आहार है तो साधु उसे लेवे नहीं कदाचित् अज्ञानपन से ऐसा दुषित आहार आजावे तो साधु उसे भोगवे नहीं, और ऐसा आहार

सयं परिगिण्हसि, णो अन्नेणं परिगिण्हावेति, अन्नंपरिगिण्हंतपि ण समणुजाणइ, इति से महतो आयाणाओ उवसंत उवट्ठिए पडिविरते से भिक्खू ॥ २१ ॥ जपिय इ-म संपराइयं कम्म कज्जइ, णो त सयं करेति णो अण्णेणं कारवेति अन्नंपि करंत

का० काय भोग स० सचित्त अ० अचित्त ते० उनको णो० नहीं स० स्वय प० ग्रहण करते हैं णो० नहीं अ० दूसरे से प० ग्रहण कराते हैं, अ० दूसरे प० ग्रहण करते को प० नहीं स० अच्छा जानते हैं इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म बन्ध से उ० उपशांत उ० सावधान प० निवृत्त से० वह भि० साधु ॥ २१ ॥ जं० जो इ० यह सं० सांपरायिक क० कर्म क० करता है णो० नहीं तं० उसको स० स्वयं क० करता है णो० नहीं अ० दूसरे से का० कराता है अ० अन्य को भी क० करते को ण० नहीं स० अच्छा मानता है इ० ऐसा से० वह म० महान् आ० कर्म बन्ध से उं० उपशांत उ० सावधान

जो कोई सचित्त अचित्त कामभोगों को अंगीकार नहीं करते हैं, अन्य की पास अंगीकार नहीं कराते हैं, और काम भोगो अंगीकार करनेवाले को अच्छा नहीं जानते हैं वे आश्रव से निवर्तनेवाले साधु हैं, ऐसा कहाजाता है.॥ २१ ॥ साधु ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकार के कर्मों को संसार परिभ्रमण का कारण जानकर पाप का बंध होवे वैसी सांपरायिक क्रिया [illegible] करे नहीं अन्य की पास करावे नहीं और वैसी

पु०फिर प०दूसरे की भेजने के लिये सा०सेष्या भोजन के लिये पा०सिरामण के लिये स०संनिधि सं० सग्रह क०करे इ० यहां ए० कितनेक मा० मनुष्यों को भो० भोजन के लिये त०तहां भि०साधु प०दूसरा का क० कीया हुआ प दूसरे के लिये नि० बना हुआ मु० उद्गम मु० उत्पात ए० एषणा सु० शुद्ध स० अचित्त हुआ स० शस्त्र भणित अ० निर्जीव ए० गवेषणा वे० साधु वेष सा० बहुत घरों से प० विवेक युक्त का० कारण के लिये प० प्रमाण युक्त अ० संयम सम व० गुफा को लें० लेप जैसे सं० संयम जा० यात्रा

साए सन्निहीसचए कज्जंति, इह मेगेसिं माणवाण भोयणाए तत्थ भिक्खू परकड प

रणिट्ठितं मुग्गमुप्पायणेसणासुद्धं सत्थाइय सत्थपरिणामियं अविहिंसियं एसियं वेसि

यं सामुदाणियं पन्नमसणं कारणट्ठा पमाणजुत्त अक्खोवजण वणलेवणभूयं सजम

वृत्ति से सप्रमाण ग्रहण करे. यथा दृष्टांत (१) जैसे गाडे को चलानेके लिये उस के चक्र में तेल डालते हैं वैसे ही शरीर रूप गाडा चलाने के लिये आहार ग्रहण करे (२) जैसे शरीर में जितना व्रण होता है उतनाही लेप किया जाता है वैसे ही साधु आहार ग्रहण करे और जितना आहार से संयम अच्छी तरह पालाजावे उतना ही सप्रमाण आहार लेवे जैसे सर्प अपना बिल में पेठता है वैसे ही साधु आहार करे अर्थात् जब सर्प बिल में प्रवेश करता है तब त्वरा से बिल में जाता है वैसे ही साधु आहार का स्वाद

मानता है इ० ऐसा से० वह म० महा आ० कर्म बन्ध से० उ० उपशांत उ० सावधान प० निवृत ॥२१॥ से वह मि० साधु अ० अथ पु० फिर प० जाने तं० उसे वि० वियमान है ते० उस को प० पराक्रम में प० भीख के लिये ते० वह ते० निपजाया सि० होवे त० वह ज० जैसे अ० अपने लिये से० वह पु० से० पुत्र के लिये पु० पुत्री के लिये पु० पुत्र वधू के लिये धा० धाइ के लिये णा० ज्ञाती के लिये रा० राजा के लिये दा० दास के लिये दा० दासी के लिये क० नोकर के लिये क० नोकरणी के लिये आ० आदेश के लिये

घट्टिए पडिक्खिरसे ॥ २१ ॥ से भिक्खू अहपुणेवं जाणेज्जा सं विज्जाति तेसिं परक्कमे अ-स्सट्ठा तेनेइयं सिया तजहा—अप्पणो से पुत्ताण, धूयाण, सुण्हाणं, धातीण, णातीण, रा-ईण, दासाण, दासीणं, कम्मकराणं, कम्मकरीण, आदेसाय, पुढोपहेणाए, सामासाए, पातरा

भोगनेवाले का भच्छा भी माने नहीं ऐसे आहार के दोषों से निवर्तनेवाले साधु कहे जाते हैं ॥ २१ ॥ जो आहार गृहस्थ अपने पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, धायमाता, ज्ञातिजन, राजा, दास, दासी, नोकर, नोकरनी व आदेश के लिये, अन्य किसी को भेजने के लिये, प्रातःकाल व संध्या समय में खाने के लिये, विनाशिक अविनाशिक द्रव्य का संचय करने के लिये बनाया होवे वैसा दूसरेने लिया हुवा व दूसरे के लिये किया हुवा उद्गमनादि दोषों से रहित अचित्त व निर्दोष आहार ...

क्षीण म० सरलता म० मृदुता ल० लघुता अ० अहिंसा स० सर्व पा० प्राणी की स० सर्व भू० भूतों की या० यावत् स० सत्व की अ० विचार कर कि० कहे ध० धर्म ॥ २१ ॥ से० वह भि० साधु ध० धर्म कि० करता हुवा णो० नहीं अ० अन्न का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं पा० पानी का हे० हेतु से ध० धर्म को आ० कहे; णो० नहीं वस्त्र का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं से० उपाश्रय का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं स० शयन का हे० हेतु से ध० धर्म आ० कहे णो० नहीं अ० अन्य वि० विविध प्रकार के का० काम भोगों के हे० हेतु से धु० धर्म

सोयवियं, अज्जवियं, मद्दवियं लाघवियं, अणतिवातियं, सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूताणं, जाव सत्ताणं अणुवाई किट्टिए धम्मं ॥ २१ ॥ से भिक्खू धम्मं किट्टमाणे णो अन्न स्स हेउं धम्मं माइक्खेज्जा, णो पाणस्स हेउं धम्मं माइक्खेज्जा, णो वत्थस्स हेउं ध-म्मं माइक्खेज्जा, णो लेणस्स हेउं धम्मं माइक्खेज्जा, णो सयणस्स हेउं धम्मं माइ क्खेज्जा, णो अन्नेसिं विरूवरूवाणं कामभोगाण हेउं धम्मं माइक्खेज्जा, अगिलाए धम्मं

विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, ऋजुता, मृदुता, लघुता, व अहिंसा सर्व प्राण, भूत, जीव व सत्व को विचार करके उन की किसी प्रकार से हिंसा न होवे वैसा धर्म प्ररूपे ॥ २१ ॥ इस तरह धर्म कथा करने वाला साधु अन्न के लिये, वस्त्र के लिये, उपाश्रय के लिये, शयन के लिये, और विविध प्रकार का काम

म० माया प० अर्थ पि० पील प० सर्प भू०भूत अ०आत्मा से आ०आहार आ०खावे अ० अन्न अ० अन्न कालमें पा० पानी पा० पानी का काल में व०वस्त्र व०वस्त्र का काल में ले०उपाश्रय ले०उपाश्रय के वक्त में स० शैय्या स० शयन कालमें ॥ १२ ॥ से० वह भि० साधु मा० विवेक का मान अ० कोई दि० दिशा अ० विदिशा प० आश्रित ध० धर्म आ० कहे वि० भिन्न २ कि० कीर्ति करे उ० सावधान हुवा को अ० असावधान को सु० उत्सुक को प० प्ररूपे स० शान्ति वि० विरति उ० उपशम नि० निर्वाण सो०

जायामायावत्तिय बिलमिव पन्नगभूतेण अप्पाणण आहार आहारेजा, अन्न अ न्नकाले पाण पाणकाले, वत्थं वत्थकाले, लेणं लेणकाले, सयण सयणकाले ॥१२॥ से भिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिसं अणुदिसं वा पडिवन्ने धम्म आइक्खे, विभए, किट्टे, उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा, सुस्सूसमाणेसु पवेदिए, सातिविरतिं उवसम निव्वाण,

नहीं करता हुवा आहार करे इस तरह आहार के अवसर में आहार करे, पानी का अवसर में पानी पीवे, वस्त्र पहिनने के अवसर वस्त्र पहिने, उपाश्रय के अवसर में उपाश्रय सेवे, शयन के अवसरमें शयन करे, ऐसे तरह लौकिक क्रिया करते संयमपाले ॥ १२ ॥ दिशा अनुदिशा में विचरनेवाला व आचारादि ग्रंथ का जाननेवाला साधु उपमी, व अनुपमी शिष्य तथा सुनने को उत्सुक व अनुत्सुक श्रोता को इस प्रकारसे धर्म कहे, धर्म का फल भिन्न २ करके बतलावे तथा धर्म की कीर्ति करे, जो धर्म करे सो बतलावे है, शांति

ए० ऐसे स० सर्वथा प० निष्ठय चि० ऐसा व० कहता हूं ॥ ३८ ॥ ए० ऐसे से० वह भि० साधु ध० धर्मार्थी ध० धर्मज्ञ णि० मोक्ष को प० प्राप्त से० वह अ० यथा वु० कहा अ० अथवा प प्राप्त प० पद्मवर पुंडरीक को अ० अथवा अ० अप्राप्त प० पद्मवर पुंडरीक को ए० ऐसे से० वह भि० साधु प० जानकर क० कर्म प० जानकर स० संग पं० जानकर गे० गृहस्थावास उ उपशांत स० समिति स० सहित

ताए, परिनिव्वुडे त्तिबेमि ॥ ३५ ॥ एवं से भिक्खू धम्मट्ठी, धम्मविऊ, णियागपडि-वण्णे स जहेयं वुत्तियं अदुवा पत्ते पउमवरपोंडरीयं, अदुवा अपत्ते पउमवरपोंड रीयं, एव से भिक्खू परिण्णाय कम्मे, परिण्णाय संगे, परिण्णाय गेहवासे, उवसंते स-मिए सहिए सया जए सेव वयणिज्ज तंजहा—समणेत्ति वा, माहणेति वा, खंतेति वा, द-

जम्बू स्वामी से कहते हैं ॥ ३८ ॥ उपसंहार उक्त गुण विशिष्ट साधु बाह्याभ्यन्तर परिग्रह, तथा गृहवास व ज्ञाति जनों का संग की जिस से कर्मबंध होता है उन्हें ज्ञान परिज्ञा से जानकर व प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर साधु, महात्मा, ज्ञान दर्शन व चारित्र युक्त, समिति गुप्तिवन्त, पंचेन्द्रिय और नो इन्द्रिय को वश करनेवाला, क्षमावन्त, दमितेन्द्रिय, आत्मगुप्त, निर्लोभी, तत्त्व का ज्ञाता, निर्दोष भिक्षा से रूक्ष शुष्क आहार करके शरीर का निर्वाह करनेवाला तथा मूलगुण व उत्तरगुण का पारगामी बने, ऐसे साधु पुंडरीक कमल समान राजा का उद्धार करो या मत करो परंतु वे महात्माओं तो उस पुष्करणी समान संसार को

आ॰ करे म॰ अपनी रक्षित ध॰ धर्म आ॰ करे न॰ नहीं अ॰ अन्यत्र क॰ कर्म निर्जरार्थ ध॰ धर्म आ॰ करे ॥ १४ ॥ इ॰ यहां ख॰ निश्चय त॰ उन भि॰ साधु की अं॰ समीप ध॰ धर्म सो॰ सुनकर णि॰ अवधार कर उ॰ सावधान पना से उ॰ सावधान होकर वी॰ वीर अ॰ इस ध॰ धर्म में स॰ सावधान हुवे जे जो त॰ उनको भि॰ साधु अं॰ समीप ध॰ धर्म सो॰ सुनकर णि॰ अवधार कर ध॰ सम्यक् उ॰ सावधान पना से उ॰ सावधान होकर वी॰ वीर अ॰ इस ध॰ धर्म में स॰ सावधान हुवे ते॰ वे ए॰ ऐसे स॰ सर्व उ॰ उपगत ते॰ वे ए॰ ऐसे स॰ सर्व उ॰ विरत ते॰ वे ए॰ ऐसे स॰ सर्व उ॰ उपशांत ते॰ वे

माइक्खेज्जा, नन्नत्थ कम्मनिज्जरट्ठाए धम्म माइक्खेज्जा ॥ १४ ॥ इह खलु तस्स भिक्खुस्स अंतिए धम्म सोच्चा णिसम्म उट्ठाणेण उट्ठाय वीरा, अस्सिं धम्मे समुट्ठिया, जे तस्स भिक्खू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्म उट्ठाणेण उट्ठाय वीरा अस्सिं धम्मे समुट्ठिया, ते एवं सव्वोवगता, ते एव सव्वोवरता, ते एव सव्वोवसता, ते एव सव्व-

मोक्ष के लिये धर्म कथा करे नहीं परंतु अवश्यमेव मात्र निर्जरा के लिये धर्म कथा करे ॥ १४ ॥ इस संसार में जो मनुष्य उक्त गुणों से सहित साधु की पास से धर्म श्रवण कर, सम्यक् प्रकार से अवधारकर, व संयम में सावधान बन धर्म मार्ग में कर्म क्षय करने को शूरवीर बनते हैं वे अठारह पापस्थान से उप शान्त बनकर शीतली भूत होते हुवे मोक्ष में पहुंचते हैं ऐसा साधु की पास से धर्म श्रवण करने का फल जैसे श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी ने कैसे मनुष्य हैं कैसे ही धेरे के करना है. ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी

॥ क्रियास्थानाख्यं अष्टादश मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवन्त भ० भगवानने ए० ऐसा अ० कहा इ० यहां ख० निश्चय कि० क्रिया स्थान णा० नाम का अ० अध्ययन प० मरूपा त० उस का अ० यह अ० अर्थ इ० यहां ख० निश्चय सं० संक्षेप से दु० दो ठा० स्थान ए० ऐसे आ० कहे जाते हैं तं० वह ध० जैसे ध० धर्म अ० अधर्म उ० उपशांत अ० अनुपशान्त ॥ १ ॥ त० उस में जे० जो प० प्रथम ठा० स्थान अ० अधर्म प०

सुयं मे आउसतेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु किरियाठाणे णामज्झयणे पण्णत्ते, तस्सणं अयमट्ठे इह खलु संजूहेणं दुवे ठाणे एव माहिज्जति तंजहा—धम्मेचेव अधम्मे चेव, उवसंतेचेव, अणुवसंतेचेव ॥ १ ॥ तत्थणं जे से पढमस्स ठाणस्स अहम्मपक्खस्स

श्री सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं, की अहो आयुष्मन् जम्बू ! क्रिया का स्वरूप बतानेवाला क्रिया स्थानक नामक अध्ययन श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी की पास से मैंने सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूं इस संसार में मुख्य दो स्थानक है (१) धर्म (२) अधर्म, अथवा (१) उपशान्त और (२) अनुपशान्त ॥ १ ॥ उक्त दो प्रकार के स्थानक में से अधर्म पक्ष का कथन करते हैं इस संसार की

स सदा म० यत्नावंत से० ऐसे व० कहना तं० वह म० जैसे स० श्रमण मा० माहण खं० क्षमावंत दं० दमेन्द्रिय गु० गुप्तिवंत मु० मुक्तिवंत इ० ऋषि मु० मुनि क० कोविवन्त वि० विद्वान् मि० भिक्षु लू० रूक्ष ती० संसार पारगामी च० चारित्र क० क्रिया पा० पारगामी त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥१६॥

तेति वा, गुत्तेति वा, मुत्तेतिवा, इसीति वा, मुणीति वा, कतीति वा, विऊति वा, भिक्खूति वा, लूहेति वा, तीरट्ठीति वा, चरणकरणपारविउ त्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति पोंडरीयं णामे सतरहअज्झयणं सम्मत्तं ॥२॥१७॥

वीर पुरुष मय है और अपना उद्धार की साथ अन्य का भी उद्धार करने को समर्थ बने हैं ऐसा मैं श्री महावीर स्वामी के कथनानुसार कहता हूं यह सूयगडांग सूत्र का सतरहवा अध्ययन समाप्त हुआ इस अध्ययन में पुंडरीक कमल के दृष्टांत से अन्य तीर्थिकों को कर्म बंध करनेवाले कहे, और साधु को कर्म से मुक्त होनेवाले कहे वे कर्म बारह प्रकार के क्रिया स्थान में बंधाते हैं, और तेरहवा स्थानक में छूटते हैं इस लिये आगे क्रिया स्थानक नामक अध्ययन कहते हैं ॥२॥१७॥

प० इस तरह दं० दंड स० आरम सं० विचारे तं० वह जं० जैसे णे० नरक में ति० तिर्यंच जो० योनि में म० मनुष्य में दे० देव में ज० जैसा प० धर्म त० तथा प्रकारके पा० प्राणी वि० मानना वे० वेदना वे० वेदते हैं त० उस में इ० यह ते० तेरह कि० क्रिया ठा० स्थान प० है इ० ऐसा अ० कहा त० वह ज० जैसे अ० अर्थ दंड अ० अनर्थ दंड हिं० हिंसा दंड अ० अकस्मात् दंड दि० दृष्टि विपर्यास दंड मो० मृषा प्रत्ययिक अ० अदत्तादान अ० अध्यात्मिक मा० मान मि० मित्र दोष मा० माया लो०

समादाण सपेहाए तंजहा—णेरइएसु वा,, तिरिक्खजोणिएसु वा, मणुस्सेसु वा, देवेसु वा, जयावन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयण वेयति ॥ तेसिं पिण इमाइ तेरसकिरिया ट्ठाणाई भवंतिति मक्खाय तंजहा—अट्ठादंडे, अणट्ठादंडे, हिंसादंडे, अकस्मादंडे, दिट्ठी विपरियासिया दंडे, मोसवत्तिए, आदिन्नादाणवत्तिए, अज्झत्थवत्तिए, माणवत्तिए, मि-

कारण को विचारना चाहिये उस में भी श्री तीर्थंकर देवने तेरह प्रकार की क्रिया बतलाई है (१) प्रयोजन से पापारंभ करना सो अर्थदंड (२) निष्प्रयोजन से सावद्य क्रिया करना सो अनर्थ दंड (३) प्राणी की घात करे सो हिंसा दंड (४) अकस्मात् दंड-अन्य की क्रिया मे अन्य का घात होवे (५) दृष्टि विपर्यास दंड विपरीत दृष्टि से अन्य का घात होवे (६) मृषा वाद (७) अदत्तादान (८) अध्यात्मिक मन का दुर्ध्यान (९) मान प्रत्ययिक दंड (१०) मित्र दोष-मित्र को ठगने का (११) माया प्रत्ययिक

पसका पि० निमम व० उसका म० यह म० मर्थ प० मरूपा इ० यहां स० निश्चय पा० पूर्वादि दिशा में स० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं त यह म० जैसे मा० कितनेक आर्य म० कितनेक मनार्य ७० कितनेक ऊचगोत्री णी कितनेक नीचगोत्री का० कितनेक लंबी काया वाले ह०, कितनेक छोटी काया वाले सु० मच्छेवर्ण वाले दु० खराब वर्ण वाले सु० सुरूप दु० कुरूप ते० उसमें इ० इस

स्स विभंगे तस्सणं अयमट्ठे पण्णत्ते—इह खलु पाईणं वा संतेगत्तिया मणुस्सा भवंति तंजहा—आरियावेगे, अणारियावेगे, उच्चागोयावेगे, णीयागोयावेगे, कायमंतावेगे, हस्स-मतावेगे, सुवण्णावेगे दुवण्णावेगे, सुरूवावेगे, दुरूवावेगे, तेसिं च णं इमं एतारूवं दंड

पूर्वादिक चारों दिशा में कितनेक मनुष्य रहते हैं:—आर्य, अनार्य, ऊंच गोत्रिय, नीच गोत्रिय, लम्बी कायावाले, ठिंगने, खराब वर्ण वाले अच्छे वर्ण वाले, सुरूप व कुरूप नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देवता में पूर्वोक्त तथा अन्य कोई भी प्राणी साता असाता रूप जो वेदना × अनुभवते हैं; ऐसी वेदना रूप पाप का

× (१) छद्मी जीव वेदना वेदते हैं, और जानते भी हैं, (२) सिद्ध वेदना जानते हैं परंतु भ नुभवते नहीं हैं (३) असंज्ञी वेदना अनुभवते हैं, परंतु जानते नहीं है, और (४) अजीव वेदना वेदते भी नहीं और जानते भी नहीं यहां पर इन में से प्रथम तथा चतुर्थ भांग का [illegible]

प० प्रथम दं० दंड स० कर्म उपादानमें अ० अर्थ दंड प्रत्यायिक पि० ऐसा आ० कहा ॥ १ ॥ अहे अव दो० दूसरा दं०दंड स० कर्म उपादान अ० अनर्थ दंड प्रत्ययिक आ०कहा जाता है से०वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष जे० जो इ० ये त० त्रस पा० प्राणी भ० हैं ते०वे णो० नहीं अ शरीर के लिये णो०नहीं च०चर्म के लिये णो० नहीं म० मांस के लिये णो० नहीं सो० लोही के लिये ए० ऐसे हि० हृदय के लिये पि०पित्त के लिये व०चरबी के लिये पि०पिच्छा के लिये पु०पूंछ के लिये वा बाल के लिये सिं० श्रृंग के लिये वि० विषाण के लिये दं० दांत के लिये दा० दाढ के लिये ण० नख के लिये ण्हा० नस के लिये

एत्ति आहिए ॥ २ ॥ अहावरे दोच्चे दंडसमादाणे अणट्ठादंडवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा भवंति, ते णो अच्चाए, णो अजिणाए, णो मंसाए णो सोणियाए, एवं हिययाए—पित्ताए—वसाए—पिच्छाए—पुच्छाए—वालाए सिंगाए—विसाणाए—दंताए—दाढाए—णहाए—ण्हारुणिए—अट्ठीए——अट्ठिमंजाए णो हिंसं

से सावद्य कर्म बांधता है उस बंधन को ही अर्थ दंड प्रत्ययिक कहते हैं ॥ १ ॥ अब दूसरा अनर्थ दंड प्रत्ययिक कहते हैं जो पुरुष कारण विना हिंसा करते हैं सो बताते हैं इस संसार में जो त्रस प्राणी रहे हुवे हैं उन को उन के शरीर, चर्म, मांस, रक्त, हृदय, पित्त, चरबी, पांख, पूंछ, बाल, शींग, विषाण, दांत, दाढ, नख, नस, हड्डी तथा हड्डी की मींजी के लिये वैसे ही पुत्र, पशु आदि के पोषण के

सोम इ० ईर्यापथिक ॥ २ ॥ प० प्रथम द० दंड स० कर्म उपादान अ० अर्थदंड व० प्रत्ययिक आ० कहा जाता है से० वह ज० जैसे णा० संभावना के० कोई पु० पुरुष आ० आत्मा के लिये से णा० ज्ञातिके लिये से आ० गृह के लिये प परिवार के लिये मि० मित्र के लिये णा० नागकुमार क लिये भू० भूत देवता के लिये ज० यक्ष के लिये तं० उस दं० दंड को त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी की स० स्वयं णि० घात करता है अ० दूसरे से णि० घात कराता है अ० दूसरे णि० घात करते को स० अच्छा मानता है ए० ऐसे स० निश्चय त० उन का० त० प्रत्ययिक सा० सावद्य कर्म आ० कहते हैं

पत्तेसवत्तिए,मायावत्तिए,लोभवत्तिए इरियावहिए॥२॥ पढमे दंडसमादाणे अट्ठादंडवत्तिए त्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे आयाहेउं वा, णाइहेउं वा, आगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, मित्तहेउं वा, णागहेउं वा, भूतहेउं वा, जक्खहेउं वा, तं दंडं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति, अण्णेणवि णिसिरावेंति, अण्णंपि णिसिरंतं समणुजाणति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, पढमे दंडसमादाणे अट्ठादंडवत्ति

(१२) लोभ प्रत्ययिक (१३) ईर्या पथिक ॥ २ ॥ उक्त तेरह प्रकार के दंड में से प्रथम अर्थ दंड प्रत्ययिक कहते हैं. जो कोई पुरुष स्वतः के लिये, ज्ञाति के लिये, गृह के लिये, परिवार के लिये, मित्र के लिये, नाग देवता के लिये, भूत के लिये, यक्ष के लिये, त्रस, स्थावर जीवों की स्वयं घात करता है अन्य की पास घात कराता है और घात करनेवाले को अच्छा जानता है वो यह करण, करावण व अनुमोदन

या० स्थावर पा० प्राणी भ० है व० यह ज० जैसे इ० घास क कदब मं० वच्च तृण प० पलाल मो० मुंज त० तृण कु दाम कु० वनस्पति प० माप प० पराल ते० यह णो० नहीं पु पुत्र पोपणार्थ णो नहीं प० पशु पोषणार्थ णो० नहीं आ० गृहकी आवश्यकी के लिये णो० नहीं स० श्रमण मा० ब्राह्मण पो पोषणार्थ णो० नहीं त उसका स० शरीर के लिये किं० किन्तु वि० निरर्थक भ० होता है से यह ह० मारने वाला छे० छेदन वाला भे० भेदने वाला लुं० काटने वाला वि० टुकडा करने वाला उ० उद्वेग

इक्कडाइ वा कढिणाइ वा, जन्तुगाइ वा, परगाइ वा, मोक्खाइ वा, तणाइ वा, कुसाइ वा, कुच्छगाइ वा, पप्पगाइ वा, पलालाइ वा, ते णो पुत्तपोसणाए, णो पसुपोसणाए णो आगारपडिवूहणयाए णो समणमाहणपोसणयाए, णो तस्स सरीरगस्स किंचि वि परियाइ भवति से हंता छेत्ता भेत्ता लुपइत्ता विलुपइत्ता, उद्दविइत्ता उज्झिउ बाले वेरस्स आभागी अणत्थादंडे। से जहा णामए केइ पुरिसे कच्छंसि वा,, दहंसि वा,

यह त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंड कहा अब स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंड कहते हैं कितनेक पुरुष कदंब, घास, पराल मुंज, दर्भ, तृण वगैरह वनस्पति अपने पुत्रादिक का पोषण के लिये, या गवादिक को खिलाने के लिये, गृहादिक कार्य के लिये, शाक्यादि साधु ब्राह्मण के लिये अथवा अपने शरीर के लिये ऐसे नहीं किन्तु मात्र कुतूहल निमित्त जीवों को हणनेवाले होवे, तथा दंडादिक प्रहार से छेदे, भेदे, अवयव काटे, प्राणव घात करे इस तरह बाल अविवेकी मात्र वैर का विभागी होने पर वनस्पति काय का

स० स्त्री के लिये म० स्त्री की मींजी के लिये णो० नहीं हिं० हणे णो० नहीं हिं० हणते हैं णो० नहीं हिं हणेंगे णो० नहीं पु पुत्र पोषण के लिये णो नहीं प० पशु पोषण के लिये णो० नहीं आ० गृहकी आबादी के लिये णो० नहीं स० श्रमण मा० माहण प० पोषणार्थ णो नहीं त० उसका स० शरीर के लिए किं० किन्तु वि० निरर्थक भ० होते हैं से वह ह० मारने वाला छे छेदने वाला भे० भेदने वाला लुं० काटने वाला वि० टुकडा करने वाला उ० उद्वेग उपजाने वाला च छोडकर बा० मूर्ख वे० वैरका भा० भागी भ० होता है अ० अनर्थ दंड में से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष जे० जो इ० ये

सुमेत्ति;णो हिंसंतिमेत्ति,णो हिंसिस्सातिमेत्ति, णो पुत्तपोसणयाए णो पसुपोसणयाए णो आ-गारपरिवूहणताए णो समणमाहणवत्तणाहेउ,णो तस्स सरीरगस्स किंचि विप्परियादित्ता भवति से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता, उज्झिउ बाले वेरस्स आभागी भवति, अणट्ठादंडे । से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा भवंति तंजहा

लिये, अतीत काल में हणे नहीं, आगामिक काल में हणेंगे नहीं, और वर्तमान काल में नहीं हणते हैं वैसे ही गृह शान्ति के लिये, श्रमण माहण का पोषण करने को अथवा तो अपना शरीर का रक्षण के लिये हणे नहीं किन्तु मात्र क्रीडा निमित्त निरर्थक जीवों को छेदे, भेदे, अंग के अवयव काटे, चमडी उखेडे, तथा अन्य भी नाना प्रकार के दुःखों से पीडित करे. इस तरह विवेक हीन बाल वैर का विभागी होवे

माता है दो० दूसरा दं० दंड स० कर्म उपादान म० अनर्थ दंड मत्यायिक वि० ऐसा मा० कहा ॥ ८ ॥ म० अथ त तीसरा दं० दंड स० कर्म उपादान हिं० हिंसा दंड व० मत्ययिक भा कहा जाता है से० यह म० जैसे के० कोई पु० पुरुष म० मुझको म० मेरे कुटुम्बी को म० दूसरे को म० दूसरे का परी वार को हिं० हणे हिं० हणते हैं हिं० हणेंगे तं० उस दं० दंड को त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी में स० स्वयं घि० घात करता है म० दूसरे से घि० घात करवाता है म० दूसरे घि० घात करते को स० अच्छा जानता है हिं० हिंसा दंड में ए० ऐसे ख० निश्चय त० उस का व० मत्यायिक सा० सावध भा कहा जाता है त० तीसरा दं० दंड स० कर्म उपादान में हिं० हिंसा दंड व० मत्ययिक

दंडसमादाणे अणट्ठादंडवत्तिएत्ति आहिए ॥ ४ ॥ अहावरे तच्चे दंडसमादाणे हिंसा दं डवत्तिए आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे ममं वा, ममिं वा, अन्नं वा, अन्नि वा हिंसिंसु वा हिंसति वा, हिंसिस्सति वा, तं दंडं तस थावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अण्णेणवि णिसिरावेंति, अन्नंपि णिसिरिंत समणुजाणंति हिंसादंडे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं साव

तीसरा हिंसा दंड नामक क्रिया स्थानक कहते हैं कोई पुरुष ऐसा विचार करे कि इसने मुझे या मेरे पिता पुत्रादिक को अथवा अन्य कोई गोत्रिय मनुष्य को मारा था, मारेगा या तो मारता है ऐसा विचार करके त्रस स्थावर जीवों की स्वयं घात करे, अन्य की पास घात करावे और घात करनेवाले को अच्छा

उपजाने वास्ते उ० उदकरूप या अज्ञानी वे० वेरका आ० भागी अ० अनर्थ दंड में से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष क० कच्छ में द्र० द्रह में उ० पानी में द० समुद्र में न० नदी के स्थान में गू० गहनादि में ग० अटवि में ग० अटविके वि० विषम स्थान में व० वन में व० वन के वि० विषम स्थान में प० पर्वत में प० पर्वत के वि० विषम स्थान में त० तृण ऊ० इगकरके स०स्वय अ० अग्नि काय णि० सलगाता है अ० दूसरे से अ० अग्नि काय णि० सलगाता है अ० दूसरे को अ० अग्नि काय णि० सलगाते को स० अच्छा जानता है अ० अनर्थ दंड में ए० ऐसा त० उसका त० मत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा

उदगंसि वा, दवियंसि वा, वलयंसि वा, णूमंसि वा, गहणंसि वा, गहणविदुग्गंसि वा, वणंसि वा, वणविदुग्गंसि वा, पव्वयंसि वा, पव्वयविदुग्गंसि वा, तणाइं ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति, अण्णेणवि अगणिकायं णिसिरावेंति, अण्णंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ, अणट्ठादंडे, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, दोच्चे

श्रित अनर्थ दंड कहा, अब अग्नि काय आश्रित अनर्थ दंड कहते हैं बहुत वनस्पति का समूह होवे, जैसा कच्छ में, द्रह, तलाव, समुद्र, नदी आदि पानी के स्थान में तथा गहन जंगल, पर्वत, पर्वत के विषम स्थान में, तृण इत्यादिक एकत्रित करके स्वयं दव लगावे अन्य की पास दव लगवावे और दव लगानेवालों को अच्छा जाने वो उन को पाप लगे [illegible] अनर्थ दंड कहा

तिथर ब० बटेर प० भंडूक स० सवा क० कपोत क० कपि क० कपिंजल वि० हणने वाला मे होता है इ० यहां ख० निश्चय से० यह अ० अन्य के लिये अ० अन्य को फु० स्पर्शता है अ० अकस्मात् दंड से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष सा० साल वी० व्रीहि को० कोद्रवे क० कांगूणी प० पत्री रा० राल णि० नींदणी करदे अ० दूसरा त० तृणका व० वध के लिये स० शस्त्र णि० नीकाले से० वह सा० श्याम त० तृण कु० कुमुद वी० व्रीहि ऊ० ऊंचाकार क० धान्य त० तृण छि० छेदूंगा त्ति० ऐसा क० करके सा० शाल वी० व्रीहि को कोद्रवे क० कांगूणी प० पत्री रा० राल छि० छेदाये हुवे भ० हैं इ० ऐसा स०

त्तिं वा, कविंजलं वा, विधित्ता भवइ, इह खलु से अन्नस्स अट्ठाए अण्णं फुसति अ कम्मादंडे । से जहा णामए केइ पुरिसे सालीणि वा, वीहीणि वा, कोद्दवाणि वा, कं गूणि वा, परगाणि वा, रालाणि वा, णिलिज्जमाणे, अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थ णिसिरेज्जा से सामगं, तणगं, कुमुदुगं, वीहीऊसियं, कलेसुयं तणं छिंदिस्सामि त्तिकट्टु

तीतर, सवा, कपोत, भंडूक, होला वगैरह भेदाये यहां निश्चय से उन्होंने अन्य को मारने की विंचवना की और अन्य का घात हुवा इस लिये अकस्मात् दंड कहा जाता है अब वनस्पति के विषय में अकस्मात् दंड कहते हैं कोई करसणी पुरुष साल, व्रीहि, कोद्रवे, कांगुणी, वरटी इत्यादि चौबिस प्रकार के धान्यवाले खेतमें निंदाणी करनेको गया और उसने यहां संकल्प किया कि इस धान्यके मध्य भागमें श्याम तृणादिक

मा० करा ॥ ८ ॥ अ० अब च० चौथा द० दंड स० कर्म उपादान अ० अकस्मात् दंड व० प्रत्ययिक
आ० कहा जाता है से वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष क० कच्छ में जा० यावत् व० उनका वि०
विषम स्थान में मि० मृगवृत्तिक मि० मृग में संकल्प वाला मि० मृग में प चित्तवृत्ति मि० मृग व० वध
के लिये ग० गया हुवा ए० यह मि० मृग को म० छोड कर के अ० दूसरा मि मृगका व० वध के लिये
उ० बाण को आ० खेंचकर के णि० छोडे स० वह मि० मृग को ण० हणूंगा ति० ऐसा क० करके ति०

त्वति आहिज्जइ, तथे दंडसमादाणे हिंसादंडवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥ अहावरे चउ-
त्थे दंडसमादाणे अकस्मादंडवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे—क
च्छंसि वा,, जाव वणविदुग्गंसि वा, मियवत्तिए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए
गंता एए मियत्तिकाउ, अन्नयरस्स मियस्सवहाए, उसु आयामेत्ताणं, णिसिरेज्जा, स
मियं वहिस्सामि त्तिकट्टु, तित्तिरं वा, वट्टगं वा, चडगं वा, लावगं वा, कवोयगं वा, क-

माने, इस तरह से वह सावद्य कर्म करता है यह तीसरा हिंसा दंड प्रत्ययिक कहा ॥ ८ ॥ अब चौथा
अकस्मात् दंड कहते हैं जैसे कोई शिकार खेलनेवाला पारधि बहुत वृक्षों से भरपूर जंगल सरोवर
यावत् पर्वत में शिकार खेलने को गया वहां अमुक मृग अपनी नजीक देखकर उस ने विचार किया कि मैं
इसे हणूंगा ऐसा विचार कर उस के मृग को मारने के लिये बाण छोडा परंतु बीच में दूसरे जीव-तीतर,

तिचर प० बटेर प० मंडूक ल० लवा क० कपोत क० कपि क० कपिंजल वि० हणने वाला भी होता है इ० यहां स० निश्चय से० वह अ० अन्य के लिये अ० अन्य को फु स्पर्शता है अ० अकस्मात् दंड से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष सा० शाल वी० व्रीहि को० कोद्रवे क० कांगूणी प० पत्री रा० रा ल णि० नींदणी करते अ० दूसरा त० तृणका व० वध के लिये स० शस्त्र णि० नीकाले से० वह सा० श्या म त० तृण कु० कुमुद वी० व्रीहि ऊ० ऊंचाकार क० धान्य त० तृण छि० छेदूंगा चि० ऐसा क० करके सा० शाल वी० व्रीहि को० कोद्रवे क० कांगूणी प० पत्री रा० राल छि० छेदाये हुवे भ० हैं इ० ऐसा स०

त्ति वा, कविंजलं वा, विधित्ता भवइ, इह खलु से अन्नस्स अट्ठाए अण्णं फुसति अ कम्मादंडे । से जहा णामए केइ पुरिसे सालीणि वा, वीहीणि वा, कोद्दवाणि वा, क गूणि वा, परगाणि वा, रालाणि वा, णिलिज्जमाणे, अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थ णिसिरेज्जा से सामगं, तणगं, कुमुदुगं, वीहीऊसियं, कलेसुय तणं छिंदिस्सामि त्तिकट्टु

तीतर, लवा, कपोत, बंदुक, तोता वगैरह मेदार्वे यहां निश्चय से उन्होंने अन्य को मारने की चिन्तवना की और अन्य का घात हुवा इस लिये अकस्मात् दंड कहा जाता है अब वनस्पति के विषय में अकस्मात् दंड कहते हैं कोई करसणी पुरुष शाल, व्रीहि, कोद्रवे, कांगुणी, पत्री इत्यादि चौवीस प्रकार के धान्यवाले खेतमें निंदाणी करनेको गया और उसने यहां संकल्प किया कि इस धान्यके मध्य भागमें श्याम तृणादिक

मिश्चय से॰ वह अ॰ अन्य के लिये अ॰ अन्य को फु॰ स्पर्शता है अ॰ अकस्मात् दंड ए॰ ऐसे त॰ उनका व मत्यायिक सा॰ सावद्य आ॰ कहा जाता है च॰ चौथा दं॰ दंड स॰ कर्म उपादान प॰ प्रत्ययिक आ॰ कहा ॥४॥अ॰अब प॰पांचवा दं॰दंड स॰कर्म उपादान दि॰ दृष्टिविपर्यास दं॰दंड मत्ययिक आ॰कहा जाता है से वह ज॰ जैसे को कोई पु॰ पुरुष मा॰ माता से पि॰ पिता से भा॰ भाइ से भ॰ भगिनी से भ॰ भार्या से पु॰ पुत्र से धू॰ पुत्री से सु॰ पुत्रवधू से ध॰ सहित सं॰ रहता हुवा मि॰ मित्र को अ॰ अमित्र म॰

सालिं वा, वीहिं वा, कोद्दवं वा, कंगुं वा, परगं वा, रालयं वा, छिंदित्ता भवइ, इति खलु से अन्नस्स अट्ठाए अन्न फुसति अकम्मादंडे । एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं आहिज्जइ चउत्थे दंडसमादाणे अकम्मादंडवत्तिए आहिए ॥ ४ ॥ अहावरे पंचमे दंडसमादाणे दिट्ठिविपरियासिया दंडवत्तिएत्ति आहिज्जइ, से जहा णामए केइ पुरिसे माईहिं वा, पिईहिं वा, भाईहिं वा, भगिणीहिं वा, भज्जाहिं वा, पुत्तेहिं वा, धूताहिं वा,

है उसे दूर करे, परन्तु सुरपी आदि शस्त्र से तृणादिक का छेदन करते अकस्मात् बीचमें धान्य कटजाते इस तरह अन्यको हननेकी चिन्तवना करते अन्य हनाजाते उसे अकस्मात् दंड क्रिया कहते हैं यह चौथा अकस्मात् दंड प्रत्ययिक हुवा ॥ ४ ॥ अब दृष्टि विपर्यास नामक पंचम क्रिया स्थानक कहते हैं कोई पुरुष माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र पुत्री पुत्रवधू प्रमुख परिवारमें रहता हुवा दृष्टि विपर्यास से अपना

मानता हुआ मि० मित्र ह० हणाया भ० होता है दि० दृष्टि विपर्यास दं० दंड से० वह भ० जैसे के० कोई पु० पुरुष गा० ग्राम की घात में न० नगर की घात में खे० खेट क० कर्बट मं० मंडप की घा० घात में दो० द्रोण मुख की घात मे प० पाट्टण की घात में आ० आश्रम की घात में स० सन्निवेश की घात में नि० निगम की रा० राज्यधानि की घात में अ० साधु को ते० चोर म० मानता हुआ अ० साधु ह० हणाया भ० होता है दि० दृष्टि विपर्यास दं० दंड ए० ऐसे त० उसको त० मत्यायिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है प० पांचवा दं० दंड स० उपादान कर्म दि० दृष्टि विपर्यास द० दंड मत्यायिक चि० ऐसा आ० कहा

सुण्हाहिं वा; मिर्त्त सव्वसमाणे मित्त अमित्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुव्वे भवइ, दिट्ठि विपरियासियादंडे ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे गामघायंसि वा, णगरघायंसि वा, खेड-कव्वड-मडंवघायंसि वा, दोणमुहघायंसि वा, पट्टणघायंसि वा, आसमघायंसि वा, सन्निवेसघायंसि वा, निग्गमघायंसि वा, रायहाणिघायंसि वा, अतेण तेणमिति मन्नमाणे अतेण हयपुव्वे भवइ, दिट्ठिविपरियासिया दंडे, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आ

मित्रको ही शत्रु मानकर उसकी घात करवाते अर्थात् शत्रुकी घात करनेको इच्छता हुआ अपना मित्रकी ही घात करे उसे दृष्टि विपर्यास दंड कहते हैं और भी कोई पुरुष ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मंडप, द्रोण मुख, पाटण, आश्रम, सन्निवेश, निगम व राजधानि की घात चिंतवता हुआ अच्छा पुरुष को चोर करके माने

॥ ७ ॥ अ० अब प० छठी कि० क्रिया मो० मृषा प्रत्ययिक मा० कही जाती है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष आ० आत्म के लिये णा० ज्ञाति के लिये अ० गृह के लिये प० परिवार के लिये स० स्वयं मु० मृषा व० बोलता है अ० दूसरे से मु० मृषा व० बोलाता है मु० मृषा व० बोलते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसको त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा

हिज्जइ, पंचमे दंडसमादाणे दिट्ठिविपरियासिया दंडवत्तिएत्ति आहिए ॥ ७ ॥ अहावरे छट्ठे+किरियाट्ठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउं वा, णाइहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, सयमेव मुसं वयति अण्णेणवि मुसंवया-वेंति, मुसं वयंत पि अण्णं समणुजाणइ, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जति आहिज्जइ

और अचोर (साधु) को ही हणे, यह दृष्टि विपर्यास नामक दंड समादान कहाजाता है ॥ ७ ॥ अब छठा क्रिया स्थानक कहते हैं कोई पुरुष अपने लिये, ज्ञाति के लिये, गृह के लिये, परिवार के लिये स्वयं मृषा बोले, अन्य की पास मृषा बोलावे, और मृषा बोलते को अच्छा जाने उसे मृषावाद प्रत्ययिक क्रिया

+ पूर्वोक्त पांच में "दंड समादाणे" पाठ आया क्योंकि उस में मारा मार की बात होती है अब "किरियाठाणे" पाठ कहता है क्योंकि इस में दूसरे जीव का विनाश नहीं है

जाता है छ छठी क्रिया मो॰ मृषा प्रत्ययिक आ॰ कहा ॥ ८ ॥ अ॰ अब स॰ सप्तम कि॰ क्रिया अ॰ अदत्तादान प॰ प्रत्ययिक आ॰ कही जाती है से॰ वह ज॰ जैसे के॰ कोई पु॰ पुरुष आ॰ आत्मा के लिये जा॰ यावत् प॰ परिवारके लिये स॰ स्वयं अ॰ अदत्त आ॰ ग्रहण करता है अ॰ दूसरेसे अ॰ अदत्त आ॰ ग्रहण कराता है अ॰ अदत्त आ॰ ग्रहण करते अ॰ दूसरे को स॰ अच्छा जानता है ए॰ ऐसे ख॰ निश्चय त॰ उसका त॰ प्रत्ययिक सा॰ सावद्य आ॰ कही जाती है स॰ सप्तम कि॰ क्रिया अ॰ अदत्तादान व॰ प्रत्ययिक चि॰ ऐसा आ॰ कही ॥ ९ ॥ अ॰ अब अ॰ अष्टम कि॰ क्रिया अ॰ अध्यात्मिक

छट्ठे किरियाट्ठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥ अहावरे सत्तमे किरियाट्ठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउ वा, जाव परिवार हेउ वा, सयमेव अदिन्नं आदियइ, अन्नेणवि अदिन्नं आदियावेइ, अदिन्नं आदियतं अन्नं समणुजाणइ, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ, सत्तमे किरियाट्ठाणे अदिन्नादाण वत्तिएत्ति आहिए ॥ ९ ॥ अहावरे अट्ठमे किरियाट्ठाणे अज्झत्थवत्तिए

स्थानक कहना ॥ ८ ॥ अब सातवां अदत्तादान प्रत्ययिक कहते हैं कोई पुरुष अपने लिये, ज्ञाति के लिये, गृह के लिये, व परिवार के, लिये अदत्तादान ग्रहण करे, अन्य की पास ग्रहण करावे और ग्रहण करनेवाले को अच्छा माने उससे अदत्तादान प्रत्ययिक कर्म बंधाते है यह सातवां अदत्तादान प्रत्ययिक क्रिया स्थानक कहा ॥ ९ ॥ आठवां अध्यात्मिक प्रत्ययिक नामक क्रिया स्थानक कहते हैं जिस

व० मत्यथिक आ० कही जाती है से० यह म० जैसे के० कोई० पु० पुरुष ण० नहीं है के० कोई वि० विर्षवाद कर स० स्वयं ही० हीन दी० दीन दु० दुष्ट दु० खराब मन वाला उ० अनवस्थित म० मन संकल्प चि० चिंता सो० सोक सा० सागर सं० प्रवेश किया हुआ क० हथेलीमें प० रहा हुआ मु० मुख अ० आत ध्यान उ० भाव भू० भूमिगत दि० दृष्टि झि० ध्यान त० उसका अ० अध्यात्मनी आ० इच्छाकारी च० चार ठा० स्थान ए० एसे मा० कहे जाते हैं त० वह ज० जैसे को० क्रोध मा० मान मा० माया ला० लोभ अ० अध्यात्मिक को० क्रोध मा० मान मा० माया लो० लोभ ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका अ० अध्य

त्थि आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे णत्थि ण केइ किं विसंवादेति, सयमेव हीणे, दीणे, दुट्ठे, दुम्मणे, उहयमणसंकप्पे, चिंतासोगसागरसंपविट्ठे, करतलपल्हत्थमुहे, अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठिए झियाइ, तस्सणं अज्झत्थया आससइया चत्तारि ठाणा एव माहिज्जइ तंजहा कोहे, माणे, माया, लोहे, अज्झत्थ मेव कोहमाणमाया लोहे, एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जति आहिज्जइ, अट्ठमे किरियाट्ठाणे अज्झत्थ व

भा० [illegible] होवे वैसा ही भाव मनमें उत्पन्न होवे तो उसे अध्यात्मिक क्रिया कहते हैं किसी पुरुषका किसीने पराभव नहीं किया है, तथापि वह पुरुष हीन, दीन, दुष्ट, व दुर्मन वाला होवे चित्त की अनवस्था से चिंता शोक रूप समुद्र में निमग्न बनकर हस्ततल पे मस्तक को रखता हुवा भूमि सन्मुख दृष्टि रखकर आर्त रौद्र ध्यान ध्यावे. उस समय उस के चित्तमें क्रोध, मान माया और लोभ इन चार प्रकार के ही उत्पन्न होवे

यिक सा० सावध भा करी जाती है अ अष्टम कि० क्रिया अ० अध्यात्मिक मनायिक आ० करी ॥ १० ॥ अ अब न० नवमी कि० क्रिया मा० मान मत्यायिक आ० करी जाती है से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष जा जातिमद से कु० कुल के मद से ब० बल का मद से रू० रूपमद से त० तप मद से सु० श्रुत का मद से ला० लाभ का मद से इ ऐश्वर्य का मद से प बुद्धिका मद से अ० अन्य प्रकार के म० मद से म० उन्मत्त बनकर प० दूसरे को हि हेलना करता है नि० निन्दा करता है खिं० खिजाता है ग० गर्हा करता है प पराभव करता है अ० अपमान करता है इ० दूसरे अ० यह

चिएत्ति आहिए ॥ १० ॥ अहावरे णवमे किरियाट्ठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ—से जहा णामए केइ पुरिसे जातिमएण वा, कुलमएण वा, बलमएण वा, रूवमएण वा, तवमएण वा, सुयमएण वा लाभमएण वा, इस्सरियमएण वा, पन्नामएण वा, अन्नत रेण वा, मयट्ठाणेण मत्तेसमाणे परं हिलेति, निंदति, खिंसति गरहति, परिभवइ, अवमण्णेति, इत्तरिए अय अहमंसि पुण विसिट्ठे, जाइकुलबलाइगुणोववेए, एव

इन चारों स ही जीवों को जो कर्म बंध होते हैं, उसे अध्यात्मिक क्रिया कहते हैं ॥१०॥ अब नवमा क्रिया स्थान कहते हैं कोई पुरुष जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य, प्रज्ञा व अन्य भी ऐसे किसी प्रकार के मद से मदोन्मत्त बनकर दूसरों की हेलना करे, निंदा करे, गर्हा करे, पराभवकरे अप

य में हूं, फिर वि० विशिष्ट जा० जाति कु० कुल ब० बलादि गु० गुण उ० युक्त ए० ऐसे अ० आत्मा को स० अभिमान करे दे० देह से चु० भ्रष्ट क० कर्म बि० दुसरा अ० परवश प० आता है ते० यह ज० जैसे ग० गर्भ से ग० गर्भ में ज० जन्म से ज० जन्म में मा० मृत्यु से मा० मृत्यु में ण० नरक से न० नरक में च० क्रोधी थ० करता च० चपली मा० मानी भ० होता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उसका अ० मत्यायिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है ण० नवमी कि० क्रिया ठा० स्थान मत्यायिक मा कही ॥ ११ ॥ अ० अब द० दशमी कि० क्रिया मि० मित्र दोष मत्ययिक आ० कही जाती है

अप्पाण समुक्कसे, देहाच्चुए कम्मबितिए अवसे पयाइ, तंजहा गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं, माराओ मारं, णरगाओ णरगं, चंडे, थद्धे, चवले, माणियावि भवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जति आहिज्जइ, णवमे किरियाट्ठाणे माणवत्तिएत्ति आहिए ॥ ११ ॥ अहावरे दसमे किरियाट्ठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए

मान कर, यह जाति कुलादि से हीन है मैं जाति कुल बलादिक गुणों से विशिष्ट हूं, ऐसा मद करे. इस तरह मद करनेवाला इस लोक में निन्दा को प्राप्त होता है, परलोक में भी निन्दा का स्थानक होता है और कर्म वश बन करके गर्भ से गर्भ, मरण से मरण, जन्म से जन्म, नरक से नरक, यों तीव्र दुःखों को भोक्ता बनता है ऐसा चपल, रौद्र, अहंकारी व स्तब्ध पुरुष निश्चय से ही ऐसी क्रिया बांधता है यह नवमा क्रिया स्थानक मान मत्ययिक कहा ॥ ११ ॥ अब दशवां क्रिया स्थानक मित्र दोष मत्यायिक कहते

से० हर ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष मा० माता के पि० पिता के भा० भाइ के भ० भगिनी के भ० भार्या के धू० पुत्री के पु० पुत्र के सु० पुत्रवधू के स० साथ स० रहता हुवा ते० उन में अ० दूसरे से अ० थोरा भी अ० अपराध स० स्वयं ग० बडा दं० दंड नि० देता है सं० यह ज० जैसे सी० शीतो दक वि० प्रासुक का० काया को उ० डुबायी हुयी भ० होती है उ० उष्णोदक से वि० प्रासुक का० काया को भो० सिंचा हुवा भ० होता है अ० अग्नि से का० काया को उ० उजला हुवा भ० होता है मो०

केइ पुरिसे माइहिं वा, पियाहिं वा, भाइहिं वा, भइणीहिं वा, भज्जाहिं वा, धूयाहिं वा पुत्तेहिं वा, सुण्हाहिं वा, सार्द्धं सवसमाणे तेसिं अन्नयरंसि, अहालहुगंसि, अवराहंसि सयमेव गरुय दंड निवत्तेति तजहा सीओदगवियडंसि वा काय उच्छोलित्ता भवति, उसिणोदगवियडेण वा काय ओसिंचित्ता, भवति अगणिकाएण काय उवडहित्ता भवत्ति, जोत्तेण वा, वेत्तेण वा, णेत्तेण वा, तयाइ वा, कसेण वा, छियाए वा,

है माता, पिता, भाइ, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू की साथ रहता हुवा किसी पुरुष का अजानपने से भी कोई छोटा अपराध करे तो क्रोधित बनकर उन को बडा भारी दंड देता है सो बतलाते हैं शीत ऋतु में ठंडा पानी में अपराधियों का शरीर डुबोवे उष्णकाल में उष्ण तेल या पानी से उन के शरीर का सिंचन करे, अग्नि से उन के शरीर को जलावे जोत्र, वेंत, छडी, त्वचा, चाबुक ...

जोम से बे० बेंत से बे० छडी से त० त्वचा से क० चाबुक से छि० लाठ से ल० बालु से पा० पाष उ० पछाडा हुवा म० होता है दं० दंड से अ० हडी से मु० मुष्टि से ले० पत्थर क० ठीकर से का० काया म० होता है प० अक्षम रहने से मु० मुमन वाला म० होता है त० तथा प्रकार पु० पुरुष जा० जाति स० रहता हुवा दु० दुर्मन वाला दं० दंड गु० बडा दं० दंड पु० प्रधान आ० करा इ० इस लो० लोक में सं० संज्वल को० कोपी पि०

ल्याए वा, पासाइ उद्दालित्ता भवति, दडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा,लेलूण वा, कवालेण वा, कायं आउट्टित्ता, भवति तहप्पगारे पुरिसजाए, संवसमाणे, दुम्मणा भवति पवसमाणे सुमणा भवति, तहप्पगारे पुरिस जाए,दडपासी, दडगुरुए, दड पुरक्खडे, आहिए इमंसि लोगंसि संजलणे कोहणे पिट्ठिमंसियावि भवति एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ दसमे किरियट्ठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आ-

बालु से उन के पीछे के भाग का उखेडनेवाला होवे, दण्ड, अस्थि, मुष्टि इत्यादि से उन के शरीर को पीडना करे. ऐसे मनुष्य की साथ रहते सज्जन पुरुष जो मात पितादिक हैं वे भी दुःखी होवे और उन को छोडने से सुखी होवे ऐसे अल्प अपराध का भी बडा दंड करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोक ऐसे दोनों लोक में अहितकारी है क्योंकि वे कम २ में [illegible] — अन्य की निन्दा करनेवाले

निम्नीक भ० होता है ए० ऐसे से० वह उ० उसको प० मत्यधिक सा० सावद्य आ० कहा जाता है द० सवी क्रिया मि० मित्र दोष मत्यधिक आ० कही ॥ १२ ॥ अ० अब ए० इग्यारहवी कि० क्रिया मा० माया मत्यधिक मा० कही जाती है से० जो० इ० यह भ० है गू० गुप्ताचारी त० अंधकार में वि_ चरने वाले उ० उलुक की प० पांख से ल० हलके प० पर्वत से गु० बडे ते० वे आ० आर्य सं० हैं अ० अनार्य मा० भाषा वि० बोलते हैं अ० दूसरे स० होवे अ० अपनेको अ० दूसरे म० मान

हिए ॥ १२ ॥ अहावरे एक्कारसमे किरियाट्ठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे भवंति गूढायारा तमोकासिया, उलुगपत्तलहुया, पव्वय गुरुया, ते आयरियावि संता अणारियाओ भासाओ विपउज्जति अन्नहा संतं अप्पाणं अन्नहा मन्नंति, अन्न पुट्ठ अन्नं वागरति, अन्न आइक्खियव्व अन्नं आइक्खंते । से जहा णामए केइ पुरिसे

होवे इस तरह वर्तनेवाले को जो सावद्य क्रिया लगती है उसे क्रिया स्थानक नामक मित्र दोष मत्यधिक कहा जाता है ॥ १२ ॥ अब इग्यारहवा माया मत्यधिक क्रिया स्थानक कहते हैं इस जगत् में जित नेक ठगारे, धूर्त, नाना प्रकार के उपायों से लोकों को ठगनेवाले, गुप्त कार्य करनेवाले, उलुक की पांख से हलके होने पर भी पर्वतसम माननेवाले, आर्य देश में उत्पन्न होने पर भी अनार्य भाषा बोलनेवाले वैसे ही लीपि भी ऐसी लिखनेवाले, स्वतः को अन्य माननेवाले हैं उन को कोई पुछे तो अन्य बात कहते हैं

है अ० दूसरा ,, पुछाया हुवा अ० दूसरा वा० कहते हैं अ० अन्य आ० कराये हुवे अ० दूसरा मा० करते हैं से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष अं० गुप्त स० शल्य से तं० उस स० शल्य को णो० नहीं स० स्वयं णि० दूरकरते हैं णो० नहीं अ० दूसरे से णि० दूरकराते हैं णो० नहीं प० विनाश होता है ए० ऐसा नि० छुपाते है अ० पीडाया हुवा अ० अन्दर २ में रि० रीसाता हैं ए० ऐसा मा० मायी मा० माया क० करके णो० नहीं आ० आलोवता है णो० नहीं प० प्रतिक्रमता है णो० नहीं णि० निन्दता है णो० नहीं ग० गर्हा करता

अंतोसल्ले त सल्ल णो सयं णिहरति णो अन्नेण णिहरावेति, णो पडिविद्धंसेइ, एवमेव निण्हावेइ अविउट्टमाणे अंतोअंतोरियाइ, एवमेव माई माय कट्टु, णो आलो एइ, णो पडिक्कमेइ णो णिंदेइ, णो गरहइ, णो विउट्टइ,, णो विसोहेइ णो

और जहां भी करने का है वहां उसे न करते दूसरा ही करते हैं जैसे युद्ध में से आया हुवा किसी शूरवीर पुरुष को उस के शरीर में तीर भाला आदि लोह के टुकडे रह गये होवे तो उस को नीकालने से वेदना होवेगी उस डर से वह स्वयं नीकाले नहीं वैसे ही अन्य को नीकालने का कहे नहीं तथा वैद्य की औषधियों से भी इस का विनाश नहीं होता ऐसा जानकर उसे छुपावे और उसे कोई पुछे तो भी अपना दुःख प्रगट करे नहीं, वैसे ही मायावी पुरुष अकार्य करके गुरु की पास आलोवे नहीं, आत्मा की साक्षि से निंदे नहीं, पर की साक्षी से गर्हे नहीं, शुभ भाव रूप पानी से अपना अतिचार

है णो० नहीं करता है णो० नहीं वि० विशुद्ध होता है णो० नहीं अ० नहीं करने को अ० सावधान होता है णो० नहीं अ० यथायोग्य त० तप क० कर्म का पा० प्रायश्चित प० अंगीकार करता है मा० मायी अ० इस लो० लोक में प० परिभ्रमण करे मा० मायी प० परलोक में प० परिभ्रमण करता है नि० निन्दता है ग० गर्हता है प० प्रशंसा करता है णि० रतिकरता है प० नहीं नि० निवर्तता है णि० किया हुआ दं० दंड को छा० छुपाता है मा० मायी अ० दूरकरे सु० शुभ लेश्या अ० होता है ए० ऐसे ख० निश्चय त० उनका त० प्रत्ययिक सा० सावद्य आ० कहा

अकरणाए अब्भुट्ठेइ, णो अहारिहं तवो कम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जइ माई अस्सिंलोए पच्चायइ माइ परंसिलोए पच्चायइ निंदइ, गरहइ, पसंसइ, णिच्चरइ, ण नियट्टइ णिसिरिय दंडच्छाएति, माई असमाहड सुहलेस्सेयावि भवइ, एवं खलु तस्स तप्पत्ति-

साफ करे नहीं, अकाय का नाश करने को ऊठे नहीं, तथा यथायोग्य तपकर्म रूप प्रायश्चित अंगीकार करे नहीं ऐसे मायावी इस लोक में अविश्वसनीय होवे, और पर लोक में भी नरकादि गति में पर लोक धारण कर परवश पन अनेक दु ख के भोक्ता बने और भी वह मायावी पुरुष पर की निन्दा व आत्मश्लाघा करे, अकार्य में आनन्द माने, अपना अपराध का छुपा रखे, और शुभ लेश्या का त्याग करे इस तरह मलीन अशुभ लेश्या में प्रवर्तनेवाले का कर्म बंध होवे यह इग्यारवी माया प्रत्ययिक

माता है ए० इग्यारवी कि० क्रिया म० माया प्रत्ययिक मा० कही ॥ ११ ॥ अ० अब बा० बारवी कि० क्रिया लो० लोभ प्रत्ययिक मा कही जाती है जे०जो इ०ये म० है तं०इस म०जैसे आ० आरण्यवासी आ० पर्णकुटीनिवासी गा० ग्रामनिवासी क० कितनेक र० रहस्य कार्य के करने वाले णो० नहीं ब० बहुत सं० संयमी णो० नहीं ब० बहुत प० प्रमादि स० सर्व पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्त्व से वे० वे अ० आत्मा को स० सत्य मो० मृषा वचन से ए० ऐसा वि० करते हैं म० मैं ण० नहीं ह० हनने योग्य अ० दूसरा ह० हनने योग्य अ० मैं ण० नहीं अ० आज्ञादने योग्य अ० अन्य अ०

पं सावज्जति आहिज्जइ, एक्कारसमे किरियाट्ठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए ॥ १२ ॥ अहावरे बारसमे किरियाट्ठाणे लोभवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे भवंति तंजहा आरण्णिया, आवसहिया, गामंतिया, कण्हुई रहस्सिया णो बहुसंजया णो बहुपडिविरिया सव्वपाणभूतजीवसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विउंजंति अहं ण हंत

क्रिया कही ॥ ११ ॥ अब बारहवा लोभ प्रत्ययिक क्रिया स्थानक कहते हैं कितनेक अरण्य में वास करने वाले, कितनेक पर्णकुटी में रहनेवाले, कितनेक ग्राम के नजीक में वास करके रहनेवाले, और कितनेक गुप्त कार्य करनेवाले साधु सब त्रस जीवों की विराधना नहीं करते हैं, परंतु एकेन्द्रियादिक की विराधना से अपनी रक्षा करनेवाले होते हैं वे सर्वथा संयमी नहीं है सर्वथा सर्व प्राण भूत जीव व सत्त्व की हिंसा से नहीं निवर्ते

आज्ञा देने योग्य अ० में न० नहीं प० ग्रहण करने योग्य अ० अन्य प० ग्रहण करने योग्य अ० में न० नहीं प० परिताप कराने योग्य अ० अन्य प० परिताप कराने योग्य अ० में न० नहीं उ० उद्वेग उपजाने योग्य अ० अन्य उ० उद्वेग उपजाने योग्य ए० ऐसे ते० वे इ० काम भोग में मु० मूर्च्छित गि० गृद्ध ग० आसक्त ग० गर्हने योग्य अ० एक चित्तीभूत जा० यावत् वा० वर्ष च० चार पं० पांच छ० छ द० दस अ० अल्प काल भु० दीर्घ काल भु० भोगकर भो० काम भोग को का० काल के अवसर में का० काल करके अ० अन्य आ० आसुरिक कि० किल्विषी ठा० स्थान में उ० उपजने वाला भ० होता है त० वहां से

व्वो अक्षेहतव्वा, अहं ण अज्जावेयव्वो अन्ने अज्जावेयव्वा, अहं ण परिघेतव्वो अन्ने परिघेतव्वा, अहं ण परितावेयव्वो अन्ने परितावेयव्वा, अहं ण उद्दवेयव्वो अन्ने उद्दवेयव्वा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया, गिद्धा, गढिया, गरहिया, अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं, अप्पयरो वा भुज्जयरो वा भुंजित्तु भोगभोगाइं कालमासे

रना नहीं, हम को आज्ञा देना नहीं, हम को परिताप उपजाना नहीं, तथा हम को उपद्रव करना नहीं, परंतु अन्य छद्र प्राणी को हणना, मारना, परिताप देना, उद्वेग उपजाना ऐसा उपदेश करनेवाले मूढ स्त्रियादिक काम भोगों में मूर्च्छित, आसक्त, व एकचित्तीभूत बनकर के पांच दश वर्ष यावत् थोडा कालतक एकमास छोड और पासड से कामभोगों को भोगव कर काल के अवसर में काल करके बाल तप के प्रभाव से आसुरिक किल्विषी देवमें उत्पन्न होवे और वहांसे चवकर मनुष्य भव मिलभी जाय तो काना

नि कफर मु०मारंजार ए विरूप मू०मूक त०जात्य जा०जन्मने मूक प०परि भ्रमण करते हैं ख०निश्चय त० उनका स० मत्यायिक सा० सावद्य मा० कहा जाता है पु पापकी कि० क्रिया गो लोभ मत्यायिक आ० करी ॥ १४ ॥ इ० ये दु बारह क्रि० क्रिया द० मुक्ति के योग्य स० श्रमण मा० ब्राह्मण ने न० सम्यक् स० अच्छी तरह यात म० होती हैं ॥ १५ ॥ अ० अब ते० तेरवी कि० क्रिया इ० इर्या पथिक मा० कही जाती है इ० यहां स० निश्चय अ० आत्मा के लिये सं० ॥ग्रही की अ० अनगार की इ० इर्या

काल किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणसु उववत्तारो भवति ततो विप्प-मुच्चमाण भुज्जो २ एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायाति, एवं खलु तस्स तप्पत्तिय सावज्जति आहिज्जइ, दुवालसमे किरियाट्ठाणे लोभवत्तिएत्ति आहिए ॥१४॥ इच्चियाइं दुवालस्स किरियाट्ठाणाइं दविएण समणेण वा माहणेण वा सम्म सुपरिजाणि यव्वाइं भवति ॥ १५ ॥ अहावरे तेरसमे किरियाट्ठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अत्तताए संवुडस्स अणगारस्स इरिया समियस्स भासा समियस्स, एस

गुंगा मार्त्य, प नम्म पधिर होवे इस तरह से फीर यहां आते हैं और उन को जो कर्म बंधता है उसे लोभ मत्ययिक कहते हैं ॥ १४ ॥ मुक्ति गमन योग्य साधु उक्त द्वादश क्रिया का ज्ञपरिज्ञासे संसार का कारण जानकर मत्याख्यान परिज्ञासे छोडे ॥ १५ ॥ अब ईर्यापथिक नामक तेरवी क्रिया का स्वरूप कहते हैं अपनी आत्मा का उद्धारक लिये मन, वचन, व काया के योगों को रुंधन करने वाला साधु को यह क्रिया

समितिवंत को भा० भाषा समितिवंत का ए० एषणा समितिवंत को आ० आदान भंड निक्षेपन समितिवंत का उ० बडीनीत पा० लघुनीत खे० खेल ज० मेल प० परिठावणिया स० समिति वंत को म० मन समितिवंत को व० वचन समितिवंत को का० काया समितिवंत को म० मनगुप्तिवंत को व० वचन गुप्तिवंत को का० काया गुप्तिवंत को गु० गुप्तेन्द्रिय को गु० ब्रह्मचारी को आ० उपयोग सहित ग चलने वाले को आ० उपयोग सहित चि० खडा रहने वाले को आ० उपयोग सहित णि० बैठने वाले को आ० उपयोग सहित तु० सोने वाले को आ० उपयोग सहित

णासमियस्स आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमियस्स, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्ल परिट्ठावणियासमियस्स, मणसमियस्स वयसमियस्स, कायसमियस्स मणगुत्तस्स, वय गुत्तस्स, कायगुत्तस्स, गुत्तिंदियस्स, गुत्तबंभयारिस्स आउत्तगच्छमाणस्स, आउत्तचि-ट्ठमाणस्स, आउत्तणिसियमाणस्स आउत्ततुयट्टमाणस्स, आउत्तंभुज्जमाणस्स, आउ

लगती है ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भंड मात्रा निक्षेपन समिति, उचार पासवर्ण खेल जल परिठावणिया समिति, मन समिति, वचन समिति, व काया समिति से सहित तथा मन गुप्ति वाला, वचन गुप्ति वाला, और काय गुप्ति वाला, गुप्तेन्द्रिय, विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालने वाला, उपयोग से चलने वाला, खडा रहने वाला, बैठने वाला, सोने वाला, भोजन करने वाला, बोलने वाला तथा उपयोग स

मु० खाने वाले को मा० उपयोग सहित मा० बोलने वाले को भा० उपयोग सहित व० वस्त्र प० पात्र कं० कंबल पा० रजोहरण गि० ग्रहण करने वाले को णि० रखने वाले को जा० यावत् च० चक्षुसे प० निमेष मारने वालेको अ०है वि विविध मायावाली सु सूक्ष्म कि क्रिया इ० ईर्या पथिक क० करवाते सा०वह प० प्रथम स० समय में ब० बधाइ पु० स्पर्शाइ बि० द्वितीय स० समय में वे० वेदाइ त० तीसरा स० समयमें णि०निर्जराइ सा०वह ब०बधाइ पु०स्पर्शाइ उ०उदीराइ वे०वेदाइ णि०निर्जराइ से०योग का० समय में अ० कर्म रहित म होवे है ए० ऐसे स० निश्चय त० उसका त० मत्यायिक सा० सावद्य आ० कही

चंभासमाणस्स, आउत्तवत्थ, पडिग्गहं, कंबल, पायपुंछण, गिण्हमाणस्स वा, णिक्खि वमाणस्स वा, जाव चक्खुपम्हणिवायमवि अत्थिविमाया सुहुमा किरिया इरियावहि- या नाम कज्जइ, सा पढमसमए बद्धा पुट्ठा, बितीयसमए वेइया, तइयसमए णि ज्जिणा सा बद्धा, पुट्ठा, उदीरिया, वेइया, णिज्जिणा, सेयं काले अकम्मयावि भवंति एवं ख- लु तस्स तप्पत्तिय सावज्जति आहिज्जइ, तेरसमे किरियाट्ठाणे इरियावहिएत्ति आहिए

ति यह, पात्र, कम्बल, रजोहरण लेनेवाला व रखनेवाला यावत् चक्षु को खोलते बंध करते उप योग रखनेवाला साधु को विविध प्रकार की मायावाली सूक्ष्म ईर्यापथिक क्रिया लगती है वह क्रिया जीव को पहिले समयमें बंधाती है तथा स्पर्शाती है दूसरे समय में वेदाती है और तीसरे समयमें निर्जरती है इस तरह क्रिया बंधाने से, वेदाने से, और निर्जरने से तीसरे समय में जीव कर्म रहित होता है

माती है ते० तेरवी कि० क्रिया ई० ईर्यापथिक आ० कही ॥ १६ ॥ से० वह बे० कहता हूं जे० जो अ० अतीत जे० जो प वर्तमान जे० जो आ० आगामिक अ० अर्हत भ० भगवन्त स० सर्व ते० वे ए० इस ते० तेरह कि० क्रिया भा० कही भा० कहते हैं भा० कहेंगे प० प्ररूपी प० प्ररूपते हैं प प्ररूपेंगे ते० तेरवी कि० क्रिया को से० सेवन की से० सेवन करते हैं से० सेवन करेंगे ॥ १७ ॥ अ० अब उ० उपर पु० पुरुष वि० अस्य सस्य वि० विचार भा० कहूंगा इ० यहां स० निश्चय पा० विविध प० प्रज्ञा पा० विविध छं० आचार पा०

॥ १६ ॥ से बेमि जेय अतीता जेय पडुपन्ना जेय आगमिस्सा अरिहंता भगवंता सव्वे ते एयाई चेव तेरसकिरियाट्ठाणाइं भासिंसु वा, भासेंति वा, भासिस्संति वा, पन्नविंसु वा पन्नविंति वा, पन्नविस्संति वा, एवं चेव तेरसम किरियाट्ठाण सेविंसु वा, सेवंति वा सेविस्संति वा ॥ १७ ॥ अदुत्तर च ण पुरिसविजय विभंग माइक्खिस्सामि, इह खलु पाणापण्णाण, पाणाछंदाणं, पाणासीलाण, पाणादिट्ठीणं, पाणारूईण,

यह क्रिया वीतराग को ही होती है यह तेरवी क्रिया ईर्यापथिक नाम की कही ॥ १६ ॥ भूत, भविष्य और वर्तमान काल के तीर्थंकरोंने यही तेरह प्रकार की क्रिया फरमाई है, फरमाते हैं, और फरमावेंगे, और तरवी क्रिया का सेवन गतकाल में किया, करते हैं और करेंगे जैसे जम्बूद्वीप में दो सूर्य प्रकाश करते हैं, वैसे ही भूत, भविष्य, व वर्तमानकाल में विचरनेवाले तीर्थंकर एक सरिखा उपदेश करते हैं ॥ १७ ॥ उक्त तेरह प्रकार की क्रिया सिवाय जो कोई अन्य पापस्थान रहे हुवे हैं सो बतलाते हैं अब अस्य

विवि० सी० सीस णा० विविध दि० दृष्टि णा० विविध रु० रुचि णा० विविध आ० आरंभ णा० विविध अ० अध्यवसाय [स० सहित पा० विविध पा० पाप सु० श्रुताध्ययन ए० ऐसे भ० होता है तं० वह ज० जैसे भो० भूमिकंप उ० उत्पात सु० स्वप्न अं० उल्कापात अं० अंग स० स्वर ल० लक्षण व० व्यंजन इ० स्त्री के लक्षण पु० पुरुष के लक्षण ह० अश्व के लक्षण ग० हस्ति के लक्षण गो० वृषभ के लक्षण मि० अजा के लक्षण कु० कुर्कट के लक्षण ति० तितर के लक्षण व० बटेर के लक्षण ला० लावक के लक्षण च०

णाणारंभाणं णाणाज्झवसाणं, सहुचाणं णाणाविहपावसुयाज्झयणं एवं भवइ, तंजहा भोमं, उप्पायं, सुविणं, अंतलिक्खं, अंग सर लक्खणं, वंजणं, इत्थिलक्खणं, पुरिस लक्खणं, हयलक्खणं, गयलक्खणं गोणलक्खणं, मिंढलक्खणं, कुक्कुडलक्खणं, ति त्तिरलक्खणं वट्टगलक्खणं लावयलक्खणं, चक्कलक्खणं, छत्तलक्खणं, चम्मलक्खणं

मत्वंस पुरुष का ज्ञान व क्रिया विशेष कहेंगे इस लोक में विविध प्रकार की प्रज्ञावाले, विविध प्रकार के अभिप्रायवाले, नाना प्रकार के आचारवाले, नाना प्रकार की दृष्टिवाले, नाना प्रकार की रुचिवाले, नाना प्रकार का आरंभ करनेवाले, और नाना प्रकार के अध्यवसाय से युक्त पुरुषों इस तरह के पाप सूत्रों का अध्ययन करते हैं जैसे कि—(१) भूमि कंपादिक ग्रंथ, (२) उत्पात आकाश से रुधिरवृष्ट्यादिक का होना (३) स्वप्न, (४) आकाश में उल्कापातादि चिन्ह बतानेवाला (५) अंग नेत्र स्फुरणादिक (६)

च० चम्म क लक्षण छ० छत्र के लक्षण च० चर्म के लक्षण द० दंड के लक्षण अ० असि के लक्षण म० मणि क लक्षण का० कागणि के लक्षण सु० सौभाग्य मन्त्र दु० दौर्भाग्य मन्त्र ग० गर्भ का मंत्र मो० मोहिनी मंत्र आ० अनर्थ कर्त्ता पा० इन्द्र जाल द० द्रव्य होम ख० क्षत्रिय विद्या च० चन्द्र चलन सू० सूर्य चलन सु० शुक्र चलन व० वृहस्पति चलन उ० उल्कापात दि० दिशा दाह मि मृगचक्र वा वायस

दंडलक्खण, असिलक्खण, मणिलक्खण, कागिणिलक्खण, सुभगाकरं, दुब्भगाकरं, गब्भाकरं मोहणकरं आहव्वणिं, पागसासणिं दव्वहोमं, खत्तियविज्जं, चंदचरियं, सूरचरियं, सुक्कचरियं, वहस्सइचरियं, उक्कापायं, दिसादाहं, मियचक्कं, वायसपरिमंडलं

काक शिवादिक स्वर विचारण (७) पद, पत्र शंख चक्रादिक लक्षण, (८) ममातिलकादिक व्यंजन (९) स्त्री के लक्षण (१०) पुरुष के लक्षण (११) अश्व के लक्षण (१२) हस्ती के लक्षण (१३) गो वृषभ के लक्षण, (१४) बकरे के लक्षण, (१५) कुक्कुट के लक्षण (१६) तितर के लक्षण (१७) बटेर के लक्षण (१८) लवे क लक्षण (१९) चक्र के लक्षण, (२) छत्र के लक्षण (२१) चर्म के लक्षण, (२२) दंड के लक्षण (२३) खड्ग के लक्षण (२४) मणि के लक्षण (२५) कागणी के लक्षण मन्त्र मंत्र विद्या करते हैं [१] सौभाग्य बताने का मंत्र, [२] दौर्भाग्य बताने का मंत्र [३] गर्भ धारन कराने का मंत्र [४] मोहनी मंत्र अथवा वेद का संग्रह होवे ऐसा मंत्र [५] अनर्थ करनेवाली विद्या

आहार के लिये प० प्रकाशते हैं पा० पानी के लिये प० प्रकाशते हैं व० वस्त्र के लिये प० प्रकाशते हैं ले० उपाश्रय के लिये प० प्रकाशते हैं स० शयन के लिये प० प्रकाशते हैं अ० और भी वि विविध का० काम भोग के लिये प० प्रकाशते हैं ति० असुरूप वे० उस वि० विद्याको से० सेवते हैं ते च अ० अनार्य वि विपरीत का० काल के समय में का० काल करके अ० अन्य आ० आसुरिक कि० किल्विषीक ठा०

आओ विज्जाओ, अन्नस्स हेउं पउंजति, पाणस्स हेउं पउंजंति, वत्थस्स हेउ पउजति, लेणस्स हेउ पउंजंति, सयणस्स हेउं पउजति, अन्नेसिं वा विरूवरूवाणं कामभोगाणं हेउ पउंजति, तिरिच्छं ते विज्जं सेवेंति ते अणारिया विप्पडिवन्ना कालमासे कालंकिच्चा

[३] गांधारी [११] अवपातिनी नीचे गिराने की विद्या [१२] उत्पातिनी ऊंचे जाने की [१३] जृंभणी [१४] स्तंभनी [१५] श्लेषणी [१६] आमय करणी [१७] विशल्य करणी [१८] प्रक्रामिणी [१९] अन्तर्धान करणी [४०] आयमनी तथा और भी मन्त्रप्पादिक विद्याओंवाले शास्त्रों का अध्ययन करे अध्ययन करके यदि वे अन्न, पानी, वस्त्र, उपाश्रय, शयन, तथा विविध प्रकार के कामभोगों के लिये उन विद्याओं को प्रयुंजे अथवा सदनुष्ठान की घात करनेवाली विद्याओं का सेवन करे तो आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होने पर भी अनार्य के कार्य करनेवाले कहाये गये हैं वे अवसर के अवसर में काल करके अज्ञान तप के प्रभाव से आसुरिक किल्विषी देवलोक में उत्पन्न होवे. वहां से चवकर म प्य लोक ।

स्थान में उ० उपजने वाले भ० होते हैं त० तहां से वि० छूटकर मु० फिर ए० बधिर मू० मूक त० अंधे प० परिभ्रमण करते हैं ॥ १८ ॥ से० वे ए० कितनेक आ० आत्मा के लिये णा० ज्ञाति के० किये स० स्वजन के० लिये अ० गृह के लिये प० परिवार के लिये ना० परिचित स० पड़ोसी णि० नेश्राय अ० अथवा अ० पीछे जाने वाला उ० उपचारक प० भांति पन्थिक सं० चोर ग० ग्रन्थि छेद उ० घरों से

अन्नयराइं आसुरियाइं, किब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति, ततोवि विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए तमअंधयाए पच्चायंति ॥ १८ ॥ से एगइओ, आयहेउं वा, णायहेउं वा, सयणहेउं वा, अगारहेउं वा, परिवारहेउं वा, नायगं वा, सहवासियं वा, णिस्साए अदुवा अणुगामिए, अदुवा, उवचरए, अदुवा पाडिपहिए, अदुवा संधिच्छेदए, अदुवा गंठिच्छेदए, अदुवा उरब्भिए, अदुवा सोवरिए, अदुवा वागुरिए अदुवा सोउणिए

गुंगे, बहिरे, अंधे होवे बाद में नरक तिर्यचादिक गति में परिभ्रमण करे. यह अधर्मपक्ष आश्रित-गाथा ॥ १८ ॥ इस जगत् में जी को पाप का विपाक कहा अब गृहस्थ को उद्देश कर अधर्म पक्ष कहते हैं ॥ १८ ॥ इस जगत् में कितनेक निर्दय मनुष्यों परभव का डर बिलकुल नहीं रखते हुवे अपने लिये, ज्ञाति के लिये, स्वजन के लिये, गृह के लिये, परिवार के लिये, परिचित पुरुष के लिये, तथा पड़ोसी के लिये (१) अकार्य करने वाले की पीछे जावे, (२) अकार्य के लिये अनेक उपचारों करे, (३) पथिक जनकी सन्मुख जावे (४) घरों आदि में अजीविका करे (७) ग्रन्थि छेद करे (८) मृग आदि

भार्जीविका करने वाला सो० सुवर से निर्वाह करने वाला वा० वाघरी सो पाश नाखने वाला म० माछी गो० गोघातक मो० गवली सो० श्वान से निर्वाह करने वाला सो० श्वान से शिकार करने वाला ॥ १९ ॥ से० वह ए अकेला आ० जाने वाला का म भाव को प० जानकर त उस को आ० जाने वालाको आ० आवे ह० हरने वाला छे० छेदने वाला भे० भेदने वाला लुं० काटने वाला वि० टुकडा करने वाला उ० उद्वेग उप जाने वाला आ० आहार आ० आहार करता है ऐसा से० वह म० महान् पा० पाप क० कर्म से म

अदुवा मच्छिए अदुवा गोघायए, अदुवा गोवालयए, अदुवा सोवणिए, अदुवा सा वणियतिए ॥ १९ ॥ से एगईओ आणुगामियभाव पडिसधाय तमेव आणुगामियाणु-गामियं हता, छेत्ता, भेत्ता, लुपइत्ता, विलुपइत्ता, उद्दवइत्ता, आहार आहारेति इति से

का कार्य करनेवाले वाघरी होवें (९) पक्षियों को पाशमें डालने वाले होवें, (१०) मच्छिमार होवें, (११) गोघातक कसाई होवें, (१२) गोपाल होवें, (१३) कुत्ते को रखनेवाले होवें अथवा (१४) कुत्ते से शिकार खेलनेवाले होवें सब मिल कर ऐसे चवदह प्रकार से बहुत जीवों का विनाश करे ॥ १९ ॥ अन्य ग्रामान्तर जानेवाला पुरुष की पास द्रव्य है ऐसा जानकर कोई पुरुष उस की पीछे २ जावे फिर उस को विश्वासु बनाकर हणे, छेदे, भेदे, लूंटे, उपद्रव करे और उस का धन लेकर उस को अनेक प्रकार के भोगोपभोग में लगावे इस तरह वह क्रूर पापकर्मानुष्ठान से अपना आत्मा को नरक

आत्माको उ०नासने वाला भ०होता है (१) से वह ए०अकेला उ०उपचरक भावको प०जानकर उ० उसका उ उपचरकको ह० हणने वाला छे०छेदनेवाला भे० भेदने वाला लुं काटने लला वि० टुकडा करने वाला उ उन्हे उपजाने वाला आ० आहार आ० आहार करता है० इ० ऐसा पूर्ववत् (२) से० वह ए० अकेला पा० प्रतिपन्थिकभाव को प० जानकर तं० उस को पा० सन्मुख हो कर ह० पूर्ववत्

महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता भवइ (१) से एगईओ उवचरयभाव पडिसधाय, तमेव उवचरिय हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपइत्ता, विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता आहार आहारेंति इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता भवइ (२) से एगइओ पाडिपाहियभाव पडिसधाय तमेव पाडिपहे ठिच्चा हंता,छेत्ता,भेत्ता,लुंपइत्ता,विलुंपइत्ता, उद्दवइत्ता आहार आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता भवइ

विषयादि भाव में डाले (१) कोई पुरुष धनवन्त पुरुष को ठगने के लिये उपचारक भाव से विश्वास उपजाकर उस को हणे, छेदे, भेदे, लूंटे, उपद्रव करे और उस का धन लेकर अनेक प्रकार के कामभोग भोगवे इस तरह से वह पुरुष क्रूर कर्म करके नरकादिक गति में जावे (२) ऐसे ही किसी द्रव्यवन्त पुरुष को ग्रामान्तर जाते देख उन के मार्ग में सन्मुख आकर खडा रहे और उसको विश्वास देकर फिर हणे, छेदे, भेदे, लूंटे, उपद्रव करे, और उस का धन लेकर भोगोपभोग भोगवे ऐसा क्रूर कर्मका करने

[१] से० वह ए० अकेला से० चोर का भाव को पं० जानकर तं० उस को सं चोरी छे पूर्ववत् (४) से वह ए० अकेला गं० ग्रन्थि छेदने का भाव को प० जानकर त० उस गं० ग्रन्थि को छे० पूर्ववत्(५) से० वह ए० अकेला उ० बकरे से निर्वाह चलाने वाले का भाव को प० जानकर उ० बकरे को पा०

(३) से एगइओ संधिच्छेदगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ४ ॥ से एगइओ गंठिच्छेदभावं पडिसंधाय तमेव गंठिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ (५) से एगइओ उरब्भियभावं पडिसंधाय उरब्भं वा अण्णतरं तसं पाणं हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (६) (एसो अभिलावो सव्वत्थ) से

वाला नरकादि गति में उत्पन्न होवे (३) किसी पुरुष के घर में द्रव्यादि वस्तु जानकर खातादि लगाकर उसे छेदे, भेदे यावत उपद्रव करे, और उस धन को अपना भोगोपभोग में खर्च करे ऐसा क्रूर कर्म करनेवाला नरकादि गति में जाता है (४) कोई पुरुष गंठी छोड का भाव धारण कर अनेक उपायों से लोकोंको रुपे, छेदे भेदे यावत नरकादि में दुःख भोगवे (५) बकरें आदि के मांस से आजीविका करने

अथवा अ० अन्यतर त० त्रस पा० प्राणी को ६० पूर्ववत् ए यह अ० अभिलाप स० सर्वत्र (६) से० वह ए० अके ला सो सूवरसे निर्वाह करने वालाका भा० भावको प० जानकर म महिष अ० अन्य व त्रस पा० पूर्ववत् (७) से० वह ए० अकेला वा० वागुरी का भाव को प० जानकर मि० मृगको अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् [८] से० वह स० पाश नाखने वाला का भाव को प० जानकर स० पक्षि को अ० अन्य त० त्रस पा० प्राणी का ६० पूर्ववत् [९] से० वह ए० अकेला मि० मच्छी मार का भा० भाव को प० जानकर म०

एगइओ सोवरियभाव पडिसधाय महिस वा अण्णतर वा तस पाण जाव उवक्खाइत्ता भवइ (७) से एगईओ वागुरियभाव पडिसधाय मियवा अण्णतर वा तस पाणं ह ता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (८) से एगइओ सउणियभाव पडिसधाय सउणिवा अण्णतर वा, तस पाण हंता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (९) से एगईओ मिच्छिय

घात करें तथा अन्य त्रसप्राणी की घात करे जिस से यह नरकादिक के दुःख भोगवे (६) कोई पुरुष सोकरिक अर्थात् खाटकी का भाव अंगीकार करके महिषादिक त्रस प्राणी को हणे, छेदे, भेदे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (७) कोई पुरुष वागुरीभाव को धारण कर मृगादिक त्रस प्राणी की घात करे, छेदे, भेदे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (८) कोई पुरुष पक्षियों का विनाश कर आजीविका करे यावत् संसारमें परिभ्रमण करे (९) कोई अधम प्राणी बनकर मच्छिमारिक जलचर प्राणीको हणे यावत्

मच्छको अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (१०) से वह ए० अकेला गो० गोघातक का भा० भाव को प० मानकर व उस गो० गौको अ० अन्य व० त्रस पा० पूर्ववत् (११) से० वह ए० अकेला गो० गवली का भाव को प० मानकर से० उस को गो० गौको प प हरकर २ इ० पूर्ववत् (१२) से० वह ए० अकेला सो० श्वान से निर्वाह चलाने वाले का भा भाव को प० मानकर त० उस पु० पशु आदि को अ० अन्य व० त्रस पा० पूर्ववत् (१३) से० वह ए० अकेला सो० श्वान से

भाव पडिसधाय मच्छ वा अण्णतर वा, तस पाण हता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (१०) से एगइओ गोघायभावं पडिसधाय तमेव गोणंवा अण्णयरं वा तसं पाण हता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (११) से एगइओ गोवालभाव पडिसधाय तमेव गोवालं वा परिजविय परिजविय हता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (१२) से एगइओ सोवणि-य भाव पडिसधाय तमेव सुणग वा अन्नयर वा तस पाण हता जाव उवक्खाइत्ता भवइ (१३) से एगइओ सोवणियंतिय भावं पडिसधाय तमेव मणुस्स वा अन्नयरं

संसार में परिभ्रमण करे (१०) कोई अधर्मी क्रूरकर्म का करनेवाला गाय आदि त्रस प्राणी को हणे, छेदे, भेदे यावत् संसारमें परिभ्रमण करे (११) कोई गोपाल बनकर के क्रोध के वशीभूत हो गोकुलमें से किसी गो आदि को हणे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (१२) कोई पुरुष श्वानसे आहार करने की इच्छा से अनेक जीवों को हणे यावत् संसार में परिभ्रमण करे (१३) कोई पुरुष श्वान का परिवार रखे और

शिकार करने वाले का मा० मार को प० जानकर तं० उस प० पथिक को अ० अन्य त० त्रस पा० पूर्ववत् (१४) ॥ २० ॥ से० वह ए० अकेला प० परिषदा में से उ० उठकर अ० मैं ए० इस को ह० हणता हूं त्ति ऐसा क० करके ति० तितर व० बटेर ला० लवा क० कपोत क० परेवा अ० दूसरा भी त० त्रस पा० पूर्ववत् ॥ २२ ॥ से० वह ए० अकेला क० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध ख० अल्प दान से सु० कोशादिक से गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का स०

या तस पाण हता जाव आहार आहरेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताण उ वक्खाइत्ता भवइ (१४) ॥ २० ॥ से एगइओ परिसामज्झाओ उट्ठित्ता अहमेय हणामि त्तिकट्टु तित्तिरं वा, वट्टगं वा, लावगं वा, कवोयगं वा, कविंजलं वा, अन्नयरं वा तसं पाणं हता जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ २१ ॥ से एगईओ केणइ आयाणेण

स्थान से ही आनेवाले पथिक को या अन्य किसी को हणे यावत् संसार में परिभ्रमण करे ये आजीविका निमित्त पाप के कारण कहें ॥ २० ॥ पूर्वोक्त हिंसा लोक में मच्छपने की जाति है अब आगे जो हिंसा के कारण बताते हैं सो मगरूपने कियेजाते हैं जैसे कोई पुरुष मांस भक्षण की इच्छासे अथवा क्रीडा निमित्त बहुत मनुष्यों की परिषदामें से उठकर और मैं अमुक प्राणी की घात करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा कर तीतर, कपोत, लवा, बटेर या अन्य त्रस प्राणी को छेदे, भेदे यावत् संसार में परिभ्रमण करे ॥ २१ ॥ कोई क्रोधी पुरुष सदा

स्वयं अ० अग्नि से स० धान्य ज्झा० जलाता है अ० दूसरे से अ० अग्नि से स० धान्य ज्झा० जलवाता है अ० अग्नि से स० धान्य ज्झा० जलाते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा स० वह म० पूर्वसम् से वह ए अकेला के० कोई आ कारण से वि विरुद्ध अ० अथवा अ० अल्प दान से सु० कोधादिक से गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का उ० ऊट के गो वृषभके घो० अश्व ग० गर्दभ स० स्वयं पू० शरीर के अवयव क० काटता है अ० दूसरे से क० कटवाता है क० काटते

विरुद्धेसमाणे अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुराथालएण, गाहावतीण वा, गाहावइ पुत्ता ण वा, सयमेव अगणिकाएणं सस्साइ ज्झामेइ अन्नेणवि अगणिकाएण सस्साइ ज्झा मावेइ अगणिकाएणं सस्साइ ज्झामंतपि अन्नं समणुजाणइ, इति से महया पाव- कम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता भवइ ॥ से एगइओ केणइ आयाणे णवा विरुद्धेसमाणे अदुवा खलदाणेण, अदुवा सुराथालएण, गाहावतीण वा, गाहावइ पुत्ताणवा, उट्टाणवा, गोणाणवा, घोडगाणवा, गद्दभाणवा, सयमेव घूराओ कप्पेति,

हुवा धान्य का दान मिलने से (खला में अल्प अन्न मिलने से) अथवा अधिकारादिक में इच्छित लाभ की प्राप्ति नहीं होने से गृहस्थका या गृहस्थ पुत्र का खला में रहाहुवा धान्यको स्वय जाले, दुसरेसे जलावे और जालते का अच्छा जाने इस तरह महान पापों से अपना आत्मा को बांधे यावत् संसार में परिभ्रमण करे

म० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० पूर्ववत् से० वह प० अकेला के० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध स० अल्प दान से इ० क्रोधादिक से गा० गृहस्थ की गा० गृहस्थ के पुत्र की उ० उंटशाला गो० गौशाला घो० अश्व शाला ग० गर्दभ शाला क० कांटेसे प० ढांक करके स० स्वयम् अ० अग्नि से झा० जलाता है अ० दूसरे से झा० जलाता है झा० जलाते अ० दूसरे को स० अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० पूर्ववत् से० वह प० अकेला आ०

अन्नेणवि कप्पावेंति, कप्पंतंपि अन्न समणुजाणइ, इति से महया जाव भवइ॥ से एगइओ केणइ आयाणेणवा विरुद्धे समाणे, अदुवा खलदाणेणं, अदुवा सुरायालएण गाहावतीणवा, गाहावइ पुत्ताणवा, उट्टसालाओवा, गोणसालाओवा, घोडगसालाओवा, गद्दमसालाओवा, कंटकबोंदियाए पडिपेहित्ता, सयमेव अगणिकाएण झामेइ, अन्नेणवि झामावेइ, झामंतंपि अन्न समणुजाणइ, इति से महया जाव भवइ ॥ से एगइओ केणइ आयाणेण विरुद्धे

इसीतरह क्रुद्ध बना हुवा कोई पुरुष गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र के उंट, घोडा, वृषभ, व गर्दभ के अंगोपांग स्वय छेदे, अन्य की पास छेदावे और छेदनवाले को अच्छा जाने यावत् महान पाप उपार्जन करे और भी वह पुरुष गृहस्थ की उंटशाला, वृषभशाला, अश्वशाला या गर्दभशाला को कंटक से बंध करके आगे लगावे, अन्य की पास आगे लगावे और अग्नि लगानेवाले को अच्छा जाने यावत् पाप उपार्जन करे.

कारण से वि० विरुद्ध भ० अथवा स्व० अल्प दान से मु० कोशादिक से गा० गृहस्थ का मा० गृहस्थ के पुत्र का कु० कुंडल म० मणि मो० मौक्तिक स० स्वय अ० हरता है अ० दूसरें से अ० हरावा है अ० हरते को अ० दूसरे को स० अच्छा मानता है इ० ऐसा से० वह अ० पूर्ववत् से० वह ए० अकेला के० कोई आ० कारण से वि० विरुद्ध को अ० अथवा स्व० अल्प दान से मु० कोशादिक स श्रमण का मा० माहण का छ० छत्र दं० दंड मं० पात्र म० मात्र छ० लकडी भि० आसन

समाणे, अदुवा खलदाणेण, अदुवा सुरायालएणं गाहावतीणवा, गाहावइ पुत्ताण वा, कुंडल वा, मणिवा, मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ, अन्नेणवि अवहरावेइ अवहरतपि अन्न समणुजाणइ इति से महया जाव भवइ ॥ से एगइओ केणइवि आयाणेण विरुद्धेसमाणे, अदुवा खलदाणेण, अदुवा सुरायालएण, समणेण वा, माहणेण वा, छत्तग वा, दडग वा भडग वा, मत्तग वा, लट्ठिवा भिसिग वा, चे

ऐसा पुरुष गृहस्थ के कुंडल, मणि, रत्न, मोती या अन्य आभरणों स्वयं हरण करे अन्य की पास हरण करावे, और हरण करनेवाले को अच्छा जाने यावत् पाप उपार्जन करे ऐसे ही कोई पुरुष श्रमण माहण के छत्र, दंड, पात्र, मात्र, लकडी, पाट, वस्त्र, आच्छादन का वस्त्र, चर्म, चर्म छेदनक और चर्म की थेली को स्वयं ले आवे अन्य की पास लेवावे और लेनेवाले को अच्छा भी जाने यावत् पाप उपार्जन करे

चे॰ वस्त्र चि॰ पदवा च॰ चर्म छे॰ चर्म छेदनक च॰ चर्म कोश स॰ स्वयम् अ॰ हरता है जा॰ यावत् स॰ पूर्ववत् ॥ २२ ॥ से वह ए अकेला णो॰ नहीं वि॰ विचारता है त॰ उस को गा॰ गृहस्थ का गा॰ गृहस्थ के पुत्र का स॰ स्वयं अ॰ अग्नि से को धान्य ज्झा॰ जलाता है जा॰ यावत् अ॰ दूसरे को ज्झा॰ जलाते को स॰ पूर्ववत् से॰ वह ए॰ अकेला णो॰ नहीं वि॰ विचारता है तं उस को गा॰ गृहस्थ का गा गृहस्थ के पुत्र का उ॰ उंट गो वृषभ घो॰ अश्व ग॰ गर्दभ के स॰ स्वय घू॰ अवयव क॰ काटता है अ॰ दूसरे से क॰ कटवाता है अ दूसरे को क॰ काटने को स॰ अच्छा जानता है से॰ वह

लगं वा चिलिमिलिगं वा, चम्मगं वा, छेयणगं वा, चम्मकोसियं वा, सयमेव अवहरति जाव समणुजाणइ, इति से महया जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ २२ ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ त गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा सयमेव अगणिकाएण आस हीओ झामेइ जाव अन्नपि झामंतं समणुजाणइ इति से महया जाव उवक्खाइत्ता भवति ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा, उट्टाण

॥ २२ ॥ अब निष्कारण पाप बताते हैं कितनेक मूर्ख मनुष्यों को ऐसा विचार नहीं होता है कि ऐसे अकार्यों से मुझे इस भव में तथा परभव में अनिष्ट फल की प्राप्ति होवेगी अथवा मेरा अनुष्ठान अत्यंत सा वद्य है ऐसा भी विचार नहीं करता हुआ गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र का धान्य में बिना कारण स्वयं अग्नि लगावे, अन्य की पास लगवावे और लगानेवाले को अच्छा जाने यावत् पाप उपार्जन करे ऐसा

प० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है त० उस को गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का उ० ऊंट घाला जा० यावत् ग० गर्दभ शाला को क० कांटे से प० ढक कर स० स्वयं अ० अग्नि स० लगा० जला ता है जा० यावत् स० अच्छा मानता है से० वह प० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है तं० उस को गा० गृहस्थ का गा० गृहस्थ के पुत्र का जा० यावत् मो० मौक्तिक स० स्वयं अ० लेजाता है जा० यावत् स० अच्छा मानता है से० वह प० अकेला णो० नहीं वि० विचारता है त० उस को स०

वा, गोणाण वा, घोडगाण वा गद्दभाण वा, सयमेव धूराओ कप्पइ, अन्नेणवि कप्पावेति अन्नंपि कप्पंत समणुजाणइ ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा, उट्टसालाओ वा, जाव गद्दभसालाओ वा, कंटकबोंदियाहिं पडिपे हित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणुजाणइ ॥ से एगइओ णो वितिगिं छइ तं गाहावतीण वा, गाहावइपुत्ताण वा, जाव मोत्तियं वा सयमेव अवहरइ, जा

पुरुष गृहस्थादिक के ऊंट, वृषभ, अश्व, व गर्दभ के अंगोपांग छेदे, अन्य की पास छेदावे और छेदनेवाले को अच्छा माने तथा ऊंटशाला, वृषभशाला, अश्वशाला, और गर्दभशाला को कंटक आदि से ढक कर उस में स्वयं अग्नि लगावे अन्य की पास लगवावे और अग्नि लगानेवाले को अच्छा माने यावत् पापकर्म उपार्जन करे ऐसा ही पुरुष गृहस्थ तथा गृहस्थ के पुत्र के कुंडलादिक आभरण तथा

श्रमण का मा० ब्राह्मण का छ० छत्र दं० दंड भा यावत् च० चर्म छेदक स० स्वयं अ लेजा
ता है भा० यावत् स अच्छा जानता है इ० ऐसा से० वह म० महान् आ०यावत् उ०डाला हुवा म०होता
है ॥२३॥ से० वे ए० कितनेक स० श्रमण मा० ब्राह्मण को दि देखकर णा० विविध प्रकार के पा० पाप
कर्मों से अ० आत्मा को उ० डालने वाले भ० होते हैं अ० अथवा अ० अपशकुन मानी आ० तिरस्कार
करने वाले भ होते हैं अ० अथवा प० कठोर व० बोलने वाले भ० होते हैं का० वक्त में अ० आये

व समणुजाणइ ॥ से एगइओ णो वितिगिंछइ त समणाण वा माहणाण वा, छत्तग वा
दडग वा जाव चम्मच्छेदणगं वा, सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति से महया
जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ २३ ॥ से एगइओ समण वा माहण वा दिस्सा णाणाविहेहिं
पावकम्मेहिं अत्ताण उवक्खाइत्ता भवइ अदुवा ण अच्छराए आफालित्ता भवइ, अ-
दुवा ण फरुस वदित्ता भवइ, कालेणावि से अणुपविट्ठस्स असण वा पाण वा जाव

श्रमण ब्राह्मण के दंड, छत्र यावत् चर्म छेदक हरण करे हरण करावे और हरण करनेवाले को अच्छा
माने यावत् कर्मोपार्जन करे ॥ २३ ॥ अब मिथ्यादृष्टि के पापों का आविष्कार करते हैं कोई मिथ्यादृष्टि
पुरुष साधु को देख कर नाना प्रकार के पापों से अपनी आत्मा को दुर्गति में डाले वही पताते हैं किसी
स्थान/में अकेला साधु को देख कर ऐसा जाने कि मुझे अपशकुन हुवा और ऐसा मानकर साधु को अपना

हुवे को म० भक्ष पा० पानी जा० यावत् णो० नहीं दे० दिलानेवाले भ० होते हैं जे० जो इ० ये म होते हैं सो० बुलाने वाले भा०भार से थके हुवे म०प्रमादी वे० शुद्रजाति कि०कृपण नि०निरुद्यमी न होकर स० साधुपना प० ग्रहण करते हैं ते० वे इ० ऐसे जी० जीवितव्य को धि० धिक्कार जी० जीवितव्य को सं प्रशंसा करते हैं ना नहीं ते० वे प० परलोक के लिये किं० किंचिदपि सि० करते हैं ते० वे दु० दुःख पाते हैं ते० वे सो० शोक करते हैं जू० झूरते हैं ति० रोते हैं पि पीटते हैं प० परीताप

णो देवात्रेत्ता भवइ जे इमे भवइ वोनमता, भारक्कता, अलसगा, वेसलगा, किवणगा, निउज्जमा, वणगा समणगा, पव्वयति ते इणमेव जीवित, धिज्जीवितं संपडिबुहेति, ना- इ ते परलोगस्स अट्ठाए किंचित्रि सिलीसति, ते दुक्खति, ते सोयंति, ते जूरति ते तिप्पति, ते पिट्टंति, ते परितप्पति, ते दुक्खण, जूरण, मोयण, तिप्पण, पिट्टण, परितप्पण

मार्ग में से दूर करावे, अथवा क्लेश मानकर साधु का तिरस्कार करे, अथवा कठोर वचन बोले, अथवा भिक्षा समय में भिक्षा लेने को प्रवेश करता हुवा देख जो कोई अशनादि देता होवे उस को न देनेदेवे और ऐसा दुर्वचन बोले कि यह काष्ट लानेवाला है, कुटुम्ब का निर्वाह नहीं कर सकने से साधु हुवा है, यह आलसु, शुद्र जाति का, तथा कृपण है, किसी प्रकार का उद्यम नहीं मिलने से साधु हुवा है ऐसे अवर्णवादी कहते हैं कि ऐसा साधु का जीवितव्य धिक् है इस तरह अन्य की निन्दा करे और स्वत की

पाते हैं ते० वे दु० दुःख सू० झूरना सो० शोक ति० रुदन पि० पीटना प० परीताप व० वध ब० बन्धन प० अति क्लेप से अ० नहीं निवर्ते हुवे भ० हैं ते० वे म० बड़ा आ० आरंभ से बड़ा स० स मारंभ म ने० मे म० बड़ा आ० आरंभ समारंभ से वि० विविध पा० पापकर्म कि० करने से उ० प्रधान म० मनुष्य के भो० काम भोगों को भु० भोगवने वाले भ० हैं तं० वह ज० जैसे अ० आहार अ० आहार के समय में पा० पानी पा० पानी के समय में व वस्त्र व० वस्त्र काल में ले० उपाश्रय ले० उपाश्रय काल में स शयन स शयन काल में पु पहिले अ पीछे ण्हा० स्नान क० कियाहुवा ब० बली

रहवघणपरीकिलसाओ अप्पडिविरया भवंति, ते महया आरंभेण ते महया समार भेण, ते महया आरंभसमारंभेण, विरूवरूवेहिं पावकम्मे किच्चेहिं, उरालाइ मणु स्सगाइ भोगभोगाइ भुंजित्तारो भवंति तंजहा अन्नं अन्नकाले, पाणं पाणकाले, वत्थं वत्थकाले, लेणं लेणकाले, सयणं सयणकाले, पुव्वावरं च णं ण्हाए

प्रशंसा करे. ऐसे अपयश बोलनेवाले परलोक के लिये कुच्छ भी साधन नहीं कर सकते हैं; परंतु अन्य को दुःख देने से वे स्वयं दुःखी होवे, अधिक शोक करें, झूरें, दुःख से भ्रष्ट होवें, पीडित होवे यावत् रुदित करें इस तरह दुःख, शोक, खेद करता हुवा व कराता हुवा, सुख का मिटानेवाला, दुःख का करने वाला, पश्चाताप का करनेवाला, वध बंधन का करनेवाला, तथा क्लेश से नहीं निवर्तनेवाला मनुष्य मनु ष्यसंबंधिक अनेक कामभोगों को भोगवनेवाला होवे जैसे कि भोजन के समय में भोजन करे पिपासा के

कर्म क० करे क० कौतुक म० मंगल पा० मायाश्चित ति० शिर स्नान कं० मले में मा० माला क० धारण करे आ० आबद्ध म० मणि सु सुवर्ण क० कल्पित मा० माला म० मुकुट प० मतिबद्ध म० शरीर प० स्नकताङ्गा सो० कंदारा म पुष्प माला क० गुच्छा अ अच्छ व वस्त्र प० पहिने चं० चंदन उ० लगावे गा० शरिर के गात्र में म० बहुत घडी कू० कूटाकार शिला म पडा सी० सिंहासनपे इ० स्त्री गु० परीवार से स० रहा हुवा स सर्व रा० रात्रि जो० ज्योति से झि० जलवाला म० बडा

कयबलिकम्मे, कयकोउयमंगलपायच्छित्ते, सिरसाण्हाए, कंठे मालाकडे, आबद्ध मणिसुवन्ने कप्पियमालामउली, पडिबद्धसरीरे वग्घारियसोणिसुत्तगमल्लदामक लावे अहतवत्थपरिहिए चंदणोक्खितगायसरीरे महति महालियाए कूडागार-सालाए महतिमहालयासि सीहासणासि इत्थीगुम्मसंपरिवुडे सव्वराइएणं जोइणाझि

समय अच्छा पानी पीवे, नवनवा वस्त्र धारण कर, मनोहर मकान में रहे, सुकोमल शय्या में शयन करे, सदैव प्रभात और सन्ध्या में स्नान करे, देवतादिक निमित्त बली कर्म करे, अनेक कौतुक उतरणादिक करे, दधि दुर्वादिक मंगल करे, शिर में स्नान कर कंठ में माला धारण करे, मणि, सुवर्ण यथायोग्य स्थान में पहिने, कुसुम की माला पहिने, अत्यंत श्वेत वस्त्रों पहिने, गात्र में चंदनादिक का विलेपन करे, सदा कूटके आकारवाली शिला के मध्यभाग में रहा हुवा सिंहासन पर बैठ कर स्त्रीवृन्द से परवरा हुवा सर्व त्रिविध

न नृ गी० गीत वा० वाजित्र त० तंती त वीणा ता० ताल तु० कंसाल घ० घाण मु० मृदंग प० पडह पा० प्रवाह र० नाद से उ० प्रधान मा० मनुष्य के भो० कामभोग को मु० भोगवता हुवा वि० विचरता है त० उस का ए० एक को अ० आज्ञादेवे मा मनुष्य जा० यावत् च० चार प० पांच म० मनुष्य बो० बोलाये अ तैयार होते हैं भ० कहो दे० देवानुप्रिय किं० क्या क० करें किं क्या आ० खावेंगे किं० क्या उ० लादवे किं० क्या अ० रखें किं० क्या मे० तुमारा हि०हृदय को इ०इच्छित किं०क्या मा०मुखको स०स्वाद लगता है त० उस को पा०देख कर अ०अनार्य ए०

यायमाणाण महयाहयनट्टगीयवाइय ततितिलतालतुडियघणमुइंगपडुपवाइय रवणं उरालाइ माणुस्सगाइ भोगभोगाइ भुंजमाणे विहरइ ॥ तस्स णं एगमवि आण वेमाणस्स जाव चचारि पंचजणा आवुचा चेव अब्भुट्ठति भणह देवाणुप्पिया किं करमो, किं आहारमो, किं उवणेमो, कि आविट्ठावेमो, किमे हिय इच्छिय, किं मे आसग

प्रकार की दीप की ज्योति से प्रकाशित करे २ मनोहर नाटक, पखवे, वीणा, ताल, कंसाल, मृदंग, पडह इत्यादि अनेक वादिंत्रोंवाले मनुष्यसंबंधि प्रधान कामभोगों भोगवे किसी कार्य के लिये किसीकी जरूर होवे और वह किसी एक को बुलावे तो चार पांच आकर आज्ञा उठानेवाले होजावें और विनंति करे कि अहो देवानुप्रिय ! क्या आज्ञा है ? हम क्या कार्य करे ? कैसा आहार आप करेंगे या कैसा आहार हम बनावे ?, कोनसी वस्तु ला देवें ? क्या स्थापन करें ? या कोनसे आभूषण धारण करोगे ? तुम क्या

ऐसा व० बोलते हैं दे० देव अ० यह पु० पुरुष दे० देव सि० स्नातक अ० यह पुरुष दे० देव जैसा जीव-वाला अ० यह पुरुष अ० दूसरे अ० इससे उ० पोषाते हैं त० उस को पा देख कर आ आर्य ए० कहते हैं अ० इष्ट कू० क्रूर कर्मी अ० यह पु० पुरुष अ० बहुतधूर्त अ० आत्मा को र० रक्षन वाला दा० दक्षिण में री हुए ने० नरक में क कृष्ण पाक्षवाली आ० आगामिक काल में दु० दुर्लभ बो० बोधी भ हो॥ ॥ २५॥ इ० इतने ठा० स्थान को उ० सावधान हुवे ए० कितनेक

स्स सयाइ, तमेव पासित्ता अणारिया एव वयति, देवे खलु अय पुरिसे, देवसिणाए खलु अय पुरिसे, देवजीवणिज्ज खलु अय पुरिसे, अन्नेणवि ण उवजीवंति, तमेव पासित्ता आरिया वयति अभिक्कतकूरकम्मे खलु अय पुरिसे, अतिधुत्ते, अइयायरक्खे, दाहिणगामिए, नेरइए, कण्हपक्खिए, आगमिस्साण दुल्लहबोहियाए, यावि भविस्सइ ॥२४॥

चाहते हो ! जो आप कहें सो हम करने को तत्पर हैं ऐसा उनका ठाठ देख कर अनार्य लोकों ऐसा कहते हैं कि, यह पुरुष प्रत्यक्ष देव समान है, इन के आश्रय से बहुत लोक जीते हैं, उन की बहुत पुरुष सेवा कर रहे हैं और आर्य पुरुष उन को देखकर ऐसा बोलते हैं कि यह पुरुष अत्यत क्रूर क्रिया में प्रवर्तता है, अत्यत धूर्त है, बहुत कर्म का करनेवाला है, इस लिये वह नरक में जानेवाला होगा, और वहां आगामिक काल में दुर्लभबोधि होगा ॥ २८ ॥ उपसंहार कितनेक पाखंडी साधु अथवा गृहस्थ

न० नृत्य गी० गीत वा० वाजिंत्र तं० तंती त० वीणा ता० ताल तु० कसाल घ० धाण मु० मृदंग प० पडह पा० प्रवाद र० नाद से उ० प्रधान मा० मनुष्य के भो कामभोग को भु० भोगवता हुवा वि० विचरता है त० उस का ए० एक को भ० आज्ञादेते मा० मनुष्य जा० यावत् च० चार प० पांच म० मनुष्य आ० बोलाये अ० तैयार होते हैं भ० कहो दे० देवानुप्रिय कि० क्या क० करें कि० क्या आ० लावेंगे कि० क्या उ० लादेवे कि० क्या अ० रखें कि० क्या मे० तुमारा हि० हृदय को इ० इच्छित कि० क्या आ० मुखको स० स्वाद लगता है त० उस को पा० देख कर अ० अनार्य प०

पायमाणाण महयाहयनट्टगीयवाइय तंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुपवाइय रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेति, भणह देवाणुप्पिया किं करेमो, किं आहरेमो, किं उवणेमो, कि आविट्ठावेमो, किंभे हियइच्छियं, किं भे आसग

प्रकार की दीप की ज्योति से प्रकाशित घर में २ मनोहर नाटक, पडदे, वीणा, ताल, कंसाल, मृदंग, पडह इत्यादि अनेक वादिंत्रोंवाले मनुष्यसंबंधि प्रधान कामभोगों भोगवे किसी कार्य के लिये किसीको आदर होवे और यह किसी एक को बुलावे तो चार पांच आकर आज्ञा चढानेवाले होजावें और विनंति करे कि अहो देवानुप्रिय! क्या आज्ञा है? हम क्या कार्य करे! कैसा आहार आप करेंगे या कैसा आहार हम बनावें!, कोनसी वस्तु ला देवें! क्या स्थापन करें! या कोनसे आभूषण धारण करोगे! तुम क्या

इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्व प० पश्चिम उ० उत्तर दा० दक्षिण दिशामें स० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं तं० यह ज० जैसे आ० आर्य ए० कितनेक अ० अनार्य उ० ऊंचगोत्री णी० नीचगोत्री का० लंबी काया वाले ह० छोटी काया वाले सु० सुवर्ण दु० खराब वर्ण सु० सुरूप दु० कुरूप ते० उनमें खे० क्षेत्र व० वस्तु प० परिग्रह भ० है ए० यह आ० आलापक ज० जैसे पों० पौंडरीक अध्ययन में त० तैसे ण० जानना ते० उस आ०आलप से जा०यावत् स० सर्व उ० उपशांत स० सर्वात्मता से प० निवृत्त त्ति० एसा ब० कहता हूं ए० यह ठा० स्थानक आ० आर्य के० केवल ज्ञान

इह खलु पाइणं वा, पडीणं वा उदीणं वा, दाहिणं वा, संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आयरियावेगे, अणारियावेगे, उच्चागोयावेगे, णीयागोयावेगे, कायमंतावेगे, हस्समंतावेग सुवन्नावेगे, दुवन्नावेगे सुरूवावेग दुरूवावेगे तेसिं च णं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाइं भवंति, एसो आलावगो जहा पोंडरीए तहा णेतव्वो, तेणेव आलावेण जाव सव्वोवसंता सव्वत्ताए परिनिव्वुड त्तिबेमि ॥ एसट्ठाणे आरिए, केवले, जाव सव्व

चारों दिशाओं में आर्य, अनार्य, ऊंच गोत्रिय, नीच गोत्रिय, लम्बी कायावाले, ठींगने शरीरवाले, सुरूप, कुरूप ऐसे कितनेक मनुष्य रहते हैं उनको क्षेत्र, गृह आदि परिग्रह होता है जिसका सब अधिकार पौंडरीक अध्ययनसे मानना यावत् सर्व कषाय को उपशमाकर और सर्व पापस्थान का त्याग कर मोक्षकी प्राप्ति करे यह स्थानक आर्य पुरुषों का है, इस में केवलज्ञान उत्पन्न हो सकता है यावत् सर्व दुःखों को दूर करने

अ० वांछते हैं म० असावधान हुवे ए० कितनेक अ० वांछते हैं म० तृष्णावंत अ० वांछते हैं ए यह ठा० स्थान अ० अनार्य अ० अशुद्ध अ० अपूर्ण अ० अन्याय में प्रवर्तक अ० मन्युक्त अ० शल्य सहित अ० सिद्धि मार्ग रहित मु० मुक्ति मार्ग रहित अ० निर्वाण मार्ग रहित अ० मोक्ष को नहीं जानने वाले अ० नहीं स० सर्व दु० दुःख प० क्षय क्रिया म० मार्ग ए० एकान्त मि० मिथ्या अ० असाधु ए० यह स० निश्चय प० प्रथम ठा० स्थान अ० अधर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ २८ ॥ अ० अब दो० दूसरा ठा० स्थान ध० धर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा जाता है

इच्चेयस्स ट्ठाणस्स उट्ठियावेगे अभिगिज्झति, अणुट्ठियावेगे अभिगिज्झति, अभिझण्पाउरा अभिगिज्झति, एस ट्ठाणे अणारिए, अकेवले, अप्पडिपुन्ने, अणेयाउए, असंसुद्ध, असल्लगत्तणे, असिद्धिमग्गे, अमुत्तिमग्गे अनिव्वाणमग्गे, अणिज्जाणमग्गे, असव्वदुक्ख पहीणमग्गे, एगतमिच्छे, असाहु, एस खलु पढमस्स ट्ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥ २५ ॥ अहावरे दोच्चस्स ट्ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंग एव माहिज्जइ

पूर्वोक्त ऐश्वर्यादिक की इच्छा करे और लोभी बनकर राजादिक की पद्वी की वांछना करे परंतु ये स्थानक अनार्य, केवलज्ञान रहित, अप्रतिपूर्ण, अन्यायप्रवर्तक, शल्यको नहीं काट सके ऐसे, हैं और सब दुःख का क्षय करनेवाले नहीं है, ये कर्मबंध के स्थानक, असमाधि के स्थानक तथा असाधु खराब हैं, यह प्रथम अधर्मपक्ष स्थानक का वर्णन कहा ॥ २८ ॥ अब दूसरा धर्म पक्ष का स्वरूप बताते हैं इस जगत् की

म० अनार्य अ अशुद्ध जा० यावत् अ नहीं स० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त मि० मिथ्या अ० असाधु ए० यह स० निश्चय त० तीसरा ठा० स्थानक मि० मिश्रपक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ २७ ॥ अ अब प० प्रथम ठा० स्थान अ० अधर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा जाता है इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्वादि दिशाओं में सं० हैं ए० कितनेक म० मनुष्य भ होते हैं गि० गृहस्थ म० बडी इच्छा वाले म० महारंभी म० महा परिग्रही अ० अधर्मी अ० अधर्म

मूयत्ताए पच्चायंति, एसट्ठाणे अणारिए, अकेवले, जाव असव्वदुक्खपहीणमग्गे, एगं तमिच्छे, असाहु, एस खलु तच्चस्स ट्ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एव माहिए ॥ २७ ॥ अहावरे पढमस्स ट्ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंग एव माहिज्जइ, इह खलु पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवति गिहत्था, महिच्छा, महारंभा, महापरिग्गहा, अधम्मिया,

पूर्ण कर बहिरे, गुंगे होवे और चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करे. इस लिये यह स्थान अनार्य, व महान पुरुषों को अनाचरणीय है उस में रहनेवाले जीव को केवल ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है, यावत् सब दुःख का क्षय करनेवाला यह स्थानक नहीं है परंतु एकान्त मिथ्यात्व का और असमाधि का स्थानक है यह तीसरा मिश्र पक्ष हुवा ॥ २७ ॥ अब पूर्वोक्त जो तीन प्रकार के स्थानक कहे वे ही विशेषता से कहते हैं उस में से प्रथम अधर्मपक्ष का स्वरूप कहते हैं इस संसार में पूर्वादिक चारों दिशाओं में कितनेक मनुष्य

मा० यावत् म० सर्व दु० दुःख प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त स० सम्यक् सा० साधु वो० दूसरा ठा० स्थान ध० धर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा मा० कहा ॥ २१ ॥ अ० अब त० तीसरा ठा० स्थान मि० मिश्रपक्ष का वि० विचार ए० ऐसा मा० कहा जाता है जे० जो इ० यहां म० हैं आ० अरण्य वासी आ० पर्णकुटी निवासी गा० ग्राम निवासी क० कितनेक र० गुप्ताचारी जा० यावत् ते० वे त० वहां से वि० चवकर मु० वारंवार ए० बधिर मू० मूक प० परिभ्रमण करते हैं ए० इस द्वि० स्थानक में

दुक्खपहीणमग्गे, एगंतसम्मे, साहु, दोचस्स ट्ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥२१॥ अहावरे तच्चस्स ट्ठाणस्स मिस्सगस्स विभंग एव माहिज्जइ जे इमे भवंति आरण्णिया, आवसहिया, गामणियंतिया, कण्हुइरहस्सिया जाव ते तओ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एल

मासा, एकान्त सम्यक व साधु मार्ग है यह धर्म पक्ष का विचार कहा ॥ २१ ॥ अब तीसरा मिश्र पक्ष का+ स्वरूप कहते हैं जो तापसादि जंगल में अथवा ग्राम या गृह के नजीक रहते हैं, अनेक गुप्त कार्य करते हैं, यावत् यद्यपि वे यहां पर कायाक्लेश करे तथापि वे किल्बिषी देव में उत्पन्न होवे और वहां से आयुष्य

+ अधर्म पक्ष से मिश्रित जो धर्म पक्ष है उसे मिश्र पक्ष कहते हैं परंतु अधर्म पक्ष की इस में बहुलता विशेष आती है इस लिये उसे अधर्म पक्ष ही जानना यद्यपि कितनेक मिथ्यात्वी भी व्रतादि अंगीकार करते हैं परंतु चित्त की अशुद्धता से व परमार्थ की अज्ञानता से शर्करा मिश्रित दुग्ध समान उन के व्रत हैं

अ० अनिवृत्त जा० जाव जीव आ० यावत् स० सब परिग्रह से अ० अनिवृत्त जी० जावजीव से० सर्व को० क्रोध से जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शनशल्य से अ० अनिवृत्त स० सर्व ण्हा० स्नान म० मर्दन व० वर्ण गं० गंध वि० विलेपन स० शब्द फ० स्पर्श र० रस रू० रूप ग० गंध म० माला अ० अलंकार से अ० अनिवृत्त जा० जाव जीव स० सर्व स० गाडे र० रथ जा० यान जु० विमान गि० डोली थि० हस्ती पलान सि० शिबीका सं० पालखी स० शयन आ० आसन जा० यान वा० वाहन भो० भोग भो० भोजन प०

प्पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ कोहाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ अप्पडिविरया सव्वाओ ण्हाणुच्छण-मद्दण-वण्ण-गंध विलेवण-सद्द फरिसरस रूव गंधमल्लालंकाराओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, सव्वाओ सगडरहजाणजुग्गगिल्लिथिल्लिसियासंदमाणि यासयणासणजाणवाहणभोगभोयणपवित्थरविहीओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए सव्वाओ कयविक्कयमासद्धमास रूवगसंववहाराओ अप्पडिविरया, जावज्जीवाए सव्वाओ

उत्पन्न करनेवाले होते हैं उन के हस्त सदाकाल रुधिरवाले होते हैं, वे तीव्र क्रोधी, रौद्र ध्यानवाले, क्षुद्र, साहसात्कार करनेवाले, उठाने व ठगने में कुशल, माया कपट करनेवाले, असाधु, दुराचारी, तथा दुःख में आनंद माननेवाले हैं और भी वे किंचिन्मात्र हिंसा, मृषा, अदत्त, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, यावत् मिथ्यादर्शन सल्य इन अठारह पापस्थानों से नहीं निवर्ते हुवे हैं स्नान, मंजन, वर्ण, गंध, विलेपन

को अनुसरने वाले अ० अधर्म में रहे हुवे अ० अधर्म कहने वाले अ० अधर्म पाप जीवन वाले अ० अधर्म प० देखने वाले अ० अधर्म में र० रहे हुवे अ० अधर्म शील स० समुदाय वाले अ० अधर्म से वि० वृत्ति क० करने वाले वि० विचरते हैं ॥२८॥ ह० हणो छि० छेदो भि० भेदो वि० उच्छेदो लो० लोही में भरे हाथवाले चं० क्रोधी रु० रौद्र खु० क्षुद्र सा० साहसीक उ० ऊंचा करना व० वंचना मा० माया कू० कूड कपट सं० प्रयोग सहित ब० बहुत दु० दुःशील दु० दुर्व्रती दु० खराब हर्ष अ० असाधु स० सर्व पा० प्राणातिपात से

अधम्माणुया, अधम्मिट्ठा अधम्मक्खाई, अधम्मपायजीवी, अधम्मपलोई, अधम्मवलज्जणा, अधम्मसीलसमुदायारा अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरति ॥ २८ ॥ हण, छिंद, भिंद विगत्तगा, लोहियपाणी, चंडा, रुद्दा, खुद्दा, साहस्सिया, उक्कंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपओगबहुला दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाहु सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावजीवाए जाव सव्वाओ परिग्गहाओ अ

हैं वे गृहस्थ बडी इच्छावाले, महा आरंभी, महा परिग्रही, अधर्मी, अधर्मानुचारी, अधर्म में रहे हुवे, अधर्म बोलनेवाले, अधर्म से आजीविका करनेवाले, अधर्म देखनेवाले, अधर्म में राचनेवाले, अधर्म स्वभाववाले तथा अधर्म की ही वृत्ति करनेवाले हैं ॥ २८ ॥ ऐसे अधर्माचारी स्वयं अधर्मी बनकर के अन्य को भी ऐसा ही उपदेश करते हैं कि जीवों को मारो, छेदो, व चमडी उखेडो ऐसा [illegible] पापी क्रो दुःख

स० मांसक्लेशसे अ० अनिभृत जा०जावजीव जे० जो अ० अन्य त० तथा प्रकारके मा०सावद्य अ० अबो धिक क० कर्म प० दूसरे पा० प्राणी प० परिताप क० करनेवाले जे० जो अ० अनार्य क० करते हैं त० उससे अ० अनिवृत्त जा० यावज्जीव ॥ २९ ॥ से० वह ज० जैसे के० कोई पु० पुरुष क० धटले म० मसूर ति० तेल मु० मूंग मा० उडद नि० वाल कु० कुलथ अ० अलसी प० कावली धने आ० आदि अ० अयत्न क्रू० क्रूर मि० मिथ्या दंडको प० प्रयुंजते हैं ए० ऐसे त० तथा प्रकारके पु० पुरुष मास

वज्जा, अबोहिया, कम्मता, परपाणपरियावणकरा, जे अणारिएहिं कज्जंति ततो अप्पडि विरिया जावजीवाए ॥ २९ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे कलममसूरतिलमुग्ग मासनिप्फावकुलत्थआलिसदगपलिमंथगमादिएहिं अयंते कूरे मिच्छादंडं पउंजति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिरवट्टगलावगकवोतकविंजलमियमहिसव

प्रकार के आरंभ स्वयं करते हैं, अन्य की पास कराते हैं, सर्वथा प्रकार से करण, करावण, पचन पाचन से निवृत्त नहीं हुवे हैं इस तरह अन्य को दुःख उत्पन्न होवे ऐसे पाप कार्यों से तथा बोध बीज को नाश करनेवाले कर्मों से भी निवृत्त नहीं बने हैं ॥ २९ ॥ जैसे कोई पुरुष धटले, मसूर, तिल, मूंग, उडद, अरिद, चणा, कुलथी इत्यादि अनाज को अपने लिये या अन्य के लिये पचन पाचनादिक क्रिया करके क्रूरता

पारपसार पि० समुदायसे अ० अनिवृत्त जा० जाव जीव स० सर्व क० क्रय वि० विक्रय मा० मापा अ० अर्ध मापा रू० रूपक सं० व्यवहारसे अ अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व हि० चांदी सु० सुवर्ण ध० धन ध० धान्य म० मणि मो० मौक्तिक सं० शंख० सि० शिला प्प० प्रवालेसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व कू० खोटे तोल कू० खोटे माप से अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व आ० आरंभसे स० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व क० करने क० करानेसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स सर्व प० पचन पचावनेसे अ० अनिवृत्त जा० जावजीव स० सर्व कु० कूटना पी० पीटना त० तर्जना ता० ताडना व० वध बं० बन्ध

हिरण्णसुवण्णधणधण्णमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालाओ अप्पडिविरया जावजीवाए सव्वाओ कूडतुलकूडमाणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ आरंभसमारंभाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ करणकारावणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ पयणपयावणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ कुट्टणपिट्टणतज्जणतालणवहबंधपरिकिलेसाओ अप्पडिविरया जावजीवाए, जे आवण्णे तहप्पगारे सा-

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, अलंकार से अनिवृत्त बने हैं, शकट, रथ, बगी, पालखी, विमानादि अनेक वाहनों को भोगवनेवाले हैं, क्रयाविक्रयादि व्यवहार को आचरनेवाले हैं, हिरण्य, सुवर्ण, चंद्रकान्त मणि, आदि से जीवन पर्यंत नहीं निवर्तनेवाले बने हैं, सर्वथा प्रकार से खोटे तोले खोटे माप रखनेवाले बने हैं, सर्वथा प्रकार के आरंभ से अनिवृत्त हैं, कूटना, पीटना, तारना, तर्जना करना, और भी अनेक

अ० अन्यतर अ० अशुभ कु सराब मार से मा० मारो ॥ ३० ॥ जा० जिस में अ० आभ्यन्तर प० परिषदा भ० है तं० वह ज० जैसे मा० माता पि० पिता भा० भाइ भ० भगिनी भ० भार्या पु० पुत्र धू० पुत्री सु० पुत्रवधू ते० उस में अ० अन्यतर अ० अथ ल० छोटा अ० अपराध को स० स्वय ग० बडा द दंड को णि० प्रयुजता है सी० शीतोदक वि० प्रासुक उ० डुवानेवाला भ० होता है ज० जैसे मि० मित्रद्वेष प्रत्ययिक जा० यावत् आ० कहा प० परलोक में ते० वह दु० दुःख पाता है सो० शोक करता है जू० झूरता है ति० रोता है पि पीटता है प० परीताप पाता है ते० वह दु० दुःख सो० शोक

रेण मारेह ॥ ३० ॥ जावियसे अब्भितरिया परिसा भवइ तजहा मायाइ वा, पियाइ वा भायाइ वा भगिणीइ वा, भज्जाइ वा, पुत्ताइ वा धूताइ वा सुण्हाइ वा, तेसिं पियणं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं णिवत्तेइ सीओदगवियडंसि उच्छोलित्ता भवइ जहा मित्तदोसवत्तिए, जाव आहिए परंसि लोगंसि ते दुक्खंति, सोयंति, जूरंति, तिप्पंति, पिट्टंति, परितप्पंति, ते दुक्खण सोयण जूरण पिट्टण

कार के दंड देवो ॥ ३० ॥ अब आभ्यंतर परिषदा बताते हैं; माता, पिता, भाइ, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू इत्यादि में से कोइ भी अल्प अपराध करे तो भी बडा भारी दंड देवे शीतकाल में ठंडे पानी में डुबोवे यावत् सब अधिकार मित्रदोष प्रत्ययिक प्रमाणिक कहना यह अनेक जीवों को दुःख देवे, शोक उत्पन्न करे,

रेह, इम दसणुप्पाडिय वसणुप्पाडिय जिब्भुप्पाडियं ओलंबिय करेह, घसिय करेह, घोलियं करेह, सूलाइयं करेह, सूलाभिन्नय करेह, खारवत्तिय करेह, वब्भवत्तिय करेह, सीहपुच्छियग करेह, वसभपुच्छियग करेह, दवग्गि दड्ढयग कागणिमंसखावियग भत्तपाणनिरुद्धग इम जावजीवं वहबंधणं करेह, इम अन्नयरेण असुभेण कुमा

दं० दांत उ० उखेडना व० वृषण उ० उखेडना जि० जिव्हा उ० उखडना ओ० झुलाना क० करो घ० घसना क० करो घो० घोलना क० करो सू० सूलीपे आरोपण क० करो सू० सूलीसे भि० भेदन क० करो खा० खार के सिंचन क० करो द० दर्भ से छेदन क० करो सी० सिंह की पु० पूंछ से क० बांधो व० वृषभ की पु० पूंछसे क० बांधो द० दावाग्नि में द० जलाना का० काक के मं० मांस ख० खिलाना भ० भात्तर पानी का नि० निषेध इ० इस को जा० आव जीव व० वध बं० बंधन क० करो इ० इस को

पापान्म पर घसो, खाल उखेडो उसे ऊंचे बंधन से बांधो, उसे कुवे में डालो, उसको आम्र की गुठली के घोलो, सूली पर आरोपण करो, त्रिशूल से भेदो, और शस्त्र से छेदकर लूण का पानी डालो, सिंह बैल के पूंछ को बांधो, दावानल में डालो, काक पक्षी का मांस नीकाल कर उसको खिलाओ, भात पानी का निरोध करो, जावजीव तक उनको बांधकर रखो, और भी ऐसे अनेक अशुभ दंड से दुःख देवो ऐसे अनेक म

का गोला उ० पानी में प० डालने से उ० पानी के तलेपे म० आवे अ० नीचे ध० भूमि तलेपे प० रहा हुवा भ० होता है ए० ऐसे त० तथा प्रकार के पु० पुरुष जात ब० वज्र ब० बहुत घ० कर्म ब० बहुत प० कादव ब० बहुत वे० वैर ब० बहुत अ० अपयश आ० अविश्वास द० कपट नि० वेष पलट्यना सा० साति उ० उत्कृष्ट त्र० त्रस प्राणी का घा० घातिक का० काल के अवसर में का० काल करके ध० धरणी तल में प० जावे अ० नीचे ण० नरक तल में प० रहने वाले भ० होते हैं ॥१२॥ ते० वे ण० नरक अं०

धरणितलपइट्ठाणे भवइ, एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले, धूतबहुले, पंकबहुले, वेरबहुले, अयसबहुले, अप्पत्तिय बहुले, दंभबहुले, णियडिबहुले, साइबहुले, उसन्नतस्सपाणघात्ती कालमासे कालं किच्चा धरणितल मइवइत्ता अहे णरगतल पइट्ठाणे भवइ ॥ २९ ॥ ते ण णरगा अंतोवट्टा बाहिंचउरसा अहे खुरप्प

है वैसे ही पूर्वोक्त स्वभाववाला पुरुष बहुत कर्म रूप रज, कीचड, वैरभाव, दुर्ध्यान, अपयश, ठगाइ आदि करके तथा जीवों की घात करताहुवा काल के अवसर में काल करके पृथ्वी तल में नरकादिक में उत्पन्न होवे ॥ १२ ॥ वे नरक के स्थान अंदर से गोल और बाहिर से चौकोने हैं नीचे तले की धार जैसे हैं, जहां पर सदा काल मेघ छाया या कृष्ण पक्ष की रात्रि मुवाफिक बहुत अंधकार है, जहांपर चंद्र, सूर्य,

जू० झूरणा पि० पीटना प० परीताप प०
ए० ऐसा से० वे इ० स्त्री क का० काम भोग में मु० च्छित ग० गृद्ध ग० आसक्त अ० एकचितीभूत जा०
यावत् चा० वर्ष च० चार पं० पांच छ० छ द० दश अ० थोडे भु० बहुत का० काल को भुं० भोगकर
भो० काम भोग को प० पाप के प्रसूत वे० वेरानुबन्ध को स० एकठा कर ब० बहुत पा० पाप क०
कर्म उ० रूप सं० माररूप क० किये हुवे क० कर्म से० वह न जैसे अ० लोहे का गोला से० पत्थर

परितप्पण वहवधण परिकिलेसाओ अप्पाडिविरया भवति ॥ २१ ॥ एवमेव ते इत्थि
कामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपचमाइ छद्दसमाइ
वा अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं भुजित्तु भोगभोगाइ पविसुइत्ता वेरायतणाइ
संचिणित्ता बहूइं पावाइ कम्माइं उसन्नाई संभारकडेण कम्मणा, से जहा णामए
अयगोलेइ वा, सेलगोलेइ वा, उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे

झूरणा करावे, निंदा करावे यावत् महान क्लेश का करनेवाला होवे ॥ २१ ॥ वैसे पूर्वोक्त स्वभाववाले पुरु
षों निर्दयी बनकर स्त्रियादिक कामभोगों में मूर्च्छित होते हुवे चार पांच तथा सात दश यावत् अल्पकाल
या बहुत काल तक भोगवन योग्य काम भोगों भोगवकर अनेक जीवों की साथ वैर की वृद्धि करके पाप
रूप नरक स्थान में जावें जैसे लोहे का या पाषाण का गोला को पानी में डालने से नीचे तलेमें जाता

नाप ० नाप ० ... उज्जल वि० विपुल प० गाढ क० कडवा क० कर्कश च० रौद्र
दु० दुःख दु० दुर्ग ति० तीव्र दु० दुःखसे सहन होवे ऐसी णे० नारकी वे० वेदना प० अनुभवतेहुवे वि० विचरते हैं से०
यह ज० जैसे रु० वृक्ष सि० होवे प० पर्वत के अग्र में जा० उत्पन्न मू० मूल में छि० छेदा हुवा अ० अग्र
भाग ग० भारी ज० जहां णि० नीचा ज० जहां वि० विषम ज० जहां दु० दुर्ग त० तहां प० गीरता है
ए० ऐसा त० तथा प्रकार के पु० पुरुष जात ग० गर्भसे गर्भ में ज० जन्म से जन्म में मा० मरण से मरण
में ण० नरकसे नरकमें दु० दुःखसे दु० दुःखमें दा० दक्षिण में रही हुई णे० नरक में क० कृष्ण पक्षी आ० आगा

र्ति वा मतिं वा उवलभते, तेण तत्थ उज्जलं, विउलं, पगाढं, कडुयं, कक्कसं, चंडं, दुक्खं
दुग्गं तिव्वं दुरहियासं णेरइया वेयणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ से जहा णामए रु
क्खसिया पव्वयग्गे जाए मूलछिन्ने अग्गे गरुए जओणिन्नं जओविसमं जओदुग्गं त
ओ पवडति, एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए गब्भातो गब्भं जम्मातो जम्मं माराओ मारं,
णरगाओ णरगं, दुक्खाओ,दुक्खं दाहिणगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दु

द्धि की प्राप्ति नहीं होती है और वहां पर वे तीव्र, रौद्र तथा दुःसह दुःखों भोगवते हुवे रहता है जैसे
पर्वत पर रहाहुवा कोई बडा भारी वृक्ष का मूल काटने से वह नीचे सम विषम भूमि में पडे वैसे ही दुष्ट
पुरुष कर्म रूप वायु से प्रेराया हुवा नरकगति में जावे वहां से निकलकर गर्भ से गर्भ, जन्म से जन्म, मरण

भंवर से व० वर्तुलाकार बा० बाहिर से च समचोरस अ० नीचे से खु० छुरके सं० आकार से स० रहे हुवे णि नित्य अं० बहुत अंधकार व० रहित ग० ग्रह चं० चन्द्र सू० सूर्य न० नक्षत्र जो० ज्योति प० रस्ता मे० मेद व० चरबी मं० मांस रु रुधिर पू राध प० पसीना चि० कर्दम लि० लिप्त अ० लेपन त० तल अ० अशुचि वी० साहित प० बहुत दु० दुरभिगंध क० कृष्ण अ० अग्नि जैसा व० प्रकाश क० कर्कश फा० स्पर्श दु० दुःख से सहन होवे अ अशुभ ण० नरक अ० अशुभ ण० नरक में वे० वेदना ॥३३॥ णो०नहीं ण नरकमें ने०नारकी णि निद्रालेते प०बहुत निद्रालेते सू०श्रुति र०आनन्द धी०धृति म०

सठाण सठिया, णिच्चंधकारतमसा, ववगयग्गहचंद सूरनक्खत्तजोइसप्पहा, मेद वसामंसरुहिरपूयपडलचिक्खललित्ताणुलेवणतला असूई वीसा, परमदुब्भिगंधा कण्हा, अगणिवण्णाभा, कक्खडफासा दुरहियासा, असुभा णरगा असुभा णरएसु वेयणा ओ ॥ ३३ ॥ णो चेव णरएसु नेरियाणिद्दायति वा, पलायति वा सूइ वा रतिं वा धी-

ग्रह, नक्षत्र का प्रकाश कदापि नहीं होता है, उन के भूमितल मेद, वसा, मांस, रुधिर, और पसीना से अनुलिप्त हैं अशुचि से सरवाये हुवे दुर्गंधवाले, तथा कृष्ण वर्णवाले हैं स्मशान की अथवा धमाहुवा लोह की अग्नि के वर्ण जैसा आकार है, और वहां दुःसह कर्कशादि कठोर स्पर्श रहे हुवे हैं ऐसी नरक में बहुत अशुभ वेदना रहीहइ है ॥ ३३ ॥ नारकी के जीवों को वहां नरक में निद्रा, प्रचला, श्रुति, रति, धैर्य तथा

पायी ध० धर्मार्थी ध० धर्म से वि वृत्ति क० करने वाले वि० विचरते हैं सु० सुशील सु० सुव्रती सु० शुभकार्य में आनंदी सु साधु स० सर्व पा० प्राणातिपात से प० निवर्ते जा० यावत् जीव जा० यावत् जे० जैसा त० तथा प्रकारके सा० सावद्य अ० अबोधिक क० कर्म प० दूसरे पा० प्राणी प० परीताप क० करने वाले त० उससे प० निवृत्त जा० यावजीव ॥३५॥ से० वह ज० जैसे अ अनगार भ० भगवान् इ० ईर्यासमिति वाले भा० भाषा समिति वाले ए० एषणा समिति वाले आ० आदान भ० भाजन म० पात्र नि० निक्षेपन स समिति वाले उ० उच्चार पा० प्रस्रवण से० श्लेष्म सिं० नासिका का मेल ज० मेल प० परिठावन

जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, सुस्सीला, सुव्वया, सुप्पडियाणंदा, सुसाहु सव्वातो पाणातिवायाओ पडिविरया जावजीवाए जाव जयावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति ततो विपडिविरता जावजीवाए ॥ ३५॥ से जहा णामए अणगारा भगवंतो इरियासमिया, भासासमिया, एसणासमिया, आया

आजीविका करनेवाले हैं और भी वे सुशील, सुव्रत, अच्छे कार्य में आनंद माननेवाले, सुसाधु तथा सुससाध्य पद्वी रूप गुणों से विराजमान यावत् सर्व प्रकार के प्राणातिपातादिक से निवर्तनेवाले और भी ऐसे पापकारी कार्यों तथा अन्य को परिताप होवे ऐसे कार्यों से निवर्ते हुवे हैं ॥ ३५ ॥ अब अन्य प्रकारसे साधु के गुण बतावें हैं साधु भगवन्त ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आयाणभंडमत्तनिक्षेपनसमिति, उच्चार पासवण खेल सिंघाण जल्ल परिठावणिया समिति, मन समिति, वचन समिति, काया समिति,

भिक काळम दु० दुर्लभ बो० बोधिक ५० होता है ए० यह ठा० स्थान भ० अनार्य अ०अयश जा० यावत् अ० नहीं ० सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म मार्ग ए एकांत मि० मिथ्य अ० असाधु प० पहिला ठा० स्थानक अ०अधर्म पक्षका वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ २४ ॥ अ० अब दो० दूसरा ठा० स्थान ध० धर्म पक्षका वि० विचार ए० ऐसे आ० कहा जाता है इ० यहां ख० निश्चय पूर्वादि दिशामें स० हैं ए० कि तनेक म मनुष्य भ होते हैं तं० वह ज० जैसे अ० अनारंभी प० अपरिग्रही ध० धर्मात्मा ध० धर्मानु

ल्लमघोहिण्यामि भवइ, एसट्ठाणे अणारिए, अकेवले, जाव असव्वदुक्खपहीणम- ग्गे एगन्तमिच्छे असाहू पढमस्स ट्ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥२४॥ अहावरे दोच्चस्स ट्ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईण वा संते- गतिया मणुस्सा भवति तजहा अणारंभा, अपरिग्गहा, धम्मिया, धम्माणुया, धम्मिट्ठा,

से मरण व नरक से नरक के दुःख भोगवे इस तरह दक्षिण दिशा-नरकमें जानेवाला भी आगामिक काल में भी दुर्लभ बोधि होवे और यह मार्ग अनार्य, अकेवल यावत् इस में सर्व दुःखों से मुक्त होने का नहीं है यह प्रथम अधर्म पक्ष का विचार कहा ॥ २५ ॥ अब धर्म पक्ष का विचार करते हैं इस जगत् में पूर्वादिक दिशा में कितनेक मनुष्य निरारंभी, निष्परिग्रही, धार्मिक, धर्मानुगामी, धर्मार्थी यावत् धर्म से ही

जैसे अ० अमाविकम्प स० शरद ऋतु के स० पानी जैसे सु० शुद्ध हृदयी पु० कमल के पत्ते जैसे नि० निरुपलेप कु० कूर्म जैसे गु गुप्तेन्द्रिय वि० पक्षि जैसे वि० संग रहित खा० गेंडे के शिंग जैसे ए एक जाता भा० भारंड पक्षी जैसे अ० अप्रमादी कुं० हस्ती जैसे सों० शूरवीर व० वृषभ जैसे जा० भारवाहक सी० सिंह जैसे दु० ममावी म० मेरु समान अ० स्थिर सा० सागर जैसे गं० गंभीर चं० चंद्र जैसे सो० शीतल सू० सूर्य जैसे दि० देदीप्यमान ज० उत्तम क० सुवर्ण जैसे जा० निर्मल व० पृथ्वी जैसे स० सर्व

जीवइव अपडिहयगती, गगणतलंपिव, निरालंबणा, वाउरिव अपडिबंधा, सारदसलिलइव सुद्धहियया, पुक्खरपत्तंइव निरुवलेवा, कुम्मोइव गुत्तिंदिया, विहगाइव विप्पमुक्का, खग्गविसाणंव एगजाया, भारंडपक्खीव अप्पमत्ता, कुंजरोइव सोंडीरा, वसभोइव जातत्थिमा, सीहोइवदुद्धरिसा, मंदरोइव अप्पकंपा, सागरोइव गंभीरा, चंदोइवसोमलेसा, सूरोइवदित्तेया, जच्चकंचणगंचइव जातरूवा, वसुंधराइव सव्वफासविसहा सुहुयहुयासणोव्वि ते

अकेला रागद्वेष रहित, भारंडपक्षी जैसे अप्रमत्त, हस्ती जैसे शूरवीर, वृषभ जैसे बलवन्त, सिंह जैसे दुर्धर्ष-परास्त नहीं पायाहुवा, मेरु पर्वत जैसे अचलरूप, समुद्र जैसे गंभीर, चंद्र समान शीतल, सूर्य समान प्रदिप्त, तथा सुवर्ण जैसे जातरूप, पृथ्वी समान सर्व स्पर्श को सहनेवाले हैं और घृतादिक सींचने से जैसे अग्नि तेज

स० सामिति वाले म० मन सामिति वाले व० वचन सामीति वाले का० काया सामिति वाले मु० मन गुप्तिवाले व० वचन गुप्ति वाले का० काया गुप्ति वाले गु० गुप्त गु० गुप्तेंद्रिय गु गुप्त ब्रह्मचारी अ० अक्रोधी अ० अमानी अ० अमायी अ० अलोभी स० शान्त प० प्रशान्त उ० उपशान्त प० निवृत्त अ० अनाश्रवी अ० अग्रन्थी छि० छेदा हुवा सो० श्रोत नि० निरूपलेप क० कांस्यके पात्र जैसे मु० लेप रहित सं० शंख के जैसे णि० अरंगित जी जीव जैसे अ० अप्रतिहत गति ग० आकाश जैसे नि० निरावलम्बी वा० वायु

णभंडमत्तणिक्खेवणासमिया, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणिया समिया, मण समिया, वयसमिया, कायसमिया, मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्ता, गुत्तिंदिया गुत्तबंभयारी, अकोहा, अमाणा, अमाया, अलोहा, संता, पसंता, उवसंता, परिणिव्वुडा, अणासवा, अग्गंथा, छिन्नसोया, निरुवलेवा, । कंसपाईव मुक्कतोया, संखइवणिरंजणा

मन गुप्ति, वचन गुप्ति तथा काया गुप्तिवाले, गुप्तेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, क्रोध, मान, माया तथा लोभ रहित, शान्त, प्रशान्त, उपशान्त, व्रतधारी, अनाश्रवी, निर्ग्रंथ, पापरूप प्रवाह को काटनेवाले, कर्ममल से रहित, कांस्य पात्र की मुवाफिक पापरूप पानी से रहित, शंख की तरह रंग रहित, जीव की मुवाफिक अस्ख - लित गतिवाले, आकाश जैसे निरालम्ब, वायु जैसे अप्रतिबंध, शरद ऋतु का जल जैसे निर्मल हृदयवाले कमलपत्र जैसे निर्लेपी, कूर्म जैसे गुप्तेन्द्रिय, पक्षी जैसे विप्रमुक्त—सर्व ममत्व रहित, गेंडे के सींग जैसे

हुवे वि० विचरते हैं ॥ ३७ ॥ ते० उन भ० भगवान को इ० यह ए० तद्रूप जा० संयम मा मात्रा वि० वृत्ति हो० होवे तं० वह न० जैसे च० एक उपवास छ० दो उपवास अ० तीन उपवास द० चार उपवास दु० पांच उपवास च छ उपवास अ अर्ध मासके उपवास मा० एक मास के उपवास दो० दोमास के ति० तीन मास के चा चारमास के प० पांच मास के छ० छमास के अ० अथवा उ० उत्क्षिप्त चर्या नि० निक्षिप्त चर्या उ उत्क्षिप्त निक्षिप्त चर्या अ० अन्त आहार का लेने वाला प० प्रांत आहार का लेने वाला

सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरति ॥ ३७ ॥ तेसिण भगवताणं इमा एतारूवा जायामायावित्ती होत्था तजहा चउत्थेभत्ते छट्ठेभत्ते अट्ठमेभत्ते दसमे भत्ते दुवालसमेभत्ते चउदसमेभत्ते अद्धमासिएभत्ते मासिएभत्ते दोमासिए तिमासिए

संयम से आत्मा को भावते हुवे विचरे ॥ ३७ ॥ अब साधु को इस प्रकार की यात्रा मात्रा रूप वृत्ति होती है —एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, तथा पन्दरह दिनके उपवास, महिनेके उपवास, दो महिने के उपवास, तीन महिने के, चार महिने के, पांच महीने के तथा छह मासीक तप के करनेवाले हैं और कोई एसे भी अभिग्रह करनेवाले हैं उत्क्षिप्त चर्या-अपने लिये हंडी में से नीकालाहुवा निस्सार धान्य को लेनेवाले, निक्षिप्त चर्या-परुसने के लिये हंडी मे से नीकाला और हंडी में फीर डाल दिया होवे ऐसा आहार की याचना करनेवाले, पूर्वोक्त दोनों प्रकार के आहार की गवेषणा करनेवाले, अंत आहार प्रान्त

स्त्री थ० सहने वाले मु भवती हु० अग्नि जैसे ते० तेजस्वी ज० जलते ॥ ३८ ॥ ण० नहीं है ते० उन भ० भगवान् को क०कहां से भी प० प्रतिबन्ध भ० होवे से० वह प० प्रतिबन्ध च० चार प्रकार का प० प्ररूपा तं० वह ज० जैसे अ० अण्ड से (बो०कपास क वस्त्र) पो०पोतज से उ० पीठ फलगादि स प० प्रग्रहित से ज० जो जो दि० दिशा में इ० इच्छते हैं त० उस २ दि० दिशा में अ० अप्रतिबद्ध सु० शुचिभूत ल० लघु भूत अ० अल्पग्रन्थी सं० संयम से त० उस से आ० आत्मा को भा० भावते

यसा जलंता ॥ ३६ ॥ णत्थिण तेसिं भगवताण कत्थवि पडिबंधे भवइ से पडिबंधे चउविहे पण्णते तंजहा अंडएइ वा (बोंडजेइवा) पोयएइ वा, उग्गहेइवा, पग्गहेइ वा जन्नं जन्नं दिसं इच्छति तन्नं तन्नं दिसं अपडिबद्धा, सुइभूया, अप्पलहुभूया, अप्पगंथा

मन्त दीसती है वैसे ही साधु ज्ञान गुणों से सदाकाल तेजवन्त दीसते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसे साधुओं को किसी स्थान पर प्रतिबन्ध नहीं है यह प्रतिबन्ध चार प्रकार का है, (१) अण्डे से उत्पन्न होनेवाले पक्षी मयूरादिक का (अंडज शण के वस्त्र, बोडज कपास के वस्त्र का) (२) थैली से उत्पन्न होनेवाले हस्ती आदि का प्रतिबंध, (३) वसति, पीठफलगादिक का प्रतिबंध (४) तथा उपग्रहिक उपकरण का प्रतिबंध इन चारों प्रतिबंध से रहित बनकर जिस २ दिशा में साधु जाने को वांच्छे वहां २ अप्रतिबंधपने विचरे वैसे ही शुचीभूत, निर्मल आत्मावाले, अल्पपरिग्रही अल्प द्रव्य रखनेवाले तथा बलवान साथ परत तप और

आहारी प० प्रान्त आहारी अ० निरस आहारी लू० रूक्ष आहारी तु० तुच्छ आहारी अं० अन्त आहार से जीवे पं० प्रान्त आहार से जीवे आ० आयंबिल करे पु० दोपहोरसीकरे वि० निवीकरे अ० मद्य मांस के त्यागी णो० नहीं णि० अत्यंतरस आहार के भोगी ठा० कायोत्सर्ग करने वाले प० प्रतिमाधारी उ० उत्कट आसन बैठने वाले णि० निषिध आसनपे बैठने वाले वी० वीरासन बैठने वाले दं० दंडासन बैठने वाले ल० लगड आसन बैठने वाले अ० वस्त्र रहित अ० खाज न खुचेरे अ० थूके नहीं धू० कक्षनखादि सुधारे नहीं स०

त्तिया परमित्तपिंडवाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमड्ढिया निव्विगइया अमज्जमंसासिणो णोणियामरसभोई ठाणाइया पडिमाट्ठाणाइया उक्कुडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दंडायतिया लगंडसाइणो अप्पाउडा अगत्तया अकंडुया अणिट्ठुहा धुतकेस

दत्ति की संख्या करनेवाले, प्रमाण युक्त आहार लेनेवाले, शुद्ध आहार की गवेषणा करनेवाले, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, अरस, विरस, रूक्ष, तुच्छ आहार लेनेवाले, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी, आयंबिल करनेवाले, मध्याह्न दो प्रहर गए बाद आहार करनेवाले, नीवी करनेवाले, मद्य मांस के त्यागी, सरस आहार के त्यागी, कायोत्सर्ग करनेवाले, प्रतिमा को निभानेवाले, उत्कट आसन पे बैठनेवाले, निषेध आसन पे बैठनेवाले, वीर आसन, दंडासन, लगड आसन पे बैठनेवाले, वस्त्र रहित, शरीर में खाज नहीं खणनेवाले, मुख का थुक नहीं थुंकनेवाले, सिर, मूछ, दाढी के बाल या नखों को अच्छा नहीं करनेवाले और शरीर

लू॰रूक्ष आहार का लेनेवाला स॰बहुत घरका आहार लेनेवाला स॰भरे हाथसे आहार लेनेवाला अ॰स्वच्छ हाथ से आहार लेनेवाला त॰वस्तु भरित हाथ से आहार लेनेवाला दि॰देख करके लेनेवाला अ॰विना देखे लेनेवाला पु पूछकर लेनेवाला अ॰विनापूछे लेनेवाला भि भिक्षा करके देवे सो लेनेवाला अ॰प्रशंसा करदेवे सो लेनेवाला अ॰ अज्ञातकुल का लेनेवाला अ॰ अज्ञातकुल में कुत्सित आहार लेनेवाला उ॰ नजीक का लेने वाला सं॰दात से लेनेवाला प प्रमाण युक्त आहार लेनेवाला सु॰ शुद्ध आहार का लेनेवाला अं॰ अंत

चाउमासिए पचमासिए छम्मासिए अदुत्तरं च ण उक्खित्तचरया णिक्खित्तचरया उ क्खित्तणिक्खित्तचरगा अतचरगा पतचरगा लूहचरगा समुदाणचरगा ससट्ठचरगा अ सस ट्ठचरगा तज्जातसंसट्ठचरगा दिट्ठलाभिया अदिट्ठलाभिया पुट्ठलाभिया अपुट्ठलाभिया भिक्खलाभिया अभिक्खलाभिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखाद-

आहार को लेनेवाले, रूक्ष आहार को लेनेवाले, हर्ष से जो आहार देवे सो लेनेवाले, भरा हाथ से आहार देवे सो लेनेवाले, स्वच्छ हाथ से दिया आहार लेनेवाले, जिस द्रव्य से जो हाथ या कुड़छी भरी होवे, उसी हाथ से वही द्रव्य देवे सो लेनेवाले, दृष्ट आहार को लेनेवाले, अदृष्ट आहार को लेनेवाले, पूछकर आहार लेनेवाले, विना पूछे आहार लेनेवाले, तुच्छ आहार लेनेवाले, अतुच्छ आहार लेनेवाले, अज्ञात कुल का आहार लेनेवाले, अज्ञात लोक में कुत्सित आहार लेनेवाले, अपनी नजीक का आहार लेनेवाले,

आहारी प० प्रान्त आहारी अ० निरस आहारी लू० रूक्ष आहारी तु० तुच्छ आहारी अं० अन्त आहार से जीवे पं० प्रान्त आहार से जीवे आ० आयंबिल करे पु० पोरसीकरे वि० निवीकरे अ० मद्य मांस के त्यागी णो० नहीं णि० अत्यंतरस आहार के भोगी ठा० कायोत्सर्ग करने वाले प० प्रतिमाधारी उ० उकडु आसन बैठने वाले णि०निषध आसनपे बैठने वाले वी०वीरासन बैठने वाले दं०दण्डासन बैठने वाले ल० लगड आसन बैठने वाले अ० वस्त्र रहित अ०खाज न कुचरे अ० थूके नहीं धू० कक्षनखादि सुधारे नहीं स०

त्तिया परमिचार्पिंडवाइया सुद्धेसणिया अताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहा हारा तुच्छहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमाड्डिया णिव्विगइया अमज्जमंसा सिणो णाणियामरसभोई ट्ठाणाइया पडिमाट्ठाणाइया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वी रासणिया दण्डायतिया लगण्डसाइणो अप्पाउडा अगत्तया अकण्डुया अणिट्ठुहा धुतकेस

दाति की संख्या करनेवाले, प्रमाण युक्त आहार लेनेवाले, शुद्ध आहार की गवेषणा करनेवाले, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, अरस, विरस, रूक्ष, तुच्छ आहार लेनेवाले, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी, आयंबिल करनेवाले, दोपहर दो प्रहर गये पश्चात् आहार करनेवाले, नीवी करनेवाले, मद्य मांस के त्यागी, सरस आहार के त्यागी, कायोत्सर्ग करनेवाले, प्रतिमा को निभानेवाले, उत्कट आसन पे बैठनेवाले, निषेध आसन पे बैठनेवाले, वीर आसन, दंडासन, लगड आसन पे बैठनेवाले, वस्त्र रहित, शरीर में खाज नहीं खणनेवाले, मुख का थूक नहीं फेंकनेवाले, सिर, मूछ, दाढी के बाल या नखों को [illegible] करनेवाले और शरीर

सर्व गा० अवयव प० शुश्रूषा वि० रहित चि० रहते हैं ॥ ३८ ॥ ते० वे ए० इस वि० विहार से वि विचरते हुवे ब० बहुत वा० वर्ष सा चारित्र प पर्याय पा० पालते हैं ब० बहुत २ आ आबाधा उ० उत्पन्न अ० अनुत्पन्न ब० बहुत भ आहार पानी के प प्रत्याख्यान करते हैं प० प्रत्याख्यान कर ब० बहुत वर्ष अ० अनशन छे० पालता है अ० साधु पना छ० पालकर न० जिस के लिये की० करते हैं न० प्रमाण युक्त वस्त्र मु सबरे अ० स्नान का त्यागकरे अ० दांतन करे नहीं अ० छत्र रहित अ० पगरखी

मसरोमनहा सव्वगाय पडिकम विप्पमुक्का चिट्ठति ॥ ३८ ॥ ते ण एतेणं विहारेण विहरमाणा बहुइ वासाइ सामन्नपरियाग पाउणति बहुबहु आबाहंसि उप्पन्नसिवा अनुप्पन्नसिवा बहुइ भत्ताइ पच्चक्खाइ पच्चक्खाइत्ता बहुइ रासाइ अणसणाइ छेदेति अ णसणाइ छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरति नग्गभावे मुडभावे अण्हाणभावे अदंतवणगे अछ

की शुश्रूषा से रहित होते हुवे विचरते हैं ॥ ३८ ॥ इस तरह उग्र विहार से विचरते हुवे बहुत वर्ष तक चारित्र पर्याय पाले, और चारित्र पर्याय पालते को रोगादिक की आबाधा होवे या न होवे तो भी भात पानी का प्रत्याख्यान करे, और बहुत काल तक अनशन पाले इस तरह अनशन पालता हुवा लोहगोलक के जैसा निरास्वाद, तथा खड्ग जैसा दु:साध्य चारित्र पाले, प्रमाण सहित वस्त्र रक्खे, पांचों इन्द्रिय तथा चार कषाय को संवरे, स्नान मंजन रहित होवे, दांतन का परिहार करे, शिर पे छत्र रखे नहीं, कुपाने पाँव से

रहित भू० भूमिपे शयन करे फ० पाटपे शयन करे क० काष्ट के पर शयन करे के० लोच करे बं० ब्रह्मचर्य पाले प० परघर जावे ल० प्राप्त अ० अप्राप्त मा० मान अ० अपमान ही० हेलना नि० निन्दा खिं० खिंसना ग० गर्हा त० तर्जना ता० ताडना उ० ऊंचा र० नीचा गा० ग्राम्य लोक के वचन बा० बावीस प० परिसह उ० उपसर्ग अ० सहन करते हैं त० उस अ० अर्थ को आ० आराधते हैं त० उस अ० अर्थको आ० आराध कर च० छेल्ले उ० उश्वास निश्वास से अ० अन्तररहित अ० प्रधान नि० निर्व्याघात नि० आवरण रहित क० संपूर्ण प०

चए अणोवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बम्भचेरवासे परघरपवेसे लद्धा अलद्धा माणा अमाणणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिंसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उच्चावयागामकंटगा बावीस परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति तमट्ठं आराहति तमट्ठ आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंतमणुत्तरं निव्वाघात निरावरण

पने, भूमिका में शयन करे, पाट, पटिया, काष्ठ पाषाणादि पर शयन करे, मस्तक के ऊपर रहे हुवे बालों का लोच करे, ब्रह्मचर्य पाले, भिक्षा के लिये दूसरे के घरों में भ्रमण करे, आहार की प्राप्ति व अप्राप्ति में सम्यक् भाव धारण करे, मान, अपमान, हेलना में समभाव रखे, कोई निंदा करे, अन्य की पास या स्वतः की पास हेलना करे, या कोई तर्जना, ताडना करे तो उसे तथा ग्राम्य लोकों के कंटक समान शब्दों को सहन करे और बावीस परिषह तथा देवादिक से कराये हुवे उपसर्ग सहन करे ज्ञान दर्शन व चा

मतिपूर्ण के० केवल अ०श्रेष्ठ ना०ज्ञान दं०दर्शन स०माप्त करते हैं स०माप्तकर त०पीछे सि०सिद्ध होते हैं बु० समजते हैं मु० मुक्त होते हैं प० निवर्तते हैं स० सर्व दु० दुःखको अं० क्षय करते हैं ॥२१॥ ए० कितनेक पु० फिर ए० एक भव में भ० मोक्षगामी भ० होते हैं अ० दूसरे पु० फीर पु० पूर्व कर्म अ० अवशेष रहने से का०कालके अवसरमें का०काल करके अ० अन्यतर दे०देवलोकमें दे० देवता उ० उपजने वाले भ० होते हैं त० वह ज० जैसे म० महर्द्धिक म० महाद्युति म० महापराक्रमी म० महायशस्वी म० महा बलवान म० महा

कसिण पडिपुण्ण केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति, समुप्पाडेंतित्ता, ततोपच्छा सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति, सव्वायांति, सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति ॥ २१ ॥ एग चाए पुणएगे भयंतारोभवंति, अवरेग पुण पुव्वकम्मावसेसेण कालमासे कालकिच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—महड्डिएसु, महज्जुत्तिएसु, महापरिक्कमेसु, महाजसेसु, महाबलेसु, महाणुभावेसु, महासुक्खेसु, तेण तत्थ देवा

रित्र की आराधना करके अनंत, निर्व्याघात, संपूर्ण केवल ज्ञान केवल दर्शन की माप्ति करे बाद में उन को सर्व अर्थ की सिद्धी होवे, तथा चौदह राज लोक का ज्ञान होवे, वे सर्व दुःखसे मुक्त होवे, और सब दुःखों का अन्त करने से शीतल बने ॥ २१ ॥ कितनेक पुरुष तो उसी भव में सिद्ध

[illegible] महर्द्धिक। म० महा
द्युतिवाले म० महा सुखवाले वे उस म० ... त० ... [illegible] क० कडे तु० बाहुरक्षक
थं० स्तंभित भु० भुजा अं० अंगद कुं० कुंडल म० घर्षित गं० गंडस्थल क० कुंडल पा० धरने वाले
वि० विविध ह० हस्त के आ० आभरण वि० विविध मा० माला म० मुकुलित म० मुकुट क० कल्याण
कारी गं० गंध प० श्रेष्ठ व० वस्त्र प० पहिनने वाले क० कल्याण कारी प० श्रेष्ठ म० माल्यानुलेपन

भवंति, महड्ढिया महज्जुइया, जाव महासुक्खा, हारविराइयवच्छा, कडगतुडियथंभियभुया, अंगयकुंडलमट्ठगंडयल कण्णपीढधारी, विचित्तहत्थाभरणा, विचित्तमालामउलिमउडा, कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया, कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा, भासुरबोंदीपलंबवणमालधरा, दिव्वेणं रूवेणं, दिव्वेणं वन्नेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं फासेणं

देवलोक में देवतापने उत्पन्न होते हैं वहाँ महर्द्धिवाले, द्युतिवाले, पराक्रमवाले, यशवाले, अतिशयबल तथा बहुत सुखवाले देवलोक में द्युतिवन्त, ऋद्धिवन्त, यावत् सुखी तथा हारादि आभूषणों से विराजित, कडे, केयूरादिक से स्तंभित भुजावाले, अंगद, कुंडल से घसाये हुये गण्डस्थलों मिलों के, कर्णपीठधारी, विविध हस्त के आभरण पहिननेवाले, विविध प्रकार की मालाओं को धारण करनेवाले, कल्याणकारी सुगंधित वस्त्र पहिननेवाले, कल्याणकारी माल्य विलेपन करनेवाले, देदीप्यमान शरीर पर लम्बी

प्रतिपूर्ण क० केवल प०श्रेष्ठ णा०ज्ञान दं०दर्शन स०प्राप्त करते हैं स०प्राप्तकर त०पीछे सि०सिद्ध होते हैं बु० समजते हैं मु० मुक्त होते हैं प० निर्वर्तते हैं स० सर्व दु० दुःखको अं० क्षय करते हैं ॥२०॥ ए० कितनेक पु० फिर ए० एक भव में भ० मोक्षगामी भ० होते हैं अ० दूसरे पु० फीर पु० पूर्व कर्म अ० अवशेष रहने से का०कालके अवसरमें का०काल करके अ० अन्यत्र दे०देवलोकमें दे० देवता उ० उपजने वाले भ० होते हैं त० वह ज० जैसे, म० महर्द्धिक म० महाद्युति म० महापराक्रमी म० महायशस्वी म० महा बलवान म० महा

कसिण पडिपुण्ण केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति, समुप्पाडेंतिचा, ततोपच्छा सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति, सव्वायाति, सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति ॥ २१ ॥ एग चाए पुणएगे भयतारोभवति, अवरेग पुण पुव्वकम्मावसेसेण कालमासे कालकिच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो भवति, त जहा—महड्डिएसु, महज्जुत्तिएसु, महापरिक्कमेसु, महाजसेसु, महाबलेसु, महाणुभावेसु, महासुखेसु, तेण तस्स देवा

ति की आराधना करके अनंत, निर्व्याघात, संपूर्ण केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति करे पीछे में उन को सर्व अर्थ की सिद्धी होवे, तथा चौदह राज लोक का ज्ञान होवे, वे सर्व दुःखसे मुक्त होवे, और सब दुःखों का अन्त करने से शीतल बने ॥ २१ ॥ कितनेक पुरुष तो उसी भव में सिद्ध गति में चले जाते हैं और कितनेक तो पूर्वकृत कर्मों का शेष होने से काल के अवसर में काल करके

सुभाग म० महा सुखवाले वे सस म व वहा दे० देव म० होते हैं म० महर्द्धिक म० महा सुतिमान म० यसव् म० महासुखी हा० हारसे वि० विराजित म० हृदय वाले क कटे तु० बाजुबन्ध सं० स्थंभित भु० भुजा मं० अंगद कुं० कुंडल म० शोभित गं० गंडस्थल क कुण्डल पा० धरने वाले वि० विविध ह० हस्त के भा० आभरण वि० विविध मा० माला म० मुकुलित म० मुकुट क० कल्याण कारी गं० गंध प० श्रेष्ठ व० वस्त्र प० पहिनने वाले क० कल्याण कारी प० श्रेष्ठ म० माल्यानुलेपन

> भवंति, महड्ढिया महज्जुत्तिया, जाव महासुक्खा, हारविराइयवच्छा, कडगतुडियथंभियभुया, अंगयं कुंडलमट्ठगंडयल कण्णपीढधारी, विचित्तहत्थाभरणा, विचित्तमाला मउलिमउडा, कल्लाणगंधपवरवत्थपरिहिया, कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा, भासुरबोंदीपलंबवणमालधरा, दिव्वेण रूवेण, दिव्वेणं वण्णेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं फासेण

देवलोक में देवतापने उत्पन्न होते हैं वहाँ महर्द्धिवाले, द्युतिवाले, पराक्रमवाले, यशवाले, अतिशयवाले तथा बहुत सुखवाले देवलोक में द्युतिवन्त, ऋद्धिवन्त, यावत् सुखी तथा हारादि आभूषणों से विराजित, कड़े, केयूरादिक से स्तंभित भुजावाले, अंगद, कुंडल से घसाये हुवे गालवालों गिनों के, कर्णपीठधारी, विविध हस्त के आभरण पहिननेवाले, विविध प्रकार की मालाओं को धारण करनेवाले, कल्याणकारी सुगंधित वस्त्र पहिननेवाले, कल्याणकारी माल्य विलेपन करनेवाले, देदीप्यमान शरीर पर लटकती

मतिपूर्ण के० केवल व० श्रेष्ठ णा० ज्ञान द० दर्शन स० प्राप्त करते हैं त० प्राप्तकर त० पीछे सि० सिद्ध होते हैं बु० समझते हैं मु० मुक्त होते हैं प० निर्वर्ते हैं स० सर्व दु० दुःखको अं० क्षय करते हैं ॥ ३० ॥ ए० कितनेक पु० फिर ए० एक भव में भ० मोक्षगामी भ० होते हैं अ० दूसरे पु० फीर पु० पूर्व कर्म अ० अवशेष रहने से का० कालके अवसरमें का० काल करके अ० अन्यत्र दे० देवलोकमें दे० देवता उ० उपजने वाले भ० होते हैं त० या ज० जैसे, म० महर्द्धिक म० महाद्युति म० महापराक्रमी म० महायशस्वी म० महा बलवान म० महा

कसिणं पडिपुण्णं केवलवरणाणदसणसमुप्पाडेंति, समुप्पाडेंतित्ता, ततोपच्छा सिज्झति, बुज्झति मुच्चंति परिणिव्वायंति, सव्वायति, सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति ॥ ३९ ॥ एग च्चाए पुणएगे भयंतारोभवति, अवरेगं पुण पुव्वकम्मावसेसेण कालमासे कालंकिच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो भवति, त जहा—महड्ढिएसु, महज्जुत्तिएसु, महापरिक्कमेसु, महाजसेसु, महाबलेसु, महाणुभावेसु, महासुक्खेसु, तेण तत्थ देवा

रिष की आराधना करके अनंत, निर्व्याघात, संपूर्ण केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति कर बाद में उन को सर्व अर्थ की सिद्धी होवे, तथा चौदह राज लोक का ज्ञान होवे, वे सर्व दुःखसे मुक्त होवे, और सब दुःखों का अन्त करने से पवित्र बने ॥ १२ ॥ कितनेक पुरुष तो उसी भव में सिद्ध

मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त स० सम्यक् सु० सुसाधु दो० दूसरा ठा० स्थानक ध० धर्म पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ ४० ॥ अ० अब त० तीसरा ठा० स्थान मी० मीश्रपक्षका वि० विचार ए० ऐसे आ० कहाजाता है इ० यहां स० निश्चय पा० पूर्वादि दिशामें सं० हैं० ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं तं० यह ज० जैसे अ० अल्पइच्छावाले अ० अल्पारंभी अ० अल्पपरिग्रही ध० धर्मात्मा ध० धर्मानुयायी जा० यावत् ध० धर्मसे वि० वृत्ति क० करने वाले वि० विचरते हैं सु० सुशील सु० सुव

माहिए ॥ ४० ॥ अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विभंगे एवमाहिज्जइ—इह खलु पाईणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति त जहा—अप्पिच्छा, अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा, धम्मिया, धम्माणुया, जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, सुसीला, सुव्वया, सुपडियाणंदा, साहू एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ

है यह दूसरा धर्म पक्ष का विचार कहा ॥ ४० ॥ अब तीसरा मिश्र पक्ष का विचार कहते हैं यद्यपि यह स्थानक धर्म अधर्म से मिश्रित हैं परंतु धर्म का बहुलपना होने से धर्म पक्ष ही कहा है इस संसार में कितनेक मनुष्य अल्प इच्छावाले, अल्पारंभी, अल्प परिग्रही, धर्मिष्ठ, धर्मानुगामी यावत् धर्म से आजीविका करनेवाले हैं ऐसे सुशील, सुव्रती, व आनंदी, पुरुष स्थूल प्राणातिपात से यावज्जीव निवर्ते हुवे हैं और सूक्ष्म प्राणातिपात जो—पृथ्वी आदि की यावत्–त्रस से नहीं निवर्ते हुवे हैं, ऐसे पूर्वोक्त सावद्य, व अबोधि के

ध० धरने वाले मा० देदीप्यमान श० शरीर पे प० छटकती मा० माला ध० धरने वाले दि० दिव्य रू० रूप से दि० दिव्य व० वर्ण से दि० दिव्य ग० गंध से दि० दिव्य फा० स्पर्श दि० दिव्य स० संघायन दि० दिव्य सं० संठान दि० दिव्य इ० ऋद्धि दि० दिव्य जु० जुति दि० दिव्य प० प्रभा दि० दिव्य छा० कान्ति दि० दिव्य अ० अर्चा दि० दिव्य ते० तेज दि० दिव्य ले० लेश्या द० दशोंदिशा में उ० उद्योत करने वाले प० प्रभा करने वाले ग० कल्याणकारीगति ठि० कल्याण कारी स्थिति आ० आगामिक भ० कल्याण कारी भ० होते हैं ए० यह ठा० स्थान आ० आर्य जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख से प०

दिव्वेण, संघाएण, दिव्वेणं संठाणेणं, दिव्वाए इड्डिए, दिव्वाए जुत्तीए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चाए, दिव्वेण तेयणं, दिव्वाए लेसाए, दसदिसाओ उज्जो- वेमाणा, पभासेमाणा, गइकल्लाणा, ठिइकल्लाणा आगमेसि भद्दयावि भवंति, एसट्ठाणे आयरिए जाव सव्वदुक्खपहीणमग्गे, एगंतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एव

हृ वनमाला रूप आभरण को धरनेवाले, प्रधान रूप, वर्ण, गंध, स्पर्श, संघायन, संठाण, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, कान्ति, अर्चा, तेज की ज्वाला, तथा लेश्या को धारण करनेवाले, दशोंदिशि में प्रकाश करनेवाले, तथा गति स्थिति में प्रधान देवों ऐसे उत्पन्न होते हैं वे मनुष्य भवरूप संपदा पावेंगे इस लिये उनको भद्रक कहें यह धर्मस्थानक आर्य यावत् सर्व दुःख से मुक्त करनेवाला तथा एकान्त सम्यक्, सत्य और सुसाधु का स्थानक

थास कु० कुशल अ० सहाय रहित दे०देव अ०असुर ना० नाग सु० सुवर्ण ज० यक्ष र० राक्षस कि० किं-
नर किं० किंपुरुष ग० गरुड गं० गन्धर्व म० महोरगादि दे० देवगण से नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन
से अ० चलित न करसके इ० ये नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन में णि० निःशंकित णि० कांक्षा रहित नि०
निदाणा रहित ल० अर्थ को प्राप्त ग० अर्थ ग्रहण किये हुवे पु० पूछा है अर्थ वि० निर्णय किया है अर्थ
अ० अर्थ के ज्ञाता अ० अस्थि मिं० मिंजी पे० प्रेमानुराग में र० रक्त अ० अहो आ० आयुष्मन् नि०

सुवन्नजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा इणमेव निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहीयट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा अट्ठिमिंजपेम्मा णुरागरत्ता अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे उसियफलिहा अ

कर सकते हैं ये जिन प्रवचन में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, व जुगुप्सा रहित हैं आज्ञादिक के जो अर्थ
ग्रहण किये हैं उसमें यदि संशय उत्पन्न होजावे तो अपने गीतार्थ गुरुओं को पूछकर निर्णय करते हैं जहांतक
पूरा निर्णय न होजावे, वहांतक वारंवार पूछते रहते हैं, बाद में निर्णय कर विनीत भाव से हृदय में स्था
पन करते हैं उन की हड्डी तथा हड्डी की मिंजी भगवन्त के सिद्धांतरूप फलादिक में प्रेमरूप राग से रंगाइ
गई है, थोडे बहुत मनुष्यों का समुह मिले तो वहां भी ऐसा उपदेश करते हैं कि निर्ग्रंथ के जो प्रवचन

पन्नी सु॰ आस्थी सा॰ छाघु ए॰ एकेक पा॰ माणातिपात से प॰ निवृत्त जा॰ आवज्जीव ए॰ एकेकसे अ॰ अनिवृत्त जा॰ यावत् जे॰ जैसे त॰ तथा प्रकार के सा॰ सावद्य अ॰ अबोधिक क॰ कर्म प॰ दूसरे पा॰ माणी प॰ परिताप क॰ करते हैं॰ त॰ उस ए॰ एकेकसे अ॰ अनिवृत्त ॥ ४१ ॥ से॰ वह ज॰ जैसे स॰ श्रमणोपासक भ॰ होते हैं अ॰ जाना हुवा जी॰ जीव अ॰ अजीव उ॰ जाना हुवा पु॰ पुण्य पा॰ पाप आ॰ आश्रव सं॰ संवर वे॰ वेदना नि॰ निर्जरा कि॰ क्रिया अ॰ अधिकरण ब॰ बंध मो॰

अप्पडिविरया जाव जेयावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता, पर पाणपरितावणकरा कज्जंति, ततोवि एगच्चाओ अप्पडिविरया ॥ ४१ ॥ से जहा णामए समणोवासगा भवंति अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आ सवसंवरवेयणाणिज्जराकिरियाहिगरणबंधमोक्खकुसला असहेज्ज देवासुरनाग

कारण कर्म रूप व्यापार तथा अन्य जीवों को परितापना देना उस में भी एक पक्ष से विरति और एक पक्ष से अविरति है इस लिये उन को विरता विरत कहते हैं ॥४१॥ वे श्रमणोपासक जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा क्रिया के अधिकार बंध और मोक्ष का स्वरूप जानने में कुशल हैं कष्ट आने पर देवतादिक की सहाय वांछे नहीं, विमानवासी देव, असुर कुमार, नाग कुमार सुवर्ण कुमार, यक्ष राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरगादिक भी उन को निर्ग्रंथ के प्रवचन से चलित नहीं

शीलव्रत गु० गुणव्रत प० प्रत्याख्यान पो० पोषध उ० उपवास अ० यथा प० परिग्रहित त० तप क० कर्म आ० आत्मा को भा० भावता हुवा वि० विचरता है ॥ ८२ ॥ ते० उस से ए० इस रू० रूप वि० विहार मे वि० विचरता हुवा ब० बहुत वा० वर्ष स० श्रमणोपासक प० पर्याय पा० पालता है पा० पालकर आ० आबाधा उ० उत्पन्न होने अ० उत्पन्न नहीं होने ब० बहुत भ० आहार पानी अ० अनशन प० पचखता है प० बहुत भ० आहार पानी अ० अनशन के लिये प० प्रत्याख्यान कर ब० बहुत भ० अन्न पानी अ० अनशन के लिये छे० परिहरता है

गहिएहिं तवो कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥ ८२ ॥ तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति पाउणंतित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अणुप्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्खाए बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्खाएत्ता बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ बहुहिं भत्ताइं अणसणाए छेदे

अपनी योग्यता से लिये हुवे को पालनेवाले तथा नवकारसी, पोरसी प्रमुख प्रत्याख्यान करनेवाले, और पोषध, उपवासादिक अपनी इच्छानुसार करनेवाले तपकर्म से अपनी आत्मा को भावते हुवे विचरते हैं॥८२॥ इस तरह श्रावकके आचार में प्रवर्तता हुवा बहुत काल तक श्रावकपना पाले बाद में आबाधा उत्पन्न होवे या न होवे तो भी भात पानी का परिहार करके अनशन करे, अनशन का प्रत्याख्यान किये बाद आलोचना कर, और जो पाप लगे होवे उसे अरिहंतादिक को कहकर और उस का मिथ्या दुष्कृत देकर

निर्ग्रन्थ के पा० प्रवचन अ० यह प० परमार्थ से० शेष म० अनर्थ उ० निर्मल फ० स्फटिक म० सुख्कादार अ०अभीत्तिकर अं०अंतःपुर प० दूसरेके घ०गृहमें प० प्रवेश चा० चतुर्दशी अ०अष्टमी उ० उत्तमतिथि पु०पूर्णिमा प०प्रतिपूर्ण पो० पोषध स० सम्यक् अ० पालता हुवा स० श्रमण नि० निर्ग्रन्थको फा० फासुक ए० शुद्ध अ० अन्न पा पानी खा० खादिम सा० स्वादिम व० वस्त्र प० पात्र कं कम्बल पा० रजोहरण ओ० औषध भे० भैषज्य पी० पाट फ० पाट्या से० शैय्या सं० संथारा प० प्रतिलाभता हुवा व० बहुत सी०

घणुप्पपुवारा अचियपंतेउरपरघरप्वेसा चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु पडिपुण्ण पोसहं सम्म अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसा इमेण वत्थपडिग्गहकम्बलपायपुच्छणेण ओसहभेसज्जेणं पीढफलगसेज्जा संथार एण पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमण पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अहापरि

सिद्धांत हैं ये ही आत्मा के लिये मोक्ष साधन रूप मार्ग हैं और दूसरे कपिलादिक के मत अनर्थकारी हैं राजा का अंतःपुर की मुवाफिक अन्य लोकों के घर में प्रवेश करने का त्याग करनेवाले होते हैं, अष्टमी, चतुर्दशी, महा कल्याणिक तिथि, पूर्णिमा, और अमावास्या इतने दिनों में प्रतिपूर्ण पोषध करते हैं और श्रमण, निर्ग्रंथ तपस्वी को फासुक असन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण औषध, भेषज्य, पीठ, फलक, शैय्या, संथारा देते हैं शिक्षाव्रत धारी, स्थूल प्राणातिपात विरमणादिक व्रत व गुणव्रत

माश्री सा० शालपीडित मा० कहा जाता है व० वहां आ० जो स० सर्वथा अ० अविरति ए० इस ठा० स्थानक में आ० आरंभ स्थानक में अ० अनार्य जा० यावत् अ० नहीं स सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म० मार्ग ए० एकान्त मि० मिथ्यात्वी अ० असाधु त० वहां आ० जो० स० सर्वथा वि० विरति ए० इस ठा स्थानक में अ० [illegible]रामी ठा० स्थानक में आ० आर्य जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख से प मुक्त म० मार्ग ए एकान्त स० सम्यक्त्वी सा० साधु त० वहां आ० जो स० सर्वथा वि० विरताविरति ए

ट्ठाणे अणारिए जाव असव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगतमिच्छे असाहू। तत्थण जासा स व्वतो विरई एसट्ठाणे अणारंभठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे एगत 'स म्मे साहू। तत्थण जासा सव्वओ विरयाविरई एसट्ठाणे आरंभणोरंभट्ठाणे एस ट्ठाणे आरिए जाव सव्वदुक्खप्पहीण मग्गे एगत सम्मे साहू॥४४॥ एवमेव समणुगम्म-

के स्थानों का संक्षेप से वर्णन करते हैं (१) जिनोंने किसी प्रकार के व्रत नियमों का आचरन किये नहीं है, तथा आरंभमय ही जिनों की वृत्ति है, ऐसे बाल अधर्म पक्ष का ही सेवन करते हैं (२) जिनोंने सर्व प्रकार के आरंभ का त्याग कर व्रतों अंगीकार किये हैं, वे पंडित कहाये जाते हैं (३) जो थोडा बहुत व्रत अंगीकार करते हैं और बहुतसा आरंभ से निवर्ते हैं और थोडासा आरंभ रहा है यह भी

ब०बहुत भ०भक्त पानी न०अनशनके लिये छे परिहार कर आ आलोचकर प०प्रायश्चित्त कर स०समाधिको प्राप्त का०काल के अवसर में का०काल करके अ०अन्यतर दे०देव लोक में दे० देवता उ०उत्पन्न भ०होता है त० यह ज० जैसे म० महर्द्धिक म० महाद्युति जा० यावत् म०महा सुख में से०शेष त०तैसे जा० यावत् ए० यह ठा० स्थान आ० आर्य जा० यावत् ए एकान्त स० सम्यक् सा० साधु त० तीसरा ठा० स्थान मि० मिश्र पक्ष का वि० विचार ए० ऐसा आ० कहा ॥ ४२ ॥ अ० अविरति प० आश्री बा० अज्ञानी आ कहा जाता है वि० विरति प आश्री पं० पंडित आ० कहा जाता है वि० विरति अविरति प०

इच्चा आलोइय पडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालकिच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देव ताए उववत्तारो भवंति तंजहा महड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव महा सुखेसु सेस तहेव जाव ए सट्ठाणे आयरिए जाव एगंत सम्मे साहू तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एवमाहिए ॥ ४२ ॥ अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ, विरइं पडुच्च पंडिए आहिज्जइ, विरयाविरइं पडुच्च बालपंडिए आहिज्जइ । तत्थणं जासा सव्वतो अविरइ एसट्ठाणे आरम्भ-

समाधिप्राप्त करे समाधि प्राप्त किये बाद काल के अवसर में काल करके महा ऋद्धिवन्त महा द्युतिवन्त यावत् बहुत सुखवाले देवलोक में उत्पन्न होवे यह स्थानक आर्य अर्थात् धर्म पक्ष का है यावत् एकान्त सम्यक्त्व मार्ग तक सर्व आम्नायक कहना इस तरह मिश्र पक्ष का स्वरूप कहा ॥ ४२ ॥ उक्त तीनों प्रकार

ब० बहुत अ० अग्नि थं० स्थंभित कु० करे णो० नहीं ब० बहुत सा० साधर्मिक की वे० सहायता कु० करो णो० नहीं बहुत प परधर्मीकी वे० सहायता कु० करे उ सरल णि० मोक्षको प० मार्ग अ० अमाया कु० करते हुवे पा० हस्त प० पसारो इ० ऐसा बु० कहकर से० वह पु पुरुष ते० उन पा० पापवादिओं को तं० उस सा० अग्नि का इं० अंगार का पा० पात्र को ब० बहुत प० प्रतिपूर्ण अ० लोहे की स० संडासी से ग० ग्रहण कर पा० हस्तपे णि० मूकता है त० उस से ते० वे पा० पापवादी आ० आदि कर्त्ता ध० धर्म के णा० विविध प० प्रज्ञा वा यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय स० युक्त

वासग संसारियं कुज्जा, णो बहु आगणिथमाणियं कुज्जा, णो बहु साहम्मियवेयावडिय कुज्जा, णो बहुपरधम्मियं वेयावडिय कुज्जा, उज्जयाणियागपडिवक्षा अमायं कुव्वमाणा पाणिं पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावादुयाण तं सागणियाणं इंगालाण पाइ बहुपडिपुन्नं अउमएण संडासएण गहाय पाणिसु णिसिरिंति तएण ते पावादुया आइग

वे अपना हाथ पीछे खींचलेते हैं ऐसा देखकर वह उन्हें बोला रे मायावुक! तुम्हारा हाथ पीछे क्यों खेंचते हो! वे उत्तर देते हैं कि हमारे हाथ जलते हैं इस लिये पीछे खींच लेते हैं फिर प्रश्न किया कि तुम्हारे हाथ जलने से क्या होने का है! वे उत्तर देते हैं कि इस से हम को दुःख होता है जब वह बोलता है

पु० कोई पुरुष सा० अग्नि के इ० अंगारका पा० पात्र ब० बहुत प० प्रतिपूर्ण ग० ग्रहण कर अ० लोहेकी स० सण्डासीसे ग० ग्रहणकर ते० उन स० सर्व पा पापवादीको आ० आदिकर्ता धि० धर्मके णा० विविध प्रज्ञावाले जा० यावत् णा० विविध अ अध्यवसाय से सं० युक्त ए० एसा व० बोलना है इ० अहो पा० पापवादि यो ! आ आदि कर्ता ध० धर्मके णा० विविध प्रज्ञावाले जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय स० युक्त इ० इस सु० शुभ सा० अग्निका इ० अंगारका पा० पात्र ब० बहुत प० प्रतिपूर्ण ग० ग्रहण करो मु० मुहूर्तमात्र पा हस्तमें प० रखो णो० नहीं ब० बहुत सं० सण्डासी की स० सहायता कु० करो णो० नहीं

पुरिसेय सागणियाण इंगालाण पाइ बहुपडिपुन्न गहाय अउमएण सडासएणं गहाय ते सव्वे पावाउए आइगरा धम्माण णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसजुत्ते एव वयासी हंभो पावाउया ! आइगरा धम्माण णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसजुत्ता इम ताव तु म्हे सागणियाण इंगालाण पाइ बहुपडिपुन्न गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णो बहुस

किसी मंत्रादिक का प्रयोग भी करना नहीं तुम्हारे स्वधर्मियों की मदद भी मांगना नहीं, मात्र तुम्हारे हाथ में इस को उठाकर एक मुहूर्त मात्र रखो अब सरल बनकर तुम तुम्हारा हाथ अग्नि का पात्र उठाने के लिये लम्बा करो ऐसा कहकर वह पुरुष उस अग्निवाला पात्र उन के हाथ में रखने को चाहता है कि

हो प० इस तु तुल्य ए० इस प० प्रमाण ए० इस न्याय से प० प्रत्येक हु तुल्य प प्रत्येक ए० प्रमाण प० प्रत्येक स० न्याय त० वहां जे० जो ते वे स० श्रमण मा० ब्राह्मण ए० ऐसा मा० कहते हैं ना० यावत् प० प्ररूपते हैं स० सर्व प्राणी जा यावत् स० सत्त्व है० हणने योग्य अ० चाकरने योग्य प० पकड़ने योग्य प० परीताप देने योग्य कि० किलामना देने योग्य उ० उद्वेग करने योग्य ते० वे आ आगा मिक काल में छे० छेदावेंगे ते० वे आ० आगामिक काल मे मे० भेदावेंगे जा० यावत् ते० वे आ० आगामिक काल में जा० जाति ज० वृद्धावस्था म० मरण जो० योनि में ज० जन्म सं संसार में पु० पुनर्भव ग० गर्भवास भ० भवप्रपंच क० कलंक के भा० भागी भ० होंगे ॥ ४८ ॥ ते० वे ब० बहुत दं० दण्ड

रणे तत्थणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा जाव सत्ता हतव्वा अज्जावेयव्वा, परिघेतव्वा, परितावेयव्वा, किलामेतव्वा, उद्दवेतव्वा, ते आगंतु छेयाए ते आगंतु भेयाए, जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणिजम्मणसंसारपुण भवगब्भवासभवपवंचकलंकलीभागिणो भविस्संति ॥ ४८ ॥ ते बहूणं दंडणाणं

भोगवना पड़ेगा और अनेक योनियों में परिभ्रमण करना पड़ेगा इस तरह परिभ्रमण करते हुवे नवीन भव में उत्पन्न होने का या गर्भवासमें रहने का होगा और संसारका प्रपंच और दुःख का भागी होना होगा ॥ ४८ ॥ ऐसे जीवों बहुत दंडावेंगे, मुंडावेंगे, ताड़न, तर्जना पावेंगे, दुःखानुबंध से आम्रफल जैसे घोला

पा० इस को प० सीखसके हैं व० उस से से० वह पु० पुरुष ते० उन स० सर्व पा० पापवादियों को आ० आदि कर्ता ध० धर्म के जा० यावत् णा० विविध अ० अध्यवसाय स० युक्त ए ऐसा व० कहता है इ० अहो पा० पापवादियो ! आ० आदि कर्ता ध० धर्म के णा० विविध प० प्रज्ञा जा० यावत् णा विविध अ० अध्यवसाय सं० युक्त कि० क्यों तु० तुम्हारा पा० इस को प० सीखसके हो पा० इस को० हमारा ह० मारने ह० मरानेसे कि० क्या अ० हमारा दु०दुःख होता है म०मानते हुवे प०सीखसके

रा धम्मार्ण पाणारूमा जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता पाणि पडिसाहराति तएण से पु-
रिसे ते सव्वे पावाउए आदिगरे धम्माण जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता एवं वयासी ह
मो पावाउया ! आइगरा धम्माण णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता कम्हाण तु
ब्भे पाणिं पडिसाहरह? पाणिं णो डहिज्जा एहे किं भविस्सइ? दुक्खंति मन्नमाणा पडि
साहरह, एसतुला एसप्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुल्ला, पत्तेयंपमाणे, पत्तेयं समोस

कि जैसे तुम अग्नि से डरते हुवे हाथ पीछे खींचसके हो, क्यों कि इस से हम को दुःख होता है वैसे ही सब जीवों को जानना यहां जो श्रमण माहण हैं वे ऐसा मानते हैं कि सर्व प्राण भूत जीव सत्त्व को मारना यावत् घोल उपजाना ऐसे वचन बोलनेवाले को पेश्वर! भेदन यावत् जन्मजरामरण

नहीं स० सर्व दु० दुःख के अ० अन्त करेंगे प० पर तु० तुल्य प० यह प० प्रमाण प० यह स० न्याय प० प्रत्येक तु तुल्य प० प्रत्येक प० प्रमाण प० प्रत्येक स० न्याय ॥ ४१ ॥ त० तहां जे जो ते० वे स० श्रमण मा० ब्राह्मण ए० ऐसे आ कहते हैं जा० यावत् प० प्ररूपते हैं स० सर्व पा प्राणी स० सर्व भू० भूत स० सर्व जी जीव स० सर्व स० सत्व ण० नहीं ह० हणो ण० नहीं प० पीडो ण० नहीं प० घात करो ण० नहीं उ० उद्वेग उपजावो ते० वे णो० नहीं आ० आगामिककाल में छे० छेदावेंगे ते० वे णो० नहीं आ० आगमिक काल में भे० भेदावेंगे जा० यावत् जा० जन्म ज० जरा म०

एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेय तुल्ला, पत्तय पमाणे, पत्तेय समोसरणे(१) ॥ ४१ ॥ तत्थ ण जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परुवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, ण हंतव्वा ण अज्झावयव्वा ण परिघेतव्वा, ण उद्दवेयव्वा, ते णो आगंतु छेयाए ते णो आगंतु भेयाए जाव जाइजरामरणजोणिजम्मणसंसारपुणभवगब्भवासभवं एव कलंकली भागिणो भविस्संति ते णो बहूण दंडणा

जीवों को अपनी आत्मा तुल्य मानना ॥ ४१ ॥ और जो श्रमण ब्राह्मण सर्व प्राणी, भूत, जीव और सत्व को मारना नहीं यावत् उद्वेग उपजाना नहीं ऐसा उपदेश देते हैं वे छेदावेंगे नहीं, भेदावेंगे नहीं, यावत् जन्म जरा मरण नहीं भोगवेंगे, उनको अनेक योनियोंमें उत्पन्न नहीं होना होगा, वे संसारक्त प्रपंच तथा कलकलाटके

बहुत मुं० मुंडन त० तर्जना ता० ताडना अ० अथवा बं० बंधन जा० यावत् घो० घोलना मा० मातृ मरण पि० पितृ मरण मा० भाइ मरण भ० भगिनी मरण भ० भार्या पु० पुत्र धू० पुत्रि सु० पुत्रवधू म० मरण द० दरिद्र दो० दुर्भागी अ० अप्रिय सं० वास पि० प्रिय वि० वियोग ब० बहुत दु० दुःख दो० दुमन भा० भागी भ० होंगे अ० अनादि अ० अपार दी० दीर्घ काल चा० चारगति सं० संसार कं० अटवी में भु० बारम्बार भ० परिभ्रमण करेंगे ते० वे णो० नहीं सि० सिद्ध होंगे णो० नहीं बु० जानेंगे जा० यावत् णो०

बहूणं मुंडणाणं, तज्जणाणं, तालणाणं, अदुबंधणाणं, जाव घोलणाणं, माइमरणाणं पियामरणाणं भाइमरणाणं भगिणीमरणाणं भज्जा—पुत्त—धूया—सुण्हामरणाणं, दरिद्दाणं दोहग्गाणं, अप्पियसंवासाणं, पियविप्पओगाणं, बहूणं दुक्खदोमणस्साणं, आभागिणो भविस्सति अणादियं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो भुज्जो, अणुपरियट्टिस्सति ते णो सिज्झिस्संति णो बुज्झिस्सति जाव णो सव्व दुक्खाणं अंतकरिस्सति

बंधे, वन को माता, पिता, भाइ, बहिन, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू इत्यादि प्रिय जनों का वियोग होगा, सब प्रिय वस्तु का वियोग होगा, अप्रिय वस्तु का संयोग होगा, महा दुःखी, दुर्भागी व दरिद्री होंगे, आदि अंत रहित अपार संसार रूप वन में वारंवार परिभ्रमण करेंगे, वे पाखंडी लोकों सीझेंगे नहीं, वैसे ही लोका लोक का स्वरूप जानेंगे भी नहीं यावत् सर्व दुःख का अंत नहीं करेंगे इस लिये पंडित पुरुषों को सब

नहीं स० सर्व दु० दुःख के अ० मन्य करेंगे ए यह तु० तुल्य ए० यह प० प्रमाण ए० यह स० न्याय प० प्रत्येक तु० तुल्य प० प्रत्येक प० प्रमाण प० प्रत्येक स० न्याय ॥ ८९ ॥ त० तहां जे० जो ते० वे स० श्रमण मा० माहण ए० ऐसे आ करते हैं जा० यावत् प० प्ररूपते हैं स० सर्व पा प्राणी स० सर्व भू० भूत स० सर्व जी० जीव स० सर्व स० सत्व ण० नहीं ह० हणो ण० नहीं अ० पीडो ण० नहीं प० घात करो ण० नहीं उ० उद्वेग उपजाओ ते० वे णो० नहीं आ० आगामिककाल में छे० छेदावेंगे ते० वे० णो० नहीं आ० आगामिक काल में भे० भेदावेंगे जा० यावत् जा० जन्म ज० जरा म०

एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेय तुल्ला, पत्तेयं पमाणे, पत्तेय समोसरणे(१) ॥ ४१ ॥ तत्थ ण जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सव्वे पाणा सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, ण हतव्वा ण अज्झावयव्वा ण परिघेतव्वा, ण उद्दवेयव्वा, ते णो आगंतु छेयाए ते णो आगतु भेयाए जाव जाइजरामरणजोणिजम्मणससारपुणभवगब्भवासभवं एव कलंकली भागिणो भविस्संति ते णो बहूण छहणा

जीवों को अपनी आत्मा तुल्य मानना ॥ ८९ ॥ और जो श्रमण माहण सब प्राणी, भूत, जीव और सत्व को मारना नहीं यावत् उद्वेग उपजाना नहीं ऐसा उपदेश देते हैं। वे छेदावेंगे नहीं, भेदावेंगे नहीं, यावत् जन्म जरा मरण नहीं भोगवेंगे, उनको अनेक योनियोंमें उत्पन्न नहीं होना होगा, वे संसारके प्रपंच तथा कलकलाटके

मरण जो० योनिमें ज० जन्म सं० संसार पु० फिर म० हाव ग० गर्भवास भ० होने ए० ऐसे क० कंकाशके भा० भागी भ० होवेंगे ते० वे णो नहीं ब० बहुत द० दंडन जा० यावत् णो० नहीं ब० बहुत मुं० मुंडन जा यावत् ब० बहुत दु० दुःख दो० दुर्मन के णो० नहीं भा भागी भ० होंगे अ० अनादि अ० अपार दी० दीर्घ चा० चारगति सं संसार कं भटवी में मु० वारंवार णो० नहीं प० परिभ्रमण करेंगे ते० वे सि० सिद्ध होवेंगे जा० यावत् स० सर्व दु दुःख का अं० अन्त करेंगे ॥ ५० ॥ इ० इन बा० बारह कि क्रिया स्थानक में व० रहते हुवे जी० जीव णो० नहीं सि० सिद्ध हुवे णो० नहीं बु समझे णो०

ण जाव णो बहूण मुडणाणं, जाव बहूण दुक्ख दोमणस्साण णो भागिणो भविस्सति अ णादिय च ण अणवयग्गं दीहमद्ध चाउरतससारकंतारे भुज्जो भुज्जो णो परियट्टिस्सति तेसिं सिज्झति जाव सव्व दुक्खाण अतं करिस्सति ॥ ५० ॥ इच्चेतेहिं बारसहिं कि-रियाट्ठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णो सिज्झिसु णो बुज्झिसु णो मुच्चिसु णो परिनिव्वायसु

भी भागी नहीं होंगे और भी वे बहुत दुःखोंगे नहीं यावत् दौर्मनस्य का भागी नहीं बनेंगे और दीर्घ काल पर्यंत चतुर्गतिक ससार रूप अटवि में परिभ्रमण नहीं करेंगे इस तरह दया धर्म के प्ररूपक जीवों सीझेंगे, बुझेंगे, कार्य सिद्धि करेंगे, यावत् सब दुःखों का अंत करेंगे ॥ ५० ॥ पूर्वोक्त बारह प्रकार के

नहीं मु० मुक्त हुये णो० नहीं प० निर्वाण पाये जा० यावत् णो० नहीं स० सर्व दु० दुःख का अं० अन्त क्रिया णो० नहीं क० करते हैं णो० नहीं क० करेंगे ॥ ५१ ॥ ए० इस ते० तेरवे कि० क्रिया स्थानक में व० रहते हुवे जी० जीव सि० सिद्ध हुये बु० समझे मु० मुक्त हुये प० निर्वाण पाये जा० यावत् स० सर्व दु० दुःख का अं० अन्त किया क० करते हैं क० करेंगे ए० ऐसे से० वह भि० साधु आ० आत्मार्थी

जाव णो सव्वदुक्खाण अतकरेंसुवा णो करिस्संति णो करिस्सति वा ॥ ५१ ॥ एयंसि चेव तेरसमे किरियाट्ठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिसु बुज्झिसु मुच्चिसु परिणिव्वाइसु, जाव सव्व दुक्खाण अतं करेंसुवा करेंति करिस्सति वा एवं से भिक्खू आयट्ठी आ

माना है कर्म से मुक्त नहीं बने हैं यावत् सर्व दुःखों का अंत भी किया नहीं है, करेंगे नहीं और वर्तमान कालमें करते भी नहीं हैं क्यों कि बारह प्रकार के क्रिया स्थानक अधर्म पक्ष में ही गिने गये हैं ॥ ५१ ॥ तेरवा स्थानक में रहने वाले जीव अतीत काल में सिद्ध हुवे, उनों ने तत्त्वमार्ग को जाना, अष्ट कर्म से मुक्त हुवे, शीतली भूत बने यावत् सर्व दुःखों का अंत अतीत काल में किया, आगामिक काल में करेंगे और वर्तमान काल में कर रहे हैं ऐसा साधु मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मा का हित चिन्तवनेवाला, आत्मा को गोपनेवाला, योग को अपने वश करनेवाला, आत्मा के लिये पराक्रम का करनेवाला, आत्माका रक्षक आत्मा की अनुकंपा करनेवाला, आत्मा को संसार से मुक्त करनेवाला, तथा क्रिया का स्थानक से

आ० आत्म हितैषी आ० आत्मगुप्त आ० आत्मयोगी आ० आत्म पराक्रमी आ० आत्म रक्षक आ० आत्मानुकंपा आ० आत्म निस्तारक आ० आत्मा को प पार करेगा वि० ऐसा मैं० कहता हूं ॥ ५२ ॥

पहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेव पडिसाहरेज्जासि त्तिबेमि ॥ ५२ ॥ इति किरियाट्ठाण णाम अट्ठारस मज्झयण सम्मत्त ॥ २ ॥ १८ ॥

निवर्तनेवाला महा पुरुष कहा जाता है, ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह क्रियास्थान नाम अठारवां अध्ययन समाप्त हुवा इस में क्रिया का अधिकार कहा क्रियावन्त जीव आहार लेते हैं इस लिये आहार परिज्ञा नामक अध्ययन कहते हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

॥ आहार परिज्ञा नामक मेकोनविंशतितम मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्यवान् भ० भगवानने ए० ऐसा अ० कहा इ० यहां ख० निश्चय आ० आहार परिज्ञा अ० अध्ययन त० उस का अ०यह अ० अर्थ ॥ १ ॥ इ० यहां ख० निश्चय पा० पूर्वादि दिशा में स० सर्व से स० सर्व लो लोक में च० चार बी० बीज काया ए० ऐसे आ० कही जाती हैं तं० वह ज० जैसे अ० अग्रबीज मू मूलबीज पो० गठ बीज खं० स्कन्ध बीज ते० उन में

सुयं मे आउसंतेण भगवया एव मक्खाय इह खलु आहारपरिण्णाणामज्झयणे तस्स ण अयमट्ठे ॥१॥ इह खलु पाईण वा सव्वतो सव्वावति च ण लोगसि चत्तारि बीयकाया एव माहिज्जति तजहा अग्गबीया मूलबीया पोरबीया, खधबीया, तेसिं च ण अहाबी एण अहावगासेण इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया, पुढविसभवा, पुढविवुक्कमये तज्जो-

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो जम्बू आहार परिज्ञा का जैसा अर्थ मैंने श्री महावीर प्रभु से सुना है वैसाही तुझे कहता हूं॥१॥ इस भगवत् की पूर्वादिक दिशि विदिशि रूप सब लोक में चार प्रकार के बीज उत्पत्ति के स्थान श्री तीर्थंकर देवने कहे हैं (१) अग्रबीज वनस्पति अग्र भाग में उत्पन्न होनेवाली तिल, शाल सहकार वगैरह (२) मूलबीज वनस्पति जिस का बीज मूल होवे आर्द्रकादिक (३)

है म० करते ॥ २ ॥ अ० अब पु पहिले कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व रु० वृक्ष योनिक रु० वृक्ष में संभव रु० वृक्ष में वु० संक्रम पु पृथ्वी की योनिवाले रु वृक्ष से रु० वृक्षपना में वि० उपजते हैं ते० य जी० जीव ते० उस में पु० पृथ्वी योनिवाले रु० वृक्ष के सि० स्नेह का आ० आहार करते हैं ते० वे नी जीव आ० आहार करते हैं पु० पृथ्वी काया को आ० अप् ते० अग्नि वा० वायु व वनस्पति स० काया को णा० विविध त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी के स० शरीर को अ० निर्जीव कु० करते

ति मक्खाय ॥ २ ॥ अहावर पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया, तस्सम वा, तदुक्कमा, कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुक्कम्मा पुढविजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढविजो णियाण रुक्खाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं आउ तेउ वाउ वणस्सइ सरीरं णाणाविहाण तसथावराण पाणाण सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं

ईश्वरादि कुच्छ भी नहीं कर सकते हैं ॥ २ ॥ अब पृथ्वीयोनिक वनस्पति में अन्य जीव उत्पन्न होते हैं सो बतलाते हैं जिन जीवों की कर्मों के वश से उत्पत्ति वृक्ष में रही हुइ है वे जीव पृथ्वीयोनिक वृक्ष में आकर उत्पन्न होते हैं, उपक्रमते हैं वृद्धि पाते हैं, और उस रूप ही बनजाते हैं वे जीवों उस पृथ्वी योनिक जीवने जो आहार ग्रहण किया था उस में से कुच्छ हिस्सा स्वयं खींचकर अपने शरीर में परणमाते हैं, उस से वृद्धि पाते हैं परंतु उस वृक्ष को पीडा नहीं देते हैं बने हुवे बाद उस वृक्ष का और ऊपर से

है प० विध्वंस स० त्रस म० काया को पु० पहिले आ आहार लिया हुआ त० त्वचा से आ० आहार लिया वि० परगमा कर सा० अपना स्वरूप किया म० हुआ अ० दूसर ते० उसमें रु वृक्ष योनि वाले रु वृक्ष के स० शरीर णा० विविध वर्ण णा० विविध गंध णा० विविध रस णा० विविध स्पर्श णा० विविध संठाण सं० रहे हुवे आ० विविध शरीर पु० पुद्गल वि० वैक्रेय ते० वे जी० जीव क० कर्म से उ०

त सरीर पुव्वाहारिय तयाहारिय विप्परिणामिय सारुविकडं सत अवरेवि य ण तेसिं रु-क्खजोणियाण रुक्खाण सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणा संठाणसंठिया णाणाविह सरीर पुग्गल विउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंति त्ति मक्खाय ॥ २ ॥ अहावर पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा

भावार्थ पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और अनेक प्रकार के त्रस प्राणियों के शरीर का आहार कर अचित्त कर देते हैं वह आहार उन की त्वचा से शरीर में परगमता है और उन के शरीर रूप अनेक वर्ण, गंध, रस और स्पर्शमय बन अनेक प्रकार के आकार में बन जाते हैं और वैक्रेय शरीर जैसे उन के शरीर के पुद्गल बन जाता है इस तरह कर्मों से जीवों की विचित्रता होती है ऐसा श्री तीर्थंकर इनने फरमाया है ॥ २ ॥ अब वनस्पति के अवयवों का अधिकार कहते हैं इस जगत् में कितनेक

उत्पन्न प० होते हैं प० करा ॥ ३ ॥ पूर्ववत् ॥ ४ ॥ मू० मूलपने कं० कंदपने खं० स्कंधपने त० त्वचा

रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्सभवा तदुवकम्मा, कम्मोवगा, कम्माणियाणेण, तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ सरीरं तस थावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणामियं सारूविकडं संतं अवरेवि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंति ति मक्खायं ॥ ४ ॥ अहा-वरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया स

जीवों वृक्ष में उपजने का कर्मोंपार्जन करके वृक्ष के किसी विभाग में उत्पन्न होते हैं, उस में ही वृद्धि पाते हैं, वारंवार उनकर कर्मों के वश से वहां ही उत्पन्न होते हैं, वे जीवों भी वृक्षने ग्रहण किया हुवा आहार में से आहार का कुछ हिस्सा स्वयं लेते हैं, और उसे शरीर रूप परनमाकर वृद्धि पाते हैं फिर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व अनेक प्रकार के त्रस जीवों के शरीर का आहार कर अपने शरीर जैसा परिणमाकर मूलरूप, स्कन्धरूप, शाखारूप तथा पुष्प फल आदि अनेक रूप, अनेक वर्ण, गंध, रस, स्पर्श तथा संस्थान मय बन जाते हैं यह सब कर्मों की विचित्रता है ऐसा श्री तीर्थंकर देव का कथन है ॥ ५ ॥

पने सा० शाखापने प० प्रवालपने प० पत्रपने पु० पुष्पपने फ० फलपने बी० बीजपने वि० उत्पन्न होते हैं

रुसंभवा तदुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेण तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए, कंदत्ताए, खंधत्ताए, तयत्ताए, सालत्ताए, पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहं माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं—आउ—तेउ—वाउ—वणस्सइ णाणाविहाणं तसथावरा णं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरगं जाव सारूविकडं संतं अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं, कंदा°, खंधाणं, तयाणं, सालाणं पवालाणं जाव बीयाणं सरीरा, णाणावण्णा णाणागंधा, जाव णाणाविहसरीरपुग्गल विउव्विया ते जीवा कम्मोववण्णगा भवंती ति मक्खायं ॥ ५ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता

अब अन्य स्थान आश्रित कहते हैं इस जगत् में कोई एक वृक्षयोनिक अथवा अन्य अवयवरूप प्राणी उत्पन्न होवे और एक वनस्पति का बीज सर्व वृक्ष के अवयव व्यापार मे या अन्य जीव उस के व्यापारसे उस के मूल, कंद, स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, प्रवाल और अंकुरपने उत्पन्न होवे वे जीव वहां उत्पन्न होते वृक्ष की चीकास का आहार लेवे यावत् वे जीव मूल कंदादिक सब वनस्पति के अवयवरूप कर्म के वश से उत्पन्न होवे ऐसा श्री तीर्थंकर देवने कहा है ॥ ५ ॥ अब एक वृक्ष के ऊपर दूसरा वृक्ष

त्पन्न म० होते हैं म० करा ॥ ३ ॥ पूर्ववत् ॥ ४ ॥ मू० मूलपने कं० कंदपने खं० स्कंधपने त० त्वचा

रुक्खत्तुक्कमा तव्वाणिया तस्संभवा तदुवक्कमा, कम्मोवगा, कम्मणियाणेण, तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खत्ताए विउट्टति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाण सिणह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीर आउ-तेउ—वाउ-वणस्सइ सरीरं तस थावराणं पाणाणं सरीर अचित्त कुव्वति परिविद्धत्थ तं सरीरं पुव्वाहारिय तयाहारिय विपरिणामिय सारूविकडं सत अवरेवि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खा ण सरीरा णाणावण्णा जाव ते जीवा कम्मोववगा भवति ति मक्खाय ॥ ४ ॥ अहा- वर पुरक्खाय इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खत्तुक्कमा तज्जोणिया त-

जीवों वृक्ष में उपजने का कर्मोपार्जन करके वृक्ष के किसी विभाग में उत्पन्न होते हैं, उस में ही वृद्धि पाते हैं, वारंवार स्वकर कर्मों के वश से वहां ही उत्पन्न होते हैं, वे जीवों भी वृक्ष ने ग्रहण किया हुवा आहार में से आहार का कुछ हिस्सा स्वयं लेते हैं, और उसे शरीर रूप परणमाकर वृद्धि पाते हैं फिर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व अनेक प्रकार के त्रस जीवों के शरीर का आहार कर अपने शरीर जैसा परण माकर मूलरूप, स्कन्धरूप, शाखारूप तथा पुष्प फल आदि अनेक रूप, अनेक वर्ण, गंध, रस, स्पर्श तथा संस्थान रूप बन जाते हैं यह सब कर्मों की विचित्रता है ऐसा श्री तीर्थंकर [illegible] ॥

पने सा० शाखापने प० मवालपन प० पत्रपने पु० पुष्पपने फ० फलपने बी० बीजपने वि० उत्पन्न होवे हैं

रुसभवा तदुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेण तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए, कंदत्ताए, खंधत्ताए, तयत्ताए, सालत्ताए, पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाण रुक्खाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी सरीरं—आउ—तेउ—वाउ—वणस्सइ णाणाविहाण तसथावरा, णं पाणाण सरीर अचित्तं कुव्वंति परिविद्धत्थ तं सरीरग जाव सारूविकड सत अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं, कंदा", खंधाण, तयाण, सालाण, पवालाण जाव बीयाण सरीरा, णाणावण्णा णाणागंधा, जाव णाणाविहसरीरपुग्गल विउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंती ति मक्खाय ॥ ५ ॥ अहावर पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता

अब अन्य स्थान आश्रित करते हैं इस जगत् में कोई एक वृक्षयोनिक अथवा अन्य अवयवरूप प्राणी उत्पन्न होवे और एक वनस्पति का जीव सर्व वृक्ष के अवयव व्यापार से या अन्य जीव उस के व्यापारसे उस के मूल, कंद, स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, प्रवाल और अंकुरपने उत्पन्न होवे वे जीव वहां उत्पन्न होवे वृक्ष की चीकास का आहार लेवे यावत् वे जीव मूल कदादिक सब वनस्पति के अवयवरूप कर्म के वश से उत्पन्न होवे ऐसा श्री तीर्थंकर देवने कहा है ॥ ५ ॥ अब एक वृक्ष के ऊपर दूसरा वृक्ष

पूर्ववत् ॥ ५ ॥ ए० कितनेक स० सत्व अ० अध्यारोहपने वि० उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥ अ० अब पु० परिले कहा है यहां ए० कितनेक स० सत्व अ० अध्यारोह योनिवाले अ० अध्यारोह सं० संभव आ० यावत् क० कर्म नि० निदान से त० तहां वु० उत्क्रमण रु० वृक्ष योनिवाले अ० अध्यारोह मे अ० अध्या

रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तदुवक्कम्मा कम्मोववन्न-गा कम्मनियाणेणं तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहं माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवी स रीरं जाव सारूविकडं संतं अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झारुहाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोह जोणिया अज्झारोहसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवुक्कमा रुक्खजोणिएसु अज्झा

होता है उस संबंध में भी तीर्थंकरों का फरमान बताते हैं जगत्वासी जीव वैसे ही प्रकार के कर्म करके एक वृक्षमें अन्य रूप से-जैसे पिपलादि वृक्षपर वांछि आदि-उत्पन्न हो उस मूलवृक्ष का परगमा हुवा आहार से स्वयं आकर्ष कर और उस का आहार कर अपने रूप वर्ण, गंध रस संस्थान में परगमा कर, अपने शरीर की पुष्टि करते हैं यह भी कर्मों की विचित्रता श्री तीर्थंकर देवोंने फरमाइ है ॥ ३ ॥ उस अध्यारोह वृक्षके अन्य स्थानों में और भी जीवों आकर उत्पन्न होवे और उस अध्यारोह वृक्ष का

रोहपने वि० उत्पन्न होते हैं ए० वे जी० भाव ते० उस में अ० अध्यारोह योनिवाले के अ०अध्यारोह के

रोहेसु अज्झारोहत्ताए विउट्टति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति ते जीवा पुढविसरीर जाव सारूविकड सतं अवरेवि य ण तेसिं अज्झारोहजोणियाण अज्झारोहाण सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ ७ ॥ अहावर पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोह सं-भवा जाव कम्मनियाणेण तत्थवुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविकडं सत अवरे वि य ण तेसिं अज्झारोहजोणियाण अज्झारोहाण सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खाय ॥ ८ ॥ अहावर पुरक्खायं इहेगतिया

ग्रहण किया हुवा आहार में से कुछ विभाग लेकर आहार करे और शरीर में परणमावे यावत् सब पूर्ववत् जानना ॥ ७ ॥ उस अध्यारोह वृक्षमें उत्पन्न हुवे अन्य जातिके जीवों भी उस अध्यारोह शरीर का आहार करते हैं यावत् सब पूर्ववत् जानना ॥ ८ ॥ अब अध्यारोह की चौथी प्ररूपणा भगवन्तने ऐसी फरमाई है

सि० स्नेहका आ० आहार लेवे हैं पूर्ववत् ॥ ७ ॥ पूर्ववत् ॥ ८ ॥ पूर्ववत् ॥ ९ ॥ ए० ऐसे जो० अन्य

सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोहसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवुक्कमा अज्झा रोहजोणिएसु अज्झारोहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोह जोणियाण अज्झारोहाण सिणेह माहारेंति जाव अवरे वि य ण तेसिं अज्झारोहजोणि-याण मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ ९ ॥ अहावर पुरक्खा य इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तासिं णाणाविह जोणियाण पुढवीण सिणेह माहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना भवतीति मक्खायं (१) एव पुढविजोणिएसु तणेसु

कि कोइ जीव अध्यारोहयोनिक उस अध्यारोह के मूलस्कंधादिक में उत्पन्न होवे और वहां उनके शरीर का आहार करे शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥ अब वृक्ष छोड कर अन्य वनस्पति काय के संबंध में कहते हैं इस जगत्में कोई एक पृथ्वी काय योनिक पृथ्वी में वनस्पति काय का संभव है, उस में रहे यावत् नानाप्रकार के योनिवाली पृथ्वी में तृणपने उत्पन्न होवे और पृथ्वी का आहार करे ऐसे ही सब वृक्ष का कथन जानना

के भी च० चार आ० आलाप पूर्ववत् ॥ १० ॥ औ० आर्यवनस्पतिपने वा० वाकवनस्पतिपने का० कापा वनस्पतिपने कू० कोराण वनस्पतिपने कं० कंदुकपने उ० उपदीपिकपने नि० निपहनीयपने स० सच्छपने

तणत्ताए विउट्टंति जाव मक्खायं (२) एव तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणिय तण सरीरं च आहारेंति जाव मक्खाय (३) एवं तण जोणिएसु तणेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा जाव एव मक्खाय (४) एवं ओसहीणं वि चत्तारि आलावगा ॥ एवं हरियाणवि चत्तारि आलावगा ॥ १० ॥ अहावरं पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसम्भवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए, वायत्ताए, कायत्ताए, कूहणत्ताए, कंदुकत्ताए, उव्वेहणियत्ताए निव्वेहणियत्ताए, सछत्ताए, छत्तगत्ताए, वासाणियत्ताए, कूरत्ताए,

तृण में उत्पन्न होवे आगे का सब पूर्ववत् (२) तीसरे आलापे में तृण योनिक तृण में तृणपने उत्पन्न होवे (३) चौथे आलापे में तृण योनिक तृण में मूल कंदादिकपने उत्पन्न होवे शेष पूर्ववत् (४) इस तरह धान्य की जाति के भी चार आलापक जानना वैसे ही हरितकाय के भी चार आलापक ऐसे सब मिलकर बीस आलापे हुवे ॥ १० ॥ श्री तीर्थंकरों ने अन्य वनस्पति आश्री ऐसा फरमाया

छ० छमगपने था० थाहापीपने कू० कूरपने वि० उपजत है पूर्ववत् पाव्द् "नामसत्ताय" ए० एक आ० आलाप से० शेष ति० तीन प० नहीं हैं॥ ११॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा है यहां ए० कितनेक स० सत्व उ० उदकयोनिक उ० उदक संभव जा० यावत् क० कर्म के नि० निदान से त तहां वु सक्रमण णा० विविध जो० योनिवाला उ० पानीमें

विठ्ठति ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाण पुढवीण सिणेह माहारेंति ते वि जीवा माहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य ण तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताण जाव कूराणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं एगोचेव आलावगो सेसा तिण्णि णत्थि ॥ ११ ॥ अहावरं पुरक्खाय इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया, उदगसमवा, जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टति

है कि इस जगत में कोई प्राणी अपने कर्मों से खींचा कर पृथ्वी योनिक वनस्पति में उत्पन्न होवे-जिनके नाम आर्य नामा वनस्पति, वाय; काय, कुहाण (मोर) कदुक, उवहीणिक, सछत्र, वासाणिका, कूर नामा, इत्यादि अनेक प्रकार की वनस्पति उपजकर पृथ्वी काया का आहार करके अपनी काया जैसा रूप बनावे. इस का एक ही आलापा जानना क्यों कि यह वनस्पति अन्य प्रकार की वनस्पति में उत्पन्न नहीं होती है ॥ ११ ॥ अब अपकाय योनिक वनस्पति का विषय बतलाते हैं इस जगत में कोई जीव अपने कर्मों से खींचा कर पानी के स्थान में वनस्पतिपने आकर उत्पन्न होते हैं वे पानीका विविध आहार

रु० पुष्प पने वि० उपजते हैं ते० वे जी० जीव तं० उन वि० विविध जो० योनि वाला उ० पानी का सि० स्नेह का आ० आहार करते हैं ते० वे जी० जीव आ० आहार करते हैं पु० पृथ्वी काया को जा० यावत् सं० होते अ० दूसरे के तं० उनमें उ० उदक योनि वाले रु० वृक्षका स० शरीर जा० विविध वर्ण जा० यावत् म० कहा ज० जैसे पु० पृथ्वी योनिक के च० चार आ० आलाप अ० अध्यारोह का भी त० वैसे त० तृणक ओ० धान्यके ह० हरिके च० चार आ० आलाप ए० करना ए० एकेक ह०

ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढवि सरीरं जाव संतं अवरेविय णं तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्झारुहाणवि तहेव तणाणं, ओसहीणं, हरियाणं, चत्तारि आलावगा भाणियव्वा एक्केके तहा उदगजोणियाणं रुक्खाणं

कराते हैं, फीर पुष्पन्यायिक का समव जैसा विस्तारसे वैसा आहार करते इत्यादि सब पूर्ववत् जानना जैसे पृथ्वि पृथ्वीयोनिक वृक्ष के चार आलापक कहे वैसे यहां पानीयोनिक वृक्षण धान्य और हरिकाय योनिक वृक्ष के आलापक चारों भी जानना पृथ्वी योनिक वृक्ष के चार, अध्यारोह वृक्ष के चार, तृण योनिक के चार, धान्य के चार, और हरी काय के चार, सार्थादिक मतगणि का एक यों २१ आलापक पृथ्वी

तैसे उ० उदकयोनि वाले रु० वृक्ष के इ० एकेक ॥ १२ ॥ अ० अथ पु० पहिले अ० कहा इ० यहां ए० कितनेक स० सत्व उ० पानीपने मा० आशगपने प० फूलनपमे से० सेवालपने क० कळ्मूकपने इ० आहड पने क० कसेरुपने क० कच्छमानपने उ० उत्पल कमल पने प० पद्म पने क० कुमुदिनी पने न नलि

इमेके ॥ १२ ॥ अहावर पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा, णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए, पणगत्ताए, सेवालत्ताए, कलंबुगत्ताए, हडत्ताए, कसेरुगत्ताए, कच्छभाणियत्ताए, उप्पलत्ताए, पउमत्ताए, कुमुयत्ताए, नलिणत्ताए, सुभगत्ताए, सोगंधियत्ताए, पोंडरीय महापोंडरीयत्ताए, सयपत्ताए, सहस्सपत्ताए, एवं कल्हारकोकणयत्ताए, अरविंदत्ताए,

योनिक वनस्पति के और २० पानी योनिक वनस्पतिके यों सब मिलकर ५१ आलापक वनस्पति के हुवे ॥ १२ ॥ श्री तीर्थंकर भगवानने फरमाया है कि इस जगत में कितनेक सत्व उदक योनिक वन वनस्पति में उत्पन्न होने का कर्मबंध कर विविध प्रकार की योनिवाले उदक में उदकपने, अवमकपने पणग (सेवाल) पने, कलम्बुक पने, आहड पने, कसेरुक पने, कच्छभाण पने उत्पल कमलपने, सूर्यविकासी कमल पन, चंद्रविकासी कमलपने, मलिनकमल पने, सुभग कमल पने, सुगंध कमल पने, पुंडरीक कमल की

नीपने सु० सुभोगिक पने सो० सुगन्ध पने पो० श्वेत कमल पने स० सतपर्ण पने स० सहस्र पर्ण पने ए० ऐसे क० कल्हार पने को० कोकन पने भ० भरविन्द पने ता० तामरस कमल पने भि० भिस

तामरसत्ताए, भिसमिसमुणाल पुक्खलत्ताए, पुक्खलत्थिभगत्ताए, विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाण उदगाण सिणेह माहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढवि सरीर जाव संत अवरे वि य णं तेसिं उदगजोणियाण उदगाण जाव पुक्खलत्थि भगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खाय एगो चेव आलावगो ॥ १३ ॥ अहावर पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढविजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं, अज्झारोहेहिं, अज्झारोहजो

जाति पने महापुंडरीक कमल पने, सो पांखडी वाले कमल पने, सहस्र पांखडीवाले कमल पने, कल्हार जाति पने, को कणा पने, भरविन्द कमल पने, तामरस कमलपने, कमलनाल पने, पुष्करपने, और ऐसे अन्य जाति पने, उत्पन्न होवे वे जीव नाना प्रकार की योनिवाले उदक का आहार करे शेष सर्व पूर्ववत् यों उदक योनिके २१ आलापक हुवे और सब मिलकर वनस्पति काया ४२ आलापे हुवे ॥ १३ ॥ अब अन्यत्र प्रकार से वनस्पति का स्वरूप कहते हैं पृथ्वी योनिक वृक्ष से, वृक्ष योनिक वृक्ष से, तथा

जमृणाल पने पु० पुष्कर कमल पने प० उनकी माति पने वि० उत्पन्न होते हैं पूर्ववत् ॥१३॥ पूर्ववत् ॥ १४॥ अ०

गिएहिं अज्झारुहेहिं, अज्झारोह जोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं, पुढविजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एव ओसहीहिं वि- तिन्नि आलावगा एवं हरिएहिं वि तिन्नि आलावगा पुढविजोणिएहिंवि आएहिं, काएहिं जाव कूरेहिं, उदगजोणिएहिं, रुक्खेहिं, रुक्खजोणिए, रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एव अज्झारुहेहिंवि तिण्णि, तणेहिंवितिण्णि आलावगा, ओसहीहिं वितिण्णि, हरिएहिंवि तिण्णि, उदगजोणिएहिं उदएहिं, अवएहिं, जाव पुक्खलत्थिभ एहिं तस पाणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं पुढविजोणियाण, उदगजोणियाणं,

वृक्ष योनिक मूल से यावत् बीज से, वृक्ष योनिक अध्यारोह से, अध्यारोह योनिक अध्यारोह से तथा अध्यारोह योनिक मूलसे यावत् बीजसे और पृथ्वी योनिक तृण से, तृण योनिक तृण से तथा तृण योनिक मूलसे यावत् बीज से ऐसे इन तीनों के तीन २ आलापे मिलकर नव हुवे ऐसे ही धान्यके तीन, हरिकाय के तीन, पृथ्वी योनिक आर्य नामक वनस्पति, काय नामक वनस्पति, यावत् कुरवार नामक वनस्पति उदक योनिका वृक्ष से, वृक्ष योनिक का वृक्ष से, वृक्ष योनिक का मूल से यावत् बीज

रुक्खजोणियाण, अज्झारोहजोणियाण, तणजोणियाण, ओसहिजोणियाण, हरियजोणियाण, रुक्खाणं, अज्झारुहाणं, तणाण, ओसहीण, हरियाण, मूलाण, जाव बीयाण, आयाणं, कायाण, जाव करवाण, उदगाणं, अवगाण, जाव पुक्खलत्थिभगाण, सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवि सरीरं जाव संत अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं, अज्झारोहजोणियाणं, तणजोणियाण, ओसहिजोणियाणं, हरिय

से वैसे ही अध्यारोह के, तृण के, धान्य के और हरिकाय के तीन आलापे मानना उदक योनिक, उदक अवकपन का यावत् जिस में से पान नीकले उस में त्रस प्राणी उत्पन्न होवे यह सब मिलकर छत्तीस आलावे हुवे और आगे के ४२ मिलकर ७८ आलावे हुवे वे जीव वनस्पति में उत्पन्न होते पृथ्वी योनिक, उदक योनिक, वृक्ष योनिक, अध्यारोह योनिक, तृण योनिक, धान्य योनिक, व हरित योनिक वृक्ष का, अध्यारोह का, तृण का, धान्य का, हरित का, मूल का यावत् बीज का, आय, काय यावत् कुरवट का, उदक का अवगाहि यावत् पुक्खलत्थि की बीकास का आहार करे आहार करके अपने स्वरूप में परिणमावे यह सब अर्थ पूर्ववत् जानना वे वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक, तृण योनिक यावत् पुष्करार्क योनिक जीवों त्रस प्राणियों के शरीर का विविध प्रकार के वर्ण, गंध, रस यावत्

नुपात १ने पु० पुष्कर रूपने पने प० उनकी माति पने वि० उत्पन्न होते हैं पूर्ववत् ॥१३॥ पूर्ववत् ॥ १४॥ म०

णिएहिं अज्झारुहेहिं, अज्झारोह जोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं, पुढविजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एव ओसहीहिं वि- तिन्नि आलावगा एवं हरिएहिं वि तिन्नि आलावगा पुढविजोणिएहिंवि आएहिं, काएहिं जाव कूरेहिं उदगजोणिएहिं, रुक्खेहिं, रुक्खजोणिए, रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं, जाव बीएहिं एव अज्झारुहेहिंवि तिण्णि, तणेहिंवितिण्णि आलावगा, ओसहीहिं वितिण्णि, हरिएहिंवि तिण्णि, उदगजोणिएहिं उदएहिं, अवएहिं, जाव पुक्खलत्थिभ एहिं तस पाणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं पुढविजोणियाण, उदगजोणियाण,

वृक्ष योनिक मूल से यावत् बीज से, वृक्ष योनिक अध्यारोह से, अध्यारोह योनिक अध्यारोह से तथा अध्यारोह योनिक मूलसे यावत् बीजसे और पृथ्वी योनिक तृण से, तृण योनिक तृण से तथा तृण योनिक मूलसे यावत् बीज से वैसे इन तीनों के तीन २ आलापक मिलकर सब हुवे वैसे ही औषधि के तीन, हरिकाय के तीन, पृथ्वी योनिक आर्य नामक वनस्पति, काय नामक वनस्पति, यावत् कूरनाव नामक वनस्पति उदक योनिक वृक्ष से, वृक्ष योनिक का वृक्ष से, वृक्ष योनिक का मूल से यावत् बीज

रुक्खजोणियाण, अज्झारोहजोणियाण, तणजोणियाणं, ओसहिजोणियाण, हरियजोणियाणं, रुक्खाणं, अज्झारुहाण, तणाण, ओसहीण, हरियाण, मूलाण, जाव बीयाण, आयाण, कायाण, जाव करवाणं, उदगाणं, अवगाण, जाव पुक्खलत्थिभगाण, सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवि सरीरं जाव संत अवरे वि य ण तेसिं रुक्खजोणियाण, अज्झारोहजोणियाणं, तणजोणियाण, ओसहिजोणियाणं, हरिय

से वैसे ही अध्यारोह के, तृण के, धान्य के और हरिकाय के तीन आलावे जानना उदक योनिक, उदक अवकपन का यावत् जिस में से पान नीकले उस में त्रस प्राणी उत्पन्न होवे यह सब मिलकर पचीस आलावे हुवे और आगे के ४२ मिलकर ७४ आलावे हुवे ये जीव वनस्पति में उत्पन्न होवे पृथ्वी योनिक, उदक योनिक, वृक्ष योनिक, अध्यारोह योनिक, तृण योनिक, धान्य योनिक, व हरित योनिक वृक्ष का, अध्यारोह का, तृण का, धान्य का, हरित का, मूल का यावत् बीज का, आय काय यावत् कुरकट का, उदक का अवगाहि यावत् पुक्खलत्थि की वीकास का आहार करे आहार करके अपने स्वरूप में परगमावे यह सब अर्थ पूर्ववत् जानना ये वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक, तृण योनिक यावत् पुष्करकर्क योनिक जीवों उस प्राणियों के शरीर का विविध प्रकार के वर्ण, गंध, रस यावत्

जोणियाणं, मूलजोणियाणं, कंदजोणियाणं, जाव बीयजोणियाणं, आयजोणियाणं, कायजोणियाणं, जाव कूरजोणियाणं, उदगजोणियाणं, अवगजोणियाणं, जाव पुक्खलत्थिभगजोणियाणं, तस पाणाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १४ ॥

स्पर्शवाले होवे वे जीवों अपने किये हुवे कर्मों से उत्पन्न होवे हैं यावत् श्री तीर्थंकर देवो ने कहा है यहां तक का ऐसा सब आलवा जानना यह वनस्पति काया का स्वरूप कहा और पृथ्वी आदि चार जाति के एकेन्द्रिय का स्वरूप आगे कहेंगे ॥१४॥ अब त्रस काया का अधिकार करते हैं त्रस काया में नारकी (१) देवता (२) मनुष्य, और तिर्यंच इस में से मनुष्य का अधिकार कहते हैं इस जगत में कर्म भूमि के,

---

(१) नारकी भवत्यसपने अनुमानग्राही जानना अथवा दुष्कृत के फलको भोगनेवाले हैं उन को अशुभ पुद्गल का ओज आहार रहा हुवा है, परंतु कवल आहार नहीं है।

(२) देवता को भी आहार अनुमानगम्य है वह आहार एकान्त शुभ है उनको भी ओज आहार है वह आहार दो प्रकार का है एक आभोगिक और दूसरा अनाभोगिक. अनाभोगिक समय २ में होता है और आभोगिक जघन्य चतुर्थ भक्त आहार और उत्कृष्ट तेत्तीस हजार वर्षका है।

भग पु० पहिले अ० कहा था० विविध प्रकारके म०मनुष्य के तं० वह अ० जैसे क०कर्मभूमि के अ० अकर्म भूमिके अ० अंतरद्वीप के आ० आर्यके मि० म्लेच्छ के ते० उन में अ० यथाबीज अ० यथावकाश इ० स्त्री पु० पुरुष क० कर्म से क० निर्मित जो० योनिमें ए० यहां मे० मैथुन प्रत्ययिक सं० संयोग में स० उत्पन्न होता है ते० वह दु० दोनोंका सि नेह को स० संचय करता है त० वहां जी० जीव इ० स्त्री

अहावरं पुरक्खाय णाणाविहाणं मणुस्साण तजहा—कम्मभूमगाण, अकम्मभूमगाण, अतरदीवगाण, आरियाण, मिलक्खुयाणं, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावकासेण, इत्थीए पुरिसस्सय कम्मकडाए जोणिए एत्थणं मेहुणवत्तियाएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते दुहओवि सिणेह सचिणति, तत्थण जीवा इत्थित्ताए, पुरिसत्ताए, णपु

अकर्म भूमि के, अंतर द्वीप के आर्य अनार्य, ऐसे विविध प्रकार के मनुष्य हैं वे यथा बीज से (जैसा जिस का बीज वैसे ही उस की उत्पत्ति १) और यथावकाश से (२) स्त्री पुरुष को वेद का उदय होने पर

(१) शुक्र अधिक होवे तो पुरुष, रुधिर अधिक होवे तो स्त्री और दोनों बराबर होवे तो नपुंसक यह बीज है.

[२] माताकी वाम कुक्षिमें स्त्री उत्पन्न होवे, दक्षिण कुक्षिमें पुरुष और मध्यकुक्ष्याश्रित कुक्षिमें नपुंसक।

पने पु० पुरुष पने ण० नपुंसक पने वि० उत्पन्न होता है ते० वह जी० जीव मा० माता का ओ० रुधिर पि० पिता का सु० वीर्य तं०उन उ० दोनों स० मिलाहुवा क० मलीन कि० किल्बिस तं० उस को प० प्रथम समय० आ०आहार मा०करता है त० पीछे जं० जो से० उनकी मा० माता णा० अनेक प्रकार का र० रस वाला आ० आहार मा० करती है त० पीछे ए० एक देशसे ओ० ओज आ० आहार करता है आ० अनु क्रमसे वु० वृद्धि पाता प० परिपाक अ० माता व यहां का० काया से अ० निकलता हुवा इ० स्त्री को ए०

समयाए विउट्टंति, ते जीवा माओओयं पिउसुक्कं, तं तदुभय संसट्ठं कलुसं किब्बिसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेंति, ततो पच्छा ज से माया णाणाविहाओ रसविईओ आ हारमाहारेति, ततो एगदेसेण ओयमाहारेंति आणुपुव्वेणवुड्ढा पलिभागमणुविन्ना ततो कायातो अभिनिवट्टमाणा इत्थिं वेगया जणयंति, पुरिसं वेगया जणयंति, णपुंसगं वेगया जणयंति, ते जीवा डहरासमाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा

मैथुन सेवन करते तैजस व कार्माण शरीर को लेकर उत्पन्न होते हैं वहां उत्पन्न होते माता का रुधिर व पिता का शुक्र का पहिले समय में आहार लेवे, बाद में माता नाना प्रकार के रस वाले जो आहार लेवे उस का एक देश का वे जीव ओज आहार करे. अनुक्रम से वहां वृद्धि पाते कोई पुरुष पने, कोई स्त्री पने, और कोई नपुंसकपने उत्पन्न होवे बाल्यावस्था में माता के

एकदा ज० जने पु० पुरुष को ए० एकदा न० जने न० नपुंसक को ए० एकदा ज जने ते० वे भी
भीव ब० बालक मा० माता का थनी दूध स घृतका आ० आहार लेते हैं अ० अनुक्रमसे पु० वृद्धि पाते
भो० भोदन कु० उरिद त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी का आ० आहार लेते हैं पु० पृथ्वी काया को
जा० यावत् सा स्वरूप क० बनाया हुआ अ० दूसरे को ते० उन में णा० विविध प्रकार के म० मनुष्य
क० कर्म भूमि के अ० अकर्म भूमिके अ० अन्तर द्वीप के आ० आर्य के मि० म्लेच्छ के स० शरीर णा०
विविध वर्ण वाले भ० होते हैं इ० ऐसा अ० कहा ॥ १८ ॥ अ० अब पु० पहिले अ० कहा णा० विविध

ओयणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव सारूविकड
संतं अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं, कम्मभूमगाणं, अकम्मभूम-
गाणं, अतरदीवगाण, आरियाण, मिलक्खूणं, सरीरा णाणावण्णा भवंती तिमक्खाय
॥ १५ ॥ अहावर पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराण पर्चिदियतिरिक्खजोणियाणं

स्तन के दूध का आहार करे और बडे होवे तब ओदन उरिदादिक त्रस स्थावर प्राणी का आहार करे
और पृथ्वी के शरीर जो स्वरूपादिक का भी आहार करे इस तरह आहार कर के उस का अपनी धातु
रूप परगमावे और कर्मभूमि के, अकर्मभूमि के, अंतर द्वीप के आर्यके, व म्लेच्छ के शरीर विविध प्रकार के
शरीर वर्ण गंध रस स्पर्श सहित होवे ऐसे अपने कर्मों से उत्पन्न होवे, इत्यादिक सब पूर्ववत् जानना ॥१८॥

पने पु० पुरुष पने न० नपुंसक पने वि० उत्पन्न होता है ते० वह जी० जीव मा० माता का ओ० रुधिर पि० पिता का सु० वीर्य तं० उन उ० दोनों सं० मिलाहुवा क० मलीन कि० विभित्स त० उस को प० प्रथम समयन आ० आहार आ० करता है त० पीछे जं० जो से० उनकी मा० माता णा० अनेक प्रकार का र० रस मासा आ० आहार आ० करती है त० पीछे ए० एक देशसे ओ० ओज आ आहार करता है आ० अनु क्रमसे वु० वृद्धि पाता प० परिपाक अ० मास त० तहां का० काया से अ० निकलता हुवा इ० स्त्री को ए०

सगयाए विउट्टंति, ते जीवा माओओयं, पिउसुक्कं, तं तदुभय संसट्ठं कलुसं किब्बिसं त पढमत्ताए आहारमाहारेंति, ततो पच्छा जं से माया णाणाविहाओ रसविईओ आ हारमाहारेति, ततो एगदेसेणं ओयमाहारेंति आणुपुव्वेणवुड्ढा पलिभागमणुपविस्सा ततो कायातो अभिनिवट्टमाणा इत्थिं वेगया जणयति, पुरिसं वेगया जणयति, णपुंसगं वेगया जणयंति, ते जीवा डहरासमाणा माउक्खीर सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा

मैथुन सेवन करते तैजस व कार्मण शरीर को लेकर उत्पन्न होते हैं वहां उत्पन्न होते माता का रुधिर व पिता का शुक्र का पहिले समय में आहार लेवे, बाद में माता नाना प्रकार के रस खावे सो आहार लेवे उस का एक देश का वे जीव ओज आहार करे. अनुक्रम से वहां वृद्धि पावे कोइ पुरुष पने, कोई स्त्री पने, और कोई नपुंसकपने उत्पन्न होवे बाल्यावस्था में माता के

आ० पानी का सि नेह का आ० आहार लेते हैं आ० अनुक्रम से वु० वृद्धि पाते हुवे व० वनस्पति कायाको त० त्रस थ० स्थावर पा० प्राणी को ते वे जी० जीव आ० आहार लेते हैं पु० पृथ्वी कायाको आ० यावत् सं० होत अ० दूसरे को ते० उन में णा० विविध प्रकार के ज० जलचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यंच योनि वाले म मच्छके जा० यावत् सु० सुसुमारके स० शरीर णा विविध वर्ण वाले जा० यावत् म० कहा ॥ १६ ॥ अ० अब पु० पहिले म० कहा णा० विविध प्रकार के च० चतुष्पद थ० स्थलचर पं० पंचेन्द्रिय

जणयंति ते जीवा डहरासमाणा आउसिणेहमाहारेंति, आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सति काय तसथावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीर जाव सतं अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाण, जलचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण मच्छाण जाव सुसुमाराण सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १६ ॥ अहावरं पुरक्खाय णाणाविहाण चउप्पय

आहार ग्रहण करते हैं यहां अनुक्रम से वृद्धि पावे अंडेरूप या पोत (थैली रूप) नीकले और उस अंडे अथवा थैली में से स्त्री पुरुष नपुंसक पने उत्पन्न होवे वे बाल्यावस्था में अप्काया का आहार करे और वृद्धि पाये बाद वनस्पति त्रस स्थावर प्राणी के शरीर का आहार करे जिस पुद्गलों का वे आहार करते हैं उन को अपने शरीर रूप परणामा देते हैं शेष पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इस संसार में एक

मकार क म० जलचर के प०पंचेन्द्रिय ति०तिर्यंच योनिवाले के वे०वह ज०जैसे म० मच्छके जा०यावत् सु० सुसुमारके ते०उनमें अ० यथा बीज अ०यथावकाश इ०स्त्री का पु० पुरुष का कं०जो क०कर्म क० किये हुवे त० तैसे जा०यावत् त० पीछे ए० एक देशसे आ०ओज आ०आहार करते हैं आ० अनुक्रम से वृ० वृद्धिपाये हुवे प० परिपाक को अ० प्राप्त त० पीछे का० काया से अ० निकलता हुवा अ० अंडेको ए० एकदा ज० जने पो० पोत ए० एकदा ज० जने से० वह अं० अंडेको उ० फूटे हुवे इ० स्त्री को ए० एकदा ज० जने पु० पुरुष को ए० एकदा ज० जने न० नपुंसक को ए एकदा ज० जने ते० वे जी० जीव ड० बालक

तंजहा-मच्छाणं जाव सुसुमाराण तेसिं च ण अहाबीएणं अहावगासेण इत्थीए पुरिसस्सय कम्मकडा तहेव जाव तता पच्छा एगदेसेणं ओयमाहारेंति आणुपुव्वेण वुड्ढा पलि मागमणुविन्ना, तता कायाओ अभिनिव्वट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति, पोयं वेगया जणयति, से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थि वेगया जणयति पुरिस वेगया जणयंति नपुंसग वेगया

अब तिर्यंचयोनि में जलचर पंचेन्द्रिय के आहार का स्वरूप कहते हैं इस जगत में कितनेक मच्छ, कच्छ, मगरमच्छ यावत सुसुमारादिक जलचर प्राणी रहे हुवे हैं यथाबीजसे व यथाअवकाश से स्त्री पुरुषादिक देहके उदय होने पर मैथुन सेवन करते वे प्राणी वहां उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते प्रथम ओज

मे अ॰ पूर्ववत् ॥१७॥ अ॰ अब पु॰ पहिले अ॰ कहा णा॰ विविध प्रकारके उ॰ उरपरिसर्प थ॰ स्थलचर प॰ पचेन्द्रिय ति॰ तिर्यंच योनि वाले त॰ यह ज॰ जैसे अ॰ सर्प अ॰ अजगर अ॰ असालिये म॰ महोरग

एगखुराण जाव सणप्फयाण सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ १७ ॥ अहावर पुरक्खाय णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपर्चिदियतिरिक्खजोणियाण तजहा—अहीणं अयगराणं, असालियाण महोरगाण तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेण इत्थीए पुरिस जाव एत्थण मेहुणे एवं चेव नाणत्त, अंडं वेगइया जणयंति, पोयं वेगइया जणयति, से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थिं वेगइया जणयति पुरिसपि णपुंसगंपि ते जीवा डहरासमाणा वाउकाय माहारेंति, आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीर जाव सत अवरेवि य ण तेसिं णाणाविहाण उरपरिसप्प

करे इत्यादिक सब पूर्ववत् मानना ॥ १७ ॥ श्री तीर्थंकर देवने अपर स्थलचर पचेन्द्रिय का स्वरूप कहा है सो बताते हैं इस जगत में सर्प, अजगर असालिये महोरग ऐसे उरपर के चार भेद है वे यथा बीज से यथावकाश से स्त्री पुरुष का सयोग होवे जब उत्पन्न होवे फीर योनि से अंडेरूप या पोतरूप उत्पन्न होवे और वे अंडे या पोत टूटने से पुरुष, स्त्री व नपुंसक उत्पन्न हो जावे वे बाल्याव

ति० तिर्यंच योनि वाले ए० एक खुर वाले दु० दो खुर वाले गं० गंडी पद वाले स० नख वाले ते० उन

थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराण दुखुराण, गंडीपयाण, सणप्फयाण, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं इत्थिपुरिससस कम्म जाव मेहुणवत्तिए णाम संजोगे समुप्पज्जइ, ते दुहओ सिणेह संचिणंति तत्थणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए, जाव विउट्टंति, ते जीवा माउओयं पिउसुक्कं एवं जहा मणुस्साणं इत्थिवि वेगया जणयंति पुरिसंपि नपुंसगंपि ते जीवा डहरासमाणा माउक्खीरं सर्प्पि आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्डा वणस्सइकायं तसथावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संत अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं

खुर अश्वादिक द्विखुर, गोमहिषादिक, गंडीपद हस्त्यादिक, नखपद सिंहव्याघ्रादिक स्थलचर चतुष्पद प्राणी रहते हैं वे यथाबीज से और यथा अवकाश से स्त्री पुरुष के संयोग होने से उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते माता का रुधिर व पिता के वीर्य के आहार करे और जैसे मनुष्य उत्पन्न होवे वैसे पुरुष, स्त्री, नपुंसकपने उत्पन्न होवे बाल्यावस्था में माता के दुग्धादिक का आहार करे और अनुक्रम में बढते २ त्रस स्थावर जीवों का आहार

मूपक मं० मंगूस प० पयासी वि० विराली पं० चतुष्पद के ते० उनमें भ० पूर्ववत् ॥ १९ ॥ भ० अब पु० पहिले भ० कहा णा० विविध प्रकार के ख० खेचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यचयोनि माले त० वह न० जैसे च० चर्म पक्षी लो० लोम पक्षी स० समुद्र पक्षी वि० वितत पक्षी के वे उनमें

हाणं भुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं त गाहाणं जाव मक्खायं ॥ १९ ॥ अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं, तंजहा—चम्मपक्खीणं, लोमपक्खीणं, समुग्गपक्खीणं, विततपक्खीणं, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं, ते जीवा डहरा समाणा माउगात्तसिणह माहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवि य णं, तेसिं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदिय

यथाभयकाम से इत्यादिक सब अधिकार पहिले उरसर्पिका कहा वैसे ही कहना वे जीव बढते हुवे पृथिव्यादिक का आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् जानना ॥ १९ ॥ इस संसार में विविध प्रकार के खेचर पंचेन्द्रिय हैं जैसे कि चर्म पक्षी वगुली प्रमुख लोम पक्षी सारस, राजहंसादि, और समुद्र पक्षी व वितत पक्षी ये दोनों मनुष्य क्षेत्र से बाहिर रहते हैं इस का सब अधिकार पूर्ववत् जानना वे जीव माता के

के ते० उन में अ० पूर्ववत् ॥ १८ ॥ अ० अथ पु० परिसे अ० कोता णा० विविध प्रकार के भु० भुजपरि गर्प प० स्थलचर पं० पंचेन्द्रिय ति० तिर्यचयोनिवाले तं० यह ज० जैसे गो० गोधरे न० नकुल के सि० शिरस स० सरडे म० सरगा स० सरवा सा० साह प० परकोली वि० विसपरी म०

थलयरतिरिक्खा पंचिंदियअहीण जाव महोरगाण सरीरा णाणावण्णा णाणागंधा जाव मक्खायं॥१८॥ अहावर पुरक्खायं णाणाविहाण भुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजो णियाणं तंजहा—गोहाणं, नउलाणं, सिहाण, सरडाण, सल्लाणं, सरघाणं खाराणं, घरकोइलियाण, विस्संभराण, मूसगाणं, मगुसाणं, पयलाइयाण, थिरालियाणं, जोहाण, चउप्पाइयाण, तेसिं च णं अहाबीएणं, अहावगासेणं इत्थिए पुरिसस्स य, जहा उरपरिसप्पाणं तहा भाणियव्वं, जाव सारूवि कडं संतं अवरेवि य णं तेसिं णाणाविं

स्था में वायुकाय का आहार करे, यदि पाये याद वनस्पति काय यावत् त्रस स्थावर जीवों का आहार कर इत्यादिक सर्व पूर्ववत् ॥ १८ ॥ श्री तीर्थंकर देवने भुजा से चलनेवाले स्थलचर तिर्यच पंचेन्द्रिय के भेद फरमाये हैं, जैसे कि गोधरे नकुल, शिरस सरड (किरकांट) सरगा, सरवा, साह (सासी) परकोली (गिलहरी) विसपरी, मूषक, विसखोपरी, चापानी इत्यादिक जीवों हैं वे उनका बीज से व

पने शेष पूर्ववत् ॥ २१ ॥ अ॰अब पु॰पहिले अ॰कहा इ॰यहा ए॰ कितनेक स॰सत्व णा॰विविध प्रकार की जो॰ योनिवाले जा॰ यावत् क कर्म निदान से व वहां क॰ संक्रमण णा॰ विविध प्रकार के त॰ त्रस

पुढविसरीरं जाव संतं अवरे वि य ण तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाण सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ एवं दुरूवसंभवत्ताए । एवं खुरदुगत्ताए ॥ २१ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणियाणेणं तत्थ

करते हैं जैसे सचित्त अचित्त शरीर की नश्राय से जीव होते हैं वैसे ही उन के मल मूत्र वमनादिक में कृम्यादिक भाव से उत्पन्न होते हैं वे जीव उन पृथिव्यादिक में उत्पन्न होवे उन का ही आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् मानना जैसे मल मूत्रादिक में जीव उत्पन्न होते हैं वैसे ही तिर्यंच के शरीर में कीट कृमि उत्पन्न होवे वे उन के चर्म व मांस का भक्षण करे चर्म में छिद्र बनावे और उस में जो अशुद्ध पुद्गल नीकले उस का आहार करे सचित्त गवादिक शरीर में जीव उत्पन्न होवे तथा सचित्त अचित्त वनस्पति में घूण कीटकादिक उत्पन्न होवे वे उत्पन्न होवे उन वनस्पत्यादि शरीर का आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥ २१ ॥ अब अप्काया का प्रतिपादन करते हैं कोई प्राणी तथाविध कर्म के उदय से त्रस स्थावर प्राणी के सचित्त अचित्त शरीर में वायु कर के अप्काय का शरीर बना, वायु से ग्रहा गया भार

प्र० पूर्ववत् ॥ १ ॥ अ० विकलेन्द्रिय पने ए० ऐसे वु० कुरूप जन्म पने ए० ऐसे सु० धर्म में वु० कीटक

तिरिक्खजोणियाण चम्मपक्खीणं जाव मक्खायं ॥ २० ॥ अहावरं पुरक्खाय इहे गतिया सत्ता णाणाविहजोणिया, णाणाविहसंभवा, णाणाविहवुक्कमा, तज्जोणिया, तस्संभवा, तदुवुक्कमा कम्मोवगा कम्माणियाणेण तत्थ वुक्कमा, णाणाविहाण, तस-थावराण पोग्गलाण सरीरेसुवा, सचित्तेसुवा, अचित्तेसुवा, अणुसूयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं, तसथावराणं पाणाण, सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति

स्था में माता के स्नेह का आहार करते है ॥ २ ॥ पूर्वे जो मनुष्य तिर्यंच का अधिकार कहा उस से दूसरा स्थानक कहते हैं विविध प्रकार की योनि वाले, संभव वाले व उपक्रम वाले जीवों कर्म के वश से आकर्षित हुवे नाना प्रकार के त्रस स्थावर जीवों के पुद्गलोंमें, शरीर में, (१) सचित्तमें, अचित्त में (२) अन्य शरीर की नेश्राय से विकलेन्द्रिय पने उत्पन्न होवे वहां पर उत्पन्न हो कर त्रस स्थावर जीवों का आहार कर यावत् अपनी काया बनावे इत्यादिक सब पूर्ववत् पंचेन्द्रिय के मलमूत्र में उत्पन्न होने के संबंध में

(१) मनुष्य के शरीर में जूं लींखादिक उत्पन्न होवे सो
(२) मनुष्य को भोगवने योग्य मांचादिक में खटमलादिक उत्पन्न होवे सो

पुद्गलक तो वे जी० जीव वे० उन में पा० पूर्ववत् ॥ २२ ॥ पूर्ववत् ॥ २३ ॥ पूर्ववत् ॥ २४ ॥ पूर्ववत्

सत्ता जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउ-ट्टंति ते जीवा तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आ-हारेंति पुढवि सरीर जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं तस थावरजोणियाण उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खाय ॥ २३ ॥ अहावर पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं उदगजोणियाणं जीवाणं उदगाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवि सरीर जाव संतं अवरे वि य णं जीवाण उदगजोणियाण उदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खाय ॥ २४ ॥ अहावर पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजो

जीव अपने कर्मोंके उदयसे त्रस स्थावर योनिवाला उदकमें उत्पन्न होवे वे जीवों वहां उदकके स्नेहका आहार करे इत्यादि शेष पूर्ववत् ॥ २३ ॥ कोइ जीव तथाविध कर्मों के उदय से उदकयोनि वाला उदक में उदक-पने उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न हुवा उदकजीव का आहार करे शेष पूर्ववत् ॥ २४ ॥ कोई जीव उदकयोनि

वा० स्थावर पा० प्राणी के स० शरीरमें स० सचित्त में अ० अचित्त में त० उस स शरीर वा० वायुसे सि० उत्पन्न वा० वायुसे ग० ग्रहीत वा वायुसे प० संग्रहीत उ० ऊर्ध्व वायुमें उ० ऊर्ध्व भागी भ० होता है अ० अधोवायु में अ० अधो भागी भ० होता है तं० वह ज० जैसे ओ० ओस हि० हिम म० धुंवर क० ओले ह० तृण पर रहाहुवा पानी सु०

सुक्कमा णाणाविहाण तसथावराण पाणाण सरीरेसु, सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा, तं सरीरगं वायस सिद्धवा, वायस गहियं वा, वायं परिगहिय उड्ढवाएसु उड्ढभागी भवति, अहेवाएसु अहेभागी भवति तजहा-ओसा हिमए, महिया, करए हरतणुए, सुद्धोदए ते जीवा तेसिं णाणा विहाण तसथावराणं पाणाणं सिणेह माहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढवि सरीरं जाव संत, अवरे वि य ण तेसिं तसथावरजोणियाण ओसाण जाव सुद्धोदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं ॥ २२ ॥ अहावर पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगस

वायु से मिलाया गया ऊर्ध्व गत वायु मे पानी भी ऊर्ध्वगत होवे, निचे वायु रहने से पानी भी नीचे होवे और तिर्च्छा वायु होवे वो पानी भी तिर्च्छा रहे अब पानी नाम बताते हैं [१] ओस (२) हिम (३) धूंव [४] गड़े (ओले) [५] हरे घास पर रहा हुवा पानी और (६) शुद्ध पानी इत्यादिक पानी की माव में उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न होवे विविध प्रकार के त्रस स्थावर जीवों का आहार करे शेष पूर्ववत् यह वायुयोनिक अपकाय कहा ॥ २२ ॥ अब अपकाय योनिक अपूकाय बतलाते हैं कोई

॥२५॥ पूर्ववत् ॥२६॥ पूर्ववत् ॥२७॥ भ० अत्र पु० पाहिले भ० कहा इ० यहां ए कितनेक स० सत्व णा० विविध प्रकार के यो० योनिवाले भा० यावत् क० कर्म निदान से व तहां पु सक्रमण णा० विविधे प्रकार के त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी के स० शरीर में स० सचित्त अ० अचित्त पु० पृथ्वी पने स० कंकरप ने वा० वालुपने इ० इन गा० गाथा से भ० जानना पु० पृथ्वी स० कंकर वा० वालु उ० पाषाण सि०

जाव कम्मणियाणेण तत्थ वुक्कमा णाणाविहाण तसथावराण पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा वायुकायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीण तहा भाणियव्वा चत्तारिगमा ॥ २७ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाण जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कम्मा, णाणाविहाणं तसथावराण पाणाण सरीरेसु सचित्तसुवा अचित्तेसुवा पुढवित्ताए, सक्करत्ताए, वालुयत्ताए, इमाओ गहाओ, अणुगतव्वाओ "पुढ-

में काइ जीव विविध प्रकार की योनि में उत्पन्न होने के कर्मों के वश से विविध प्रकार के त्रस स्थावर जीवों के सचित्त अचित्त शरीर में सचित्त अचित्त पने उत्पन्न होवे इत्यादिक जैसे अग्नि काय के चार आलावे कहे वैसे ही वायुकाय के चार आलावे कहना ॥ २७ ॥ अब पृथ्वीकाया की व्याख्या करते हैं इस जगत में अनेक योनिमें रहे हुवे जीवों अपने संचित कर्मानुसार अनेक प्रकार के त्रस व स्थावर जीवों के सचित्त, अचित्त शरीर में पृथ्वी के आकार में परगमते हैं उन के नाम १ पृथ्वी, २

गियाण जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं उदगजोणियाण उदगाणं सिणेह माहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंते अवरे वि य ण तेसिं उदगजोणियाणं तसपाणाण सरीरा णाणा वण्णा जावमक्खायं ॥२५॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव संत अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीण सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं। सेसा तिन्नि आलावगा उदगाणं ॥ २६ ॥ अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाण

ताक्ष उदक में पृथ्वादिक पनपने उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न हुवे उनके शरीर का आहार करे इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥२५॥ विविध प्रकारकी योनिवाले कोई जीव त्रस स्थावर प्राणी सचित्त अचित्त शरीरमें अग्नि काय पने उत्पन्न होवे वहां उत्पन्न हुवे त्रस स्थावर प्राणी का आहार करे शेष पूर्ववत् यहां उदक के आलापा जैसे अग्नि कायाके भी शेष तीन आलापा कहना ॥ २६ ॥ अब वायु काय के सम्बन्ध में कहते हैं अब अगला

शो॰ शोनिता पं॰ चंद्रमम वे॰ वेरुलि ज॰ जलकांत सू॰ सूर्यकांत ए इन से ए॰ इन में भा॰ कहनी ए॰ इन गा॰ गाथा से जा॰ यावत् सू सूर्यकांतपने वि॰ उपजते हैं पूर्ववत् ॥ २८ ॥ अ॰ अब पु॰ परिस अ॰ क हा स॰ सर्व पा॰ माणी स॰ सर्व मू॰ भूत स॰ सर्व जी॰ जीव स॰ सर्व स॰ सत्त्व णा॰ विविध योनिवाले णा॰ विविध उत्पत्ति वाले णा॰ विविध संक्रमण वाले स॰ शरीर योनिक स॰ शरीर में उत्पत्ति वाले स॰ शरीर में

एयाओ एएसु भाणियव्वा एओ गाहाओ जाव सूरकंताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाण तसथावराण पाणाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीर जाव संतं अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाण पुढवीण जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खाय सेसं तिण्णि आलवगा जहा उदगाणं ॥ २८ ॥ अहावर पुरक्खाय—सव्वे पाणा सव्वेभूया, सव्वे जीवा, सव्वेसत्ता, णाणाविहजोणिया, णाणा

रत्न १४ सोगंधिक रत्न १५ चंद्रमम रत्न १६ वरुलि रत्न १७ जलकान्त रत्न १८ सूर्यकान्त रत्न ऐसे पृथ्वी के भेदपने उत्पन्न होवे और त्रस स्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करे इत्यादि सब पूर्ववत् ॥ २८ ॥ श्री तीर्थंकर देवने सब जीवों के संबंध में इस तरह स्वरूप फरमाया है इस जगत में सर्व प्राणी, सर्व भूत, सर्व जीव, और सर्व सत्त्व अनेक प्रकार की योनि में अनेक स्थान से संक्रमण कर के आते हैं, शरीर को उपजते हैं, वहां यथा योग्य शरीर का आहार करते हैं, अपने कर्मानुसार पराकर कर्मों के कारणों से अनेक गति में उत्पन्न होते हैं और कर्मानुसार ही ऊंच नीच व मध्यम गति प्राप्त

लवण लो० निक्क अ० लोहात० तम्बा तं० तांबा सी० सीसा रु० चांदी सु० सुवर्ण व० वज्र ह० हरताल हिं० हिं गलू म० मन सील्म सा मासक मं० मंजन प मवाले अ० अभ्रक अ० आकाश धूल बा० बादरकाय म० मणि वि० विधान गो० गोमेव रत्न रु० रुचक रत्न अ० अंक फ० स्फटिक लो० लोहिताक्ष म० मरकत म० मसारगल्ल भू भुजमोचक इं० इन्द्रनील चं० चन्दन गे० गेरु ह० हंस गर्भ पु० पुलाक सो० सोगंधिक

नीय ससरा वालुयास, । उवले सिलाय लोणूसे ॥ अयतउय तंब सीसग । रुप्पसु-वण्णय वइरेय (१) हरियाले हिंगुलए । मणोसिला सासगअणपवाले ॥ अब्भ-पडलब्भवालुय । बायरकाए मणिविहाणा (२) गोमेज्जएय रूयए । अंकेफलिहेय लोहियक्खय ॥ मरगय मसारगल्ले । भूयमोयग इंदणीलेय (३) चंदणगेरुय हंस-गब्भे । पुलए सोगंधिएय बोद्धव्वे ॥ चंदप्पभवेरुलिए । जलकंते सूरकंतेय (४)

३ रेती ४ सीला पत्थर ५ लवण ६ लोहा, ७ तरुआ ८ तांबा, ९ सीसा १० चान्दी ११ सोना १२ वज्र १४ हरिताल १५ हिंगलु १६ मण सीला १७ सासक १८ मवाल १९ अभ्रक (भोडल) २० आकाशधूल ये बादर पृथ्वी काया के भेद कहे अब रत्नों के व मणि के भेद कहते हैं १ गोमेद रत्न २ रजत रत्न ३ अंक रत्न ४ स्फटिक रत्न ५ लोहिताक्ष रत्न ६ मरकत रत्न ७ मसारगल्ल

जो० जीनिना पे० पद्मप्रभ वे० वेरुलि ज० जलकांत सू० सूर्यकांत ए इन से ए० इन में भा० कहना ए० इन गा० गाथा से जा० यावत् सू सूर्यकांतपने वि० उपजते हैं पूर्ववत् ॥ २८ ॥ अ० अब पु० परिस अ० क हा स० सर्व पा० प्राणी स० सर्व भू० भूत स० सर्व जी० जीव स० सर्व स० सत्व णा० विविध योनिवाले णा० विविध उत्पत्ति वाले णा० विविध संक्रमण वाले स० शरीर योनिक स० शरीर में उत्पत्ति वाले स० शरीर में

एयाओ एएसु भाणियव्वा एओ गाहाओ जाव सूरकंताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाण तसथावराण पाणाण सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संत अवरे वि य णं तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्खायं सेसं तिण्णि आलावगा जहा उदगाणं ॥ २८ ॥ अहावरं पुरक्खायं—सव्वे पाणा सव्वेभूया, सव्वे जीवा, सव्वेसत्ता, णाणाविहजोणिया पाणा

रत्न १४ सोमधिक रत्न १५ पद्मप्रभ रत्न १६ वेरुलि रत्न १७ जलकान्त रत्न १८ सूर्यकान्त रत्न ऐसे पृथ्वी के भेदपने उत्पन्न होवे और त्रस स्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करे इत्यादि सब पूर्ववत् ॥ २८ ॥ श्री तीर्थंकर देवने सब जीवों के संबंध में इस तरह स्वरूप फरमाया है इस जगत में सर्व प्राणी, सर्व भूत, सर्व जीव, और सर्व सत्व अनेक प्रकार की योनि में अनेक स्थान से संक्रमण कर के आते हैं, शरीर पने उपजते हैं, वहां यथा योग्य शरीर का आहार करते हैं, अपने कर्मानुसार चाकर कर्मों के कारणों से अनेक गति में उत्पन्न होते हैं और कर्मानुसार ही ऊंच नीच व मध्यम गति प्राप्त

सक्रमण वाले स० शरीराहारी क० कर्म को प्राप्त क० कर्म निदान वाले क० कर्मानुसार गति प्राप्त क० कर्मानुसार स्थिति वाले क० कर्म से वि० विपरीतपना को स० प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ से० उनको ए० ऐसे आ० जानो से० उनको ए० ऐसा आ० जानकर आ० आत्मगुप्त स० सहित स० समितिवन्त स० सदा ज० यत्नावन्त त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ १० ॥ २ ॥ १२ ॥ ✿ ✿

विहसमवा, णाणाविहवुक्कमा, सरीरजोणिया, सरीर समवा, सरीर वुक्कमा, सरीराहारा, कम्मोवगा, कम्मनियाणा, कम्मगतीया, कम्मट्ठिइया, कम्मणा चेव विप्परियासमुवेंति ॥२९॥ स एव मायाणह से एव मायाणित्ता, आहारगुत्ते, सहिए, समिए, सयाजए, त्ति बेमि ॥३०॥ इति आहारपरिण्णा णाम एगोणविंस मज्झयण सम्मत्त ॥ १९ ॥

करते हैं वे एक अवस्था में कदापि नहीं रहते हैं और कर्मवश से ही विपरीत पना को प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ अहो जम्बू! इस में सब जीवों के आहार का स्वरूप कहा ऐसा जान कर जिसकी मनुष्यों सदोष आहार का त्याग करे और ज्ञान दर्शन चारित्र व पांच समिति सहित सदा काल यत्ना पूर्वक विचरे ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं ॥ ३० ॥ यह आहार परिज्ञा नामक उन्नीसवा अध्ययन समाप्त हुवा इस में आहार से कर्मबन्ध होते हैं वे कर्मबन्ध प्रत्याख्यान करने से छूटते हैं इसलिये प्रत्याख्यान क्रिया नामक अध्ययन कहते हैं ॥ १९ ॥ ✿ ✿

॥ प्रत्याख्यान क्रिया नामकं विंशतितम मध्ययनम् ॥

सु० सुना मे० मैंने आ० आयुष्मन् भ० भगवान ने ए० ऐसा अ० कहा इ० यहां ख० निश्चय प० प्रत्याख्यान क्रिया अ० अध्ययन त० उसका अ० यह अ० अर्थ प० प्ररूपा ॥ १ ॥ आ० आत्मा अ० अप्रत्याख्यानी भ० होता है आ० आत्मा अ० अक्रिया में कु० कुशल भ० होता है आ० आत्मा मि० मिथ्यात्व में स० रहा हुआ भ० होता है आ० आत्मा ए० एकांत दंडी भ० होता है आ० आत्मा ए० एकांत बाल अज्ञानी भ० होता है आ० आत्मा ए० एकांत सु० सोया हुआ भ० होता है आ० आत्मा अ० अविचारी भ०

सुय मे आउसंतेण भगवया एव मक्खायं, इह खलु पच्चक्खाण किरियाणामज्झयणे तस्सण अयमट्ठे पण्णत्ते ॥ १ ॥ आया अपच्चक्खाणीयावि भवति, आया अकिरिया कुसलेयावि भवति आया मिच्छासंठियावि भवति, आया एगंतदंडयावि भवति, आया एगंतबालेयावि भवति, आया एगंत सुत्तेयावि भवति, आया अवियारमण

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि अहो आयुष्मन्! मैंने श्री श्रमण भगवंत महावीर स्वामी से प्रत्याख्यान क्रिया नामक अध्ययन का ऐसा अर्थ सुना है और वैसे ही तुझे कहता हूं ॥ १ ॥ आत्मा अप्रत्याख्यानी होवे और यही आत्मा प्रत्याख्यानी भी होवे आत्मा सदाचार रहित भी होवे, मिथ्यात्व सहित भी होवे, आत्मा एकान्त दण्ड का करने वाला होवे, बाल होवे, शयन करने वाला होवे,

पा० पापकर्म क० करता है ह० हणते हुवे स० मन सहित को स० विचारवन्त म मन व० वचन का० काया व० वाक्यवाला को सु० स्वप्न में भी पा देखा हुवा ए० ऐसा गु गुण जा० जाति के पा० पाप कर्म क० करता है पु० फीर चो० शिष्य ए० ऐसा व बोला त० तहां ज० जो ते० वे ए० ऐसे आ० कहते हैं अ० अविद्यमान म० मनसे पापकारी अ अविद्यमान व० वचनसे पा० पापकारी अ० अविद्यमान का० काया से पा० पापकारी अ० नहीं हणते हुवे अ० मन रहित य विचार रहित म० मन व० वचन का काया म० वाक्यवाले को सु० स्वप्न में अ० नहीं देखा हुवा पा० पापकर्म क० करता है त० तहां जे० जो ते० वे

अक्षयरेण काएण पावएण कायवात्तिए पावेकम्मे कज्जइ, हणतस्स समणक्खस्स स वियारमणवयकायवक्कस्स, सुविणमवि पासओ, एव गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ, पुणरवि चायए एव ववीति, तत्थणं जे ते एवमाहंसु, असंतएण मणेणं पावएण, अ सतीपाए वत्तिए पावियाए, असंतएण काएण पावएण, अहणतस्स अमणक्खस्स अ-वियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सओ पावे कम्मे कज्जइ, तत्थण

पूर्वक हिंसा करे और स्वप्नान्तर में पाप कर्म देखे तो यही पाप कर्म बांधे और भी शिष्य आचार्यादिक से ऐसा कहता है कि मन, वचन व कायासे पाप कर्ममें प्रवृत्ति नहीं करने वालेको, हिंसा नहीं करने वाले को पाप कार्य में मन के परिणाम जिस के नहीं है ऐसे को, अविचारवन्त मन, वचन व काया वाले को

ए० ऐसा भा० कहते हैं मि० मिथ्या ते० ये प ऐसा भा कहते हैं ॥ २ ॥ त० तहां प आचार्यने चो० शिष्य को ए० ऐसा व० कहा तं० सो स० सम्यक् ज० जो म० मैंने पु० पूर्वे वु० कहा अ० अविद्यमान म०मन से पा०पापकारी अ० अविद्यमान व०वचन से पा०पापकारी अ० अविद्यमान का०काया से पा०पापकारी अ०नहीं हणते हुवे अ०मन रहित अ०विचार रहित म० मन व० वचन का० काया व० वाक्यवाले को सु स्वप्न में अ०नहीं देखता हुवा पा०पाप कर्म क करता है त० उनको स० सम्यक् क० कि

जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एव माहसु ॥ २ ॥ तत्थ पन्नवए चोयग एव वयासी तं सम्म ज मए पुव्वे वुत्त असतएण मणेणं पावएण, असतियाए वत्तिए पावियाए, असतएणं काएण पावएण अहणतस्स, अमणक्खस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावकम्मे कज्जति, त सम्म कस्सण त हेउ ? आयरिया आह—

बोलते हैं ॥ २ ॥ ऐसा आचार्य का पक्ष को शिष्यने दूषित किया तब आचार्य कहते हैं कि अहो शिष्य! मैंने जो पहिले कहा कि मन वचन काया पाप में प्रवृत्ति नहीं करने वाले को यावत् अविचारवन्त मन वचन व काया वाले को पाप कर्म लगता है वह सत्य है अब शिष्य प्रश्न करता है कि कोनसा हेतु से तुमारा कथन सत्य है? आचार्य उत्तर देते हैं कि भगवानने पृथ्वी काया यावत त्रस काया नामक छ

म न० उन है० हेतु को आ० आचार्य आ० कहे त० वहां ख० निश्चय भ० भगवान ने छ० छजीवनि काया हे० हेतु प० मरूपा तं० वह ज० जैसे पु० पृथ्वीकाय जा० यावत् त० त्रसकाया इ० इन छ० छजीवनिकाय मे आ० आत्मा अ० अमतिहत प० मत्याख्यान पा० पापकर्म नि० नित्य प० शठ वि० हिंसा चि० चित्त द० पाप में तं० वह ज० जैसे पा० माणातिपात जा० यावत् प० परिग्रह को० क्रोध जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य ॥ ८ ॥ आ० आचार्य आ० कहे त० वहां ख० निश्चय भ० भगवान ने व०

तत्थ खलु भगवया छज्जीवणिकाय हेऊ पण्णत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तस काइया इच्चेयेहिं छहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे निच्चं पसढविउवातचित्तदंडे, तंजहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादंसण सल्ल ॥ ४ ॥ आयरिय आह—तत्थ खलु भगवया वहए दिट्ठंते पण्णत्ते—से जहा णा

जीव निकाय कही हैं इन छही काया के मत्याख्यान कर के आत्मा ने पाप कर्म दूर नहीं किये हैं और सदा काल शठ जैसा बन कर माणातिपातादि से लेकर परिग्रह तक और क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य इन अठारह पापस्थानों में अनिवृत्ति पने रहा है इसलिये एकेन्द्रिय जीव का भी मिथ्यात्वादि दोषों से अमत्याख्यान क्रिया का बन्ध होता है ॥ ८ ॥ पूर्वोक्त प्रश्न को फीर वधक के दृष्टांत से सिद्ध

घधक का दि० दृष्टांत म प० मरूपा से मइ ज० जैसे व० वधक सि० होने गा० गाथापति को गा० गाथापति पुत्र का र० राजा को रा० राजपुरुष को स अवसर नि० प्राप्त कर प० प्रवेश करूगा स० अवसर स० प्राप्त कर ह० हणूंगा प० विचारता हुवा से० वह व० वधक त० उस गा० गाथापति को गा० गाथापतिके पुत्र को र० राजा को रा० राजपुरुष को स०अवसर को नि०प्राप्त कर प० प्रवेश करूगा स० अवसर स० प्राप्त कर व० वध करूगा प० विचारता हुवा दि० दिवस में रा० रात्रि में सु० सोता हुवा जा०

मए वहए सिया गाहावइस्स वा, गाहावइपुत्तस्स वा, रण्णो वा, रायपुरिसस्स वा, खणं निद्दाए पविसिस्सामि, खणं लद्धूणं, वहिस्सामि, पहारेमाणे से किं तु हु नाम से वहए तस्स गाहावइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रण्णोवा रायपुरिसस्सवा खण निद्दाएपविसि स्सामि खणंलद्धूण वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमि

करते हैं जैसे कोई एक घातक गृहपतिपर गृहपति के पुत्र पर, राजापर या राजपुरुष पर कुपित बनकर ऐसी चिन्तवना करे कि अवसर पाकर मैं उन के गृह में प्रवेश करूगा और उन्हें मारूंगा ऐसी रात्रि दिन चिन्ता करता हुवा सत्य परमार्थ को नहीं जानता हुवा प्राणी घात में ही रात्रि दिन चित्त रखे ऐसा करने वाला वधक कहा जाय या नहीं ? तब शिष्य बोला आपने सत्य कहा यह वधक कहा जाता है ॥ ५ ॥ जैसे ... घात की क्रिया में नहीं

म त० उन हे० हेतु को आ० आचार्य आ० कहे त तहां ख० निश्चय भ० भगवान ने छ० छजीवनिकाया हे० हेतु प० प्ररूपा तं० वह ज० जैसे पु० पृथ्वीकाय जा० यावत् त० त्रसकाया इ० इन छ० छजीवनिकाय मे आ० आत्मा अ० अप्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पापकर्म नि० नित्य प० शठ वि० हिंसा सि चित्त द० पाप में तं० वह जं० जैसे पा० प्राणातिपात जा० यावत् प० परिग्रह को० क्रोध जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य ॥ ८ ॥ आ० आचार्य आ० कहे त० तहां ख० निश्चय भ० भगवान ने व०

तत्थ खलु भगवया छज्जीवणिकाय हेऊ पण्णत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तस काइया इच्चेयेहिं छहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे निच्चं पसढविउवातचित्तदंडे, तंजहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादंसण सल्ल ॥ ४ ॥ आयरिय आह—तत्थ खलु भगवया वहए दिट्ठंत पण्णत्ते—से जहा णा

जीव निकाय कही हैं इन छी काया के प्रत्याख्यान कर के आत्मा ने पाप कर्म दूर नहीं किये हैं और सदा काल शठ जैसा मन कर प्राणातिपातादिसे लेकर परिग्रह तक और क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य इन अठारह पापस्थानों में अनिवृत्ति पने रहा है इसलिये एकेन्द्रिय जीव को भी मिथ्यात्वादि दोषों से अप्रत्याख्यान क्रिया का बंध होता है ॥ ८ ॥ पूर्वोक्त प्रश्न को फीर वधक के दृष्टांत से सिद्ध

पूर्वगत् ॥ ६ ॥ पूर्ववत् ॥ ७ ॥ पो० नहीं इ० यह अर्थ स पोप चो० शिष्य इ० यहां स० निश्चय प० प

अक्खाए असंजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, सकिरिए, असंवुडे, एगंत-
दंडे, एगंतबाले एगंतसुत्तेयावि भवइ, से बाले अवियारमणवयणकायवक्के सुवि
णमवि णपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ६ ॥ जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स
जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं पत्तेय चित्तसमादाए दियावा राओवा सुत्तवा जाग
रमाणवा, अमित्तभूते मिच्छासठिते निच्च पसढविउवाय चित्तदंडे भवइ, एवमेव बाले स-
व्वेसिं पाणाणं जाव सत्ताण पत्तेय पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा

इन्द्र मन वचन और काया वाला बाल जीवों स्वप्नांतर में नहीं देखे पाप कर्मों का बंधन करे नहीं ॥ ६ ॥
जैसे वह वधक पुरुष सब गृहस्थादिक की घात करने की चिन्तवना करता हुआ अहोरात्रि सोता या
जागता हुआ भी वस्तु सम मिथ्यात्व में रह और अपना चित्त को निरंतर घात में प्रवर्तावे और पाप कर्म
बांध वैसे ही य बाल एकेन्द्रियादि जीवों भी सब प्राणी, भूत, जीव और सत्व में अविरतिपना से प्रत्येक २
जीवों की घात चिंतवे रात्रि दिन सोवे या जागते वस्तु सम मिथ्यात्व में रहे हुवे निरंतर प्राणी की घात
चिन्तवे, प्राणीयों को दंड करने वाला होवे इस तरह से वह पाप कर्म बांधे ॥ ७ ॥ इतना आचार्य का

जागता हुवा अ० अज्ञपने मि० मिथ्यात्व में स० रहा हुवा नि० नित्य प० शठ वि० हिंसा चि०मन द० पाप वं भ० होता है ए० ऐसा वि० बोलते हुवे स०सत्य वि० कहा चा० शिष्य ने है बधक भ० होता है ॥८॥

त्तभूते मिच्छासठित निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवति, एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे चोयए हता भवति ॥ ५ ॥ आयरिय आह—जहा से वहए तस्स गाहावइस्स वा, तस्स गाहावइपुत्तस्स वा, रण्णोवा रायपुरिसस्स खण निद्दाए पविसिस्सामि, खण लद्धूण वहिस्सामिति पहारेमाणे दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूए मिच्छासंठिते, निच्च पसढविउवायचित्तदंड, एवमेव बालेवि सव्वेसिं पाणाण जाव सव्वेसिंसत्ताण दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूए मिच्छासंठित निच्च पसढविउवायचित्तदंडे तं पाणातिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले एव खलु भगवया

भवता हुवा भी घातक कहा जाता है वैसे ही अज्ञानी जीव सब प्राणी भूत, जीव और सत्व की सोते या जागते रात्री दिन घात चिन्तवते प्राणातिपात यावत् मिथ्या दर्शन शल्य ऐसे अठारह पाप स्थानों में आवेष्ट होते इसलिये श्री भगवन्तने फरमाया है कि यह जीव अव्रति, असयति अप्रतिहत, सक्रिय, संवर रहित, एकान्त दंड का देने वाला, एकान्त बाल, और एकान्त शयन करने वाला होवे ऐसे अविचार

पूर्ववत् ऐ ६ ॥ पूर्ववत् ॥ ७ ॥ णो० नहीं इ०यह अर्थ स योग्य चो० शिष्य इ० यहां स० निश्चय प० प

अक्साए असजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, सकिरिए असंवुडे, एगंत
दंडे, एगतबाले एगतसुचेयावि भवइ, से बाल अविचारमणवयणकायवक्के सुवि
णमवि णपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ६ ॥ जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स
जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं पत्तेय चित्तसमादाए दियावा राओवा सुत्तेवा, जाग
रमाणेवा अमित्तभूते मिच्छासंठिते निच्च पसढविउवाय चित्तदंडे भवइ, एवमेव बाले स-
व्वेसिं पाणाणं जाव सत्ताणं पत्तेय पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राओवा सुत्तेवा जागरमाणेवा,

वन्य मन वचन और काया वाले पाप तीनों स्वप्नांतर में नहीं देखे पाप कर्मों का बंधन करे नहीं ॥ ६ ॥
जैसे वह घातक पुरुष सब गृहस्थादिक की घात करने की चिन्तवना करता हुआ अहोरात्रि सोता या
जागता हुआ भी शत्रु सम मिथ्यात्व में रहे और अपना चित्त को निरंतर घात में प्रवर्तावे और पाप कर्म
बांधे वैसे ही ये बाल एकेन्द्रियादि जीवों की सब प्राणी, भूत, जीव और सत्वमें अविरतिपना से प्रत्येक २
जीवों की घात चिंतवे रात्रि दिन सोते या जागते शत्रु सम मिथ्यात्व में रहे हुवे निरंतर प्राणी की घात
चिन्तवे, प्राणीयों को दंड करता प्राप्त होवे इस तरह से वह पाप कर्म बांधे ॥ ७ ॥ इतना आचार्य का

न पा॰ प्राणी न॰ ना इ॰ इसके म॰ शरीर से णो॰ नहीं दि॰ देखें सु॰ सुने न॰ नहीं म॰ माणे वि॰ वि॰ जाणे ज॰ जिसमें णो॰ नहीं प॰ प्रत्येक चि॰ मन म॰ ग्रहण दि॰ पूर्ववत् ॥ ८ ॥ आ॰ आचार्य भा॰

मिच्छाभूए मिच्छासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवइ ॥ ७ ॥ णो इणट्ठे

समट्ठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिट्ठावा, सुयावा,

नाभिमयावा विन्नायावा जासिं णो पत्तेयं २ चित्तसमायाए दियावा, राओवा, सुत्ते

वा, जागरमाणेवा अमित्तभूते मिच्छासंठिते निच्चं पसढ विउवाय चित्तदंडे तं पाणा

तिवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले ॥८॥ आयरिया आह—तत्थ खलु भगवया दुवेदिट्ठंता

कथन सुन कर शिष्य बोला कि हे भगवन् ! तुमने जो अर्थ कहा वह योग्य नहीं है क्योंकि इस लोक में अनंत प्राणी रहे हुवे हैं उन को कभी भी दृष्टि से देखे नहीं हैं सुने नहीं हैं, और विशेष प्रकार से जाने नहीं हैं और प्रत्येकर जीवोंका विनाश की चिन्तवना भी करते नहीं हैं तथापि अहो रात्रि सोते या जागते शत्रु सम मिथ्यात्व में स्थित, निरंतर शठ प्राणियोंकी घात नहीं करने वालेको घातक कैसे कहाजाय और प्राणा तिपातादि अठारह पाप स्थानों को नहीं करने से पाप कर्म कैसे लग सके अर्थात लगे नहीं ॥ ८ ॥ ऐसा होने से सब को प्रत्याख्यान करने की जरूरत नहीं है मात्र जो जीव हिंसा में प्रवृत्त हुवे होवे उन का ही प्रत्याख्यान करने की जरूरत है ऐसा कथन सुनकर आचार्य उत्तर देते हैं कि इस विषय में भगवंत

पण्णत्ता तंजहा—सन्निदिट्ठंतेय असन्निदिट्ठंतेय से किं तं सन्निदिट्ठंते—जे इमे सन्नि पंचिंदिया पज्जत्तगा एतेसिणं छज्जीवनिकाए पडुच्चं तं पुढविकायं जाव तसकायं से एगइओ पुढविकाएण किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं भवइ—एवं खलु अहं पुढविकाएण किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं भवइ—इमेणवा २ से एतेण पुढविकाएण किच्चं करेइवि कारावेइवि, से णं तत्तो पुढविकायाओ असंजय,

पोम्भे त० तहां भ० भगवतने दु० दो द० दृष्टांत प० कहे तं० यह स० संज्ञी दृष्टांत अ० असंज्ञी दृष्टांत से० अथ किं० कैसे स० वह म० संज्ञी दृष्टांत जे० जो इ० यह स० संज्ञी पंचेन्द्रिय प० पर्याप्त ए० उनका छ० षट् काया का प० आश्रय करके स० सब पु० पृथ्वी काय जा० यावत् त० त्रस काय से० अथ ए० कोई एक पु० पृथ्वी काया से कि० कार्य क० करता है का० कराता है त० उसको ए० ऐसा भ० होवे ए० ऐसे अ० मैं पु० पृथ्वी काया से कि० कार्य क० करता हूं का० कराता हूं णो० नहीं से० उन्हें ए० ऐसा भ० होवे इ० अमुक २ से० वह ए० इस पु० पृथ्वी काया से कि० कार्य क० करता है का०

ने दो दृष्टांत कहे हुवे हैं एक संज्ञी का दृष्टांत और दूसरा असंज्ञी का दृष्टांत संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव में से कोई जीव पृथिव्यादि षट् काया के संबंध में ऐसी प्रतिज्ञा करे कि मैं मात्र पृथ्वी काय से ही कार्य करूंगा और अन्य की पास कार्य कराऊंगा पृथ्वी काया से कार्य करने की न कराने की जिनों ने प्रतिज्ञा ली है उन का उस में ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मैं श्वेत, लाल, पीली आदि अमुक पृथ्वी काय से

कराता है से वा त० तत्र पु० पृथ्वी काया से अ० असंयति अ० अविरति अ० अप्रतिहत प०प्रत्याख्यान पा० पापकर्म वाला भ० होवे ए० ऐसे जा० यावत् त० त्रस काया का भा० कहना से० अथ ए० कोई एक छ० षट् जीवनिकाय में कि० कार्य क० करे का० करावे त० उन को ए० ऐसा भ० होवे ए० ऐसे अ० मैं छ० षट् जीवनिकाय में कि० कार्य क० करता हूं का कराता हूं णो० नहीं से उन को ए ऐसा भ० होवे इ० अमुक ए० इन छ षट् जीवनिकाय से जा० यावत् का० करावे से० वह ए० इन छ० छह जी जीवनिकाय में अ० असंयति, अ० अविरति अ अप्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पापकर्मों से

अविरय, अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि भवइ, एवं जाव तसकाएत्ति भाणि यव्वं, से एगइओ छज्जीवनिकाएहिं किच्चं करेइवि कारावेइवि, तस्सणं एवं भवइ—एवं खलु अहं छज्जीवनिकाएहिं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि, णो चेवणं से एवं भवइ इमेहिं वा से एतेहिं छज्जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि, से एतेहिं छहिं जीवनिकाएहिं असंजय, अविरय अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए

कार्य करूंगा जहां तक उन को ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मैं अमुक पृथ्वी काय से कार्य करूंगा वहां लग उन को सब पृथ्वी काया का कर्म लगता है ऐसे पृथ्वी काया से करने वाले व कराने वाले असंयति अविरति यावत् प्रत्याख्यान से पाप को दूर करने वाले नहीं हैं ऐसे ही छह जीव काया का स्वरूप जानना कोई पुरुष छह जीवनिकाया में कार्य करे अन्य की पास कार्य करावे तो वह पुरुष छ जीव

में चग पा प्राणातिपात में से यह जा० यावत् मि० मिथ्या दर्शन शल्य में ए० यह भ० भगवानने अ०कहा अ० असंयति अ० अविरति अ० अप्रतिहत प्रत्याख्यान पा० पापकर्म वाला सु० स्वप्न में भी अ० नहीं देखा हुवा पा० पापकारी क० कर्म क० करता है से अब तं यह स० संज्ञी दृष्टांत से ॥ १ ॥

जाव मिच्छादंसणसल्ले एस खलु भगवया अक्खाए असंजए अविरए, अप्पडिहय पच्चक्खायपावकम्मे सुविणमवि अपस्सओ पावेयसे कम्मे कज्जइ, से तं सन्निदिट्ठ तेणं ॥ १ ॥ से किं तं असन्निदिट्ठंते—जे इमे असन्निणोपाणा तं पुढविकाइया

निकाय में अविरति, असंयति कहा जावे इस तरह प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अठारह पापस्थानों में असंयति, अविरति यावत् प्रत्याख्यानसे पाप को नहीं दूर करनेवाले जीव अप्रत भावसे अदृष्ट पाप कर्म बांधे ऐसा श्री भगवन्तने निश्चय से कहा है यह संज्ञी का दृष्टांत समाप्त हुवा ॥ १ ॥ अब असंज्ञी का दृष्टांत कहते हैं इस संसार में पृथ्वी काय, अप्काय, तेउ काय, वायु काय और वनस्पति काय ये पांच स्थावर तथा कोई त्रस प्राणी भी असंज्ञी हैं इन असंज्ञियों का तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन तथा वचन (१)

(१) यद्यपि द्वीन्द्रियादिक को जिव्हा इन्द्रिय रही हुई है परंतु स्पष्ट अर्थ वाला उच्चार नहीं होने से वचन नहीं ग्रहण किया है

कराता है मे नह स० तस पु० पृथ्वी काया से अ० असंयति अ० अविरति अ० अप्रतिहत प०प्रत्याख्यान पा० पापकर्म वाला भ० होवे ए० एसे जा० यावत् त० त्रस काया का भा० कहना से० अथ ए० कोई एक छ० छः जीवनिकाय मे कि० कार्य क० करे का० करावे त० उन का ए० ऐसा भ० होवे ए० ऐसे भ० म छ० छः जीवनिकाय मे कि० कार्य क० करता हूं का कराता हूं णो० नहीं से० उन को ए ऐसा भ० होवे इ० अमुक ए० इन छ छः जीवनिकाय से जा० यावत् का० कराने से० वह ए० इन छ० छः जीवनिकाय मे अ० असयति, अ० अविरति अ० अप्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पापकर्मों से

अविरय, अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि भवइ, एवं जाव तसकाएत्ति भाणि यव्वं, से एगइआ छज्जीवनिकाएहिं किच्चं करेइवि कारावेइवि, तस्सणं एवं भवइ—एवं खलु अहं छज्जीवनिकाएहिं किच्चं करेमित्ति कारवेमित्ति, णो चेवणं से एवं भवइ इमे हिं वा स एतेहिं छज्जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि, से एतेहिं छहिं जीवनि काएहिं असंजय, अविरय, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए

कार्य करूंगा जहां लग उन को ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मैं अमुक पृथ्वी काय से कार्य करूंगा वहां लग उन को सब पृथ्वी काया का कर्म लगता है ऐसे पृथ्वी काया से करने वाले व कराने वाले असंयति अविरति यावत् प्रत्याख्यान से पाप को दूर करने वाले नहीं हैं ऐसे ही छह जीव काया का स्वरूप जानना कोई पुरुष छह जीवनिकाया मे कार्य करे अन्य की पास कार्य करावे तो वह पुरुष छ जीव

नउ हिं० हिंसा चि० मन द० पाप में त० उनको पा० प्राणातिपात जा० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य इ० इतने जा० यावत् णा० नहीं चे० निश्चय म० मन णो० नहीं व वचन पा० प्राणी के जा० यावत स०सत्व के दु दुःख उत्पन्न करने से सो०शोक उपजाने से जू० झुराने से पि०मारने से प०परिताप उपजाने में म० वे दु० दुःख सो शोक जा० यावत् परिताप व वध बं० बंधन प० क्लेश से अ० अनिवृत्त म० होवे हैं ॥ १० ॥ से० वे अ० असंज्ञी स० सत्व अ० रात्रिदिवस पा० प्राणातिपात में उ० करे

त पाणाइवात जाव मिच्छादसणसल्ले इच्चेव जाव णो चेव मणो, णो चेव वई, पाणाणं जाव सत्ताणं—दुक्खणताए सोयणताए जूरणताए तिप्पणताए पिट्टणताए परितप्पणताए ते दुक्खणसोयण जाव परितप्पणवहबंधनपरिकिलेसाओ अप्पडि विरया भवति ॥ १० ॥ इति खलु से असण्णिणोवि सत्ता अहोनिसिं पाणातिवाए

के व्यापार से रहित हैं और सब प्राणी यावत् सत्व को दुःख, शोक, झूरण, पिट्टणादिक नहीं करते हैं तथापि अविरति भाव से सब जीवों को दुःख देना, शोक, झूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् बाह्य आभ्यतर पीड़ा उपजाना और वध बंधन का करना ऐसे क्लेशों से नहीं निवर्ते हुवे हैं इसलिये वे अविरति कर्म और विरति के अभाव से जीवों कर्मों से बंधावें ॥ १० ॥ इसी तरह से पृथ्वीकायादिक असंज्ञी

अ० असंज्ञी दि० दृष्टांत जे० जो इ० ये अ० असंज्ञी पा० प्राणी तं० वह पु० पृथ्वी काय जा० यावत् व० वनस्पति काय छ० छट्ठा ए० कितनेक त० त्रस पा० प्राणी जे० जिस को णो० नहीं त० तर्क स० संज्ञा प० प्रज्ञा म० मन व० वचन स० स्वयं क० करना अ० दूसरे से का० कराना क० करते को स० अच्छा जानना त० वे पा० अज्ञानी स० सब पा० प्राणी का आ० यावत् स० सर्व सत्त्वको दि० दिवस में रा० रात्रि में सु० सोया हुवा जा० जागता हुवा अ० शत्रुरूप मि० मिथ्यात्व में सं० रहा हुवा नि० नित्य प०

जाव वणस्सइकाइया छट्ठा वेगइया तसापाणा, जेसिं णो तक्काइवा, सन्नातिवा, पन्नातिवा, मणातिवा, वइवा, सयंवा करणाए अन्नेहिं वा कारावेत्तए, करंतं वा समणुजाणित्तए तेविणं बाले सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावाराओवा सुत्तेवा, जागरमाणे वा, अमित्तभूते मिच्छासंठिया, निच्चं पसढविउवातचित्तदंडा

—नी हैं उन को कार्य करने का, अन्य की पास कार्य कराने का, और कार्य करने वाले को अच्छा जानने का भाव नहीं है ऐसे असंज्ञी जीवों अहोरात्रि सोते या जागते सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को शत्रु समान होवें मिथ्यात्व में रहे परमार्थ को नहीं जानते सदैव प्राणी घात में चित्त रखें, मिथ्यात्वादि अठारह पापस्थानों में नहीं प्रवर्तने पर भी उनको कर्म बंध होता है वे असंज्ञी जीव यद्यपि मन वचन

हुते म अमशी काया से स० संशी काया में स० संक्रमते हैं स० सशी काया से अ० असंशी काया में सं० संक्रमण करते हैं स० सशी काया से स० सशी काया में स० संक्रमते हैं अ० असंशी काया से अ० असंशी में सं० संक्रमत हैं जे० जो ए० ये स संशी अ० असंशी स० सर्व ते० वे मि० मिथ्याचारी नि०

मंति सन्निकायाओवा असन्निकायं संकमति, सन्निकायाओवा सन्निकाय सकमति, असन्निकायाओवा असन्निकायं संकमति, जे एए सन्निवा असन्निवा सव्वे ते मिच्छा यारा, निच्च पसढविउवायचित्तदंडा, त पाणातिवाए जाव मिच्छादसणसल्ले एवं खलु भगवया अक्खाए असजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, स

है, यो फीर अन्य मत का कहना क्या यह दृष्टांत सशी असशी पर रहा हुवा है, जीवों ने पहिले जो कर्म बांधे हैं उन को क्षय नहीं करने से, नहीं छेद्‌ से, नहीं खपाने से असशी काय में से संशी काय में जावे यह प्रथम भंग (१) सशी काय से असंशी में जावे दूसरा भंग (२) सशी काय में से असशी काय में आवे तीसरा भंग (३) असशी काय में से असशी काय में जावे यह चतुर्थ भंग (४) जो य सशी या असशी हैं वे सब प्रत्याख्यान नहीं करने से मिथ्याआचार वाले, अत्यंत शठ और प्राणी की घात करने वाले यावत् मिथ्या दर्शन शल्य में प्रवृत्ति करने वाले हैं ऐसे असयति, अविरति, अप्रतिहत प्रत्याख्यान पाप कर्म वाले, तथा सक्रिय, असंवरी, एकान्त दंड के करने वाले और एकान्त बाल जीवको

मा है जा० यावत् म० रात्रि दिवस प० परिग्रह में उ० करे जाते हैं जा० यावत् मि० मिथ्या दर्शन शल्य में उ० करे जाते हैं ए० ऐसे मू० मृतवादी स० सर्व योनिवाले स० निश्चय स० सत्त्व स० संज्ञी हु०होकर अ० असंज्ञी हो० होते हैं अ० असंज्ञी हु०होकर स० संज्ञी हो०होते हैं हो०होकर स० संज्ञी अ० अथवा अ० असंज्ञी त० तहां ते० वे अ० नहीं पाये हुवे अ० नहीं खपाये हुवे अ० नहीं छेदे हुवे अ० नहीं खपाये

उवक्खाइज्जति, जाव अहोनिसिं परिग्गहे उवक्खाइज्जति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जति एवं मूतवादी सव्वजोणियावि, खलु सत्ता सण्णिणो हुच्चा, असण्णिणो होंति असण्णिणो हुच्चा सण्णिणोहोंति होच्चा सण्णी अदुवा असण्णी तत्थ से अविवि-चित्ता अविधूणित्ता असमुच्छित्ता अणणुतावित्ता, असण्णिकायाओवा सण्णिकाय संक

होने पर प्राणातिपात मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का बंध करते हैं यहां पर शिष्य प्रश्न करता है कि वेशन्त वादी की मान्यता ऐसी है कि जो पुरुष होवे सो जन्मान्तरमें पुरुष होवे और जो स्त्री होवे सो जन्मान्तरमें स्त्री होवे वैसे ही यथा संज्ञी होवे सो जन्मान्तर में संज्ञी होवे या असंज्ञी का असंज्ञी रहे ? आचार्य उत्तर देते हैं अब पानिनाम जीव संज्ञी बन कर असंज्ञी भी हो जाते हैं और असंज्ञी बन कर संज्ञी भी हो जाते हैं ऐसे संज्ञी असंज्ञी दोनों होवे यहां पर प्रत्यक्ष में भी देखते हैं कि कितनेक संज्ञी मनुष्यादिक की अवस्था में असंज्ञीभूत होते हैं और फीर संज्ञी बन जाते हैं जब एक ही भव में ऐसा परिवर्तन होता

हुये अ० असंज्ञी काया से स० संज्ञी काया में स० संक्रमित हैं स० संज्ञी काया से अ० असंज्ञी काया में स० संक्रमण करते हैं स० संज्ञी काया से स० संज्ञी काया में सं० संक्रमते हैं अ० असंज्ञी काया से अ० असंज्ञी में सं० संक्रमत हैं जे० जो ए० ये स० संज्ञी अ० असंज्ञी स० सर्व ते० वे मि० मिथ्याचारी नि०

मति सन्निकायाओवा असन्निकायं संकमति, सन्निकायाओवा सन्निकाय संकमति, असन्निकायाओवा असन्निकाय संकमति जे एए सन्निवा असन्निवा सव्वे ते मिच्छा यारा निच्च पसढविउवायचित्तदंडा, तं पाणातिवाए जाव मिच्छादसणसल्ले एवं खलु भगवया अक्खाए असंजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, स

है, तो फीर अन्य भव का कहना क्या यह दृष्टांत संज्ञी असंज्ञी पर रहा हुआ है, जीवों ने पहिले जो कर्म बांधे हैं उन को क्षय नहीं करने से, नहीं छेद से, नहीं नपाने से असंज्ञी काय में से संज्ञी काय में जाने यह प्रथम भंग (१) संज्ञी काय से असंज्ञी में जावे दूसरा भंग (२) संज्ञी काय में से संज्ञी काय में जावे तीसरा भंग (३) असंज्ञी काय में से असंज्ञी काय में जाने यह चतुर्थ भंग (४) जो ये संज्ञी या असंज्ञी हैं वे सब प्रत्याख्यान नहीं करने से मिथ्याआचार वाले, अत्यंत शठ और प्राणी की घात करने वाले यावत् मिथ्या दर्शन शल्य में प्रवृत्ति करने वाले हैं ऐसे असंयति, अविरति, अप्रतिहत प्रत्याख्यान पाप कर्म वाले, तथा सक्रिय, असंवरी, एकान्त दंड के करने वाले और एकान्त बाल जीवको

जाते हैं जा० यावत् अ० रात्रि दिवस प० परिग्रह में व० करे जाते हैं जा० यावत् मि० मिथ्या दर्शन शल्य में व० करे जाते हैं ए० ऐसे मू० मृतवादी स० सर्व यानिवाले स० निश्चय स० सत्य स० संज्ञी हु०होकर अ०असंज्ञी हो० होते हैं अ० असंज्ञी हु०होकर स० संज्ञी हों०होते हैं हो होकर स० संज्ञी अ०अथवा अ० असंज्ञी त० तहां ते० वे अ० नहीं छोडे हुवे अ० नहीं खपाये हुवे अ० नहीं छेदे हुवे अ० नहीं खपाय

उवक्खाइज्जंति, जाव अहोनिसिं परिग्गहे उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति एवं मूतवादी सव्वजोणियावि, खलु सचा सन्निणो हुच्चा, असन्निणो होंति असन्निणो हुच्चा सन्निणोहोंति होचा सन्नी अदुवा असन्नी तत्थ से अविविचित्ता अविधूणित्ता असमुच्छित्ता अणणुतावित्ता, असन्निकायाओवा सन्निकाये सक

होने पर प्राणातिपात मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का बंध करते हैं यहां पर शिष्य प्रश्न करता है कि वेदान्त वादी की मान्यता ऐसी है कि जो पुरुष होवे सो जन्मान्तर में पुरुष होवे और जो स्त्री होवे सो जन्मान्तर में स्त्री होवे वैसे ही क्या संज्ञी होवे सो जन्मान्तर में संज्ञी होवे या असंज्ञी का असंज्ञी रहे ? आचार्य उत्तर देते हैं सब योनिवाले जीव संज्ञी बन कर असंज्ञी भी हो जाते हैं और असंज्ञी बन कर संज्ञी भी हो जाते हैं ऐसे संज्ञी असंज्ञी दोनों होवे यहां पर प्रत्यक्ष में भी देखते हैं कि कितनेक संज्ञी मूर्च्छादिक की अवस्था से असंज्ञीभूत होते हैं और फीर संज्ञी बन जाते हैं जब एक ही भव में एसा परिवर्तन होता

हुने म० असज्ञी काया से स० संज्ञी काया में स० सक्रमते हैं स० संज्ञी काया से अ० असंज्ञी काया में स० संक्रमण करते हैं स० सज्ञी काया से स० सज्ञी काया में स० सक्रमते हैं अ० असज्ञी काया से अ असंज्ञी में सं० संक्रमत हैं जे० जो ए० ये स० संज्ञी अ० असंज्ञी स० सर्व ते० वे मि० मिथ्याचारी नि०

मति सन्निकायाओवा असन्निकायं संकमति, सन्निकायाओवा सन्निकाय सकमति, असन्निकायाओवा असन्निकाय संकमति जे एए सन्निवा असन्निवा सव्वे ते मिच्छा यारा निच्च पसढविउवायचित्तदंडा, त पाणातिवाए जाव मिच्छादसणसल्ले एवं खलु भगवया अक्खाए असंजए, अविरए, अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे, स

है, यो फीर अन्य भव का करना क्या यह दृष्टांत सज्ञी असज्ञी पर रहा हुवा है, जीवों ने पहिले जो कर्म बांधे हैं उन को क्षय नहीं करने से, नहीं छेद से, नहीं नपाने से असज्ञी काय में से संज्ञी काय में जाने यह प्रथम भंग (१) संज्ञी काय से असंज्ञी में जावे दूसरा भंग (२) सज्ञी काय में से संज्ञी काय में जावे तीसरा भंग (३) असज्ञी काय में से असज्ञी काय में जाने यह चतुर्थ भंग (४) जो य संज्ञी या असज्ञी हैं वे सब प्रत्याख्यान नहीं करने से मिथ्याआचार वाले, अत्यंत शठ और प्राणी की घात करने वाले यावत् मिथ्या दर्शन शल्य में प्रवृत्ति करने वाले हैं ऐसे असयति, अविरति, अप्रतिहत प्रत्याख्यान पाप कर्म वाले, तथा सक्रिय, असंवरी, एकान्त दंड के करने वाले और एकान्त बाल जीवको

निस्य प० पूर्ववत् ॥ ११ ॥ चो शिष्य बे० कहे किं० क्या कु करता हुआ किं० क्या का० कराता हुआ क० कैसे सं० संयति वि० विरति पा० प्रतिहत प० प्रत्याख्यान पा० पाप कर्मये भ० होता है आ० आचार्य आ० कहते त० तहां ख० निश्चय भ० भगवानने छ छ जी०जीवनिकाय हे० हेतु को प० प्ररूपा त० यह अ० जैसे पु पृथ्वीकाय जा यावत् त० त्रस काय से वे क० जैसे म० मुझे अ० असाता

किरिए, असंवुडे एगतदंडे एगन्तबाले, एगतसुत्ते, से बाले अवियारमणवय कायवक्के सुविणमवि ण पस्सइ पावयसे कम्मे कज्जइ ॥ ११ ॥ चोदक से किं कुव्वं किं कारवं कह संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे भवइ आयरिय आह–तत्थ खलु भगवया छज्जीवणिकायहेऊ पण्णत्ता–तंजहा–पुढविकाइया, जाव

अविचारित मन वचन और काया के योग से स्वप्नान्तर में भी नहीं देखा हुआ पदार्थ का पाप कर्म लगता है ॥ ११ ॥ अब शिष्य पूछता है कि हे भगवन् ! जीव कैसा अनुष्ठान करता हुवा व अन्य की पास कराता हुआ कैसा संयम, विरति, प्रतिहतप्रत्याख्यान कर्म वाला होवे ? ऐसा सुन कर आचार्य कहते हैं श्री श्रमण भगवंत ने पृथ्वी काया यावत् त्रस काया ऐसे षट् काया के भेद कहे हैं जैसे दंड से, अस्थि से, पाषाण से ठीकरी से दुःख देते यावत् पीडा उत्पन्न करते या रोम मात्र उखेडते मुझे असाता होती है, मैं दुःख, भय वेदता हूं वैसे ही सब प्राणी, सब भूत, सब जीव, और सब सत्त्व को दण्ड यावत् ही

द० दंड से अ० अस्थि से मु० मुष्टि से ले० पत्थर से कं० ठींकरी से आ० आक्रोश करते हुए भा० यावत् उ० उद्वेग पाते हुए जा० यावत् लो रोम मात्र भी उखेडना हिं० हिंसाकारी दु० दुःख भ० भयको प० पदता हूं इ एसा जा० जानकर स सर्व पा० माणी जा० यावत् स० सर्व स० सत्व दं० दंड से मा यावत क० ठींकरी से आ० आक्रोश करते हुए ह० हणाते हुवे त० तर्जनापाते हुवे ता० ताडना पाते हुवे जा यावत् उ० उद्वेग पाते हुवे जा० यावत् लो० रोम मात्र भि उखेडते हिं० हिंसाकारी दु० दु:ख भ० भय प० वेदते हैं ए एसा जा० जानकर स० सर्व पा० माणी भा० यावत् स० सर्व स०

तरगकाइया से जहा णामए—मम अस्सात दंडेणवा, अट्ठीणवा, मुट्ठीणवा, लेलूणवा, कवालेण वा आतोडिज्जमाणस्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुक्खणण मायमवि हिंसाकार दुक्ख भय पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाणं सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता दंडेणवा, जाव कवालेणवा, आतोडिज्जमाणेवा, हम्ममाणेवा, तज्जिज्जमाणेवा, तालिज्जमा

करी से दुःख देते यावत् रोम मात्र उखेडते दुःख भय अनुभवते हैं ऐसा जान कर सर्व माणी यावत् सर्व सत्व को मारना नहीं यावत् उद्वेग उपजाना नहीं यह धर्म शाश्वत, ध्रुव, नित्य तथा खेदज्ञों से मरूपा है इस तरह माणातिपातादिक अठारह पापस्थान से निवर्तने वाला साधु दंतमक्षालन करे नहीं आंख

सत्व न० नहीं ह० हणना या० यावत् प० नहीं उ० उद्वेग देना ए० यह ध० धर्म धु० ध्रुव णि० नित्य सा० शाश्वत स० सम्यक् लो० लोक से० सेवइने प० मरूपा ए० ऐसे मे० वह भि० साधु वि० विरति पा० प्राणातिपात से या० यावत् मि० मिथ्यादर्शन शल्य से वह भि० साधु णो० नहीं दं० दांतण से दं० घूस धोवे णा० नहीं अ० अंजन णा० नहीं व० वमन णो० नहीं धू० धोना तं० उस को न० नहीं आ० ग्रहण करे से० वह भि० साधु अ० अक्रिय अ० अलूस अ० अक्रोधी जा० यावत् अ० अलोभी उ० उपशान्त प०

णत्ता, जाव उद्दविज्जमाणेवा, जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकार दुक्खं भय पडिसवेदे ति,एव णच्चा सव्वे पाणा जाव सव्वेसत्ता,न हंतव्वा जाव ण उद्दवेयव्वा एस धम्मे धुवे,णितिए, सासए, समिच्च लोग खेयण्णेहिं पवेदिए एव से भिक्खू विरते पाणातिवायातो जाव मिच्छादसणसल्लाओ से भिक्खू णो दंतपक्खालेण दंतपक्खालेज्जा,णो अंजण, णो वमण, णो धूवण, तंपि न आसते से भिक्खू—अकिरिए, अलूसए, अकोहे, जाव अलोहे, उव-

में अंजन डाले नहीं, वमन, धोवनादिक क्रिया करे नहीं ऐसे अक्रिय, अक्रोधी, अमानी यावत् अलोभी उपशान्त, और शीतल कहे जाते हैं और श्री भगवन्तने कहा है कि ऐसा साधु संयमी, विरती प्रतिहत प्रत्याख्यान पाप कर्म वाला. अक्रिय, संयमी और एकान्त पण्डित होता है यह प्रत्याख्यान क्रिया नामक

निवृत्त ए० यह स० निश्चय भ० भगवान ने अ० कहा सं० संयति वि० विरति प० प्रतिहत प० प्रत्या
ख्यान पा० पापकर्म में अ० अक्रिय सं० संवृत ए० एकान्त पं० पण्डित भ० होता है त्ति० ऐसा
ब्रु० कहता हूं ॥ १२ ॥

संते परिनिव्वुडे, एस खलु भगवया अक्खाए सजयाविरयपडिहयपच्चक्खायपाव
कम्मे, अकिरिए, संवुडे, एगंतपंडिए यावि भवइ त्ति बेमि ॥ १२ ॥ इति
पच्चक्खाण किरिया णाम वीसम मज्झयण सम्मत्त ॥ २० ॥

यह बीसवां अध्ययन समाप्त हुआ इस में प्रत्याख्यान क्रिया का स्वरूप कहा जो प्रत्याख्यानी नहीं होते हैं वे
अनाचारी कहे जाते हैं इसलिये अनाचार श्रुत नामक इक्कीसवां अध्ययन कहते हैं

॥ अनाचार श्रुताख्यमेकविंशतितम मध्ययनम् ॥

आ० ग्रहण कर के ब्रह्मचर्य आ० बुद्धिमान इ० इस व० वचन का म० इस ध० धर्म में अ० मनाचार न नहीं आ० आचरे क० कदापि ॥ १ ॥ अ० अनादि प० जानकर अ अनंत पु० फिर सा० शाश्वत अ० अशाश्वत इ० ऐसी दि० दृष्टि न० नहीं धा० धारण करे ॥ २ ॥ ए० इन दो० दो ठा० स्थान से व० व्यवहार प० नहीं वि० है ए० इन दो० दो ठा० स्थान से अ० अनाचार जा० जाने ॥ ३ ॥

आदाय बंभचेरं च । आसुपन्ने इमं वई ॥ अस्सिं धम्मे अणायार । नायरेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥ अणादीय परिन्नाय । अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासय मसासए वा । इति दिट्ठिं न धारए ॥ २ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । ववहारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणे

विवेकी पुरुष ब्रह्मचर्य (जैन शासन) को अंगीकार कर के यह लोक शाश्वत है, ऐसा वचन बोले नहीं और इस धर्म में अवर्तता हुआ सावद्यानुष्ठान रूप अनाचार का सेवन करे नहीं ॥ १ ॥ आचार और अनाचार बतलाने की इच्छासे लोक का स्वरूप बताते हैं चउदह रज्ज्वात्मक लोक को अनादि अनंत जानकर यह एकांत शाश्वत है अथवा एकांत अशाश्वत है ऐसी दृष्टि रखे नहीं ॥ २ ॥ सब लोक नित्य ही है या अनित्य ही है ऐसे दो प्रकारों से लोकका व्यवहार नहीं होता है अर्थात् एकांत नित्य और एकांत अ

म० विच्छेद होंगे स० सर्वज्ञ स सर्व पा० प्राणी अ० सरिखे गं० ग्रंथ (कर्म) सहित भ० होंगे सा० शा श्वत णो० नहीं व० बोले ॥ ४ ॥ ए० इन दो० दो ठा० स्थान से व० व्यवहार ण० नहीं वि० है ए इन दो० दो ठा० स्थान से अ० अनाचार को जा माने ॥ ५ ॥ जे० जो के कोई खु० सुक्ष्म पा० प्राणी म० अथवा म बडी काया वाले स० सरिखा वे० उन से वे० वैर अ० नहीं सरिखा णो० नहीं व० बोले

हिं । अणायार तु जाणए ॥ ३ ॥ समुच्छिहिंति सत्थारो । सव्वे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगाथा भविस्सति । सासयंतिथ णो वए ॥ ४ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । ववहारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । अणायार तु जाणए ॥ ५ ॥ जे केइ खुद्दगा

नित्य वस्तु में लोक व्यवहार नहीं घट सकता है इसलिये इन दोनो स्थानकों को अनाचार मानना ॥ ३ ॥ सब भव्य जीवों मोक्ष में चले जायेंगे जिससे भव्य शून्य लोक होजायगा, सब प्राणी विलक्षण स्वभाव वाले हैं, सब जीवों कर्म रूप ग्रंथि सहित रहेंगे तथा तीर्थंकर सर्वज्ञ सदा काल शाश्वत रहेंगे ऐसे एकान्त वचन वाले नहीं ॥ ४ ॥ इन दोनों स्थानकों से व्यवहार नहीं होता है और इन दोनों स्थानकों से अनाचार माना जाता है ॥ ५ ॥ इस ससार में जो कोई सूक्ष्म या बडे जंतु रहे हुवे हैं उन को मारने मे एक सरिखा

॥ ६ ॥ पूर्ववत् ॥ ७ ॥ अ० आधाकर्मी आहार भुं० भोगते हैं अ० अन्योन्य स० कर्म से उ० उपलिप्त जा० जाने अ० अनुपलिप्त वा अथवा पु फिर ॥ ८ ॥ पूर्ववत् ॥ ९ ॥ सं० जो इ० यह उ० औदारिक शरीर क० कार्मण त० तथा ए० तैजस् स० सर्वत्र वी वीर्य अ० है ण० नहीं है स० सर्वत्र वीय ॥१०॥

पाणा । अदुवा संति महालया ॥ सरिसतेहिंति वेरंति । असरिसंतीय णो वदे ॥ ६ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । ववहारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं । अणायार तु जाणए ॥ ७ ॥ अहाकम्माणि भुजंति । अण्णमण्णे सकम्मुणा ॥ उवलित्त ति जाणिज्जा । अणुवलित्तेति वा पुणो ॥ ८ ॥ ए० । व० । ए० । अ० ॥ ९ ॥ जमिदं उरालमाहार । कम्मग च तहेवय ॥ सव्वत्थ वीरियं अत्थि । णत्थि सव्वत्थ वीरियं

वैर होता है, या एक सरिसा वैर नहीं होता है, ऐसा एकान्त वचन बोले नहीं ॥ ६ ॥ इन दोनों एकान्त स्थानक से व्यवहार नहीं होता है और इन दोनों स्थानक से अनाचार होता है ॥ ७ ॥ जो कोई साधु आधाकर्मी आहार भोगवे हो उन को पाप से लेपाये हुवे भी कहना नहीं; वैसे ही पाप से नहीं लेपाये हुवे भी कहना नहीं क्यों कि आधाकर्मी आहार को भी कारणसे या अज्ञानपने भोगवने से कर्म नहीं बंधाते हैं, और शुद्ध आहार को भी गृद्धपने भोगनेसे कर्म बंधाते हैं इसलिये ऐसा एकान्तवचन बोले नहीं ॥८॥ इन दोनों स्थानक से व्यवहार नहीं होता है वैसेही इन दोनों स्थानकों से अनाचार माना जाता है ॥ ९ ॥

पूरसए ॥ ११ ॥ ण० नहीं है लो० लोक अ० अलोक ए० ऐसी स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है लो० लोक अ० अलोक ए० ऐसी स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ १२ ॥ ण० नहीं है जी० जीव अ० अजीव ण० नहीं स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है जी० जीव अ० अजीव ए० ऐसी स० सज्ञा नि० धार

॥ १० ॥ ए० । व० । ए० । अणा० ॥ ११ ॥ णत्थि लोए अलोएवा । णेव सन्न निवेसए ॥ अत्थि लोए अलोएवा । एवं सन्न निवेसए ॥ १२ ॥ णत्थि जीवा अजीवा वा । णेव सन्न निवेसए ॥ अत्थि जीवा अजीवा वा । एवं सन्न नि

अन्य दर्शनी शास्त्री बोलने का अनाचार कहते हैं उदारिक, वैक्रेय, आहारिक, तैजस और कार्माण इन पांचो शरीर को एक ही मानना नहीं अथवा भिन्न भी मानना नहीं और भी सर्व पदार्थ में अन्य पदार्थ का वीर्य है अथवा वीर्य नहीं है ऐसा भी बोले नहीं ॥ १० ॥ ऐसे दोनों स्थानक से व्यवहार नहीं होता है और इस में अनाचार होता है ॥ ११ ॥ अब सत्र शून्यवादी के मत का निराकरण करते हैं धर्मास्ति काय रूप लोक व आकाशास्ति काय रूप अलोक नहीं है ऐसा बोलना नहीं, परंतु धर्मास्तिकाय रूप लोक व आकाशास्ति काय रूप अलोक है एसी सज्ञा करे ॥ १२ ॥ उपयोग लक्षण वाला सांसारिक व मुक्ति गत जीव नहीं है, वैसे ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गलात्मक अजीव भी नहीं हैं, एसी

नहीं करे ॥ १३ ॥ ण० नहीं है ध० धर्म अ०, अधर्म ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है ध० धर्म अ० अधर्म स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १४ ॥ ण० नहीं है बं० बंध मो० मोक्ष ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है बं० बंध मो० मोक्ष ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १५ ॥ ण० नहीं है पु० पुन्य पा० पाप ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० हैं पु० पुन्य पा० पाप ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १६ ॥ ण० नहीं है आ० आश्रव स० संवर ण० नहीं स० संज्ञा नि

वेसए ॥ १३ ॥ णत्थि धम्मे अधम्मे वा । णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि धम्मे अधम्मे वा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १४ ॥ णत्थि बंधेव मोक्खे वा । णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि बंधेव मोक्खेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १५ ॥ णत्थि पुण्णेव पावेवा । णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पुण्णेव पावेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १६ ॥ नत्थि आसवे

संज्ञा करना नहीं, परंतु जीव व अजीव है ऐसा कहना ॥ १३ ॥ श्रुत चारित्र रूप धर्म व मिथ्यात्वादि रूप अधर्म नहीं है ऐसी संज्ञा करना नहीं, परंतु धर्म अधर्म है ऐसा कहना ॥ १४ ॥ प्रकृत्यादि बंध व मोक्ष नहीं है ऐसा न करे परंतु बंध व मोक्ष है ऐसा करे ॥ १५ ॥ शुभ प्रकृति लक्षण वाला पुण्य व अशुभ प्रकृति वाला पाप नहीं है ऐसा न करे; परंतु पुण्य पाप है ऐसा करे ॥ १६ ॥ प्राणातिपातादि रूप कर्म ग्रहण करने का कारण भूत आश्रव तथा आते कर्मों को रोकने वाला संवर नहीं है ऐसा नहीं करे

संवरेवा । णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे संवरेवा । एव सन्नं निवेसए ॥ १७॥
णत्थि वेयणा निज्जरावा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा । एवं सन्न
निवेसए ॥ १८ ॥ णात्थि किरिया अकिरियावा । णेव सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कि
रिया अकिरियावा । एव सन्न निवेसए ॥ १९ ॥ णत्थि कोहेव माणवा । णेव सन्न
निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा । एव सन्नं निवेसए ॥ २० ॥ णत्थि मायाव

धारण करे अ० है आ० आश्रव सं० संवर स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १७ ॥ ण नहीं है वे० वेदना नि० निर्जरा ए० नहीं स० संज्ञा नि धारण करे अ० है वे० वेदना णि० निर्जरा ए० ऐसी स संज्ञा नि धारण करे ॥ १८ ॥ ण० नहीं है कि० क्रिया अ० अक्रिया ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है कि० क्रिया अ० अक्रिया स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १९ ॥ ण नहीं है को० क्रोध मा मान ण नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ है को० क्रोध मा० मान स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २१ ण० नहीं है मा० माया लो० लोभ ण नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है

नहीं परंतु आश्रव व संवर है ऐसा कहे ॥ १७ ॥ कर्म का अनुभव रूप वेदना तथा उन की निर्जरा नहीं है ऐसा कहे नहीं परंतु वेदना व निर्जरा है ऐसी संज्ञा करे॥ १८॥ क्रिया अक्रिया नहीं है ऐसा न करे परंतु क्रिया अक्रिया है ऐसा करे ॥ १९ ॥ क्रोध मान माया और लोभ नहीं है ऐसा कहे नहीं परंतु क्रोध मान, माया और लोभ है ऐसा कहे ॥ २० २१ ॥ शुभ कलत्रादिकमें राग व अन्यमें द्वेष नहीं है ऐसाभी कहे नहीं

करे ॥ १३ ॥ ण नहीं है ध० धर्म अ० अधर्म ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है ध० धर्म अ० अधर्म स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १४ ॥ ण० नहीं है बं० बंध मो० मोक्ष ण० नहीं स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है बं० बंध मो० मोक्ष ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १५ ॥ ण० नहीं है पु० पुन्य पा० पाप ण० नहीं ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है पु० पुन्य पा० पाप ए० ऐसी स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ १६ ॥ ण० नहीं है आ० आस्रव स० संवर ण० नहीं स० संज्ञा नि०

वेसए ॥ १३ ॥ णत्थि धम्मे अधम्मे वा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि धम्मे अधम्मे वा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १४ ॥ णत्थि बंधेव मोक्खे वा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि बंधेव मोक्खेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १५ ॥ णत्थि पुण्णेव पावेवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पुण्णेव पावेवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ १६ ॥ नत्थि आसवे

संज्ञा करना नहीं परंतु जीव व अजीव है ऐसा कहना ॥ १३ ॥ श्रुत चारित्र रूप धर्म व मिथ्यात्वादि रूप अधर्म नहीं है ऐसी संज्ञा करना नहीं, परंतु धर्म अधर्म है ऐसा कहना ॥ १४ ॥ प्रकृत्यादि बंध व मोक्ष नहीं है ऐसा न करे परंतु बंध व मोक्ष है ऐसा करे ॥ १५ ॥ शुभ प्रकृति लक्षण वाला पुन्य व अशुभ प्रकृति वाला पाप नहीं है ऐसा न करे, परंतु पुन्य पाप है ऐसा करे ॥ १६ ॥ प्राणातिपातादि बंध कर्म ग्रहण करने का कारण मूल आस्रव तथा आते कर्मों को रोकने वाला संवर नहीं है ऐसा नहीं करे

सिद्धि अ० असिद्धि ण० नहीं स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है। सि० सिद्धि अ० असिद्धि स० सज्ञा नि० धारण कर ॥२५॥ ण० नहीं है सि० सिद्धि नि० निज स्थान ण० नहीं स० सज्ञा नि धारण करे अ० है सि सिद्धि णि० निज स्थान स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ २६ ॥ ण० नहीं है सा० साधु अ असाधु ण० नहीं स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है सा साधु अ० असाधु स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ २७ ॥ ण० नहीं है क० कल्याण पा० पाप ण० नहीं स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है क० कल्याण पा० पाप स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ २८ ॥ क० कल्याण में पा० पाप में व० व्यवहार ण० नहीं वि० है जे० जो

सन्न निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी असिद्धीवा । एवं सन्न निवेसए ॥ २५ ॥ णत्थि सिद्धी नियठाण । णेव सन्न निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी नियठाणं । एव सन्न निवेसए ॥ २६ ॥ णत्थि साहू असाहूवा । णेवं सन्न निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहूवा । एव सन्नं निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा । णेव सन्न निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा । एव सन्नं निवेसए ॥ २८ ॥ कल्लाणे पावए वावि । ववहारो ण

॥ २७-२८ ॥ अब एकान्त मार्ग का दूषण बतलाते हैं यह पुरुष एकान्त कल्याणवन्त है या एकान्त पापकारी है ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता है क्यों कि संसार में एकान्त कुच्छ भी नहीं है एकान्त पक्ष का आश्रय लेने से जो पाप कर्म बंधते हैं उनको शाक्यादि साधु ब्राह्मण नहीं जान सकते हैं ॥ २९ ॥ इस

लाइवा । णेवं सन्न निवेसए ॥ अत्थि मायाव लोहेवा । एवं सन्न निवेसए ॥ २१ ॥ णत्थि पेजव दोसेवा । णेव सन्न निवेसए ॥ अत्थि पेजेव दोसेवा । एव सन्न निवेसए ॥ २२ ॥ णत्थि चाउरते ससारे । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते ससारे । एवं सन्न निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा । णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा । एवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥ णत्थि सिद्धी असिद्धीवा । णेव

मा० माया लो० लोभ स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ २१ ॥ ण० नहीं है पे० राग दो० द्वेष ण० नहीं स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है पे० राग दो० द्वेष स० संज्ञा नि० धारण करे ॥ २२ ॥ ण० नहीं है चा० चतुर्गतिक भ० संसार ण० नहीं स० सज्ञा नि० धारण करे अ० है चा० चतुर्गति सं० ससार स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ २३ ॥ ण० नहीं है दे० देव दे० देवी ण० नहीं ए० एसी स० संज्ञा नि० धारण करे अ० है दे० देव दे० देवी ए० ऐसी स० सज्ञा नि० धारण करे ॥ २४ ॥ ण० नहीं है सि०

परंतु रागद्वेष है ऐसी सज्ञा करे ॥ २२ ॥ चतुर्गतिक संसार नहीं है ऐसा न करे परंतु चतुर्गतिक ससार है ऐसा करे ॥ २३ ॥ देव, देवी सिद्धि और असिद्धि नहीं है ऐसा न करे परंतु देव, देवी, सिद्धि, असिद्धि है ऐसा करे ॥ २४ २५ ॥ सिद्धि का निजस्थान नहीं है ऐसा न करे परंतु निजस्थान है ऐसा करे ॥२६॥ [illegible]

म० है प० नहीं है पु० फिर प० नहीं वि० वाले मे०) पण्डित सं० शान्ति म० मार्ग को बु० करें ॥ १२ ॥
इ० इन ठा० स्थानों से जि० जिन से दि० उपदेशाये सं० संयति धा० धारण करे अ० आत्मा को मा०
मोक्ष मास तक प० मवर्ते त्ति० ऐसा बे० कहता है ॥ ११ ॥ * * *

जं मेहावी । संति मग्गं च बुहए ॥ ३२ ॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं । जिणदिट्ठेहिं संजए ॥
धारयंतेउ अप्पाणं । आमोक्खाए परिव्वएज्जासित्ति बेमि ॥ ३३ ॥ इति अणायार णाम
एगवीसममज्झयणं सम्मत्तं ॥ २१ ॥ * * *

ऐसा कहे ॥ ३१ ॥ पूर्वोक्त जिनोपदिष्ट स्थानों में संयति साधु जहां लग मोक्ष होवे वहां लग आत्मा को
रखे. ऐसा मैं श्री तीर्थंकर देव के कथनानुसार कहता हूं यह अनाचारश्रुत नामक इक्कीसवा अध्ययन पूर्ण
हुवा ॥ ३३ ॥ इस में आचार की मरूपणा व अनाचार का परिहार कहा ऐसा त्याग आर्द्रकुमार जैसे
महाभाग्यवान पुरुष से ही किया जासकता है इसलिये आर्द्रकुमार का गोशाला की साथ जो वादवि
वाद हुवा सो बतलाते हैं ॥ २१ ॥ *

वे० वैर स० व्रत को न० नहीं जा० जानते हैं स० श्रमण बा० बाल पण्डित ॥ २९ ॥ अ० सर्व अ० अक्षय स० सर्व दु० दुःखी पु० फिर व० वध योग्य पा० प्राणी न० नहीं व० वध्य वा० वचन न० नहीं नी० नीकाले ॥ ३ ॥ दी० दिखता है स० समाचारी भि० भिक्षा वृत्ति से सा० साधु जी जीवन वाला मि० मिथ्या जी० जीवता है दि० दृष्टि न नहीं धा धारण करे ॥ ३१ ॥ द दक्षिणा प० प्राप्त

विजइ ॥ ज वेर तं न जाणति । समणा बालपडिया ॥ २९ ॥ असेस अक्खयवात्ति । सव्वदुक्खेतित्वा पुणो ॥ वज्झा पाणा न वज्झति । इति वाय न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसति समियाचारा । भिक्खुणा साहुजीविणो ॥ एए मिच्छाव जीवति । इति दिट्ठिं न धारए ॥ ३१ ॥ दक्खिणाए पडिलभो । अत्थिवा णत्थिवा पुणा ॥ ण वियागरे-

जगत में समस्त वस्तु शाश्वत है अथवा सर्व जगत् दुःखात्मक है ऐसा बोले नहीं अमुक प्राणी वध योग्य है और अमुक पुरुष अवध्य है ऐसी भाषा बोले नहीं ॥ ३ ॥ इस जगत में कितनेक चारित्रिय साधुओं सदाचार पालने वाले हैं; और भिक्षा वृत्ति से ही आजीविका करते हैं ऐसे साधु को देखकर ये साधुओं मिथ्यात्व से उपजीविका करने वाले हैं ऐसी दृष्टि रखे नहीं ॥ ३१ ॥ गृहस्थ की दान देने की प्रवृत्ति देखकर साधु को उन से पुण्य या दोष कुच्छ भी कहना नहीं, परंतु मोक्ष मार्ग की वृद्धि करे

देवलोक में गया और वहां से यहां आर्द्रकुमार पने उत्पन्न हुआ हूं अब मुझे प्रव्रज्या का स्वीकार करना उचित है ऐसा विचारकर आर्यदेश में आकर स्वतः दीक्षा अंगीकार कर महावीर स्वामी के दर्शन को जाते थे मार्ग में गोशालक आदि मतान्तरियों से जो विवाद हुआ सो आगे बताते हैं

पु० पहिले क० किया हुवा अ० आर्द्रकुमार इ० यह सु० सुन मे० एकान्तचारी स० श्रमण पु० पहिले आ० थे से० वह भि० साधुको उ० इकठेकर अ० अनेक आ० कहते हैं पु०पृथक वि० विस्तार से ॥ १ ॥ सा० आजीविका प० स्थापन की अ० अस्थिरने स० सभा में ग० समुदाय भि०

पुराकडं अद्द इमं सुणेह। मेगतचारी समणे पुरासी ॥ से भिक्खुणो उवणेत्ता अणगे। आइक्खतिण्हिं पुढो वित्थरेण ॥ १ ॥ साजीविया पट्ठविता थिरेण । सभागओ

आर्द्रकुमार को जाते देख गोशालाने उसे रोककर कहा भो आर्द्रकुमार! तेरे तीर्थंकरने पहिले जो २ किया है, सो मैं कहता हूं उसे तू सुन श्री श्रमण भगवंत महावीर पहिले एकल विहारी थे, और अनेक प्रकार के उग्र तप करते थे अब तपादि आचरण नहीं करसकने से मेरा परित्याग कर अनेक शिष्यों को एकत्रित कर तेरे जैसे मुग्ध मनों को ठगने के लिये पृथक् २ धर्म विस्तार पूर्वक कहते हैं ॥१॥ अहो आर्द्रकुमार! तेरे गुरुने उपदेश देनेके बहानेसे आजीविका करनी शुरू की है क्यों कि एकाकी विचर नेसे लोक पराभव करते हैं, ऐसा मानकर बहुत परिवार किया; और भी तेरा गुरु अस्थिर है, अर्थात

आर्द्रकीयाख्यं द्वाविंशतितम मध्ययनम् ।

आर्द्रकुमार की कथा—ऐसा सुना जाता है कि आर्द्रकपुर नगरके आर्द्रक राजा के पुत्र आर्द्रकुमार थे. एकदा आर्द्रकराजा राजग्रही नगरी में श्रेणिक राजा की पास कुच्छ उत्तम वस्तु किसी के साथ भेजने लगे, तब आर्द्रकुमारने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार की साथ स्नेह करने के लिये उसी पुरुष की साथ बहुमूल्य पदार्थ भेजे उस पुरुषने राजगृही नगरी में जाकर श्रेणिक राजा को तथा अभयकुमार को अलग २ वस्तु दे दी जब अभयकुमारने आर्द्रकुमार का वृतान्त पूछा तब उस ने आर्द्रकुमार क गुणानुवाद के साथ सब हकीकत कह सुनाइ उनकी बातचीतसे मालूम हुवा कि यह आर्द्रकुमार भव्य प्राणी दीखते हैं इसलिये उनको धर्मका स्वरूप समझाने के लिये उसी पुरुष की साथ पीछे धर्मोपकरण मुखपत्ति आदि भेजे उन उपकरणों को लेकर आर्द्रकुमार को दिये आर्द्रकुमार उसे लेकर आरिसा भुवन में गये और धर्म के उपकरण उनोंने देखे देखकर आश्चर्य हुवा मुखवस्त्रिका को शरीर के सब विभागो में बांधी परंतु किसी स्थानपे शोभित हुइ नहीं जब उसे मुखपर बांधी और आरिसा में देखते विचार हुवा कि ऐसा रूप मैंने पूर्वभव में देखा है ऐसा विचार करते उन को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा और उस से उनों ने अपना पूर्वभव जाना कि मैं वसंतपुर नामक नगर का गृहस्थ था और मैंने मेरी स्त्री की साथ धर्मघोषअनगार की पास दीक्षा लीथी मेरी स्त्री को देख मुझे राग उत्पन्न हुवा उस की आलोचना किये बिना संथारा से मृत्यु पाकर

नियपु पहिले इ इस में अ० अनागत ए० एकान्त प० धारण करते हैं ॥ १ ॥ स० जानकर लो० लोक को त० त्रस था स्थावर का खे० क्षेम करने वाला स० श्रमण मा० ब्राह्मण मा० कहता हुआ स० सहस्रमध्यमें ए० एकान्त सा० साधता है त इस लिये ॥ ४ ॥ ध० धर्म क० कहते हुवे त उनको प० नहीं

एगतमेवं पडिसधयाति ॥ ३ ॥ समिच्च लोगं तसथावराणं। खेमकरे समणे माहणेवा॥

आइक्खमाणो वि सहस्समज्झे । एगतय सारयति तहच्चे ॥ ४ ॥ धम्म कहं तस्सओ

ही ऐसा करना था परन्तु धूप और छाया जैसा दोनों मार्ग का आचरण परस्पर भिन्नता नहीं है यदि मौन में ही धर्म है तो उपदेश क्यों देते हैं ? यदि धर्मदेशना में ही धर्म है तो पहिले मौन व्रत क्यों अंगीकार किया था ? इसलिये तेरा गुरु विरुद्धाचारी दीसता है ऐसा गोशाला का वचन सुनकर आर्द्रकुमार उत्तर देते हैं श्री महावीर देवने पहिले जो मौनव्रत और एकचर्या आदरी थी सो घनघातिक कर्मों का क्षय के लिये थी, और अभी जो धर्मदेशना देते हैं सो अघातिया कर्मों का क्षय करने के लिये है भूत भविष्य और वर्तमान काल में रागद्वेष का अभाव से एकान्तपना ही है इसलिये पहिले के और पीछे के आचार में कुच्छ भी भिन्नता नहीं है ॥ ३ ॥ त्रस स्थावर प्राणियों के क्षेम के करने वाले श्रमण माहण एसा श्री महावीर देव लोक को सम्यक्प्रकार से जानकर हजारों मनुष्यों के बीच में रागद्वेष रहित धर्म कहते हुवे पहिले जैसे एकान्तपना साधते हैं अर्थात् उनकी पूर्व की अवस्था में कुच्छ भी फेर नहीं है बहुत लोकों का परिवार होने पर रागद्वेष के अभाव से एकाकी है ॥ ४ ॥ रागद्वेष बिना धर्म कहने

साधु मध्य में आच्छादता हुवा ब० बहु ज० मनुष्य अ० रूप न० नहीं स० साधता है भ० पीछे ग पु० पहिले ॥ २ ॥ ए० एकान्त अथवा इ० इस में दो० दोष व वर्ग म० मानते को न नहीं स० योग्य है ज० इस

गणओ भिक्खुमज्झे ॥ आइक्खमाणो बहुजन्नमत्थं न संधयाति अवरेण पुव्वं ॥ २ ॥
एमतमव अदुवा वि इण्हिं । दोवण्णमन्न न समेति जम्हा ॥ पुव्विं च इण्हिं च अणागतवा ।

प्रथम मेरी साथ भन्त, प्रान्त आहारी वन शून्य देवकुलादिक स्थानकों में रहता था अब ऐसा उग्र आचार पालने का असमर्थ होने से मेरा संसर्ग छोडकर बहुत शिष्योंका समुह कर के बैठा हुवा है और भी बहुत देव मनुष्य की परिषदामें साधु समुदायके बीच बैठा हुवा अनेक मनुष्यों को हितकारक धर्म की प्ररूपणा करता है परंतु उनका पूर्वापर का आचार नहीं मिलता है यदि सिंहासन, भामंडल, अशोक वृक्षादि मोक्ष के अंग होवे तो पहिले भी उग्र क्रिया की वह तो निष्फल थी यदि वह क्रिया निर्जरा के कारणभूत थी तो अभी की क्रिया पारम्भ रूप है और भी पहिले मौन अच्छा जानकर अंगीकार किया था तो अब धर्म देशना देने का क्या काम है? इसलिये उनका पहिलेका और अभीका आचार मिलता नहीं है ॥ २ ॥ हे आर्द्रकुमार ! एकान्त विचरना ही अच्छा है ऐसा मान कर यदि वरे गुप्ते आचरण किया था तो सदैव उस को ही अंगीकार करना था अथवा साधु का परिवार रखने में लाभ है तो पहिले

ना वि० विचरते को अ० इन्हारे ध० धर्ममें त० तपस्वी को ण० नहीं अ० लगता है पा पाप ॥ ७ ॥ शीतोदक स० तथा बी बीजकाय का आ० आधाकर्मी आहार त० तथा इ स्त्री ए० इनको आ० जानते हुवे प० से वन वाले अ० गृहस्थ अ० असाधु भ० होता है ॥ ८ ॥ सि० सचित्त सी० शीतोदक इ० स्त्री प० सेवनेवा

हायकम्म तह इत्थियाओ ॥ एगतचारिस्सिह अम्हधम्मे । तवस्सिणो णाभिसमेति पाव ॥ ७ ॥ सातोदगवा तह बीयकायं । आहायकम्मं तह इत्थियाओ॥ एयाइं जाण पडिसवमाणा । अगारिणो अस्समणा भवति ॥ ८ ॥ सियाय बीओदग इत्थियाओ ।

गोशाला कहता है कि भो आर्द्रकुमार ! तुम ने कहा कि अन्य के हित को उपदेश कर पापि धर्म कहने में माने तो दोष नहीं लगता है, और परिवार का भी दोष नहीं लगता है तो अब मैं कहता हूं सो सुनो हमारे सिद्धान्त में जो कहा है उस में भी दोष नहीं हैं वे कहते हैं कि सचित्त पानी का सेवन करो, बीजकाया का उपभोग करो, आधाकर्मी आहार ग्रहण करो, स्त्रियों को भोगवो, अपना व परका उप कार का कारण भूत तथा धर्म का आधार भूत शरीर के लिये जो कुच्छ पाप कर्म किया जावे तो उस में दोष नहीं है और भी हमारा धर्म में प्रवर्तने वाले किसी तपस्वी को पाप नहीं लगता है ॥ ७ ॥ अब आर्द्रकुमार कहते हैं कि अहो गोशालक ! सचित्त पानी पीना, बीज काया का भक्षण करना आधा कर्मी आहारका लेना, और स्त्रियादिक का प्रसंग करना, इन सब बातोंको सेवने वाला गृहस्थ कहा जाता है

हे दो० दोष सं क्षमावन्त दं० दमनेन्द्रिय जि जितेन्द्रिय को भा० भाषा क दो० दोषका वि० वर्जने का गु गुणको भा० भाषा के णि० सवते को ॥ ५ ॥ म० महाव्रत प० पंच अ० अनुव्रत त० तथा पं० पच आश्र व सं० संवर वि विरति का सा० सपूर्ण प० मम स० कर्म क्षय करन वाले स० श्रमण त्ति० एसा बे० कहता हूं ॥ ६ ॥ सी० शीतोदक से० सेवा बी० बीज काय आ० आधा कर्मी आहार इ० स्त्री ए० एका

णत्थि दोसा । खतस्स दतस्स जितिंदियस्स ॥ भासाय दोसय विवज्जगस्स । गुणेय भासाय णिसेवगस्स ॥५॥ महव्वए पंचअणुव्वए य । तहेव पंचासव संवरय ॥ विरतिं इह साम णियंमिपन्ने । लवावसक्की समणे त्ति बेमि ॥ ६ ॥ सीओदग सेवउ बीयकाय । आ

वाले को किसी प्रकार का दोष नहीं है, ऐसा भाव बताते हैं समस्त लोक का उद्धार करने के लिये भगवन्त देशना करते हैं इस से उन को किसी प्रकार का दोष नहीं है एसे क्षमावन्त, दमितेन्द्रिय, भाषा के दोषों को टालने वाले और भाषा के गुणों का सेवन करने वाले भगवन्त बोलते हुवे भी मौनव्रती है ॥ ५ ॥ महावीर भगवन्त कैसा धर्म प्ररूपते हैं सो बताते हैं श्री महावीर देव साधु के पंच महाव्रत तथा श्रावक के पंच अनुव्रत, पंच आश्रव तथा पंच संवर का उपदेश करते हैं फीर उन को विरति का उपदेश करते हैं इस तरह संपूर्ण संयम में मूलगुण व उत्तरगुण को करने वाले व कर्म के नाश करन वाले महाव्रत साधु श्रमण कहे जाते हैं ऐसा मैं कहता हूं ॥ ६ ॥ आर्द्रकुमार का ऐसा वचन सुनकर फीर

पा० अन्यदर्शनी पु० पृथक् कि० कीर्ति करते स० स्वयं २ दि० दर्शनको क० करते हैं पा० प्रगटे ॥ ११ ॥ त० ये अ० अन्यान्य की वि० निन्दा करते अ० कहते हैं स० श्रमण मा० ब्राह्मण स० स्वय अ० है ण० अन्य क ण० नहीं है ग० निन्दा करते हैं दि० दर्शन को ण० नहीं ग० निन्दा करते हैं कि० किंचित् ॥ १२ ॥ ण० नहीं कि० किंचित् रू० रूप से अ० प्रगट करते हैं स० स्वदृष्टि म० मार्ग का क० करते हैं

करेंति पाउ ॥ ११ ॥ ते अन्नमन्नस्स विगरहमाणा । अक्खातिओ समणा माहणाय ॥
सताय अत्थी असताय णत्थी । गरहामो दिट्ठिं ण गरहामो किंचि ॥ १२ ॥ ण किंचि
रूवेण भिधारयामो । सदिट्ठिमग्गं तु करोमि पाउ ॥ मग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं ।

अनाचार वचन बोलता है अहो आर्द्रकुमार ! ऐसे वचन बोलते हुवे तुम सब अन्य दर्शनी की निन्दा करते हो, क्यों कि इस जगत में सब दर्शनियों बीज उदक का सेवन करते हुवे ससार का अन्त करने के लिये प्रवृत्त हैं; सो उन का मानना नहीं ऐसा उन का वचन सुन कर आर्द्रकुमार बोले अहो गोशालक ! सब दर्शनी अपने २ दर्शन का प्रगट करते हैं, वैसे ही मैं मेरा दर्शनकी प्रभावना करता हूं कि सचित्त पानी और बीजादिक का परिभोग से मात्र कर्म बंध होता है, परंतु संसार का उच्छेद नहीं होता हैं इस में निन्दा या उत्कर्ष किस बात का है ॥ ११ ॥ समस्त श्रमण ब्राह्मण एक दूसरेके धर्म को निंदते हुवे अपने पक्ष का समर्थन करते हैं, और कहते हैं कि हमारा दर्शन अंगीकार करने से पुण्य है, और अन्य का दर्शन अंगीकार

ले स० श्रमण भ होते हैं अ०गृहस्थ स०श्रमण भ०होने से० सेवते हैं से० वे स० तैसे ॥ ९ ॥ जे०जो बी० बीज च० शीतोदक भो० भोगवने वाले भि० साधु भि० भिक्षा वि० फीरते हैं जी० जीवितव्यार्थी त०व णा० ज्ञाति स संयोग का प० छोडकर का० काया के उ० उपयोगी ण० नहीं अ० अन्तकरनेवाले भ होते हैं ॥ १० ॥ इ० इस व० वचन को तु० तुम पा० प्रगट करते पा० अन्यदर्शनी को ग० निंदता है स० सब को

पडिसेवमाणा समणा भवतु ॥ अगारिणोवि समणा भवतु । सेवातिउ तेवि तहप्पगार ॥ ९ ॥ ज यावि बीओदगभोत्ति भिक्खू । भिक्ख विहजायति जीवियट्ठी ॥ ते णाति संजोगमविप्पहाय । कायोवगाणतकरा भवति ॥ १० ॥ इमं वयत तुम पा उ कुव्व । पावाइणो गरिहासि सव्वएव ॥ पावाइणो पुढो किट्टयता । सयसय दिट्ठि

परंतु साधु नहीं कहा जाता है ॥ ८ ॥ और भी हे गोशालक ! यदि सचित्त पानी, बीजकाय व स्त्री आदि सेवनेवाले साधु होवे तो गृहस्थ भी साधु होना चाहिये, क्योंकि गृहस्थ भी ऐसा परीषह सहन करते हैं ॥ ९ ॥ जो भिक्षुक होने पर बीज उदकादिक का सेवन करे और, आजीविका चलाने के लिये भिक्षा मांगवे वे ज्ञाति आदि का संयोग छोडकर षट् काया के मर्दन करने वाले और अपनी काया को रखने वाले अन्त संसारी बनेंगे ॥ १० ॥ अब गोशालक अन्य तीर्थियों को सहायकारी बना कर

वा० वाग द० दस व० हैं ब० बहुत म० मनुष्य ऊ० हीन अ० अधिक ल० सर्वी अ० अमवादी ॥१५॥ मे० मेधावि सि० शिक्षापाये हुवे बु० बुद्धिमान सु० सूत्र अ० अर्थ नि०निश्चय करने वाले पु०पूछता हुवे अ० साधु अ० अन्य इ० एसी स० शंका करता हुआ ण० नहीं उ० जाता है त० तहां ॥ १६ ॥ णो० नहीं का० काम कृत्य ण नहीं बा० बाल कृत्य रा राजाभियोग से कु० कुतः से भ० भय वि० कोइ

ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥ मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता । सुत्तेहिं अ त्थेहिंय णिच्छयन्ना ॥ पुच्छिसुमाणे अणगार अन्ने । इति सकमाणो ण उवेति तत्थ ॥ १६ ॥ णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा । रायाभिओगेण कुओ भएणं ॥ विया

अहो आर्द्रकुमार ! तेरा तीर्थंकर अन्य श्रमण ब्राह्मण से डरता हुआ धर्मशालादि शून्य गृह में अथवा उद्यानादि में नहीं रहता है क्योंकि वे श्रमण ब्राह्मण शास्त्र के जान हैं, और उन में से कोई मात्यादिक गुणों से अधिक है अथवा कोई हीन है, उन से पराभव हो जाय तो मानभ्रान होवे इसलिये एकान्त स्थान छोडकर देवतादिक की परिषदा में बैठता है और भी वे लोगों तर्क के बोलनेवाले अथवा उन की पास अन्य कोई वादी उन के सन्मुख कुछ भी नहीं बोलसकते हैं ऐसे रहे हुवे हैं ॥ १५ ॥ कोई सूत्र अर्थ के निश्चय करने वाले, प्रज्ञाशक्ति में सामर्थ्यवन्त, तथा आचार्यादिक की पास से सीखे हुवे अनगार मुझ पूछेंगे तो मैं उत्तर नहीं देसकूंगा, ऐसी शंका करने से तेरा गुरु पूर्वोक्त स्थानों में निवास

पा० मगा न० मार्ग इ० यह कि० कहाहुवा मा० आर्य अ० अनुत्तर स० सत्पुरुषोंने म० सरल ॥ ११ ॥
उ० ऊर्ध्व अ० नीचा ति० तिर्यक् दि० दिशामें त० त्रस जे जो था० स्थावर पा० प्राणी भू० प्राणघात
की अ० शंका से दु० दुर्गंछा करते णो० नहीं ग० निन्दा करते हैं वु० संयति कि० किंचित् लो० लोक में
॥ १४ ॥ आ० शून्यागार में आ० उद्यान में स० श्रमण से भी० डरा हुवा प० नहीं उ० वास करता है

अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू ॥ १३ ॥ उड्ढ अहेयं तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर
जय पाणा ॥ भूयाहि संकाभिदुगुंछमाणा । णो गरहति वुसिमं किंचि लोए ॥ १४ ॥
आगनगारे आरामगारे । समणेउ भीते ण उवेति वासं । दक्खाहु संते बहवे मणुस्सा ।

करने मे पुण्य नहीं है; ऐसे सब तीर्थिकों परस्पर झगडते हैं; और हम मात्र यथावस्थित तत्त्वके कथन करने
वाले हैं हम एकान्त वादी को निंदते नहीं है परंतु सत्यके कथन करने वाले हैं और सत्य कहने में किसी बातका
प्रमाद नहीं है ॥ १२ ॥ हम किसीके दोषों द्वेष बुद्धि से नहीं प्रगट करते हैं, परंतु हम हमारा मार्ग कहते हैं ऐसा अनुत्तर
व सरल मार्ग सत्पुरुषों का कहा हुवा है ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो कोई त्रस स्थावर जीव
रहे हुवे हैं उनकी घात से निवर्तने वाले संयमी पुरुषों किसी वस्तु की निंदा नहीं करते हैं परंतु यथातथ्य वस्तु का
स्वरूप कहते हैं यदि ऐसा कहने निंदा होती होवे तो अग्नि उष्ण है उदक शीतल है इत्यादिक बातों
भी कहना नहीं ॥ १४ ॥ अब गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक [illegible] को कहते हैं कि

वा० वास द० दस स० हैं व० बहुत म० मनुष्य ऊ० हीन अ० अधिक ल० तर्की म० मन्नादी ॥१८॥ मे० मेधावि सि० शिक्षापाये हुवे बु बुद्धिमान सू० सूत्र अ० अर्थ वि०निश्चय करने वाले पु पूछते हुवे अ० साधु अ० अन्य इ० एसी स० धका करता हुआ ण० नहीं उ० जाता है त० तहां ॥ १९ ॥ णा० नहीं का० काम कृत्य ण० नहीं बा० बाल कृत्य रा राजाभियोग से कु० कुरों से भ० भय वि० कहे

ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥ मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता । सुत्तेहिं अ त्थेहिंय णिच्छयन्ना ॥ पुच्छिसुमाणे अणगार अन्ने । इति सकमाणो ण उवेति तत्थ ॥ १६ ॥ णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा । रायाभिओगेण कुओ भएणं ॥ विया-

अहो आर्द्रकुमार ! तेरा तीर्थंकर अन्य श्रमण ब्राह्मण से डरता हुआ धर्मशालादि शून्य गृह में अथवा उद्यानादि में नहीं रहता है क्योंकि वे श्रमण ब्राह्मण शास्त्र के ज्ञान हैं, और उन में से कोई मात्यादिक गुणों से अधिक है अथवा कोई हीन है, उन से पराभव हो जाय तो मानभ्रंशन होवे इसलिये एकान्त स्थान छोडकर देवतादिक की परिषदा में बैठता है और भी वे लोगों तर्क क बोलनेवाले अथवा उन की पास अन्य कोई वादी उन के सन्मुख कुच्छ भी नहीं बोलसकते हैं ऐसे रहे हुवे हैं ॥ १८ ॥ कोई सूत्र अर्थ के निश्चय करने वाले, प्रश्नशक्ति में सामर्थ्यवन्त, तथा आचार्यादिक की पास से सीखे हुवे अनगार मुझ पूछेंगे तो मैं उत्तर नहीं देसकूंगा, एसी शंका करने से तेरा गुरु पूर्वोक्त स्थानों में निवास

पा० मग्ग म० मार्ग इ० यह कि० कराहुवा आ० आर्य अ० अनुत्तर स० सत्पुरुषोंने अं० सरल ॥ १३ ॥ उ० ऊर्ध्व अ० नीचा ति० तिर्यक् दि० दिशामें त० त्रस जे जो था० स्थावर पा० प्राणी भू० प्राणघात की सं० शंका से दु० दुर्गछा करते णा० नहीं ग० निन्दा करते हैं वु० संयति किं० किंचित् लो० लोक में ॥ १४ ॥ आ० शून्यागार में आ० उद्यान में स० श्रमण से भी० डरा हुवा ण० नहीं उ० वास करता है

अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू ॥ १३ ॥ उड्ढं अहेय तिरियं दिसासु । तसाय जे थावर जय पाणा ॥ भूयाहि सकाभिदुगुछमाणा । णो गरहाति वुसिमं किंचि लोए ॥ १४ ॥ आगतगारे आरामगार । समणेउ भीते ण उवेति वास । दक्खाहु सते वहवे मणुस्सा ।

करने मे पुण्य नहीं है; ऐसे सब तीर्थिकों परस्पर झगडते हैं; और हम मात्र यथावस्थित तत्त्वके कथन करने वाले हैं हम एकान्त वादी को निरत नहीं है परंतु सत्यके कथन करने वाले हैं और सत्य कहने में किसी बातका प्रमाद नहीं है ॥ १२ ॥ हम किसीके दोषों द्वेष बुद्धि से नहीं प्रगट करते हैं, परंतु हम हमारा मार्ग कहते हैं ऐसा अनुत्तर व सरल मार्ग सत्पुरुषों का कहा हुवा है ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो कोई त्रस स्थावर जीव रहे हुवे हैं उनकी घात से निवर्तने वाले संयमी पुरुषों किसी वस्तु की निंदा नहीं करते हैं, परन्तु यथातथ्य वस्तु का स्वरूप कहते हैं यदि ऐसा कहते निंदा होती होवे तो अग्नि उष्ण है उदक शीतल है इत्यादिक बातों भी कहना नहीं ॥ १४ ॥ अब गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक आर्द्रकुमार को कहते हैं कि

॥ २२ ॥ आ०आरम प० परिग्रह अ०नहीं छोड करके नि०बंधाये हुवे आ०आत्मदंडी उ०उनको से०वह उ लाभ च०कहा च०चारगतिका अ० अन्त नहीं करनेवाला दु०दुःख दाता॥२३॥ण०नहीं ए एकान्त ण०नहीं अ० आत्यन्तिक च० उदय म० कहते हैं वे०वे दो० दो गु०गुणोदय से०वे उ०लाभ सा सादि अनत प० भास

सत्ता । अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥ आरभगं चेव परिग्गहं च । अविउस्सिया णिस्सिय आयदंडा ॥ तेसिं च से उदए जं वयासी । चउरंतणंताय दुहायणेह ॥२३॥ णेगंत णच्चंतिय उदए । वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए सातिं मणंतपत्ते ।

लाभेक धन की गवेषणा करने वाले, और मैथुन में आसक्त होवें तथा भोजन के लिये इधर उधर परिभ्रमण करते हैं इसलिये हम उन को कामभोग में आसक्त, अनार्य तथा प्रेम रस में मूर्च्छित कहते हैं परन्तु भगवन्त ऐसे नहीं हैं ॥ २२ ॥ आरंभ परिग्रह का त्याग नहीं करने वाले और आत्मा को दंडने वाले वणिक लाभ के अर्थी हैं, ऐसा तू कहता है परन्तु वह लाभ उन को चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण कराने का कारण भूत, और दुःख का देने वाला है ॥ २३ ॥ हे गोशालक! उस को वह लाभ एकान्तिक (लाभ की इच्छा करते अलाभ होवे) व आत्यंतिक (सदा काल लाभ न होवे) नहीं है व्यापारी लोगों भी व्यापार में लाभ व हानि दोनों मानते हैं तो ऐसा लाभ से क्या फायदा भगवन्त का केवल ज्ञान की प्राप्तिरूप लाभ सादि अनंत है ऐसा लाभवाले श्री श्रमण भगवन्त अन्य जीवों की रक्षा करते हुवे

मार्थी म० श्रमण त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २० ॥ स० समरंभ करते हैं व० वणिक भू० जीवों का समुह प० परिग्रह म० ममत्त्वभाव वे० वे णा० ज्ञाति संयोग को अ० नहीं छोडकर आ० आत्मके हे० हेतु को प० करता है स० संग ॥ २१ ॥ वि० वित्तकी ग० गवेषणा करनेवाला मे० मैथुन में सं० आसक्त ते० वे भो० भाजनार्थ व० वणिक व० परिभ्रमण करते हैं क० इस का० काम में अ० आसक्त अ० अनार्य पे० प्रेमरस में गि० गृद्ध

वुच्चा । तस्सोवयट्ठी समणे त्ति बेमि ॥ २० ॥ समारभंते वणिया भूयगामं । परिग्गह चेव ममायमाणा ॥ ते णातिसजोगमविप्पहाय । आयस्स हेउ पगरंति संगं ॥ २१ ॥ विचेसिणो मेहुणसपगाढा । ते भोयणट्ठा वणिया वयंति ॥ वयंतु कामेसु अज्झोव-

वह नहीं पा सकती है क्यों कि सावद्यानुष्ठान रहित श्री महावीर भगवन्त नविन कर्म नहीं करते हैं परंतु पुरातन कर्म का क्षय करते हैं और दुर्मति का क्षय त्याग कर के अन्य को भी ऐसा उपदेश देते हैं कि दुर्मति का त्याग करने से मोक्ष प्राप्ति होती है ऐसे मोक्षके साधार्थी बन करके भगवान महावीर स्वामी विचरते हैं ऐसा मैं कहता हूं ॥ २० ॥ और भी वणिक जीवों के समुह का आरंभ और परिग्रह में ममत्व करता है वह वणिक ज्ञाति स्वजनादि का संयोग का त्याग किये विना ही अन्य की साथ संबंध करता है परंतु भगवन्त तो छ काय के रक्षपाल, निष्परिग्रही, ज्ञाति स्वजन का त्याग कर के अप्रति

॥ २२ ॥ आ० आरंभ प० परिग्रह अ नहीं छोड करके नि० बंधाये हुवे आ० आत्मदंडी उ० उनको से० वह उ० लाभ व० कहा च० चारगतिका अ० अन्त नहीं करनेवाला दु० दुःख दाता॥२३॥ ण० नहीं ए एकान्त ण० नहीं अ० आत्यन्तिक च० उदय व० कहते हैं ते० वे दो० दो गु० गुणोदय से० वे उ० लाभ सा० सादि अनंत प० प्राप्त

यन्ना । अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥ आरंभगं चेव परिग्गहं च । अविउस्सिया णिस्सिय आयदंडा ॥ तेसिं च से उदए जं वयासी । चउरंतणंताय दुहायणेह ॥२३॥ णेगंत णच्चंतिय उदए । वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए सातिम णंतपत्ते ।

वणिक धन की गवेषणा करने वाले, और मैथुन में आसक्त होते हैं तथा भोजन के लिये इधर उधर परिभ्रमण करते हैं इसलिये हम उन को कामभोग में आसक्त, अनार्य तथा प्रेम रस में मूर्च्छित कहते हैं परंतु भगवन्त ऐसे नहीं हैं ॥ २२ ॥ आरंभ परिग्रह का त्याग नहीं करने वाले और आत्मा को दंडने वाले वणिक लाभ के अर्थी हैं, ऐसा तू कहता है परंतु वह लाभ उन को चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण कराने का कारण भूत, और दुःख का देने वाला है ॥ २३ ॥ हे गोशालक! उस को वह लाभ एकान्तिक (लाभ की इच्छा करते अलाभ होवे) व आत्यंतिक (सदा काल लाभ न होवे) नहीं है व्यापारी लोगों भी व्यापार में लाभ व हानि दोनों मानते हैं सो ऐसा लाभ से क्या फायदा भगवन्त का केवल ज्ञान की प्राप्तिरूप लाभ सादि अनंत है ऐसा लाभवाले श्री श्रमण भगवन्त अन्य जीवों की रक्षा करते हुवे

मार्गी स० श्रमण भि० ऐसा बे० कहता हूं ॥ २० ॥ म० समरंभ करते हैं व० वणिक भू० जीवों का समुह प० परिग्रह म० ममत्ववान ते० वे णा० ज्ञाति संयोग को अ० नहीं छोडकर आ० लामके हे० हेतु को प० करता है सं० संग ॥ २१ ॥ वि० वित्तकी ग० गवेषणा करनेवाला मे० मैथुन में सं० आसक्त ते० वे भो० भोग नार्थ व० वणिक व० परिभ्रमण करते हैं प० इस का० काम में अ० आसक्त अ० मनाय पे० प्रेमरस में गि० गृद्ध

बुधा । तस्सोवयट्ठी समणे त्ति बेमि ॥ २० ॥ समारभंते वणिया भूयगामं । परिग्गह चेव ममायमाणा ॥ ते णातिसजोगमविप्पहाय । आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥ २१ ॥ वित्तेसिणो मेहुणसंपगाढा । ते भोयणट्ठा वणिया वयंति ॥ वयंतु कामेसु अज्झोव-

वर नहीं घट सकती है क्यों कि सावद्यानुष्ठान रहित श्री महावीर भगवन्त नवीन कर्म नहीं करते हैं परंतु पुरातन कर्म का क्षय करते हैं और दुर्मति का स्वय त्याग कर के अन्य को भी ऐसा उपदेश देते हैं कि दुर्मति का त्याग करने से मोक्ष प्राप्ति होती है ऐसे मोक्षके लाभार्थी पन करके भगवान महावीर स्वामी विचर ते हैं ऐसा मैं कहता हू ॥ २० ॥ और भी वणिक जीवों के समुह का आरंभ और परिग्रह में ममत्व करता है. वह वणिक ज्ञाति स्वजनादि का संयोग का त्याग किये विना ही अन्य की साथ संबंध करता है. परंतु भगवन्त तो छ काय के रक्षपाल, निष्परिग्रही, ज्ञाति स्वजन का त्याग कर के अमति बंधपने धर्म कारी क्षम गोषणे देशना देते हैं इसलिये वणिक की उपमा संबंधनीय नहीं है ॥ २१ ॥

॥ २२ ॥ आ० आरम प० परिग्रह अ० नहीं छोड करके नि० धंधाये हुवे आ० आत्मदंडी उ० उनको से० वह उ लाभ व० कहा च० चारगतिका अ० अन्त नहीं करनेवाला दु० दुःख दाता॥२३॥ण० नहीं ए० एकान्त ण० नहीं अ० आत्यन्तिक ए० उदय क० कहते हैं ते० वे दो० दो गु० गुणोदय से० वे उ लाभ सा० सादि अनत प० प्राप्त

थला । अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥ आरंभगं चेव परिग्गहं च । अविउस्सिया

णिस्सिय आयदंडा ॥ तेसिं च से उदए ज वयासी । चउरंतणंताय दुहायणेह ॥२३॥

णेगंत णच्चंतिय उदएव । वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदएसाति मणंतपत्ते ।

वणिक धन की गवेषणा करने वाले, और मैथुन में आसक्त होवें तथा भोजन के लिये इधर उधर परिभ्रमण करते हैं इसलिये हम उन को कामभोग में आसक्त, अनार्य तथा प्रेम रस में मूर्च्छित कहते हैं परतु भगवन्त ऐसे नहीं हैं ॥ २२ ॥ आरम परिग्रह का त्याग नहीं करने वाले और आत्मा को दंडने वाले वणिक लाभ के अर्थी हैं, ऐसा तू कहता है परतु वह लाभ उन को चतुर्गतिक ससार में परिभ्रमण कराने का कारण भूत, और दुःख का देने वाला है ॥ २३ ॥ हे गोशालक! उस को यह लाभ एकान्तिक (लाभ की इच्छा करते अलाभ होवे) व आत्यंतिक (सदा काल लाभ न होवे) नहीं है व्यापारी लोगों भी व्यापार में लाभ व हानि दोनों मानते हैं वो ऐसा लाभ से क्या फायदा भगवन्त का केवल ज्ञान की प्राप्तिरूप लाभ सादि अनंत है ऐसा लाभवाले श्री श्रमण भगवन्त अन्य जीवों की रक्षा करते हुवे

त० इस उ० उदय को सा० कहता है ता० रक्षक भा० भगवन्त ॥ २४ ॥ अ०अहिंसक स० सर्व प्रा
णानुकंपी ध० धर्म में स्थित क० कर्म वि०विवेक हेतु को त०इस को आ० आत्म दंड से स० समाचरते अ०
अबोधि ते० वे प० प्रतिरूप मे० यह ॥ २५ ॥ पि खलकार्वेडको त्रि० भेदे सू० शूल से के० कोई प०
म्लेच्छ पु० पुरुष इ० यह अ० तुम्बि वो कु० लडका स० यह लि० लेपावे पा० प्राणी व०वधमे अ० वध से

तमुदय साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥ अहिंसय सव्वपयाणुकंपी । धम्मेट्ठिय कम्म
विवेगहेउ ॥ तमायदंडेहिं समायरंता । अबोहीए ते पडिरूवमेय ॥ २५ ॥ पिन्नाग
पिंडीमवि विद्धु सूले । केइ पएज्जा पुरिसे इमेत्ति ॥ अलाउयं वावि कुमारएत्ति । स लि

और सर्व वस्तु को जानते हुवे अन्य को भी इस प्रकार का लाभ देते हैं ॥ २४ ॥ देव के किये हुवे समव
सरणादि का परिभोग करनेवाले को कर्मबंध क्यों न होवे ऐसी गोशाला की शंका का निवारण करने
के लिये आर्द्रकुमार कहते हैं श्री महावीर देव किसी जीवों की हिंसा नहीं करते हुवे समवसरणादिक
का परिभोग करते हैं उन को उन वस्तुओं की साथ किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है इसलिये उन
को कर्म नहीं लग सकते हैं तथापि सर्व जीवों की रक्षा करने वाले, धर्म में स्थित, और कर्मोंका क्षय करने
वाले श्री महावीर देव को मेरे जैसे आत्मदंड आचरने वाले वणिक का दृष्टांत देते हैं

भ[illegible]गे ॥ २६ ॥ अ० अथवा वि० भेदे मि म्लेच्छ स० शूलसे पि०खलकी पु०पुद्धिसे न०पुरुष प० पचावे कु० लड़के को अ [illegible]तुंबे को न० नहीं लि० लेपावे पा० प्राणी व० घपसे अ० मैं ॥ २७ ॥ पु० पुरुष को

प्याति पाणिवहेण अम्हं ॥ २६ ॥ अहवावि विद्धूण मिलक्खू सूले । पिन्नागबुद्धिइ नरं पएज्जा ॥ कुमारगं वावि अलाबुयति । न लिप्पइ पाणिवहेण अम्ह ॥ २७ ॥ पु

का उत्तर देकर आगे चले, वहां उन को बौद्ध मिले वे बोले कि अहो आर्द्रकुमार! गोशालकने दिखाहुवा वैश्य का दृष्टांत को तुमने जो दूषित किया है वह युक्ति पूर्वक है क्यों कि बाह्य अनुष्ठान भाव शून्य है और अंतरंग अनुष्ठान को मोक्ष का प्रधान अंग कहा है हमारे सिद्धांतो में भी अंतरंग अनुष्ठान साधने का कहा है सो तुम सुनो कोई म्लेच्छ पुरुष अचेत खलपिण्ड लेकर उसे वस्त्र से ढके, और उस में शूलों डालकर यह पुरुष ऐसी बुद्धि से उस को पचावे) या तुंबडी लेकर यह कुमार है ऐसी बुद्धि से उसे अग्नि में डाले तो उन दोनों पुरुषों को पुरुष और कुमार की घात का पाप लगता है ऐसा हमारा सिद्धांत में भाव है शुभाशुभ बंध का मूल मन के परिणाम ही है और जिस में जीव घात का परिणाम रहा हुवा है इसलिये घात नहीं करे पर भी उस को पाप लगता है ॥ २६ ॥ अथवा कोई म्लेच्छ पुरुष किसी को खल पिंडी मान कर शूलों से विंधकर पचावे) या कुमार को तुंबडी जानकर जलावे तो उन दोनों को प्राणी घात का पाप नहीं लगता है ॥ २७ ॥ किसी पुरुष या कुमार को शूल मे विंधकर अग्नि में पचावे और

रिस च विद्धूण कुमारगत्ता । सूलम्मि केइ पएज्जा यतेए ॥ पिन्नाय पिंडे सत्ति मारुहेत्ता । बुद्धाण त कप्पति पारणाए ॥ २८ ॥ सिणायगाण तु दुवे सहस्से । जे भोयए णितिए भिक्खुयाणं ॥ ते पुन्नखंध सुमहं जिणित्ता । भवंति आरोप्प महंत सत्ता ॥ २९ ॥ अजोगरूव इह संजयाणं । पावंतु पाणाणपसज्झकाउं ॥ अबोहिए दोण्हवि तं अ

वि० भेदकर कु० लडके को सू० शूल से के० कोई प० पचावे ना० आगमें पि० खल्का पिंड स० होने पर मा० मारकरके बु० बुद्ध के क० कल्पे पा० भोजन में ॥ २८ ॥ सि० स्नातक दु० दो स० सहस्र जे० जो भो० जीमावे णि० सदा भि० भिक्षु को ते० वे पु० पुण्यस्कंध सु० बहुत निपजा भ० होवे आ० आरोप्य म० महासत्वस्त्व ॥ २९ ॥ अ० अयोग्य इ० यहां स० साधु को पा० पाप पा० प्राणी का णा० नहीं सं० अच्छा का० करके अ० अबोधिक दो० दोनों तं० उस को अ० असाधु व० कहते हैं जे० जो वि० विप

मन में ऐसा भाव रखे कि यह खलपिंडी है तो उसे भोगवना बुद्ध को भी कल्पता है सो आप का कहना ही क्या ॥ २८ ॥ जो कोई पुरुष बौद्ध मत के दो हजार साधुओं को निरंतर जीमावे तो वह महान् पुण्य की उपार्जना कर के आरोप्य नामक देवलोक में सर्वोत्तम देवता होवे ॥ २९ ॥ बुद्ध लोगों का ऐसा वचन सुनकर आर्द्रकुमार कहते हैं कि तुमने जो जो बातें कही हैं वे संयति पुरुषों के लिये अयोग्य हैं क्यों कि तुम प्राणी की घात से पाप करके फीर उस में पाप का अभाव बतलाते हो इस तरह पुरुष को खल

रीत सुनते हैं ॥ २ ॥ उ० ऊर्ध्व अ० नीचा ति० तिर्यक् दि० दिशा में वि० जानकर लिं० लिंग को त० त्रस था० स्थावर मू० मूतघात की अ० शका से दु० दुर्गच्छा करते व० कहे क० करे कु० कहांसे ॥३१॥ पु०पुरुष वि०बुद्धि न०नहीं ए०ऐसे अ०है अ०अनार्य से वह पु०पुरुष त० तया को० कैसा सं० समव पि०

साहु । वयंति जेया विपडिस्सुणंति ॥ ३० ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु । विन्नाय लिंगं तसथावराणं ॥ भूयाभिसंकाइ दुगंच्छमाणा । वदे करेज्जाव कुओविहत्थि ॥३१॥ पुरिसेत्ति विन्नत्ति न एव मत्थि । अणारिए से पुरिसे तहाहु ॥ को संभवो पिन्नगपिंडि

पिण्डी मान कर घात करने का उपदेश देने वाला और उस को अंगीकार करने वाला दोनों असाधु हैं ॥ ३० ॥ ऐसा बौद्ध मत का तिरस्कार कर के आर्द्रकुमार जैनमार्ग का गुण बतलाते हैं ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग् दिशा में रहे हुवे त्रस स्थावर प्राणियों का जीवत्व चिन्ह जान कर उन की घात न होवे ऐसी शंका करता हुवा धर्मोपदेश करे, और ऐसा ही अनुष्ठान आचरे ऐसा अनुष्ठान करने वाले और बोलने वाले हमारे पक्ष में तुमारा कहा हुवा दोष कहां से होवे ॥ ३१ ॥ अब खलपिण्डी में पुरुष की बुद्धि का असंभव बतलाते हैं अत्यंत मूर्ख मनुष्य होवे उस की भी खलपिण्डी में यह पुरुष है ऐसी बुद्धि नहीं होसकती इसलिये ऐसी बुद्धि रखनेवाले अनाचारी गिने गये हैं खलपिण्डी में पुरुषकी बुद्धि की संभावना ही कैसे होसकती है ? इस से ऐसी भाषा को असत्य कही है उस को बोलने वाला निर्विवेकी और अनत

सत्य पिण्ड में वा० वचन ए० एसे वु० बोले अ० असत्य ॥ ३२ ॥ वा० वचन प्रयोग से ज० जो व०
नष करे णो० नहीं ता० तैसे वा वचन उ० कोह अ० अस्थान में व० वचन गु० गुण का णो० नहीं दि०
दीक्षित बू० बोले व०सार ए० यह ॥ ३३ ॥ ल०प्राप्त हुवा अ अर्थ ए०एसे तु०तुम को जी० जीवानुभागको
सु० चिन्तवाहुवा पु० पूर्व स० समुद्र अ० दूसरा पु पीछ का उ० भवलोका पा० पानी क नीचे
ठि स्थित॥३४॥ जी० जीवानुभागको वि विचारते आ आहार करनेवाले अ०अन्नकी विधिमें सो०शुद्ध न०नहीं

याए । वायावि एसा बुइया असच्चा ॥ ३२ ॥ वायाभियोगेण जमावहेज्जा । णो तारिस
वायमुदाहरिज्जा ॥ अट्ठाणमेय वयण गुणाण । णो दिक्खिए बूय मुरालमेय ॥ ३३ ॥
लद्ध अट्ठे अहो एव तुब्भ । जिवाणुभागे सुविचिंतिति एव ॥ पुव्व समुद्द अवरं च पुट्ठा
उलोइए पाणितले ट्ठिएवा ॥ ३४ ॥ जीवाणुभाग सुविर्चितयता । आहारिया अन्न-

ससार का बढाने वाला होता है ॥ ३२ ॥ जिस वचन बोलने से पाप लगे ऐसे वचन न बोले और जो
दीक्षित पुरुष होवे वह कदापि खलपिण्ड को पुरुष या तुम्बडी को बालक न कहे ॥ ३३ ॥ तुम ऐसा
कथन अंगीकार करते हो जिस से हम को मालूम होता है कि तुम जीवों का कर्मविपाक को जानते हो,
और ऐसा ज्ञान से तुमारा यश पूर्व पश्चिम समुद्र तक और नीचे समुद्र के पाताल में पहुंच गया है अहो
दर्शनियों ! तुम्हारा अतिशय का हम कहां तक वर्णन करे तुम्हारा जैसा ज्ञानपना कहां भी नहीं मिल

नि करे उ० हिंसास्थान उ० उपजीविका करनेवाले ए० यह ध० धर्म है यहां स० संयति का ॥ ३९ ॥
सि० स्नातक दु० निश्चय दु० दो हजार जे० जो भा० जिमावे नि० सदैव भि० साधु को अ० असयति
लो० रक्त से पा० हस्त नि बांधे ग० निन्दा है इस लोक में ॥३६॥ थू० बडा उ० बकरा इ० यहां मा
मारकर उ० उदिष्ट भोजन प कल्पकर त०उसे लो लवण ते०तेल उ०निपजावे स पिपली सहित प करे मं०

विहाय सोहिं ॥ न वियागरे छन्नपओपजीवि । एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ३५ ॥

सिणायगाण तु दुवे सहस्से । जे भोयए निइए भिक्खुयाणं ॥ असंजएलोहियपाणि

सऊ । णियच्छत्त गरिहमिहेव लोए ॥ ३६ ॥ थूल उरब्भं इह मारियाण । उद्दिट्ठ

सकता है कि खलपट को पुरुष और तुंबी को बालक मानते हो अब ज्ञानपना में क्या रहा ॥ ३४ ॥
ऐसा उपहास्य करके आर्द्रक मुनि कहते हैं जिन शासनको मतिपन्न पुरुषों जीवों की पीडा जानता हुवा
शुद्ध अन्न पानी ग्रहण करे तुम हिंसा से आजीविका करनेवाले हो वैसे जैनानुयायी नहीं हैं ऐसा
निर्दोष आहार लेना यही साधु का धर्म है ॥ ३५ ॥ और भी तुम कहते हो कि बौद्ध मत के दो हजार
साधुओं का निरंतर जिमाने वाले को महा लाभ होता है परन्तु वे रुधिर लिप्त हाथ वाले इस लोक में
निंदा को माप्त होते हैं और परलोक में भी अनार्य गति में जाते हैं ॥ ३६ ॥ तुम्हारे मत में ऐसा भी

मांस को ॥ ३७ ॥ तं०उसे भु०भोगते हुवे प०बहुत प०नहीं उ०लेप करे म० हम र०रजसे इ० इसे मा०कहा अ० अनार्य ध० धर्म अ० अनार्य बा० अज्ञानी र० रससे गृद्ध ॥ ३८ ॥ जे० जो भु० भोगते हैं त० तथा प्रकार से० सेवते हैं ते०वे पा०पाप न०नहीं जानते हुवे म० मन भी न०नहीं ए०ऐसा कु०कुशल करे व वचन भी ए० ऐसा बु० बोले मि० मिथ्या ॥ ३९ ॥ स० सर्व जीवों की द० दया के लिये सा० सावद्य

भत्त च पगप्पएचा ॥ तं लोणतेल्लेण उवक्खडेचा । सपिप्पलीयं पगरति मस ॥३७॥
तं भुंजमाणा पिसित पभूत । ण उवलिप्पामो वय रएण ॥ इच्चेव माहंसु अणज्जधम्म।
अणारिया बालरसेसु गिद्धा ॥ ३८ ॥ जे यावि भुंजति तहप्पगार । सेवति ते पावमजाणमाणा ॥ मण न एय कुसला करेंति । वायावि एसा बुइयाउ मिच्छा॥३९॥

तुम मानते हो कि एक मेंढा को मारकर, उद्दिष्ट भोजन बना कर, और उस को लवण व तेल की साथ पकाकर खाने योग्य करना ॥ ३७ ॥ ऐसा मांस खाते भी हम पाप कर्म से नहीं लेपाते हैं ऐसा वचन बोलने वाले अनार्य धर्मी, बाल व रसगृद्धि हैं ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य रस गृद्ध बन कर के मांस भक्षण करते हैं वे निश्चयतः पाप का सेवन करते हैं जो कुशल पुरुष होवे वे मांस भक्षण करने का मन न करे और मांस भक्षण में दोष नहीं है ऐसी असत्य भाषा भी बोले नहीं ॥ ३९ ॥ सब जीवों की दया करने के

दो० दोष प० दूर करे इ० ऋषि ना० ज्ञात पुत्र उ० उद्दिष्ट भक्त प० दूर करते हैं ॥ ४० ॥ भू० भूता की घात दु० दुर्गछते स० सर्व प्राणी को नि० निवर्ते द० दण्ड से त० इसलिये ण० नहीं भुं० भोगवे त० तथा प्रकार ए० ऐसा ही धर्म इ० यहां सं० संयति का ॥ ४१ ॥ नि० निर्ग्रन्थ धर्म में इ० यह स० समाधि अ० इस में सु० स्थिर अ० स्नेह रहित च० विचरे बु० तत्त्वज्ञ मु० साधु सी० शील गुण युक्त अ०

सव्वेसिं जीवाण दयट्ठयाए । सावज्जदोस परिवज्जयता ॥ तस्संकिणो इसिणो नाय

पुत्ता । उद्दिट्ठभत्त परिवज्जयति ॥४०॥ भूयाभिसकाए दुगछमाणा । सव्वेसिं पाणाण

निहाय दड ॥ तम्हा ण भुंजाति तहप्पगारं । एसोणुधम्मो इह सजयाण ॥ ४१ ॥

निग्गथधम्मामि इम समाहिं । अस्सिं सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥बुद्धे मुणी सीलगुणो

लिये सावद्य दोषों का परिहार करनेवाले और उस से शंकित बनने वाले महावीर देव के शिष्यों उद्देशिक आहार का त्याग करते हैं ॥ ४० ॥ प्राणी मर्दन की शंका से सावद्यानुष्ठान को निंदते हुवे, प्राणी के विनाश का त्याग कर के सम्यक् आचार में प्रवर्तते हुवे साधु आधाकर्मादि दोष वाला आहार भोगवे नहीं और यही धर्म संजति का है ॥ ४१ ॥ साधु धर्म में पूर्वोक्त समाधि प्राप्त कर के माया रहित होता हुवा संयमानुष्ठान पाले और मूलोत्तर गुण सहित तत्त्व का ज्ञान पण्डित इस लोक में और परलोक में श्लाघा प्राप्त करे ॥ ४२ ॥ इस तरह आर्द्रकुमार दोनों

मत्यर्थ पा० भाम करे सि० आया ॥ ४२ ॥ सि स्नातक दु० निश्चय दु० दो हजार के मे० जो भो० भोजन दे नि० नित्य मा० ब्राह्मण को ते० वे पु० पुन्य स्कन्ध सु उपार्ज कर भ० होवे दे० देव इ० ऐसा वे० वेद वाक्य ॥ ४३ ॥ सि० स्नातक सु० निश्चय दु० दो हजार ज० जो मो० भोजन द णि० सदैव कु० मार्जार को से० वे ग० जाय लो लोलुपयुक्त स० दाता युक्त ति० तीव्र मि० वेदना वाली न० नरक में

पवेए । अव्वरथते पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥ सिणायगाण तु दुवे सहस्से । जे मा- यए णितिए माहणाण ॥ ते पुण्णखंधे सुमहज्जणित्ता । भवति देवा इति वेयवाओ ॥ ४३ ॥ सिणायगाण तु दुवे सहस्से । जे भोयए णितिए कुलालयाणं ॥ से गच्छति

मार्ग वाले का पराभव करके आगे गये तब उन को ब्राह्मण मीले वे बोले कि अहो आर्द्रकुमार पूर्वोक्त दोनों मत वेद बाह्य थे उन के मत का तुमने निर्णय किया, और तुम्हारा जैन मत भी वेद बाह्य है तुम क्षत्रिय हो क्षत्रियों को ब्राह्मण की सेवा करना सो बतलाते हैं स्नातक-षट्कर्म के करने वाले दो हजार ब्राह्मणों को निरंतर जीमाने वाला महान पुण्य की उपार्जना कर के देवता होवे ऐसा हमारा वेद वाक्य है ॥ ४३ ॥ आर्द्रकुमार उस का उत्तर देते हैं कि अहो ब्राह्मणो ! तुम्हारे स्नातक मार्जार समान हैं, क्यों कि वे मार्जार की मुवाफीक एक गृह से दूसरे गृह ऐसे परिभ्रमण करते हैं ऐसे को जिमाने से उन लोलुपी ब्राह्मणों सहित दातार अत्यंत वेदना वाली नरकमें उत्पन्न होवे

॥ ४४ ॥ द० दया रूप ध० प्रधान प० धर्म को दु० दुगंछते व० हिंसा रूप ध० धर्म को प० प्र शंसते ए० एकान्त ही भो० भोगवते हैं अ० दुःशील णि० नित्य अंधकार में सं० जाने कु० कहां से सु० देव लोक में ॥ ४५ ॥ दु० दोनों प्रकार ध० धर्म में सा० सावधान अ इस में सु० स्थिर रहे त० तथा ए० इस काल को आ० आचार शील में बु० फरमाया ना० ज्ञानीने ण० नहीं सं० सं सार में वि० ज्यादा है ॥ ४६ ॥ अ० अव्यक्त रूप पु० पुरुष को म० महा स० स्नातक अ० अक्षय अ०

लोलुवसंपगाढे । तिव्वाभितावी णरगाभि सेवी ॥ ४४ ॥ दयावरं धम्मदुगछमाणा ।
वहावहं धम्मपससमाणा ॥ एगंपि जे भोययति असीलं । णियोणिसजाति कुओ
सुरेहिं ॥ ४५ ॥ दुहओवि धम्मंमि समुट्ठियामो । अस्सि सुट्ठिच्चा तह एसकालं ॥
आयारसीले बुइएह नाणी । ण संपरायंमि विसेसमत्थि ॥ ४६ ॥ अव्वत्तरूवं पुरिसं

॥ ४४ ॥ दयामय धर्म की निंदा करने वाला और हिंसामय धर्म की प्रशंसा करने वाला जो कोई पुरुष आचार रहित मनुष्य को जीमाता है वह निरंतर अंधकार वाली भूमि में जाता है तब उन को प्रचुर देवलोक की भी प्राप्ति कहां से होवे ॥ ४५ ॥ इस तरह ब्राह्मण धर्म का निराकरण कर के आर्द्रकुमार आगे गये वहां एक दंडिये सांख्य मत वाले मिले वे बोले अहो आर्द्रकुमार ! आ०म में प्रवृत्ति

अव्यय स० सर्व भू० प्राणी में वि० व्याप्त से० वह चं० चंद्र ता० तारा में स० मस्त रूप ॥ ८७ ॥
ए० ऐसे ण० नहीं मि० मिलते हैं ण० नहीं स० जाते हैं ण० नहीं मा० ब्राह्मण ख० क्षत्रिय वे० वैश्य की०

महत । सणसतण अक्खयमव्वय च ॥ सव्वेसु मूतेसु विसव्वतो से । चदोव ताराहिं

समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एवं ण मिज्जंति ण संसरांति । ण, माहणा खत्तिय वेसयस्सा ॥

बहुत अच्छा किया है हमारा और तुम्हारा सिद्धांत में कुछ भी भिन्नता नहीं है हमारे मत में पचीस तत्त्वों का स्वरूप कहा है सो बताते हैं हमारा और तुम्हारा धर्म सरिखा है क्यों कि जैसे शुभ पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष का सद्भाव मानते हो वैसे ही हम मानते हैं जैसे तुम्हारे में ५४ महाव्रत है वैसे ही हमारे में पच यम है, ऐसे सर्व नियमों एक सरिखे हैं ऐसा समान धर्म में अतीत अनागत व वर्तमान काल में सत्य ही प्रवृत्ति करनेवाले हैं अन्य कोई नहीं है अपना आचार को प्रधानशील कहा है और ज्ञान को ही मोक्ष का अंग कहा है संसार में परिभ्रमण कराने वाला सांपरायिक कर्म हमारे और तुम्हारे दोनों के मत में नित्य है इसलिये हमारे और तुम्हारे धर्म में कुछ भी विशेषता नहीं है॥४६॥ जैसे जीव को तुम मानते हो वैसे ही हम जीव को अव्यक्तरूप समस्त लोक व्यापी, सनातन, अक्षय, और अव्यय मानते हैं और जैसे अश्विन्यादि नक्षत्र से चद्रमा संपूर्ण बनाता है वैसे ही सब शरीर में आत्मा संपूर्णपने बनाता है ॥ ४७ ॥ अब आर्द्रकुमार कहता है कि यदि ऐसा ही स्वीकार किया जावे

कीड़े प० पक्षी स सर्प म० मनुष्य स० सर्व त० तथा दे० देव लोक ॥ ४८॥ लो०
लोक को अ० नहीं जानकर के के० केवल ज्ञान से क० कहते हैं जे० जो ध० धर्म अ० नहीं जानते हुवे
णा० नाश करते हैं अ० आत्मा को प० दूसरे को ण० नष्ट सं० संसार घो० घोर अ० अपार ॥ ४९ ॥
लो० लोक वि० जानते हैं के० केवलसे पु० पूर्ण ना० ज्ञान से स० समाधि जु० युक्त ध० धर्म स० सम्यक्
क० कहते हैं जे० जो ता० तार अ० आत्मा को प० दूसरे को ति० तीरे हुवे ॥ ५० ॥ जे० जो ग०

कीडाय पक्खीय सरीसिवाय । नराय सव्वे तह देवलोए ॥ ४८ ॥ लोयं अयाणि
त्तिह केवलेणं । कहंति जे धम्म मजाणमाणा ॥ णासंति अप्पाण परं च णट्ठा । संसार
घोरंमि अणोरपारे ॥ ४९ ॥ लोयं विजाणंतिह केवलेणं । पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता ॥
धम्मं समत्तं च कहंति जेउ । तारंति अप्पाण परं च तिन्ना ॥ ५० ॥ जे गरहिय

जीव को मरना और नरकादि गति में जाना होवे नहीं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे भेद
भी बने नहीं कीड़े, पक्षी, सर्प, देव नरक ऐसा गतिभेद भी होवे नहीं ॥ ४८ ॥ जिनोंने केवलज्ञान से
लोक को नहीं जाना है वे अज्ञानी लोक में धर्म कहते हैं वे अपना आत्मा को और अन्य का आत्मा
को भी भ्रष्ट करते हैं इतना ही परंतु अपार संसार समुद्र में स्वयं गिरते हैं और अन्य को भी गिराते हैं
॥ ४९ ॥ जो केवलज्ञान से लोक को जानते हैं, और संपूर्ण ज्ञान से समाधिवन्त होवे हुवे परके हित

रि श अ० स्थान में व० रहते हैं जे० जो लो० लोक में च० चारित्र उ० सहित उ० कहा तें० उन का स० एकसा म० मतिसे म० आयुष्मन् वि० विपरीतपना ॥ ५२ ॥ सं० वर्ष में ए० एकेक बा० बाण से मा० मार म वहा ग० हाथी से० शेष जी० जीव की द० दयार्थ मा० वर्ष व० हम वि० वृत्ति प० कल्पते हैं ॥ ५२ ॥

ठाणमिहावसति । जेयाव्वि लाए चरणोववेया ॥ उदाहडं त तु सममइए । अहाउसो विप्परियासमव ॥ ५१ ॥ संवच्छरेणावि य एगमेगं । बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाण जीवाण दयट्ठयाए । वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥ संवच्छरेणावि य

के लिये शुद्ध चारित्ररूप धर्म मरूपते हैं, वे संसार समुद्र से तीर सकते हैं और अन्य को भी समुद्र पार कर सकते हैं ॥ ५० ॥ कोई इस जगत में निंदित स्थान का आश्रय लेनेवाले हैं तो कोई चारित्र कर के सहित है उन दोनों को तुमारी मतिसे तुमने तुल्य कहा परन्तु अहो एकदंडि सांख्यमतवाले! ऐसा करनेवालेको विपरीत मतिवाला कहना ॥ ५२ ॥ ऐसा सांख्यमत का निराकरण कर के आर्द्रकुमार जैसे आगे गये कि मार्ग में हस्तितापस आकर बोला, अहो आर्द्रकुमार! जो तापस कंदमूलादिक के सेवन करनेवाले हैं व बहुत स्थावर व उसके आश्रित त्रस जीवों का विनाश करते हैं परन्तु हमलोग बरस में या कभी एक मास में समस्त जीवों की दया के लिये बड़ी कायावाला एक हाथी को मारकर हम हमारी आजीविका चलाते हैं इस तरह एकाद जीव की घात कर के जीवों की रक्षा करते हैं, इसलिये हमारा धर्म श्रेष्ठ है

स०वर्ष में ए० एकके पा० जीव को ह० हणते अ० अनियत दोपी से० शेष जी० जीवों का अ० अवदे मना सि० कदाचित थो० थोडे गि० गृहस्थ त० वैसे ॥ ५३ ॥ सं० वर्ष में ए० एकेक पा० जीव को ह० हणते म० श्रमण के व्र०व्रत में आ० आत्माका अहित कर्ता तं०वह पु०पुरुष अ०अनार्य ण० नहीं ता० वैसा के० केवली णो० नहीं भ० होता है ॥ ५४ ॥ बु० तत्त्वज्ञ आ आज्ञा इ० इस

एगमेगं । पाण हणता अणियत्तदोसा ॥ सेसाणजीवाण वहेलणाय । सियायथोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥ संवच्छरेणावि य एगमेग । पाण हणता समणेव्वएसु ॥ आयाहिए तं पुरिसे अणज्जे । ण तारिसे केवली णो भवति ॥ ५४ ॥ बुद्धस्स आ

॥५२॥ अब आर्द्रकुमार उत्तर देते हैं, कि अहो हस्तितापसो! सब जीवों को नहीं हणने का अभिप्रायसे वर्षमें या छमास में एक बडा जीव को हणते, घात से निवर्ते हुवे नहीं कहला सकते हो तुम को पंचेन्द्रिय जीव की घात का दोष लगता है साधु पुरुष तो धूसर प्रमाण दृष्टि से प्रकाशित मार्ग में देखते हुवे ईर्यासमिति सहित विचरते हैं, तो उन को आशंसा दोष कहां से होवे ! और पिपीलादिक की घात कैसे होवे ! वैसे तो गृहस्थ भी अपना क्षेत्र छोडकर अन्य जीवों की घात नहीं करने से तुमारे जैसे निर्दोष होना चाहिये ॥५३॥ साधु वृत्ति में रहने पर जो वर्ष में एक जीव की घात करते हैं और ऐसा ही उपदेश देते हैं वे अनार्य केवली नहीं होसकते हैं ॥ ५४ ॥ अब आर्द्रकुमार अन्य मतावलम्बी को प्रतिबोध देकर, और महावीर

नि०द्रा ठा० स्थान में व० रहते हैं जे० जो सो लोक में च० चारित्र उ० सहित उ० करा तं० उन का स० पकसा म०मतिसे म० आयुष्मन् वि० विपरीतपना ॥ ५२ ॥ स वर्ष में ए० एकेक वा० बाण से मा० मार म० बडा ग० हाथी से०शेष जी०जीव की द०दयार्थ वा०वर्ष व०एस वि०वृत्ति प०कल्पते हैं ॥ ५२ ॥

ठाणमिहन्विसाति । जयावि लोए चरणोववेया ॥ उदाहड त तु समं मईए । अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ संवच्छरेणावि य एगमेगं । बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाण जीवाण दयट्ठयाए । वास वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥ संवच्छरेणावि य

के लिये शुद्ध चारित्ररूप धर्म प्ररूपते हैं, वे संसार समुद्र से तीर सकते हैं और अन्य को भी समुद्र पार कर सकते हैं ॥ ५० ॥ कोई इस जगत में निर्दिष्ट स्थान का आश्रय लेनेवाले हैं तो कोई चारित्र कर के सहित है इन दोनों को तुमारी मतिसे तुमने तुल्य करा; परन्तु अहो एकदंडि सांख्यमतवाले! ऐसा कहनेवालेको विपरीत मतिवाला कहना ॥ ५१ ॥ ऐसा सांख्यमत का निराकरण कर के आर्द्रकुमार जैसे आगे गये कि मार्ग में हस्तितापस आकर बोला, अहो आर्द्रकुमार! जो तापस कंदमूलादिक के सेवन करनेवाले हैं व बहुत स्थावर व उसके आश्रित त्रस जीवों का विनाश करते हैं परन्तु हमतो बरस में या कभी एक मास में समस्त जीवों की दया के लिये बडी कायावाला एक हाथी को मारकर हम हमारी आजीविका चलाते हैं इस तरह एकही जीव की घात कर के जीवों की रक्षा करते हैं इसलिये हमारा धर्म श्रेष्ठ है

उदक पेढाल पुत्र (नालंदीय) नामकं त्रयोविंशतितम मध्ययनम्

ते० उस का० काल में ते० उस स० समयमें रा० राजगृही न० नगरी हो० थी रि० ऋद्धि सहित स० समृद्धि सहित व० वर्णन योग्य जा० यावत् प० प्रतिरूप त० उस रा० राजग्रही न० नगरी के ब बाहिर उ० ईशान दि कोन में ए० यहां ना०नालन्दा बा०बाहिरिका हो०था अ अनेक भ०भवन स०सो स० सहित जा० यावत् प० प्रतिरूप ॥ १ ॥ त० वहां ना० नालन्दा बा० बाहिरिका में ले० लेप गा० गाथापति हो०था अ० धनवन्त दि० तेजस्वी वि विख्यात वि० विस्तीर्ण वि० बहुत भ० भवन स शयन आ० आसन

तेण कालेण तेणं समएण रायगिहे नाम नयरे होत्था, रिद्धित्थमिय समिद्धे वण्णओ जाव पडिरूवे तस्सण रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थण नालंदा नाम बाहिरिया होत्था अणेगभवणसयसंनिविट्ठा जाव पडिरूवा ॥ १ ॥ तत्थणं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नाम गाहावई होत्था, अड्ढे, दित्ते, वित्ते, विच्छिण्णवि

उस काल उस समय में रिद्ध सिद्धि से भरपूर और भय रहित राजगृही नामक नगरी थी इस का सब अधिकार उववाई सूत्र से जानना उस की ईशान कोन में नालंदा नामक पाडा (पुरा) था वह पाडा भी सेंकडो गृहों से अत्यंत शोभनीय था ॥ १ ॥ उस नालंदा पाडामें एक लेप नामक गाथा

स समाधि में अ० इसमें सु० स्थिर ति० तीन करण से ता० रक्षक त० तीरने को स० समुद्र म० म हाभव भो ओघ का आ० ज्ञानादियुक्त को स० करे त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ५५ ॥ *

णाए इम समाहिं । अस्सि सुट्ठिच्चा तिविहेण ताई ॥ तरिउ समुद्दं च महाभवोघं । आयाणवंतं समुदाहरेज्जा त्ति बेमि ॥ ५५ ॥ इति अद्दइज्जणाम दुवात्रिस मज्झयणं सम्मत्तं ॥ २२ ॥

स्वामी के सन्मुख जाकर आज्ञा के आराधक हुवे उपसंहार-श्री महावीर की आज्ञारूप समाधि में प्रवर्तन वाला और त्रिकरण से जीवों की रक्षा करने वाला साधु भयंकर संसार समुद्र को तीरके सम्यक् ज्ञान दर्शन व चारित्रवन्त होता हुवा आर्द्रकुमार जैसे यथास्थित प्ररूपणा कर के मोक्ष मार्ग प्रगट करे ऐसा मैं श्री तीर्थंकर के कथनानुसार कहता हूं यह आर्द्रकुमार नामक बावीसवा अध्ययन समाप्त हुवा इस अध्ययनमें स्वसमय परसमय की प्ररूपणा की और प्रायः कर के समस्त सूयगडांग सूत्र में साधु के आचार की प्ररूपणा की अब आगे अध्ययन में श्रावक का आचार कहते हैं इस अध्ययन में परतीर्थिक वाद का निराकरण किया अब आगे स्वतीर्थिक का वाद कहते हैं ॥ २२ ॥

अ० अर्थ ग० गृहीत अ० अर्थ पु० पूछा हुवा अ० अर्थ वि० निश्चय किया हुवा अ० अर्थ अ० जानाहुवा अ०अर्थ अ अस्थिमिंजी पे०प्रेमानुराग से र० रक्त अ० अहो आ०आयुष्मन् नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन में अ० यह अ० अर्थ अ० यह प० परमार्थ से० शेष अ० अनर्थ उ० प्रख्यात फ० स्फटिक अ० खुल्ला दु० द्वार वि व्यक्त अं० अंतःपुर में प० प्रवेश चा० चतुर्दशी अ० अष्टमी पु० पुण्य तिथि में प० प्रतिपूर्ण

याविं होत्था, अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ, निग्गंथे पावयणे निस्संकिए, निक्कंखिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अभिगहियट्ठे अट्ठिमिंजा पेमाणुरागरत्ते अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयमट्ठे अयंपरमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिह अप्पावयदुवारे, वियत्तंतेउरप्पवेसे चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्णमासिणीसु प

आदि नव तत्त्व का जानने वाला था जिन प्रणीत सूत्रों में व जिन मार्ग में शंका रहित था, अन्य मत के पाखण्ड से वह ठगाता नहीं, किया हुवा कार्य में संदेह नहीं रखता था कदाचित शास्त्रों के ग्रहण किये हुए अर्थों में संदेह उत्पन्न होजाता तो उसकी पृच्छा कर के खुलासा सहित धारण कर रखता था उस की हड्डी और हड्डी की मिंजी प्रेमराग से अनुरक्त थे किसी से वार्तालाप का प्रसंग आता तो कहता कि अहो आयुष्मन्तो ! यह जिन प्रवचन निस्संशय व सत्य है, यही परमार्थ है, अन्य सब अनर्थ हैं अब उन के गुणों बतलाते हैं उन का हृदय स्फटिक रत्न समान निर्मल था वे दानार्थ अपने गृह के द्वार खुले रखते

या० यान वा० वाहण इ० सहित व० बहुत ध० धन व० बहुत जा० सुवर्ण र० चांदी आ० उपाय प०प्र योग स युक्त वि० डाला हुवा प बहुत भ० आहारपानी ब० बहुत दा० दासी दा० दास गो० गौ म० महिषी गा० गाडर प० युक्त ब० बहुत ज मनुष्यों का अ० अपराभवी हो० था ॥ २ ॥ से० वह ले० लेप गा० गाथापति स० श्रमणोपासक हो० था अ० जाना हुवा जी०जीव अ०अजीव जा०यावत् नि० निग्रंथ के पा० प्रवचन में नि० शंका रहित नि० आकांक्षा रहित नि० जुगुप्सा रहित ल० प्राप्त

पुलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे, बहुधणबहुजायरूवरजते, आओग पओगसंपउत्ते, विच्छड्डियपउरभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूए बहुज णस्स अपरिभूएयावि होत्था ॥ २ ॥ से णं लेवे नाम गाहावई समणोवासए

थित रहता था वह अन्य से पराजित न होसके ऐसा सामर्थ्यवन्त, तेजस्वी, और बहुत धनवाला था उसको बहुत विस्तारवाले भुवन शय्या आसनादिक तथा रथवाहनादिक रहे हुवे थे उसकी पास बहुत सुवर्ण, धन धान्यादि था उस के वहां बहुत आहार पानी निपजता था जिस से बहुत लोगों का पोषण होता था उस को कार्य करने वाले बहुत दास, दासी, और गाय, भैंस बकरे वगैरह बहुत जानवरों थे ऐसी ऋद्धि होने से कोई मनुष्य उस का पराभव नहीं कर सकता था ॥ २ ॥ लेप गाथापति की यह द्रव्य संपदा कही अब आगे भाव संपदा बतलाते हैं, वह गाथापति श्रमणोपासक था वह जीवाजीव

अ० अर्थ ग० गृहीत म० अर्थ पु० पूछा हुवा म० अर्थ वि निश्चय किया हुवा अ अर्थ अ० जानाहुवा अ०अर्थ म भास्थिमिंजी पे०प्रेमानुराग से र० रक्त अ० अहो आ०आयुष्मन् नि० निर्ग्रंथ के पा० प्रवचन में अ० यह म० अर्थ अ० यह प० परमार्थ से० शेष म० अनर्थ उ० प्रख्यात फ० स्फटिक अ० खुला दु० द्वार वि व्यक्त अं० अंत पुर में प० प्रवेश चा० चतुर्दशी अ० अष्टमी पु० पुण्य तिथि में प० प्रतिपूर्ण

यावि होत्था, अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ, निग्गंथे पावयणे निस्संकिए, निक्कं खिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अभिगिहियट्ठे अट्ठि मिंजा पेमाणुरागरत्ते अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयमट्ठे अयपरमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अप्पावयदुवारे, वियत्तंतेउरप्पवेसे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु प

आदि नव तत्त्व का मानने वाला था जिन प्रणीत सूत्रों में व जिन मार्ग में शंका रहित था, अन्य मत के पाखण्ड से वह ठगाता नहीं, किया हुवा कार्य में संदेह नहीं रखता था कदाचित शास्त्रों के ग्रहण किये हुए अर्थों में सदेह उत्पन्न होजाता तो उसकी पृच्छा कर के खुलासा सहित धारण कर रखता था उस की हड्डी और हड्डी की मिंजी प्रेमराग से अनुरक्त थे. किसी से वार्तालाप का प्रसंग आता तो कहता कि अहो आयुष्मन्तो! यह जिन प्रवचन निस्संशय व सत्य है, यही परमार्थ है, अन्य सब अनर्थ हैं अब उन के गुणों बतलाते हैं उन का हृदय स्फटिक रत्न समान निर्मल था वे दानार्थ अपने गृह के द्वार खुल्ले रखते

पो॰ पोषध स॰ सम्यक् अ॰ करता हुवा स॰ श्रमण नि॰ निर्ग्रंथ को त॰ तथा प्रकार ए॰ शुद्ध अ॰ अन्न पा॰ पानी खा॰ खादिम सा॰ स्वादिम प॰ देता हुवा ब॰ बहुत सी॰ शील व॰ व्रत गु॰ गुण वि॰ विरमण प॰ प्रत्याख्यान पो॰ पोषध उ॰ उपवास युक्त अ॰ आत्मा को भा॰ भावता हुवा ए॰ ऐसा वि॰ विचरता है ॥ २ ॥ त॰ उस ले॰ लेप गा॰ गाथापति की ना॰ नालंदा वा॰ बाहिरिका की उ॰ ईशान कौन में ए॰ यहां से॰ सेसदविया उ॰ उदकशाला हो॰ थी अ॰ अनेक खं॰ स्थंभ स॰ वेष्टित पा॰

डिपुण्ण पोसह सम्म अणुपालेमाणे, समणे निग्गंथे तहाविहेण एसणिज्जेण असणपा ण साइम साइमेण पडिलाभेमाणे बहुहिं सीलव्वयगुणविरमण पच्चक्खाण पोसहो- ववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे एवं च णं विहरइ ॥ २ ॥ तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थणं सेसदविया नाम उदगसाला होत्था अणेग खंभसयसन्निविट्ठा, पासादिया जाव पडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए

राजा का अंतःपुर में भी प्रवेश करते उन को प्रतिबन्ध न था चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या और कल्याणिक तीथीओंमें प्रतिपूर्ण पोषध व्रत पालने वाले थे और ऐसा धर्म पालने वाले श्रमण, ब्राह्मण को शुद्ध आहार जल से संतोष करते थे और पांच अनुव्रत, चार शिक्षाव्रत, और तीन गुणव्रत, वास्ते थे, उपवास, व पोषधादिक कर के आत्मा भावते हुवे विचरते थे ॥ २ ॥ अपने मकानों पश्चिमे

प्रसन्न कर्ता भा० यावत् प प्रतिरूप ति० उस से० सेसदविया उ उदकशाला की उ० इशान दि० कौन में ए० वहां ह० हस्तीयाम व० बगीचा हो० था कि० कृष्ण वर्ण प० बगीचाका ॥ ५ ॥ त० उस में ग० गृह प० प्रदेश में भ भगवान् गो० गौतम वि० विचरते हैं भ० भगवान् आ० बगीचे में भ० भग उ० उदक पे०पेढाल पुत्र भ०भगवान् पा० पार्श्वसंतानिया णि०निर्ग्रंथ मे०मेतार्य गो० गोत्री जे०जहां जे०जहां भ० भगवान् गो० गौतम ते० तहां उ आये उ०आकर भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० करा

उदगसालाए उत्तरपुरात्थिमे दिसीभाए एत्थणं हत्थिजामे नाम वणसंडे होत्था, किण्हे वण्णओ वणसंडस्स ॥ ६ ॥ तस्सिं च णं गिहपदेसम्मि भगवं गोयमे विहरइ, भगवं च णं अहे आरामंसि अहेणं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावच्चिज्जे, नियंठे मेयज्जे गोत्तेणं, जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता, भगवं गोयमं एवं

फाष्टादि गो पत्ता था उसे लेकर लेप गाथापतिने नालन्दा पाडा की इशान कौन में एक सेसदविया नाम की उदक शाला बनवाई थी वह शाला सैंकडो स्तंभो से वेष्टित व बडी मनोहर थी उस की इशान कौन में श्याम वर्ण वाला हस्तियाम नामक वनखण्ड था उस का विशेष वर्णन उववाईजी सूत्र से जानना ॥ ६ ॥ उस वनखण्ड के गृह प्रदेश में भगवन्त श्री गौतम स्वामी विराजमान थे उस समय श्री पार्श्वनाथ स्वामी के शिष्य का शिष्य मेतार्यगोत्रिय पेढाल का पुत्र उदक श्री गौतम स्वामी की पास आये और

पो० पोषध स० सम्यक् अ० करता हुवा स० श्रमण नि० निर्ग्रंथ को त० तथा प्रकार ए० शुद्ध अ० अन्न पा० पानी खा० खादिम सा० स्वादिम प० देता हुवा ब० बहुत सी० शील व्र० व्रत गु० गुण वि० विरमण प० प्रत्याख्यान पो० पोषध उ० उपवास युक्त अ० आत्मा को भा० भावता हुवा ए० ऐसा वि० विचरता है ॥ १ ॥ त० उस ले० लेप गा० गाथापति की ना० नालन्दा बा० बाहिरिका की उ० ईशान कोन में ए० यहां से० सेसदविया उ० उदकशाला हो० थी अ० अनेक खं० स्थंभ स० वेष्टित पा०

डिपुण्ण पोसह सम्म अणुपालेमाणे, समणे निग्गंथे तहाविहेणं एसणिज्जेण असणपा ण खाइम साइमेण पडिलाभेमाणे बहुहिं सीलव्वयगुणविरमण पच्चक्खाण पोसहो ववासेहिं अप्पाण भावेमाणे एव च णं विहरइ ॥ २ ॥ तस्सण लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थण सेसदविया नाम उदगसाला होत्था अणेग खंभसयसंनिविट्ठा, पासादिया जाव पडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए

थे राजा का अन्तःपुर में भी प्रवेश करते उन को प्रतिबन्ध न था चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या और कल्याणिक तीथीओंमें प्रतिपूर्ण पोषध व्रत पालने वाले थे और ऐसा धर्म पालने वाले श्रमण, ब्राह्मण को शुद्ध आहार अन्न से संतोष करते थे और पांच अनुव्रत, चार शिक्षाव्रत, और तीन गुणव्रत, पालते थे, उपवास, व पोषधादिक कर के भावना भावते हुवे विचरते थे. ॥ १ ॥ अपने अधिकारों बनाये

श्रमण नि० निर्ग्रंथ तु० तुम्हारा प० प्रवचनको प० करते हुवे गा० गाथापति स० श्रमणोपासक को उ० संयम ए० ऐसा प० प्रत्याख्यान कराते हैं ण० नहीं अ० अन्यत्र अ० अभियोग से गा० गाथापति चो० चोर ग० ग्रहण वि० छोडने को त० त्रस पा० प्राणी नि० निषेधक द०दंड ए० ऐसा प० प्रत्याख्यान करते को दु० खराब प्रत्याख्यान भ० होते हैं ए० ऐसे प० प्रत्याख्यान देते को दु० खराब प्रत्याख्यान कराना भ० होते हैं ए० ऐसे ते० वे प० दूसरे को प० प्रत्याख्यान कराते अ० उल्लंघन करते हैं स० स्वय

समणा निग्गंथा तुम्हाणं पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चक्खावेंति णण्णत्थ अभिओएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंडं एवंण्हं पच्चक्खंताणं दुप्पच्चक्खायं भवइ एवं ण्हं पच्चक्खावेमाणाणं दुपच्च-क्खावियव्वं भवइ, एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा अतियरंति सयं पतिण्णं, कस्सणं तं हेउं

स्यान कराते हैं कि त्रस प्राणी के विनाश का त्याग करना जैसे राजाने गृहस्थ को चोर वध की आज्ञा दी परंतु उसको मुक्त करने की इच्छासे त्रस की घातसे वह निवर्ता वैसेही गृहस्थ को निवर्तना अर्थात् जिनशासन में श्रावक का अधिकार में त्रस प्राणी के वध का निषेध करा सो हे गौतम ! ऐसा प्रत्याख्यान करने वालेने दुष्ट प्रत्याख्यान किया ऐसा कहा जासकता है, और कराने वालेने दुष्ट प्रत्याख्यान कराया है ऐसा गिना जाता है इसलिये प्रत्याख्यान करनेवाला और करानेवाला दोनों अपनी प्रतिज्ञाका उल्लंघन करते

आ० आयुष्मन् गो० गौतम अ० है ख० निश्चय के० कोई प० प्रश्न से उसे पु० पूछें त० उसे मे० मुझे आ० आयुष्मन् अ० यथाश्रुत अ० यथादर्शित मे० मुझे वि० कहो स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पु० पुत्र को ए० ऐसा व० कहा भ० कहो आ० आयुष्मन् सो० सुनकर नि० अवधार कर भा० मानेंगे ॥ ५ ॥ स० वाद सहित उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० कहा आ० आयुष्मन् गो० गौतम अ० है कु० कुमारपुत्र म०

वयासी आउसतो गोयमा! अत्थि खलु से केइ पदे से पुच्छियव्वे त च मे आउसो अहासुयं, अहादरिसिय मे वियागरेहि, सवायं भगव गोयमे उदय पेढालपुत्त एव व यासी—अवियाइ आउसो! सोच्चा निसम्म जाणिस्सामो ॥ ५ ॥ सवाय उदय पेढाल-पुत्ते भगव गोयम एव वयासी—आउसो गोयमा ! अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम

बोले कि अहो आयुष्मन् गौतम ! आपको किसी प्रकार का प्रश्न पूछने का है उसे आपने जैसा महावीर स्वामी से सुना होवे और जैसा अवधारा होवे वैसा ही मुझे कहो तब गौतम स्वामी ने उदक पेढाल पुत्र को ऐसा कहा अहो आयुष्मन् उदक ! तुम्हारा प्रश्न सुन कर मैं विचार पूर्वक हृदय में मानूंगा इसलिये तुम यथा योग्य प्रश्नकी पृच्छा करो॥५॥ तब उदक पेढाल पुत्र वाद सहित ऐसा बोले कि अहो आयुष्मन् गौतम! कुमार पुत्र नामे एक साधु निर्ग्रंथ तुम्हारे मत के प्ररूपक हैं वे श्रावकों के नियम युक्त गृहस्थ को ऐसा प्रत्या

मत्याख्यान करावे को प० नहीं सु० अच्छा मत्यख्यान कराना म० होता है ए० ऐसा ते० वे प० दुसरे को प० मत्याख्यान करावे प० नहीं म० उल्लंघन करते हैं स० स्वयं प० मतिज्ञा ण० नहीं अ० अन्यत्र भ० अभियोग मे गा० गाथापति घो चोर ग्रहण मो० मुक्त होना त० त्रस भूत पा० माणी णि० निहस दं दंड ए० ऐसी म० होने पर भा० भापाका प० पराक्रम वि जानते भे० भो ते० वे का० क्रोध लो० लोभ प० दूसर को प० मत्याख्यान करता है भ० यह भी णो० नहीं उ० उपदेश णो० नहीं ण० न्याय

त्रियं भवइ, एवं ते पर पच्चक्खावेमाणा णातियरति सय पइण्ण णण्णत्थ अभिओगेण गा

हावइचोरगहणवि माक्खणया तसभूएहिं पाणेहिं णिहाय दंड एवमेव सइ भासाए

परक्कमे विज्जमाणे जे ते कोहावा, लोहावा, पर पच्चक्खावेंति, अयपि णो उवएसे णो

अथ अहो गौतम! मैं कहता हूं कि श्रावक को त्रस जीव की घात का मत्याख्यान कराते हुवे राजा का अभियोग से चोरवध की रीति रखे, यह तो अच्छा है परंतु "त्रस भूत" माणी की घात करु नहीं अर्थात् जहां लग त्रस जीव त्रस कायापने होवे वहां लग उसकी घात करु नहीं इस तरह 'भूत' शब्द मिलाकर मत्याख्यान करने व कराने से उस का मत्याख्यान सुमत्याख्यान कहा जाता है ऐसी भापा का पराक्रम होने पर कोइ साधु क्रोध या लोभ से 'भूत' शब्द छोडकर मत्याख्यान करावे तो उन्हे मृपावाद दोप लगता है और मत्याख्यान करने वाले को भी व्रत भंग होता है इससे पूर्वोक्त रीति से मत्याख्यान

पं० मतिज्ञा क० कौनसा तं० उस हे० हेतु को सं० संसारी ख निश्चय पा० माणी था० स्थावर पा० माणी त० त्रसपने प० उत्पन्न होवे हैं त० त्रस पा० माणी था० स्थावरपने प० उत्पन्न होवे हैं था० स्थावर का० काया में से वि० चवकर त० त्रस काय में उ० उपजते हैं त० त्रस काया से वि० चवकर था० स्थावर काया में उ० उपजते हैं ते० उस में था० स्थावर काया में उ० उत्पन्न होते ठा० स्थान को घा० घात की ए० ऐसा प० मत्याख्यान करत को सु० अच्छा प० मत्याख्यान भ० होता है ए० ऐसा प०

सासारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति, थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति, तसकायाओ विप्प मुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति, तेसिं च णं थावरकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ एवं ण्हं पच्चक्खंताणं सुपच्चक्खायं भवइ एवं ण्हं पच्चक्खावेमाणाणं सुपच्चक्खा-

हैं क्यों कि संसारी जीवों स्थावर में से नीकल कर अपने कर्मों के उदय से त्रसपने उत्पन्न होवे हैं और त्रस में से नीकल कर स्थावरपने उत्पन्न होवे हैं अब इस तरह त्रस की घातका मत्याख्यान करने वाला श्रावक पृथ्व्यादि की घात करता त्रस काया की घात करने वाला गीना जाता है जैसे किसीने ऐसी मतीज्ञा की कि मैं नागरिक पुरुषकी घात नहीं करूंगा अब कोई नागरिक नगरको छोड उद्यान में जाकर रहा उस समय उसकी घात करे तो नागरिक की घातकाही पाप लगता है वैसे ही यहां आत्मा

पकाते हैं स० निश्चय ते० वे स० श्रमण स० श्रमणोपासक जे० जिस अ० दूसरे भी जीव पा० प्राणी भू० भूत स० सत्त्व सं० पालते हैं ता० उनको भी ते० वे अ० कथक कहते हैं क० कौनसा हे० उस हेतु को सो संसारी ख० निश्चय पा० प्राणी त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावरपने प० उपजते हैं था० स्थावर पा० प्राणी त० त्रसपने प० उपजते हैं त० त्रसकाया से वि० चवकर था० स्थावर काया में उ० उपजते हैं

भास भासति अणुतावियं खलु ते भास भासति अब्भाइक्खंति, खलु ते समणे स मणोवासएवा जेहिंवि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं भूएहिं सत्तेहिं संजमयति ताणवि ते अ ब्भाइक्खति, कस्सणं तं हेउं सासारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चा यंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति, तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि

आयुष्य त्यागकर त्रसपने होता है अथवा त्रस का संपूर्ण आयुष्य त्याग कर स्थावरपने उत्पन्न होता है इस तरह त्रस काया में स्थावर उत्पन्न होने पर भी त्रस काया का स्थावर अघात्य है और श्रावक तो त्रस काया को उद्देश कर स्थूल प्राणातिपात का त्याग करते हैं इसलिये उन को व्रत भंग नहीं होता है परन्तु तुम्हारे अभिप्राय से पृथक् २ जीव को उद्देश कर के प्रत्याख्यान करने वाले को अन्य पर्यायमें गया हुवा की भी विराधना होवे तो व्रत भंग होवे इस तरह से देखा जावे तो कोइ सम्यक् व्रत नहीं पाल सकता है तुम जो यहां भूत शब्द ग्रहण करते हो यह मात्र व्यामोह ही है यह भूत शब्द उपमा वाची

म० होता है अ० अपि आ० आयुष्मान् गो० गौतम तु० तुम को भी ए० ऐसा रो० रुचता है ॥ ६ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पुत्र को ए० ऐसा व० कहा आ० आयुष्मन् उ० उदक नो नहीं म० मुझे ए० ऐसा रो० रुचता है जे० जो ते० वे स० श्रमण मा० माहण ए० ऐसा आ० कहते हैं जा० यावत् प० प्ररूपते हैं णो० नहीं ख० निश्चय ते० वे स० श्रमण णि० निर्ग्रंथ भा० भाषा भा० बोलते हैं अ० अनुतापित ते० वे भा० भाषा भा० बोलते हैं अ० कलंक

णेआउए भवइ, अवियाइ आउसो गोयमा! तुब्भपि एव रोयइ ॥ ६ ॥ सवाय भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्त एवं वयासी आउसतो उदगा! नो खलु अम्हे एय रोयइ, जे ते समणावा, माहणावा, एव माइक्खंति जाव परूवेंति णो खलु ते समणावा णिग्गंथावा

करने का उपदेश अच्छा व न्याय का नहीं है, ऐसा मैं मानता हूं और अहो गौतम! तुम को भी रुचता है कि यह बात तुम को रुचिकर व प्रशंसनीय है ॥ ६ ॥ उक्त कथन श्रवण कर भगवान् गौतम स्वामी बोले आयुष्मन् उदकपेढालपुत्र! तुमने जो वचन कहा है वह हम को नहीं रुचता है और जो साधु निर्ग्रंथ ऐसा बोलते व प्ररूपते हैं वे सत्य भाषा बोलने वाले नहीं हैं मात्र ताप उत्पन्न करनेवाली भाषा बोलने वाले हैं ऐसी भाषा निश्चय ही श्रमण माहण को कलंक देने वाली है और अन्य प्राण, भूत, जीव और सत्व में संयम पालना यह भी अभ्याख्यान है क्यों कि संसारी जीव स्थावर का संपूर्ण

घराते हैं ख० निश्चय ते० वे स० श्रमण स० श्रमणोपासक ज जिस अ० दूसरे जी जीव पा० प्राणी भू० भूत स० सत्व सं०पालते हैं ता० उनको भी ते० वे अ० कलक घराते हैं क० कौनसा तं० उस हे हेतु को सां संसारी ख० निश्चय पा० प्राणी त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावरपने प० उपजते हैं था० स्थावर पा० प्राणी त० त्रसपने प उपजते हैं त० त्रसकाया से वि० चवकर था० स्थावर काया में उ० उपजते हैं

भास भासति अणुतात्रिय खलु ते भास भासति अब्भाइक्खंति, खलु ते समणे स मणोवासएवा जेहिंपि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं भूएहिं सत्तेहिं संजमयंति ताणवि ते अ ब्भाइक्खंति, कस्सणं त हेउं संसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चा यंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति, तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि

आयुष्य त्यागकर त्रसपने होता है अथवा त्रस का संपूर्ण आयुष्य त्याग कर स्थावरपने उत्पन्न होता है इस तरह त्रस काया में स्थावर उत्पन्न होने पर भी त्रस काया का स्थावर अघात्य है और श्रावक तो त्रस काया को उद्देश कर स्थूल प्राणातिपात का त्याग करते हैं इसलिये उन को व्रत भंग नहीं होता है परंतु तुम्हारे अभिप्राय से पृथक् २ जीव को उद्देश कर के प्रत्याख्यान करने वाले को अन्य पर्यायमें गया हुवा की भी विराधना होने से व्रत भंग होवे इस तरह से देखा जावे तो कोइ सम्यक् व्रत नहीं पाल सकता है तुम जो यहां भूत शब्द ग्रहण करते हो यह मात्र व्यामोह ही है यह भूत शब्द उपमा वाची

था० स्थावरकाया से वि० चवकर त० त्रसकाया में उ० उपजते हैं ते० उस ठा० त्रसकाया में उ० उत्पत्तिका ठा० स्थान को अ० अवध्य ॥ ७ ॥ स० वाद सहित उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को ए० ऐसा व० कहा क० कैसा ते० तुम आ० आयुष्मान् गो० गौतम तु० तुम व० बोलते हो त० त्रस पाणी त० त्रसपने अ० अन्यथा ॥ ८ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल

उववज्जंति, थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति, तेसिं च णं तस कायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ७ ॥ सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी, कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुब्भे वयह तसपाणा तसाआउ अन्नहा ॥ ८ ॥ सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा! जे तुब्भे

होसकता है जैसे देवलोकभूत नगर न कि देवलोक वैसे ही यहां त्रस भूत कहने से त्रस सरिखे जीव करना परंतु भूत शब्द का तदर्थ वाची है, जैसे शीत भूत उदक-ठंडाही जल वैसे त्रस भूत कहने से त्रस ही कहा जाय) ऐसा भूत शब्द का यहां कथन करने से पुनरुक्ति दोष आता है ॥ ७ ॥ ऐसा भगवन्त गौतम स्वामी से उत्तर सुनकर उदक पेढाल पुत्र बोला आयुष्मन् गौतम ! तुम त्रस प्राणी को त्रस कहते हो, या उस का अन्य प्रकार से कथन करते हो ? ॥ ८ ॥ गौतम स्वामी उत्तर देते हैं कि अहो उदक ! तुम त्रस भूत प्राणी त्रस कहते हुवे अतीत, अनागत का निषेध कर वर्तमान काल की ही स्थापना करते हो

पुत्र को ए ऐसा व० कहा आ० आयुष्मान् च० उदक जे० जो तु० तुम व० कहते हो त० त्रस भू० भूत पा० प्राणी ठ० त्रस त० उन को व० हम व० कहते हैं व० त्रस पा० प्राणी भ०जो व० हम व० कहते हैं त० त्रस प्राणी त० उन को तु० तुम व० कहते हो त० त्रस भूत प्राणी ए० ये सं० हैं दु० दो स्थान तु० तुल्य ए० एक अर्थी कि कैसे आ० आयुष्मन् इ० यह मे० भद्रो सु सुमाणित भ० है त० त्रस भू० भूत प्राणी त० त्रस इ० ये दु० दुष्पणीत भ० है व त्रस प्राणी त० त्रस त० उस में ए० एक आ० आयुष्मन्

वयह तसभूतापाणा तसा ते वय वयामो तसापाणा, जे वय वयामो तसापाणा ते तुम्भ वयह तसभूयापाणा एए संति दुवे ट्ठाणा तुल्ला एगट्ठा, किमाउसो इमे भ सु प्पणीयतराए भवइ तसभूयापाणा तसा इमे भे दुप्पणीयतराए भवइ तसा पाणा त सा, ततो एग माउसो पडिकोसह एक्क अभिणंदह अयपि भेदो से णो णेआउए भ

और हम उस को ही त्रस प्राणी त्रस कहते हैं ये दोनो वचन परमार्थ से तो एक ही है इस में अर्थ भेद कुच्छभी नहीं है तो फीर त्रस भूत प्राणी मत कि जो तुम्हारा मत है उसको सुमणीत कहते हो और त्रस कि जो हमारा मत है उस को तुम दुष्पणीत करते हो ऐसा तुम को शब्द पर क्या व्यामोह उत्पन्न हुवा कि एकार्थवाची शब्द होने पर एककी निंदा और एककी प्रशंसा करते हो इसलिये तुम्हारा यह भेद

या० स्थावरकाया से वि० चवकर त० त्रसकाया में उ० उपजते हैं ते० उस त० त्रसकाया में उ० उत्पत्तिका ठा स्थान को अ अवध्य ॥ ७ ॥ स० वाद सहित उ० उदक पे पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को ए ऐसा व कहा क कैसा ते० तुम आ० आयुष्मान् गो० गौतम तु० तुम व० बोलते हो त० त्रस प्राणी त० त्रसपने अ० अन्यथा ॥ ८ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल

उववज्जंति, थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायांसि उवक्जंति, तेसिं च णं तस कायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ७ ॥ सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी, कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुब्भे वयह तसपाणा तसाओ अन्नहा ॥ ८ ॥ सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा! जे तुब्भे

होसकता है जैसे देवलोकभूत नगर न कि देवलोक वैसे ही यहां त्रस भूत कहने से त्रस सरिखे जीव करना परंतु भूत शब्द का तदर्थ वाची है, जैसे शीत भूत उदक-ठंडा ही जल वैसे त्रस भूत कहने से त्रस ही कहा जाय) ऐसा भूत शब्द का यहां कथन करने से पुनरुक्ति दोष आता है ॥ ७ ॥ ऐसा भगवन्त गौतम स्वामी से उत्तर सुनकर उदक पेढाल पुत्र बोला आयुष्मन् गौतम! तुम त्रस प्राणी को त्रस कहते हो, या त्रस का अन्य प्रकार से कथन करते हो? ॥ ८ ॥ गौतम स्वामी उत्तर देते हैं कि अहो उदक! तुम त्रस भूत प्राणी त्रस कहते हुवे अतीत, अनागत का निक्षेप कर वर्तमान काल की ही स्थापना करते हो

पुत्र को ए ऐसा व० कहा आ० आयुष्मान् उ० उदक जे० जो तु० तुम व० कहते हो त० त्रस भू० भूत पा० प्राणी त० त्रस त० उन को व० हम व० कहते हैं त० त्रस पा० प्राणी ज० जो व हम व कहते हैं त० त्रस प्राणी ते० उन को तु० तुम व० कहते हो त० त्रस भूत प्राणी ए० ये सं० हैं दु० दो स्थान तु० तुल्य ए० एक अर्थ कि कैसे आ० आयुष्मन् इ यह मे० महो सु सुभाषित म० है त त्रस भू० भूत प्राणी व० यह इ० ये दु० दुष्प्रणीत भ० है त त्रस प्राणी म त्रस त० उस में ए० एक आ० आयुष्मन्

वयइ तसभूतापाणा तसा ते वय वयामो तसापाणा, जे वयं वयामो तसापाणा ते तुब्भ वयह तसभूयापाणा एए सति दुवे ट्ठाणा तुल्ला एगट्ठा, किमाउसो इमे भे सु प्पणीयतराए भवइ तसभूयापाणा तसा इमे भे दुप्पणीयतराए भवइ तसा पाणा त सा, ततो एग माउसो पडिकोसह एक्क अभिणदह अयपि भेदो से णो णेआउए भ

और हम उस को ही त्रस प्राणी त्रस कहते हैं ये दोनो वचन परमार्थ से तो एक ही है इस में अर्थ भेद कुच्छभी नहींहै तो फीर त्रस भूत प्राणी त्रस कि जो तुम्हारा मत है उसको सुप्रणीत कहते हो और त्रस कि जो हमारा मत है उस को तुम दुष्प्रणीत कहते हो ऐसा तुम को शब्द पर क्या व्यामोह उत्पन्न हुवा कि एकार्थवाची शब्द होने पर एककी निंदा और एककी प्रशंसा करते हो इसलिये तुम्हारा यह भेद

प॰स्थापन करते हो प॰एकही भ॰निरा करवेसो अ यह मे॰भेद मे॰नाह णे॰नहीं मे॰न्यायी भ॰ है॥१॥ भ॰ भगवान् उ बोले मं॰ है ए॰ कितनेक म॰ मनुष्य भ॰ होते हैं ते॰ उस में ए॰ ऐसा वु॰ कहा हुवा पु॰ पहिले भ॰ है णो॰ नहीं व॰ हम सं॰ समर्थ मुं॰मुंड भ॰ होने को आ॰ गृहस्थावास से अ॰ साधुपना को प॰ अंगीकार करने को समर्थ पा॰ अंगीकार करेंगे अ॰ अनुक्रम से गु॰साधुपना लि॰ लेंगे ते॰ वे ए॰ ऐसा सं॰कहते हैं ते॰ वे स कथन ठ॰ स्थापन करते हैं ते॰ वे ए॰ ऐसा सं॰ कथन ठ॰ स्थापन कराते हैं न॰ नहीं अ॰ अन्य भ॰ अभियोग से गा॰ गाथापति चो॰ चोर ग्रहण वि॰ छोडना त॰ त्रस पा॰ प्राणी से नि छोड कर दं॰

वह ॥ १ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइआ मणुस्सा भवंति तेसिं च णं एवं वुत्त पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए वयण्हं अणुपुव्वेण गुत्तस्स लिसिस्सामो ते एवं ससेवेंति, ते एवं सखं ठवयंति, ते एवं सखं ठवयंति नन्नत्थ अभिओएणं गाहावइचोरग्गहण विमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं

न्याय निष्पक्ष नहीं है ॥ १ ॥ अब श्री गौतमस्वामी कहते हैं कि कोई लघुकर्मी पुरुष ऐसा कहे कि हम गृहस्थ वास का त्याग कर के मुंडित अनगार होने को समर्थ नहीं हैं, इसलिये हम पहिले देश विरति रूप श्रावक का धर्म पाल कर अनुक्रम से साधुपना पालेंगे इस तरह वे कथन करे और उस का प्रत्याख्यान कर मन में सम्यक् प्रकार से धारन करे अथवा राजादिक का अभियोग से त्रस प्राणी की घात होने

तो इस में व्रत भंग नहीं होता है ऐसा मत्याख्यान साधु का उपदेश सुनकर करे उस पर चोर का ग्रहण और विमोक्ष करने वास्ते गृहपति तथा राजा का दृष्टांत कहते हैं

किसी रत्नपुर नामक नगर में रत्नशेखर राजाने कौमुदी महोत्सव करने का विचार किया और रत्न माला प्रमुख अपनी आठों राणियों को कहलाया कि आज चन्द्रकी चांदनी में स्वतंत्र क्रीडा करनी और इसी तरह नगर में भी उद्घोषणा कराइ कि आज रात्रिको किसी पुरुष को नगर में रहना नहीं सब को संध्या समय गांव की बाहिर उद्यान में जाना यदि कोई पुरुष नगर में रहेगा तो राजा उस की घात करावेगा ऐसी नृप की उद्घोषणा सुनकर सब लोग संध्या समय नगर की बाहिर गये और राजा भी सपरिवार बाहिर गया, वहां कोई वणिक के छ पुत्रों क्रयविक्रय की व्यग्रता से नगर में रह गये और सूर्यास्त होने से जब बाहिर नीकलने लगे तब नगर के दरवाजे बंध देखे इस से भयभ्रांत बनकर के वे नगर में किसी गुप्त स्थान में छुपा बेठे महोत्सव संपूर्ण हुवे बाद राजाने रक्षक को बोलाकर कहा अहो रक्षको ! तुम अच्छी तरह तलास करो कि इस नगर में कोई पुरुष रहा है ? इस तरह तलास करते श्रेष्ठि के छ पुत्रों देखे, और राजा को आकर विनंति की कोई श्रेष्ठि के छ पुत्रों नगर में रहे हैं राजाने छही पुत्रों का विनाश करने की आज्ञा दी ऐसा सुन श्रेष्ठि पुत्रशोक से व्याकुल बन राजा की पास आकर अर्ज करने लगा कि अहो स्वामिन् मेराकुल का क्षय मत करो और जो कुछ हमारे घर में धन रहा है उसे लेकर

आप मेरे पुत्रों को जिन्दे रखो ऐसा उस का वचन सुनकर राजा क्रोधित होकर बोला अरे पापिष्ठ राजा की आज्ञा राजा को प्राण सम होती है जिनोंने राजा की आज्ञा नहीं मानी है उनोंने राजा के प्राण का हरण किया है ऐसा मानाजाता है, इसलिये मैं तेरे पुत्रों को जिन्दा नहीं रखूंगा राजा का एसा आग्रह जानकर फिर श्रेष्ठिने पांच पुत्रों को जीन्दे रखने की विनंति की; परंतु राजाने मानी नहीं, फीर राजा को चार पुत्रों छोडने की प्रार्थना की परन्तु वह भी मान्य की नहीं फीर तीन को छोडने की और आखीर दो को छोडने की प्रार्थना की परंतु राजाने मान्य ही नहीं श्रेष्ठी घबराया और नगरके प्रातिष्ठित गृहस्थों को एकत्रित करके राजा की पास विनंति कराइ हे स्वामिन् ! आप प्रजा के पिता हो, और इस तरह हमारा कुल का क्षय करना यह योग्य नहीं है, यह आप के शरण आय हुवे हैं चाहे तो मारो या बचावो ऐसा कहकर वे राजा के पाँव में पडे तब राजाने अनुकंपा करके उन छ पुत्रों में से एक ज्येष्ठ पुत्रको मुक्त किया यह द्रव्य दृष्टांत कहा अब उसकी योजना करते हैं राजा सम श्रावक श्रेष्ठी सम साधु और छ पुत्र सम षट्काया के जीव जानना जैसे श्रेष्ठि का विलाप से राजाने एक पुत्र को जब मुक्त किया तब अपने को कृतार्थ मानता था यद्यपि पांच पुत्रों का विनाश करने का श्रेष्ठी का भाव नहीं है परन्तु राजा छोडे नहीं वहां करे क्या ? वैसे ही यहां साधु श्रावक को संरक्षण करने का उपदेश करते हैं, परंतु असक्तपना से श्रावक मात्र त्रस काया का बचाव कर सकते हैं इस लिये साधु भी जो कुच्छ श्रावक रखे उस से श्रावक को कृतार्थ जाने परंतु श्रावक जो दूसरी पंचकाय की घात करते हैं उस की

दृष्ट का व उस को ते० उन में कु० कुशल म० होते हैं ॥ १० ॥ त० त्रस बु० कहते हैं त० त्रस त० त्रस का स० समारंभ करनेसे क० कर्मसे अ० पदय म० होताहै त० त्रस आयुष्य को प० क्षय होने से म० होता है त० त्रस काय स्थितिवाले ते० वे त० वहां से आ० आयुष्य वि० छोडते हैं ते० वे त० वहां से आ० आयुष्य वि० छोड कर था० स्थावरपन प० उपजते हैं था० स्थावर बु० कहाते हैं था० स्थावर था० स्थावर का सं० समारंभ क० कर्म से अ० पदय म० होते हैं था० स्थावर आ० आयुष्य प० क्षय करके म० होते हैं था० स्थावरका

निहाय एड तपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥ तसावि वुच्चति तसा तससमारक-डेण कम्मुणा णाम च ण अब्भुवगय भवइ, तसाउयं च ण पलिक्खीण भवइ तस कायट्ठिइया, ते तओ आउय विप्पजहति ते तओ आउय विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायति, थावरावि वुच्चति थावरा थावरसमारकडेण कम्मुणा णाम च णं अब्भुवगयं

अनुमति साधु को नहीं है इसलिये इस का दोष साधु को कुच्छ भी नहीं है अब श्रावक त्रस की हिंसा छोड कर जितनी विरति करे उतनाही उन को कर्म रूप लाभ होता है ऐसा जानना ॥ १ ॥ उक्त दृष्टांत के पहिले उदक पेढाल पुत्र ने अपना अभिप्राय बतलाया था और जैसे नागरिकपुरुष की हिंसा का त्याग करनेवाला उद्यान में बैठाहुवा नागरिक को मारे तो वह नागरिक का घातक कहा जासकता है वैसे ही त्रस जीव स्थावर में उत्पन्न होते उस की घात करने से व्रतधारी व्रतभंग होता है उस का उत्तर देते हैं

आप मेरे पुत्रों को जिन्दे रखो ऐसा उस का वचन सुनकर राजा क्रोधित होकर बोला अरे पापिष्ट राजा की आज्ञा राजा को प्राण सम होती है जिनोंने राजा की आज्ञा नहीं मानी हैं उनोंने राजा के प्राण का हरण किया है ऐसा मानाजाता है, इसलिये मैं तेरे पुत्रों को जिन्दा नहीं रखूंगा राजा का ऐसा आग्रह मानकर फिर श्रेष्ठिने पांच पुत्रों को जीन्दे रखने की विनति की, परंतु राजाने मानी नहीं, फीर राजा को चार पुत्रों छोडने की प्रार्थना की परतु वह भी मान्य की नहीं फीर तीन को छोडने की और आखीर दो को छोडने की प्रार्थना की परंतु राजाने मान्य ही नहीं श्रेष्ठी घबराया और नगरके प्रतिष्ठित गृहस्थों को एकत्रित करके राजा की पास विनंति कराइ हे स्वामिन् ! आप प्रजा के पिता हो, और इस तरह हमारा कुल का क्षय करना यह योग्य नहीं है, यह आप के शरण आये हुवे हैं चाहे तो मारो या बचावो ऐसा कहकर वे राजा के पाँव में पडे तब राजाने अनुकंपा करके उन छ पुत्रों में से एक ज्येष्ठ पुत्रको मुक्त किया यह द्रव्य दृष्टांत कहा अब उसकी योजना करते हैं राजा सम श्रावक श्रेष्ठी सम साधु और छ पुत्र सम छ्काया के जीव मानना जैसे श्रेष्ठि का विलाप से राजाने एक पुत्र को जब मुक्त किया तब अपने को कृतार्थ मानता था यद्यापि पांच पुत्रों का विनाश करने का श्रेष्ठी का भाव नहीं है परतु राजा छोडे नहीं वहां करे क्या ? वैसे ही यहां साधु श्रावक को सरक्षण करने का उपदेश करते हैं, परंतु अशक्तपना से श्रावक मात्र त्रस काया का बचाव कर सकते हैं इस लिये साधु भी जो कुच्छ श्रावक रखे उस से श्रावक को कृतार्थ माने परंतु श्रावक जो दूसरी पंचकाय की घात करते हैं उस की

दड को स० उस का ते० उस में कु० कुशल भ होते हैं ॥ १० ॥ त० त्रस वु० कहते हैं त० त्रस त० त्रस का सं० समारंभ करनेसे क० कर्मसे भ०पत्य भ०होताहै त०त्रस आयुष्य को प०क्षय होने से भ०होता है त० त्रसकाय स्थितिवाले ते वे त०तहां से आ०आयुष्य वि०छोडते हैं ते०वे त०तहां से आ०आयुष्य वि०छोड कर था० स्थावरपन प० उपजते हैं था० स्थावर वु० कहाते हैं था० स्थावर था०स्थावर का सं० समारंभ क० कर्म से भ० पत्य अ० होते हैं था० स्थावर आ० आयुष्य प० क्षय करके भ० होते हैं था० स्थावरका

निहाय दड तपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥ तसावि वुच्चति तसा तससभारक डेण कम्मुणा णाम च ण अब्भुवगय भवइ, तसाउयं च ण पलिक्खीण भवइ तस कायट्ठिइया, ते तओ आउय विप्पजहाति ते तओ आउय विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चा यति, थावरावि वुच्चति थावरा थावरसभारकडेण कम्मुणा णाम च णं अब्भुवगयं

अनुमति साधु को नहीं है इसलिये इस का दोष साधु को कुच्छ भी नहीं है अब श्रावक त्रस की हिंसा छोड कर जितनी विरति करे उसनाही उन को कर्म रूप लाभ होता है ऐसा जानना ॥ १ ॥ उक्त दृष्टांत के पहिले उदक पेढाल पुत्र ने अपना अभिप्राय बतलाया था और जैसे नागरिकपुरुष की हिंसा का त्याग करनेवाला उद्यान में बैठाहुवा नागरिकको मारे तो उस नागरिक का घातक कहा जासकता है वैसे ही त्रस जीव स्थावर में उत्पन्न होते उस की घात करने से अवश्यही व्रतभंग होता है उस का उत्तर देते हैं

याकी स्थिति वाले व० वहां से आ० आयुष्य क्षि० छोडके हैं त० वहां स आ० आयुष्य क्षि० छोड करके मु०फीर प०परलोकपन प०उत्पन्न होवे हैं ते०उन पा०प्राणी को दु०खाते हैं ते०उनको व०त्रस दु०करातेहैं

मवइ थावरा आउय च ण पलिक्खीण मवइ थावरकायट्ठिइया, तओ आउयं विप्प-
जहति तओ आउय विप्पजहित्ता भुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति, ते पाणावि वुच्चंति

त्रस नाम कर्म का उदय जीव से त्रस में उत्पन्न होवे और वहां जघन्य अंतर मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक दो हजार सागरोपम तक रहकर आयुष्य क्षीण होने पर त्रसपना छोड कर स्थावरपने उत्पन्न होवे और जब स्थावर में उत्पन्न होवे तब वे स्थावर को भावे फीर वे स्थावर नाम कर्म का उदय से स्थावर पने वहां जघन्य अंतर मुहूर्त उत्कृष्ट अनंत काल असंख्यात पुद्गल परावर्तन तक रह कर आयुष्य क्षीण होने पर स्थावरपना छोडकर त्रसपना पावे जब वह त्रसपना पावे तब उस को प्राण अथवा त्रस प्राण कहा जासकता है वे बडी काया वाले और लम्बी स्थिति वाले हो सकते हैं अब यहां श्रावकने मात्र त्रस का ही प्रत्याख्यान किया है परंतु स्थावर में उत्पन्न हुवे त्रस जीवों का प्रत्याख्यान नहीं किया है, इसलिये कौनसा व्रत का भंग हुवा और भी तुमने नागरिक का दृष्टांत दीया है, वह भी यहां संभवता नहीं है, क्यों कि नगर का धर्म धारने वाला ही नागरिक कहा जा सकता है उस को हणना नहीं ऐसी प्रतिज्ञा वसने की है फीर उद्यानादिक में बैठा हुवा उस नागरिक का वध करने वाले का व्रत भंग होवे, यह दृष्टांत यहां पर त्रस

ते० वे म० बडी कायावाले ते० वे चि दीर्घ स्थितिवाले ॥११॥ स० वाद सहित उ० उदक पे० पेढालपुत्र ने भ० भगवान् गो गौतम को ए० ऐसा व कहा आ० आयुष्मान् गो० गौतम न० नहीं है से० वह के कोइ प० पर्याय ज० जिससे स० श्रमणोपासकका ए० एक पा० प्राणातिपात विरति दं० दंड नि० दूर क रना क० कौनसा त उस हे० हेतुको सां संसारी पा० प्राणी था० स्थावर पा० प्राणी त० त्रसपने प० उत्पन्न होते हैं त० त्रस पा० प्राणी था० स्थावरपने प० उत्पन्न होते हैं था० स्थावर काया से वि० पृथ

ते तसावि वुचंति ते महाकायाए ते चिरट्ठिइया ॥ ११ ॥ सवायं उदए पेढालपुत्ते-भगवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा णत्थिणं से केइ परियाए जण्णं समणोवा-सगस्स एगपाणातिवायविरएवि दंडे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउ? सासारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति, थावरकायाओ

स्थावर का भेद में लिखा नहीं है यदि वह नागरिक बाहिर आरामादिकमें जावे तो क्या उस का नागरिक पना चला गया? क्यों कि वहां नागरिक उसी आकार व रूप में है इसलिये यह दृष्टांत अयोग्य है और यहां मिलता नहीं है ॥ १२ ॥ अब उदक पेढाल पुत्र भगवंत गौतम स्वामी से बोले कि अहो आयुष्मन् गौतम! ऐसी कोई पर्याय नहीं है कि जिस से श्रावक प्राणातिपात विरति में भी हिंसा का त्याग कर सके क्योंकि संसारी जीव परस्पर योनि में गति करने वाले हैं त्रस प्राणी मरकर स्थावरपने उत्पन्न

से दं० दंड नि० निक्षेप भ० है क० कानसी त० उस हे० हेतुको सं० संसारी स० निश्चय पा० प्राणी त० त्रस प्राणी था० स्थावरपने प० उत्पन्न होते हैं था० स्थावर प्राणी त० त्रसपने प० उत्पन्न होते हैं त० त्रसकाया से वि० मुक्त होके स० सर्व था० स्थावर कायामें उ० उत्पन्न होते हैं था० स्थावर कायासे वि० मुक्त होके स० सर्व त० त्रस काया में उ० उत्पन्न होते हैं ते० उस त० त्रसकायामें उ० उत्पत्तिका ठा० स्थान अ० घात के अयोग्य ते० वे पा० प्राणी मु कहाते हैं ते० वे त त्रस मु० कहाते हैं वे० वे म० व

सव्वभूएहिं, सव्वजीवेहिं, सव्वसत्तेहिं, दंडे निक्खित्ते भवइ, कस्सणं त हेउं? संसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति, थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति, तस कायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावरकायंसि उववज्जंति, थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति, तेसिं च णं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं, ते

हो जावे तो हमारा कथन से ऐसा बना नहीं है, बनने का नहीं है, और बनता भी नहीं है; क्योंकि स्थावर अनंते हैं, और त्रस असंख्याते हैं अनंत का असंख्यात में समावेश नहीं हो सकता है समस्त त्रस जीव स्थावर में उत्पन्न हो जावे परंतु त्रस शून्य लोक नहीं हो सकता है वैसे ही स्थावर शून्य लोक भी नहीं हो सकता है, ऐसा हमारा मत है अब तुम्हारा पक्ष का तुम्हारे वचन से ही निराकरण करते हैं तुम्हारे कथनानुसार ही श्रावक सब प्राण भूत जीव और सत्व की घात का त्याग करसके

हुवे स० सर्व त० त्रस काया में उ० उत्पन्न होते हैं त० त्रस काया से वि० चवे हुवे स० सर्व था० स्थावर काया में उ०उत्पन्न होते हैं त०उसमें था०स्थावर काया में उ० उत्पत्तिका ठा० स्थान की घ० घात हुई ॥ १२ ॥ स० वाद सहित भ० भगवान् गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पुत्रको ए० ऐसा व०बोले णो० नहीं ख० निश्चय आ० आयुष्मान् अ०हमारा व० वक्तव्य तु० तुमको ये० निश्चय अ०कथन भ० है से०वह प० पर्याय ज० जो स० श्रमणोपासक का स० सर्व प्राणीसे स० सर्व भूत से स० सर्व जीवसे स० सर्व सत्व

विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकायंसि उववज्जंति, तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा, सव्वे थावर कायंसि उववज्जंति, तेसिं च ण थावरकायंसि उववज्जमाण ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥ सवाय भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आउसो अस्साकं वत्तव्वं एए तुब्भं चेव अणुप्पवादेण अत्थि ण से परियाए जेण समणोवासगस्स सव्वपाणेहिं

होते हैं और स्थावर चयकर त्रसपने उत्पन्न होते हैं इस से कभी ऐसा भी समय आजावे कि सब स्थावर जीवों आयुष्य पूर्ण कर त्रस पने उत्पन्न हो जावे अथवा सब त्रस जीवों आयुष्य पूर्ण कर के स्थावर पन उत्पन्न हो जावे फीर कोई स्थावर अथवा त्रस रहे नहीं उस समय श्रावक को स्थावर में रहे हुवे त्रस का स्थानक की घात होने से व्रतभंग हुवा ॥ १२ ॥ अब गौतम स्वामी उत्तर देते हैं कि अहो आयुष्मन् उदक ! तुम कहते हो कि समस्त जीव स्थावरपना का त्याग कर ...

से० वे स० श्रमणोपासक को ए० एक पा० प्राणी प० निवृत्त दं० दंड णि० निषेध अ० यह भे० भेद से० वे णो० नहीं ण० न्याय युक्त भ० है ॥ १२ ॥ भ० भगवान् व० कहा नि० निर्ग्रंथ ख० निश्चय पु० पूछना आ० आयुष्मान् नि० निर्ग्रंथ इ० यहां ख० निश्चय सं० है ए० कितनेक म० मनुष्य भ० होते हैं ते० उस में ए० ऐसा वु० कहाहुवा पु० पहिले भ० है जे० जो इ० ये मुं० मुंड भ० हो करके आ० आगार से अ० अनागार को प० अंगीकार करके ए० इस में आ० मरणान्त तक दं० दंड में णि०

गरस्स एगपाणा पत्तिरएवि दंडे णिक्खित्ते अयपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥१२॥ भगवं च णं उदाहु नियंठा खलु पुच्छियव्वा, आउसंतो नियंठा! इह खलु संतेगइया, मणुस्सा भवंति, तेसिं च णं एवं वुत्त पुव्वं भवइ, जे इमे मुंडे भवित्ता, आगाराओ अणगारियं पव्वइत्ता, एएसिं च णं आमरणताए दंडे णिक्खित्ते जे इमे आगारमाव

हते हैं इस से उन को अच्छा प्रत्याख्यान होवे और तुम कहते हो कि ऐसी कोई पर्याय नहीं है, कि जिस पदार्थ से प्राणातिपात का प्रत्याख्यान होवे ऐसा तुम्हारा कथन न्याय मार्ग का नहीं है ॥ १२ ॥ अब भगवत गौतम स्वामी स्थावर पर्याय में गये हुवे त्रस जीवों की विराधना करने से व्रत भंग नहीं होता है ऐसा अर्थ की सिद्धि करने के लिये तीन दृष्टांत बतलाते हैं गौतम स्वामी अन्य निर्ग्रंथों की साक्षी कर के बोलते हैं कि अहो उदक! मैं जो कहता हूं उस के साक्षीभूत य निर्ग्रंथो हैं इसलिये इन को पूछना ऐसा

थी कायावाले सि० दीर्घ स्थितिवाले से वे प० बहुत य० त्रस प्राणी ज० जिसमें स श्रमणोपासक को सु० अच्छा प्रत्याख्यान भ० होता है ते० वे अ० थोरे पा० त्रस प्राणी ज० जिसमें स० श्रमणोपासक को अ० अप्रत्याख्यान भ० होता है से० वे म० महान् त० त्रसकाया से उ० उपशांत उ० सावधान प० निवृत्त को ज० जो तु० तुम अ० अन्य प० ऐसा व० कहते हो प० नहीं है से० वे स० श्रमण के० कोई प० पर्याय जं० जो

पाणावि वुच्चंति, ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया, ते चिरट्ठिइया ते बहुयरगा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवति ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स परिविरयस्स जन्नं तुब्भे वा अन्नो वा एवं वदह, णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवास

ऐसी एक पर्याय है अब तुम्हारे कथन से सब स्थावर जीव त्रसपने उत्पन्न होवे तो सब प्राणी का प्रत्याख्यान श्रावक को हुवा क्यों कि संसारी जीव त्रसपना छोडकर स्थावरपने उत्पन्न होवे और स्थावरपना छोडकर त्रसपने उत्पन्न होवे इसलिये श्रावक को त्रस का स्थान में विराधना का कुच्छ भी कारण नहीं है इस से त्रस का त्रस प्राणी अथवा त्रस कहे जा सकते हैं इस तरह सब जीव मरकर त्रस में उत्पन्न होवे तो सब स्थावर का अभाव हुवा और तुम्हारा कथनानुसार श्रावक को अच्छा प्रत्याख्यान हुवा और तुम तो कहते हो कि श्रावक को अप्रत्याख्यान होवे श्रावक बरी त्रस काया का आरंभ से निवर्ते

स्थावर पा० प्राणी से दं० दंड में णो० नहीं णि० निषेध त० उसके तं० उस था० स्थावरकाया की प० वध करता हुवा से० उन को प० प्रत्याख्यान का णो० नहीं भं० भंग भ० होवे से० वे ए ऐसा जानो णि० निर्ग्रंथ से० वे ए० ऐसा जा० जानना ॥ १८ ॥ भ० भगवान् उ० बोले नि निर्ग्रंथ को पु० पूछना आ० आयुष्मन् नि० निर्ग्रंथ ! यहां ख० निश्चय गा० गाथापति गा० गाथापति पुत्र त० तथा प्रकार क कु० कुल में आ० आकर ध०धर्म स० सूननेको उ० उपसन्त होवे हं० हां उ० उपसन्त होव

एवमेव समणोवासगस्सवि तसेहिं पाणेहिं दंडे णिक्खित्ते, थावरेहिं पाणेहिं दंडे णो णिक्खित्त, तस्सणं तं थावरकाय वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो भगे भवइ से एवं मा याणह णियंठाए से एव मायाणियव्व ॥ १४ ॥ भगवं च णं उदाहु नियंठा खलु पुच्छियव्वा, आउसंतो नियंठा ! इह खलु गाहावई गाहावइपुत्तोवा तहप्पगारेहिं कु

से भ्रष्ट हो कर गृहस्थ बना तो उस को मारने से उस पुरुष का व्रत भंग हुवा या नहीं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् उस का व्रत भग नहीं हुवा ऐसा निर्ग्रंथ बोले एसे ही श्रावक को त्रस प्राणी की घात करने का नियम है, परंतु स्थावर की घात का नियम नहीं है इसलिये त्रस मिटकर स्थावर बनाहुवा जीव की विराधना करने वाले को व्रत भंग होवे नहीं ऐसा जानना ॥ १८ ॥ फीर गौतम स्वामी दूसरा दृष्टांत बताते हुवे बोले कि अहो निर्ग्रंथो ! इस जगत् में गृहस्थ अथवा गृहस्थ का पुत्र अच्छे कुल में उत्पन्न

निषेध के० जो इ० इस आ० आगार में वा० वसते हैं ए० इन में आ० मरणान्त तक द० दंड में णो० नहीं णि० निषेध के० कोई स० श्रमण जा० यावत् चा० चार पं० पांच छ० छह द० दश अ० अल्प दु० दीर्घ दे० अल्प को दू० अंगीकारकर आ० आगार में आ० रहे हं० हां व० रहे त० ऐसे तं० उस गा० गृह में व० रहते हुवे को ते० उस प० प्रत्याख्यानका भं० भंग भ० होवे णा० नहीं इ० यह अर्थ स० समर्थ ए० ऐसे स० श्रमणोपासक को त० त्रस प्राणी से द० दंड में णि० निषेध पा०

संति एगतिया मणुस्सा जेहिं णो एवं वुत्तपुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, वयं णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो

सत्ति एगतिं णं आमरणताए दंडे णो णिक्खित्ते कइ त च ण समणा जाव वासाई च उपसमाइ छद्दहसमाइं अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देस दूइज्जित्ता आगारमावसेज्जा ? हंता वसेज्जा. तस्सणं तं गारत्थं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे भगे भवइ णो इणट्ठे समट्ठे

कर कर गौतम स्वामी बोले आयुष्मन्त निर्ग्रंथो ! इस जगत् में कोई शांति प्रधान मनुष्य है, उन को ऐसा नियम है, कि मैं मवजित अणगार की घात नहीं करूंगा ऐसा व्रत अंगीकार करने से उन को गृहस्थ वध का त्याग हुवा नहीं अब कोई साधु चार, पांच यावत् छह, दश, पंदरह वर्ष, अल्प काल या बहुत काल पर्यंत संयम पालकर तथाविध कर्म का उदय से गृहस्थ वास का सेवन करे ऐसा संभवता है या नहीं ? अन्य निर्ग्रंथ बोले, हां भगवन् ! चारित्र से भ्रष्ट होकर गृहस्थ बनसके. क्यों की कर्म की गति विचित्र है अब जिस पुरुष ने ऐसा नियम किया है कि साधुपना में रहा हुवा पुरुष का विनाश मैं नहीं करूंगा अब यह चारित्र

नि०रहे उ०तैसे णि०बैठे व० तैसे तु०सोवें स०तैसे मुं०भोजन में व तैसे भा०बोलें उ०तैसे अ० सावधान होवें उ० तैसे उ०उठे उ०उठकर पा०प्राणी के भू०भूतोंके जी०जीवों के स०सत्व के सं० संयम से सं० संयम पालकर प०होने ह०हां प०वाले किं०क्या ते०उन का त०तथा प्रकारका क०कल्पता है प प्रवर्तनेको हं०हां क०कल्पता है किं०क्या ते०उन का त तथा प्रकारका क०कल्पता है मुं मुंडित करना हं०हां क०कल्पता है किं०क्या ते०

पहीणमग्ग एत्थठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति तं आणाए तहा गच्छामो, तहा चिट्ठामो, तहा णिसियामो, तहा तुयट्टामो, तहा भुंजामो, तहा भासामो तहा अब्भुट्ठामो तहा उट्ठाए उट्ठेमोत्ति पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामोत्ति वएज्जा? हंता वएज्जा किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावित्तए? हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंडावित्तए? हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा

य केवली भाषित है इस समान अन्य कोइ मार्ग नहीं है यह मोक्ष मार्ग के गुणों कर के प्रतिपूर्ण, शुद्ध, शल्य का मिटाने वाला, सिद्धि का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, समस्त कर्म क्षय करने का मार्ग, सत्य और संदेह रहित है इस में रहे हुए जीवों कार्य सिद्धि करते हैं, लोकालोक का स्वरूप जानते हैं सब दुःखों से मुक्त होते हैं, कर्म रूप अग्नि को शांत करते शीतलीभूत बनते हैं और सर्व दुःखों का अंत इस में किया

प वध न त० तथा प्रकारका ध० धर्म आ कहता है हां आ कहना ते० वे त० तथा प्रकारका प धर्म को सो० सूनकर नि० अवधारकर ए एसा व० कह इ० यह नि० निर्ग्रंथ का पा० प्रवचन स० सत्य अ० अनुत्तर के० केवल प० प्रतिपूर्ण सं० शुद्ध णे० न्यायी स० शल्य छेदक सि० सिद्धि मार्ग मु० मुक्ति मार्ग नि० निस्तार मार्ग नि० निर्वाण मार्ग अ० यथातथ्य स० देखा हुवा स सर्व दु० दुःख से प० मुक्त म मार्ग ए इस में ठि रहे हुवे जी जीव सि० सिद्ध होवे हैं बु० जानते हैं मु० मुक्त होते हैं प० निर्वाण पाते हैं स० सर्व दु० दुःख का अं० अंत करते हैं त० उस आज्ञा त० वैसे ग० जावे त० वैसे

लहिं आगम्म धम्म सवणवत्तियं उवसकमेज्जा? हंता उवसकमेज्जा। तेसिं च णं तहप्पगाराणं धम्म आइक्खियव्वे? हंता आइक्खियव्वे किं ते तहप्पगार धम्म सोच्चा निसम्म एव वएज्जा इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं, संसुद्धं, णेयाउयं, सल्लकत्तणं, सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, निज्जाणमग्गं, निव्वाणमग्गं, अवितहमसंदिद्धं, सव्वदुक्ख

हा कर धर्म श्रवण करने का उद्यम करे ? निर्ग्रंथ बोले हां भगवन् ! ऐसा पुरुष धर्म श्रवण करने का उद्यम कर फीर गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछा कि ऐसे गृहस्थ का धर्म का उपदेश करना ? निर्ग्रंथ बोले हां भगवन् ! ऐसे को धर्मोपदेश करना क्योंकि धर्म का श्रवण कर, और हृदय में अवधार कर के वे ऐसा बोले कि तीर्थंकर भाषित निर्ग्रंथ का प्रवचन सत्य है, समस्त जीवों को हितकारी है, अन्य शास्त्रो प्रधान

स० जिस के प० प्रथम स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सत्व से दं० दंड णो० नहीं णि० निक्षेप से० वे जे० जो से० वे जी० जीव ज० जिस के आ० बीच में स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सत्व से दं० दंड में णि० निक्षेप से० वे जे० जो से० वे जी० जीव ज० जिस के इ० अभी स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सत्व से दं० दंड णो० नहीं णि० निक्षेप भ० होवे प० प्रथम अ० असंयति आ० बीच में सं० संयति इ० अभी अ० असंयति अ० असंयति का स० सर्व प्राणी से जा० यावत् स० सर्व सत्व से दं० दंड में णो० नहीं णि० निक्षेप भ० होवे सं० वह ए० ऐसे आ० जानो नि० निर्ग्रंथ से० वह ए०

णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स आरेण सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णि क्खित्ते से जे से जीवे जस्स इयाणिं सव्वपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ, परेण असंजए, आरणं संजए, इयाणिं असंजए असंजयस्स ण सव्वपाणेहिं

लीये बाद सब प्राण, भूत, जीव, व सत्व का त्याग करना कल्पे ? हां भगवन् ! कल्पे इस तरह वोचार यावत् थोडा या बहुत समय तक दीक्षा पालकर गृहस्थपना का सेवन करे ? हां भगवन् ! तथाविध कर्म के उदय से सेवन करे क्यों की कर्मों की गति विचित्र है जब उसने चारित्र का त्याग किया तब वह प्राणी आदि की घात से मुक्त हुवा ? यह मुक्त नहीं हुवा, जैसे वह जीव प्रथम गृहस्थ था, बाद में चारित्रिय हुवा और फीर गृहस्थ हुवा यह वो तीनों अवस्थाओं में एक ही था परंतु उसको पहिले असंयत, फीर

उनको त० तथा मकारका क० कल्पता है सि० पढाना ? हं० हां क० कल्पता है कि० क्या ते० उनको त० तथा प्रकारका क० कल्पता च सावधान करना ? हं० हां क० कल्पता है ते० उस में त० तथा मकार का स० सर्व माण से जा० यावत् स० सर्व सत्व से दं० दंड में णि० निषेप ? हं० हां णि० निषेप से० वह ए० इस मकारका वि० विहार से वि० विचरता जा० यावत् मा० मर्ष च० चार पं० पंच छ० छह द० दस अ० अल्प मु० दीर्घ द० चारित्र दू० अंगीकार करके आ० आगार च० रहे हं० हां च० रहे त० तैसे स० सर्व माणी मे जा० यावत् स० सर्व सत्व से दं० दंड णो० नहीं णि० निषेप से० वे जे० जो से० वे जी० जीव

कप्पति सिक्खावित्तए? हंता कप्पति किं ते तहप्पगारा कप्पति उवट्ठावित्तए? हंता कप्पं ति तेसिं च णं तहप्पगाराणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते? हंता णिक्खित्ते से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा जाव वासाइं चउपंचमाई छट्ठदसमाइं वा अप्पयरो वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जेत्ता आगारं वएज्जा? हंता वएज्जा तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्व सत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स परेणं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं दंडे

आ सकता है ऐसा धर्म प्राप्त कर के हम ऐसे चले, खडे, बैठे, सोवे कि जिस से कर्म बंध न होवे ऐसे वाक्यों र निर्ग्रन्थो गृहस्थ बोले ? हां भगवन् ! आपने जो वाक्यों कहे सो सब बोले. गौतम स्वामी बोले कि ऐसा गृहस्थ को दीक्षा देना, मुण्डित करना, सावध करना कल्पे ? हां भगवन् ! ऐसे दूसने चारित्र

इस से ए० इस प्रकार का वि० विहार से वि० विचरतों तं० उन को आ० यावत् आ० आगार में व रहे इ० हां प० रहे ते० इस से त तथा प्रकार का क० कल्पता है सं० भोजन कराने को णो० नहीं इ० यह अर्थ स० समर्थ से०वे जे०जो से०वे जी०जीव जे०जो प प्रथम णो०नहीं क०कल्पता है सं० भोजन कराने को से० वे जे जो से० वे जी जीव आ० बीच में क० कल्पता है स० जीमाने को से० वे जे० जो से० वे जी० जीव इ० अभी णो० नहीं क० कल्पता है स० जीमाना प० प्रथम अ० अश्रमण आ० बीचमें स०

हंता आइक्खियव्वे त चेव उवट्ठाविचिए जाव कप्पति? हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पति समुंजित्तए? हंता कप्पति तत्तेण एयारूवेण विहारेण विहरमाणा तं चेव जाव आगार वएज्जा? हंता वएज्जा तेणं तहप्पगारा कप्पति समुंजित्तए ? णो इणट्ठे समट्ठे से जे से जीवे जे परेणं णो कप्पति समुंजित्तए, स जे से जीवे आरेणं कप्पति सं

करे ! भगवन् ब उपम करे क्या उन को यथाप्रकार का धर्म सुनाना ? हां भगवन् सुनाना यावत् उन को दीक्षा देनी कल्पे ? हां भगवन् कल्पे यहां तक सब अधिकार कहना जो परिव्राजक चारित्रिय बन हुवे हैं उन को मंडल में बैठाना कल्पे? हां भगवन् कल्पे आहार पानी लेना कल्पे? हां भगवन् लेना कल्पे इस तरह विचरते हुवे तथा प्रकारके कर्मों से गृहस्थावास का सेवन करे? हां भगवन् गृहस्थावासका सेवन करे तब उन का पूर्वोक्त रीति से आहार पानी लेना देना, अथवा मंडली में बैठाना कल्पे या नहीं ? तब साधु बोले कि यह

ऐसा भा० जानना ॥ १५ ॥ भ० भगवान् उ० बोले णि निर्ग्रंथने को पु० पूछना आ० आयुष्मान् नि० निर्ग्रंथ इ० यहां प० सन्यासी प० सन्यासीनी अ० अन्य ति० तीर्थ से आ आकर ध० धर्म स० सुनने का उ० उपस्थन्त होवे हं हां उ० उपस्थन्त होवे किं० क्या ते० उन को त० तथा प्रकार का ध० धर्म आ० कहना हं० हां आ कहना उं० उन को उ० सावधान करना जा० यावत् क० कल्पता है हं० हां क० कल्पता है किं० क्या ते० उन को त० तथा प्रकारका क० कल्पता है सं० भोजन कराने को हं० हां क० कल्पता है त०

जाव सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ स एव मायाणह, णियठा से एव मायाणि-यव्वं ॥ १५ ॥ भगवं च ण उयाहु णियठा खलु पुच्छियव्वा, आउसंतो नियठा इह खलु परिव्वाइय वा परिव्वाइआउ वा अन्नयरेहिंतो तित्थाययणेहिंतो आगम्म धम्म सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा? हंता उवसंकमेज्जा किं तेसिं तहप्पगारेण धम्मे आइक्खियव्वे?

संयत और पीछे असंयत ऐसे तीन अवस्था हुए ऐसा होने से वह जीव सदा काल असंयत या संयत नहीं कहा जा सकता है वैसे ही त्रस स्थावर जीवों का जानना जब त्रस था तब त्रस और स्थावर था तब स्थावर ही रहा यह दूसरा दृष्टांत हुआ ॥ १८ ॥ अब भगवंत श्री गौतम स्वामी तीसरा दृष्टांत कहते हैं इस दृष्टांत में भी निर्ग्रन्थों को पूछना इसलिये साधुओं को संबोधन कर कहते हैं कि अहो आयुष्मन्तो! इस जगत् में परिव्राजिक और परिव्राजिका रहते हैं वे अन्य तीर्थ में से आकर धर्म सुनने का उद्यम

मा० नहीं स० निश्चय म० मेरे प्राणातिपात का प० प्रत्याख्यान पूर्ण पो० पोषध स० सम्यक् अ० करते हुवे वि० विचरेंगे थू० बडा पा करेंगे ए० ऐसे थू० बडा मु० मृषावाद थू० बडा अ० अदत्तादान थू० बडा मे० मैथुन थू० स्थूल प० परिग्रहका प० प्रत्या स्यान करो इ इच्छानुसार क० करेंगे दु० दोकरण ति० तीन जोग से लिये कि० किंचित् क० करेंगे क० करावो त० तहां प० प्रत्याख्यान करेंगे ते० तहां अ० नहीं भोगवकर म० नहीं पीकर अ० नहीं स्नानकर आ० पल्यंक पे० पोषा से प० उतरकर ते० वे त० तथा का० कालगते

मुडा भवित्ता आगाराउ अणगारियं पव्वइत्ताए वयं णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो एवं थूलगं मुसावायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो इच्छापरिमाणं करिस्सामो दुविहं तिविहेणं मा खलु ममट्ठाए किंचि करेह वा करावेह वा

अब श्री गौतम स्वामी बोले कि कोई श्रमणोपासक श्रावक ऐसा होवे कि मैं गृहस्थाश्रम से नीकलकर साधुपना अंगीकार करने को अशक्त हूं जिस से चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा और कल्याणिक तीथि में पोषध व्रत पालता हुवा विचरुंगा, और स्थूल प्राणातिपात मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का इच्छानुसार दोकरण और तीन जोग से प्रत्याख्यान करुंगा मेरेलिये पोषध व्रत में पचन पाचनादिक करुंगा नहीं और कराबूंगा भी नहीं इस तरह करने वाला श्रावक अन्न, पानी, स्नान, पर्यंकादिक का त्याग

श्रमण इ० अभी म० अश्रमण म० अश्रमण से सि• सिद्धि णो० नहीं क० कल्पता है स० श्रमण से नि० निर्ग्रंथ को सं• भोगाना स० है ए० ऐसा आ० मानो णि० निर्ग्रंथ ने से० वे ए० ऐसा आ• मानना ॥ १६ ॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक स• श्रमणोपासक भ० हैं ते• उस में मु० मुंडा हुवा पु० परिले भ० होवे हैं णो० नहीं ख• निश्चय ए० एस सं० समर्थ मुं० मुंड भ० होने को आ० आगारमें अ० अनागार को प० पालने को च० एस चा० चतुर्दशी अ० अष्टमी उ० पुण्य तीथि पु० पूर्णिमा में प० प्रति

मुजिसए, से जे से जीवे जे इयाणिं णो कप्पति संभुंजित्तए परेण अस्समणे, आरेण समणे, इयाणिं अस्समणे अस्समणेण सिर्द्धिं णो कप्पति समणेण निग्गंथाण संभुंजित्तए से एव मायाणह णियंठा से एव मायाणियव्व ॥ १६ ॥ भगवं च ण उदाहु संतेगइ-या समणोवासगा भवंति तेसिं च ण एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वय संचाएमो

अर्थ समर्थ नहीं ऐसा है अर्थात् उन को मंडली में बैठाना नहीं कल्पता है अब देखो कि जीव एक ही है, पहिले उस की साथ आहार पानी का लेना देना नहीं कल्पता था, बिच में लेना देना कल्पता था, और फीर संयम से भ्रष्ट हुवा तब आहारादिक का लेना नहीं कल्पे पहिले अश्रमण, फीर श्रमण और बाद में अश्रमण ऐसी तीन अवस्थाओं हुइ ऐसा दृष्टांत त्रसस्थावर जीवों में जानना जब त्रस था तब त्रस ही और स्थावर हुवा तब स्थावर ही जानना इसलिये इन निर्ग्रन्थों की साक्षी से देश से व्रत ग्रहण करना प्रमाण है॥१६॥

सास्यान भ० होता है इ० ऐसा से० यह म० महान् कायावाले अ० जिस को तु० तुम व० कहते हो व० उस को ना० यावत् भ० यह भे० भेद णो० नहीं णे० न्याययुक्त भ० होता है ॥ १७ ॥ भ भगवान् व० बोले सं० कितनेक स० श्रमणोपासक भ० हैं ते० उसमें ऐ० ऐसा वु० कहाहुवा पु० पूर्वे भ० है णो० नहीं ख० हम सं समर्थ हैं मुं० मुंड भ० होनेको आ० आगारसे जा० यावत् प० प्रव्रजिको णो० नहीं ख० हम स० समर्थ हैं चा० चतुर्दशी अ० अष्टमी उ० पुन्यातिथि पु० पूर्णिमामें आ यवत् अ० पालतेहुवे वि०

क्खाय भवइ इति से महयाओ जण्ण तुब्भे वयह त चेव जाव अयंपि भेदे से णोणे याउए भवइ ॥ १७ ॥ भगवं च ण उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिं च ण एवं वुत्त पुव्वं भवइ, णो खलु वय संचाएमो मुंडा भवित्ता आगाराओ जाव पव्व इत्तए णो खलु वय संचाएमो चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु जाव अणुपालेमाणा

पर्याय नहीं है जिस से श्रावक को एक भी प्राणातिपात का प्रत्याख्यान हो सके वो तुम्हारा यह वचन मिथ्या है ॥ १७ ॥ फीर गौतम स्वामी कहते हैं कि किसी श्रमणोपासक को ऐसा विचार होवे कि मैं साधुपना अंगीकार करने को समर्थ नहीं हूं और श्रावक के व्रत अंगीकार कर चतुर्दशी आदि तीथियों में पोषध व्रत भी अंगीकार करने को समर्थ नहीं हूं, परंतु मृत्यु समय में संलेखना कर के अपनी आत्मा को धर्म में पोषूंगा ऐसा विचार कर पर्यंकादिक से उतरना यावत पूर्वोक्त विधि अनुसार यावज्जीव

मास कि० कैसा व वक्तव्य सि० होवे स० सम्यक् का० काल को प्राप्त व० वक्तव्य सि० होवे ते० वे पा० माणी वु० कहे जाते हैं ते० वे त० त्रस वु० कहमाते हैं ते० वे म० बडी कायावाले ते० वे चि० दीर्घ स्थितिवाले ते० वे ब० बहुत प० मम माणी जे० जिस में स० श्रमणोपासक को सु० अच्छा मत्या स्यान भ० होता है त० वे अ० अल्प त्रस पा० माणी जे० जिस में स० श्रमणोपासक को भ० बम

तत्थवि पच्चक्खाइस्सामो तेण अभोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाओ पच्चारु-हित्ता ते तहा कालगया किं वत्तव्वं सिया सम्मं कालगतात्ति वत्तव्वं सिया ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चति ते महाकाया ते चिरट्ठिइया ते बहु यरगा पाणा जेहिं सम-णोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्च-

कर के पोषध व्रत अंगीकार करे. उस समय यह काल करजावे तो उस का मरण कैसा कहा जावे? निर्ग्रंथने उत्तर दिया कि सम्यक् प्रकार से उस का मरण हुआ इस तरह जिनोंने काल किया उन की अवश्य ही देवलोक में उत्पत्ति होती है यहां उत्पन्न होने वाले को प्राण, त्रस, बडी काया अथवा लम्बीस्थितिवाले कहते हैं ऐसे बहुत जीवों में श्रावक को निवृत्ति है और थोडे जीवों में निवृत्ति नहीं है इस तरह त्रस काया से उपशम है और प्रत्याख्यान रखने का उपाय है ऐसा श्रावक को तुम कहते हो कि ऐसी कोई

पर भे० भेद से० वह णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥ १८ ॥ भ० भगवान् व बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं त थद भ० जैसे म० बडी इच्छा वाले म० महा आरंभी म० महा परिग्रही अ अध र्मी जा० यावत् दु० दुष्प्रत्यानंदी जा० यावत् स० सर्व प० परिग्रह से अ० अनिवृत्त जा० जावजीव जे० जिसमें स० श्रमणोपासक आ० ग्रहण करते आ० मरण तक दं दंड में णि० निषेध त० वे त० नहां से आ० आयुष्य वि० स्यजते हैं त० वहां से भु० फीर स० संचित कर्म से दु० नरक गति में जानेवाले भ०

भवन्ति सिया ते पाणावि वुच्चंति जाव अयपि भेदे, से णो णेयाउए भवइ ॥ १८ ॥
भगवं च णं उवाहु सतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा महइच्छा, महारंभा, महापरिग्ग
हा अहम्मिया जाव दुप्पडियाणंदा जाव सव्वाओ परिग्गहाओ अप्पडिविरया, जावजी
वाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए दंडे णिक्खित्ते ते सतो आउग

पूर्ववत् ॥ १८ ॥ इस जगत में कितनेक मनुष्य बहुत इच्छा वाले, बहुत लोभी, बहुत आरंभी, परिग्रही, अधर्मी यावत् दूसरे का बूरा होने में आनंद मानने वाले तथा प्राणातिपात से नहीं निवर्तने वाले हैं श्रावक ने पहिला व्रत ग्रहण करने से ऐसे जीवों की घात का जावजीव तक त्याग किया है अब वे अविरति जीवों मनुष्य भव का आयुष्य पूर्ण हुवे बाद अपने किये हुवे कर्मों के अनुसार नरक में उत्पन्न होवें वहां से प्राण कहे जा सकते हैं, और त्रस भी कहे जा सकते हैं उन को बडी काया वाले, लम्बी स्थिति वाले

विचरनेको व० हम अ० पश्चात् म० मरणान्तमें सं० संलेखणा मू० स्थापना मू० स्थापकर भ० आहार पानीका प० प्रत्याख्यान करके जा० यावत् का० कालको अ नहीं वांच्छता वि० विचरेंगे स० सर्व पा प्राणा तिपात का प० प्रत्याख्यान करेंगे जा० यावत् स० सर्व प० परिग्रहका प० प्रत्याख्यान करेंगे ति० ती न करण ति० तीनजोगसे मा० नहीं म० मेरेलिये किं० किंचित् जा० यावत् आ० पलंग पे० मां चासे प उतरकर ए० इनका त० तथा का० कालको प्राप्त किं क्या व० वक्तव्य सि० होवे स० सम्यक् का काल को प्राप्त व० वक्तव्य सि० होवे ते० वे पा० प्राणी मु० करे जाते हैं जा० यावत् अ०

विहरित्तए वय ण अपच्छिममारणांतियं संलेहणा जूसणा जूसिए भत्तपाण पडियाइक्खि-या जाव कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो, जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो तिविहं तिविहेणं मा खलु ममट्ठाए किंचि वि जाव आसंदीपढियाओ पच्चोरुहित्ता एते तहा कालगयाइ किं वत्तव्वं सिया सम्मं कालगयाइ

तीन करन और तीन जोग से अठारह पापस्थानों का व चारों आहार का त्याग कर मृत्यु की वांच्छा नहीं करता हुआ विचरे और आयुष्य पूर्ण कर के मर जावे तो उस का कैसा मरण कहा जावे ? निर्ग्रंथ बोले कि सम्यक् रीति से मरण हुआ ऐसा करता हुआ वह भी उत्तम देवलोक में उत्पन्न होता है शेष

जे० जिस में स० श्रमणोपासक के मा० ग्रहण करते मा० मरणतक दं दण्ड में णि० निषेध ते० वे त० तहां से आ० आयुष्य वि० त्यजते हैं स० वे त० तहां से भु० फीर सं० संचित कर्म से स० अच्छीगति में जानेवाले भ० हैं त० वे पा० प्राणी वु० कहलाते हैं जा० यावत् णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है॥२०॥ भ० भगवान् उ० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० वह ज० जैसे अ० अल्प इच्छावाले अ० अल्पारंभी अ० अल्प परिग्रही ध० धार्मिक ध० धर्मानुसारी जा यावत् ए० एकपक्ष से प० परिग्रह से अ०

जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया जाव जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति ते तओ भुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो भवंति, ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २० ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा अप्पेच्छा, अप्पारंभा, अप्पपरिग्गहा,

यहां भाष भी कहे जाते हैं यह सब पाठ पूर्ववत् मानना इस लिये तुम्हारा वचन मिथ्या है ॥ २० ॥ और भी गौतम स्वामी कहते हैं कि इस जगत में कितनेक मनुष्य अल्प इच्छा वाले, अल्प आरंभ वाले, परिग्रह वाले, धार्मिक, धर्मानुरागी, प्राणातिपातादिक एक देश से निवृत्ति और एक देश से अनिवृत्ति ऐसे दोनों पक्ष का सेवन करने वाले हैं अब श्रावक को व्रत ग्रहण काल से लेकर यावज्जीव तक त्रस होने से उन की जीव घात का निषेध है यह विरताविरत पुरुष आयुष्य छोड कर अपने पूर्वोपार्जित कर्मों से सद्गति में

हैं वे० वे पा० प्राणी कु० कहेजाते हैं त० वे त० त्रस वु० कहेजाते हैं ते० वे म० बडी कायावाले ते० वे चि० दीर्घ स्थितिवाले ते० वे व० बहुत प० त्रसप्राणी आ० प्रारंभ करते से० वे म० बडे ज० जिस को तु तुम व० कहते हो तं० उस को अ० यह मे० भेद से० उस को णो० नहीं णे० न्याय युक्त भ० है ॥ १९ ॥ भ० भगवान् व० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं तं० यह ज जैसे अ० अनारंभी अ० अपरिग्रही ध० धर्मिष्ट ध० धर्मानुसारी जा० यावत् स० सर्व प० परिग्रह से प० निवृत्त जा० यावजीव

निप्फज्जहति ततो भुज्जो सगमायाए दुग्गइगामिणो भवंति, ते पाणावि वुच्चति, ते त सावि वुच्चति ते महाकाया ते चिरट्ठिइया ते बहुयरगा, आयाणसोइति से महयाओ णं जण्णं तुब्भ वदह त चेव अयपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १९ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तंजहा अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया

भी कर सकते हैं वे बहुत जीव की त्रस जाति को प्राप्त होवें इसलिये उनका विनाश होने पर श्रावक को भच्छा प्रत्याख्यान होवे इत्यादिक सब पूर्ववत ॥ १९ ॥ इस जगत में कितनेक मनुष्य निरारंभी, धर्मात्मा, धर्मानुयायी, अठारह पाप स्थानों का प्रत्याख्यान करने वाले और व्रत अंगीकार कर सब पापों से दूर रहन वाले हैं अब श्रावक परिग्रह व्रत अंगीकार करने से मरण पर्यंत उन की घात से निवर्ते हुवे हैं वे सर्व विरति वाले मनुष्य आयुष्य पूर्ण कर अपने पूर्वोपार्जित कर्मों से शुभ कर्म लेकर सद्गति में जाते

मरण करते मा० मरणसमय दं० दंड में णि० निषेध म० है णो० नहीं ब० बहुत संयमी णो० नहीं ब० बहुत प० निवृत्त पा० प्राणी भू० भूत जी० जीव स० सत्व से ते० वे स० होते अ० आत्मा से स० सत्य मृषा ए० ऐसा वि० करते हैं अ० मैं ण नहीं हूं हणने योग्य अ० दूसरे को ह० हणना जा० यावत् का० काल के अवसर में का० काल कि० करके अ० अन्य आ० आसुरिक कि० किल्वीषी जा० यावत् उ० उपजनेवाले भ० होते त० वहां से वि० चवकर भु० बारबार ए० गूंगापने त० अंधबधिरपने प० उत्पन्न होते हैं ते० पूर्ववत् ॥२२॥ भ०भगवान् उ० बोले स० कितनेक पा०प्राणी दी०दीर्घायुष्यवाले जे०जिसमें स०श्रमणोपासक को

भवइ, णो बहु सजया णो बहु पडिविरया पाणभूयजीवसत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चामोसाइं एवं विप्पडिवेदेंति, अहं ण हंतव्वो अन्ने हंतव्वा जाव कालमासे कालं किच्चा, अन्नयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं जाव उववत्तारो भवंति तओ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए तमोरूवत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २२ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया पाणा दीहाउया जेहिं समणोवासगस्स

भूत, जीव और सत्व से नहीं निवर्तनेवाले हैं, तथा ऐसी मिश्रभाषा बोलते हैं कि हम को हणना नहीं अन्य को हणना ऐसे पुरुषों काल के अवसर में काल कर के बाल तप के प्रभाव से असुरादिक देव में उत्पन्न होवे और वहां से चवकर बहिरा, गूंगा मनुष्यपने उत्पन्न होवे ऐसे होने पर भी वे त्रस कहाते हैं इत्यादिक सब पूर्ववत् ॥ २२ ॥ और भी गौतम स्वामी फरमाते हैं कि इस में कितनेक त्रस प्राणी ऐसे

भनिगृत्त भे० जिस में स० श्रमणोपासक को आ० ग्रहण करते आ० मरणतक द० दंड में णि० निषेध ते० वे त० तहां से आ० आयुष्य वि० त्यजते हैं त० तहां से पु० फीर स० संचित कर्म से स० भच्छीगति में जानेवाले भ० हैं ते० वे पा प्राणी वु० कहलाते हैं जा० यावत् णो० नहीं ण० न्याय युक्त भ० है ॥२१॥ भ० भगवान् व० बोले सं० कितनेक म० मनुष्य भ० हैं त० यह ज० जैसे आ० अरण्यवासी आ० पर्ण कुटीनिवासी गा० गाम की पास रहनेवाले क० कोई र० गुप्ताचारी जे० जिस में स० श्रमणोपासक आ०

धम्मिया धम्माणुया जाव एगचाओ परिग्गहाओ अप्पाडिविरया जेहिं समणोवासग स्स आयाणसो आमरणताए दंडे णिक्खित्ते ते तओ आउग विप्पजहंति, ततो भुज्जो सगमादाए मग्गइगामिणो भवंति ते पाणावि वुच्चति जाव णो णेयाउए भवइ ॥२१॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आरण्णिया, आवसहिया, गामणि यंतिया, कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए दंडे णिक्खित्ते

जावे वे यहां उत्पन्न होवे प्राण व त्रस भी कहे जाते हैं यह सब अधिकार पूर्ववत् मानना ॥२१॥ अब गौतम स्वामी कहते हैं कि इस जगत में कितनेक मनुष्य अरण्य में वास करने वाले, कंद मूलका आहार करने वाले, पर्णकुटि में रहने वाले, ग्राम की पास रहने वाले, तथा रहस्य के करने वाले तपास हैं अब श्रावक को तो प्राणातिपात का प्रत्याख्यान होने से उन की हिंसा का निषेध हुवा वे असंयति, अविरति, प्राण

करते हैं क० करके पा० पूर्ववत् ॥ २१ ॥ स० सरिखे आयुष्यवाले शेष पूर्ववत् ॥ २४ ॥ पूर्ववत् ॥ २९ ॥

जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खाय भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २४ ॥ भगवं च णं उदाहु संतेगइया पाणा अप्पाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए जाव दंडे णिक्खित्ते भवइ ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते अप्पाउया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ ॥ २५ ॥ भगवं

आयुष्य पालने वाले होवे हैं जब जिस दिनसे उन्होंने व्रत ग्रहण किया होवे वहांसे मरणांत तक उनकी हिंसा का निषेध हुवा है फीर वे साथ ही काल कर परलोक में जाकर उत्पन्न होवे, उनको प्राणी, त्रस, बडे शरीर, और लम्बी स्थिति वाले कहना उन का भी श्रावक को नियम होता है तो फीर श्रावकको सुप्रत्याख्यानी क्यों नहीं कहना? इसलिये तुम्हारा कथन न्याय का नहीं है ॥ २४ ॥ और भी कितनेक जीवों श्रावक से अल्प आयुष्य वाले हैं इस में भी श्रावक को सुप्रत्याख्यान होता है क्यों कि बहुत जीवों में प्रत्याख्यान है और थोडे जीवों में प्रत्याख्यान नहीं है अल्प आयुष्य वाले त्रस जब तक मरण को प्राप्त न होवे वहां तक श्रावक को तो उन का प्रत्याख्यान है और वहां से चवकर उसी त्रस काया में उत्पन्न होवे तो आगे भी श्रावकको प्रत्याख्यान हो सकता है, इस तरह श्रावकको सुप्रत्याख्यानी क्यों न कहा जावे? सो तुम्हारा कथन न्याय का नहीं है ॥२५॥ और भी श्री गौतम स्वामी फरमाते हैं कि कितनेक

भा०ग्रहण करते भा० मरणतक जा० यावत् दं०दंड में णि०निषेध भ० है ते० वे पु०पहिले का० काल क०

आयाणसो आमरणताए जाव दंडे णिक्खित्ते भवइ, ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतिचा पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति, ते तसावि वुच्चंति, त महाकाया ते चिरट्ठिइया, ते दीहाउया, ते बहुयरगा, जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ जाव णो णेयाउए भवइ॥२३॥भगवं च णं उदाहु सतेगइया पाणा समाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए जाव दंडे णिक्खित्ते भवइ, ते सममेव कालं करेंति करेंतिचा पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति तसावि वुच्चंति, ते महाकाया ते समाउया, ते बहुयरगा

है, कि जिनों का आयुष्य व्रतधारी श्रावकों से भी अधिक है वे देव, नरक, तिर्यंच व मनुष्यपने परलोकमें उत्पन्न होते हैं उनको त्रस जीव, बडे शरीर वाले, दीर्घ आयुष्य वाले, ऐसे बहुत प्रकार के जीवों कहे हुवे हैं श्रावक ने तो व्रत ग्रहण करने से जीवन पर्यंत उन की घात करने का नियम किया है, परंतु श्रावक तो उनके पहिले ही आयुष्य पूर्ण कर देवगति आदि में उत्पन्न हो कर अव्रति बन गया तो फीर उन का व्रत भंग कैसे होवे. इसलिये तुम कहते हो कि ऐसी कोई पर्याय नहीं है कि जिस से श्रावक प्रत्याख्यान करसके ऐसा तुम्हारा वचन न्याय का नहीं है ॥ २३ ॥ और भी कितनेक त्रसप्राणी श्रावक [illegible]

आरेण जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए दंडे णिक्खित्त ते तओ आउ विप्पजहाति विप्पजहतित्ता तत्थ आरेण चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंड अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते तेसु पच्चायति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चति ते तसा ते चिरट्ठिइया जाव अयपि भेदे से ॥ २७ ॥ तत्थ जे आरेण तसा

जो प्राण, भूत, जीव व सत्व रहे हुवे हैं, उनकी घात मैं नहीं करूंगा " उस भूमि में भी जो त्रस प्राणी रहे हुवे हैं, उनकी घात का भी श्रावक को जावजीव तक का प्रत्याख्यान है और वे जीव भी वहां से चवकर त्रसपने उत्पन्न होवे तो उन का भी श्रावक को प्रत्याख्यान रहा हुवा है इसलिये श्रावक को अच्छा प्रत्याख्यान कहा जा सकता है ॥ २८ ॥ (१) मर्यादित भूमि के बाहिर जो त्रस जीवों रहे हुवे हैं, उन की घात का त्याग श्रावक को व्रत ग्रहण किया वहां से लेकर जीवन पर्यंत है वे त्रस जीव मर कर मर्यादित भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे तब श्रावक को अनर्थ हिंसा का त्याग है इसलिये उस की घात से भी श्रावक निवर्ते हुवे हैं जिस से उनको सुप्रत्याख्यानी कहना यह प्रथम भंग हुवा ॥ २७ ॥ (२) जितनी भूमि की मर्यादा है उस भूमि के त्रस जीव मर्यादित भूमि में आकर त्रस और स्थावरपने

सा० सामायिक दे० देशावगासिक पु० प्रमाण में शेष पूर्ववत् ॥ २६ ॥ पूर्ववत् ॥ २७ ॥

च णं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति—तेसिं च णं एवं वुत्त पुव्व भवइ—णो खलु वय सचाएमो मुंडे भवित्ता जाव पव्वइत्तए, णो खलु वय सचाएमो चाउद्दसट्ठ-मुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुन्न पोसह अणुपालित्तए, णो खलु वयं सचाएमो अपच्छि-म जाव विहरित्तए, वय च णं सामाइय देसावगासियं पुरत्था पाईणं पडीण दाहिण उदीण एतावता जाव सव्वपाणेहिं जाव सव्व सत्तेहिं दंडेहिं णिक्खित्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेहिं खेम करेइ अहमंसि तत्थ आरेण जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते तओ आउं विप्पजहाति विप्पजहित्ता, तत्थ आरेण चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो जाव ते सुपच्चायति जेहिं समणो वासगस्स सुपच्चक्खाय भवइ, ते पाणावि जाव अयपि भेदे से (१) ॥ २६ ॥ तत्थ

श्रावकों के मन में ऐसा विचार होता है कि मैं न तो साधुपना ग्रहण कर सकता हूं न अष्टमी, चतुर्दशी व कल्याणिक तीथियों में पौषध व्रतादि अंगीकार कर सकता हूं, वैसे ही संथारा करने की मेरी शक्ति नहीं है किन्तु मैं सामायिक व देशावगासिक व्रत धारण कर सकूंगा अर्थात् पर्यादित द्रव्य क्षेत्र काल से अधिक वस्तु का सेवन नहीं करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा कर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर दिशा में

आरेण जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए दंडे णिक्खित्त ते तओ आउ विप्पजहंति विप्पजहतित्ता तत्थ आरेण चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए दंडे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चंति ते तसा ते चिरट्ठिइया जाव अयंपि भेदे से ॥ २७ ॥ तत्थ जे आरेण तसा

मो प्राण, भूत, जीव व सत्व रहे हुवे हैं, उनकी घात मैं नहीं करूंगा” उस भूमि में भी जो त्रस प्राणी रहे हुवे हैं, उनकी घात का भी श्रावक को जावजीव तक का प्रत्याख्यान है और वे जीव भी वहां से चयकर त्रसपने उत्पन्न होवे तो उन का भी श्रावक को प्रत्याख्यान रहा हुवा है इसलिये श्रावक को अच्छा प्रत्याख्यान कहा जा सकता है ॥ २६ ॥ (१) मर्यादित भूमि के बाहिर जो त्रस जीवों रहे हुवे हैं, उन की घात का त्याग श्रावक को व्रत ग्रहण किया वहां से लेकर जीवन पर्यंत है वे त्रस जीव मर कर मर्यादित भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे अब श्रावक को अनर्थ हिंसा का त्याग है इसलिये उस की घात से भी श्रावक निवर्ते हुवे हैं जिस से उनको सुप्रत्याख्यानी कहना यह प्रथम भंग हुवा ॥ २७ ॥ (२) जितनी भूमि की मर्यादा है उस भूमि के त्रस जीव मर्यादित भूमि में आकर त्रस और स्थावरपने

पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए, तओ आउ विप्पजहति, विप्पजहतित्ता, तत्थ परेण जे तसा थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए तेसु पच्चायति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खाय भवइ ते पाणावि जाव अयपि भेदे से ॥ २८ ॥ तत्थ जे आरेण थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते तओ आउ विप्पजहति विप्पजहतित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए ते सुपच्चायति तेसु समणोवासगस्स सुपच्चक्खाय भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से णो ॥२९॥ तत्थ जे ते आरेण जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते तओ आउ विप्पजहति विप्पजहतित्ता ते तत्थ आरेणं चेव जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते

उत्पन्न होवे यह दूसरा भेद ॥२८॥ (३) मर्यादित भूमि की बाहिर के स्थावर जीवों मरकर मर्यादित भूमि में त्रसपने उत्पन्न होवे उसकी घात से निवर्ते ॥ २९ ॥ (४) मर्यादा के ...

सुपच्चायंति तहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अणट्ठाए ते पाणावि जाव अयपि भेदे से णो॥ ३०॥
तत्थ जे ते आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अण-
ट्ठाए णिक्खित्ते तओ आउ विप्पजहति विप्पजहतिचा तत्थ परेणं जे तसथावरा पा-
णा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायति तेहिं समणोवासगस्स
सुपच्चक्खाय भवइ ते पाणावि जाव अयपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ ३१ ॥
तत्थ जेते परेणे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए ते त-
ओ भाउं विप्पजहंति विप्पजहतिचा तत्थ आरेण जे तसा पाणा जेहिं समणोसवाग-
स्स आयाणसो आमरणताए ते सुपच्चायति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवंति

मर्यादा वाली भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे ॥ १० ॥ (५) मर्यादा बाहिर जो भूमिका है और मर्यादा के अंदर जो भूमिका है उस में रहे हुवे स्थावर जीवों वहां से चवकर स्थावर पने उत्पन्न हो जावे ॥ ११ ॥ (६) मर्यादित भूमि के त्रस और स्थावर जीवों वहां से मृत्यु पाकर मर्यादा बाहिर की भूमि में त्रसपने जाकर उत्पन्न हो जावे ॥ १२ ॥ (७) मर्यादित भूमि के

पूर्ववत् ॥ २८ ॥ पूर्ववत् ॥ २९ ॥ पूर्ववत् ॥ ३० ॥ पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ पूर्ववत् ॥ ३३ ॥

ते पाणावि जाव अयपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ ३२ ॥ तत्थ जे ते परेण तस थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए ते तओ आउ विप्पजहति-विप्पजहतिचा तत्थ आरेण जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते सुपच्चायति जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते जाव ते पाणावि जाव अयपि भेदे से णो ॥ ३३ ॥ तत्थ जे ते परेण तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणताए ते तओ आउ विप्पजहति विप्पजहंतिचा ते तत्थ परेण चेव जे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवास

त्रस और स्थावर जीवों मृत्यु पाकर मर्यादा बाहिर की भूमि में स्थावरपने उत्पन्न होवे ॥ ३१ ॥ (८) मर्यादित भूमि के त्रस और स्थावर जीवों वहां से मृत्यु पाकर पीछे उसी ही मर्यादित भूमि में त्रस और स्थावरपने उत्पन्न होवे ये आठ भांगे हुवे और नवमा भांगा प्रथम कहा सो ऐसे नव भांगे हुवे ऐसे नव भांगों से श्रावकों को प्रत्याख्यान होता है इन प्रत्याख्यान में यहां २ त्रस जीव कहे हैं उनका जावजीव तक सर्वथा प्रकार से श्रावक त्याग करे और यहां स्थावर

पूर्ववत ॥ ३४॥ भ० भगवान् ब० बोले ण० नहीं ए० ऐसा भू० हुआ ण० नहीं ए० ऐसा भ० होता है ण० नहीं ए० ऐसा भ० होगा ज० जा त्र त्रस पा० प्राणी वो विच्छेद होंगे था० स्थावर पा० प्राणी भ होंग था० स्थावर पा० प्राणी वो० विच्छेद होंगे त्र त्रस पा० प्राणी भ होंगे अ० अविच्छेद त० त्रस था० स्थावर पा० प्राणी से ज० जो तु तुम अ० अन्य व कहते हो ण० नहीं है से० उनको के कोई प० पर्याय जा० यावत् णो० नहीं ने न्याय युक्त भ है ॥ ३५ ॥ भ० भगवान् व० बोले आ० आयुष्मान्

गरस आयाणसो आमरणताए ते सुपच्चायंति ते समणोवासगस्स सुपच्चक्खाय भवइ ते पाणानि जाव अयपि भेदे से णो ॥ ३४ ॥ भगवं च णं उवाहु—ण एत भूयं ण एतं भव्वं ण एतं भविस्सति जण्णं तसा पाणा वोच्छिज्जिहिंति थावरा पाणा भविस्सति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिहिंति तसा पाणा भविस्सति अवोच्छिन्नेहिं तसथावरेहिं पाणहिं जण्णं तुब्भे वा अन्नो वा एवं वदह णत्थिणं से कइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥३५॥

मरे हैं उनकी अनर्थ हिंसा करे नहीं इन नव भांगोंमे श्रावकको प्रत्याख्यान होवे ॥३४॥ श्री गौतम स्वामी फरमाते हैं कि अहो उदक पेढाल पुत्र ! ऐसा कभी हुआ नहीं है और न ऐसा होता है और ऐसा होनेका भी नहीं है कि सब त्रस प्राणी स्थावरपने उत्पन्न हो जावे और त्रस का सर्वथा प्रकार से विच्छेद हो जावे वैसे ही सब स्थावर जीवों मरकर त्रसपने उत्पन्न होवे और स्थावर का विच्छेद होजावे इसलिये तुम जो कहते

उ० उदक जे० जो स० श्रमण मा० ब्राह्मण को प० निन्दता है मि मैत्री म० मानता है आ० प्राप्तकर ना० ज्ञान मा० प्राप्तकर द० दर्शन मा० प्राप्तकर च० चारित्र पा० पापकारी क० कर्म अ० नहीं करने का से० वह स० निश्चय प० परलोक प० विघात में चि० रहे स० पूर्वस्त सि० सियुद्धिमें चि० रहे त० तब से० वह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान् गो० गौतम को अ० आदर किया बिना मा० जिस दि० दिशा से पा०

भगवं च णं उदाहु आउसतो उदगा जे खलु समण वा माहण वा परिभासइ मिति मन्नति, आगमित्ता णाणं, आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं, पावाणं कम्माणं अकरणयाए, से खलु परलोगपलिमंथात्तए चिट्ठइ जे खलु समण वा माहण वा णो परिभासइ मितिमन्नंति आगमित्ता णाणं आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं, पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगविसुद्धिए चिट्ठइ ॥ तएणं से उदयपेढालपुत्ते

हा कि ऐसी कोई पर्याय नहीं है कि जिस से श्रावक को प्राणातिपात का प्रत्याख्यान होवे ऐसा तुम्हारा कथन न्याय का नहीं है ॥ १५ ॥ सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र का धरने वाला, और पाप कर्म को नहीं करने वाला पुरुष भी यथोक्त संयमानुष्ठान करने वाला श्रमण, ब्राह्मण की निंदा करे तो वह परलोक का व संयम का विराधक बने और पूर्वोक्त गुण विशिष्ट पुरुष साधु की निंदा न करे तो वह संयम का व परलोक का आराधक होता है ऐसा मानकर निंदा का त्याग करना और शुद्ध संयम पालना, ऐसा गौतमस्वामी का वचन सुनकर उदक पेढालपुत्रने जिस दिशामेंसे वह आया था उसी दिशामें जाने का विचार

आयाउरा ता० उस दि० दिशा में प० विचरना की ग० जाने को ॥ ३६ ॥ भ० भगवान् उ० बोले आ० आयुष्मन् उ० उदक जे० जो त० तथाभूत स० श्रमणकी मा० माहण की अं० पासमें ए० एक ही आ० आर्य ध० धर्म का सु० वचन सो० सुनकर नि० अवधारकर आ० अपनी सु० सूक्ष्मतासे प० आलोचकर अ० अनुत्तर जो० योग्य खे० मोक्षपद लं० प्राप्त करता सो० वह भी ता० वैसा वं० उसे आ० आदर करे प पूज्य जान वं० वंदे न० नमस्कार करे स० सत्कार करे स० सन्मान दे आ० याक्त क० कल्याण कारी मं० मंगलकारी दे० देव तुल्य चे० ज्ञानवंत प० पर्युपासना करे ॥ ३७ ॥ त तब से०

भगवं गोयम अणाढायमाणा जामेव दिसिं पाउभूते तामेव दिसिं पहारेत्थ गमणाए ॥ ३६ ॥ भगवं च णं उदाहु आउसतो उदगा ! जे खलु तहाभूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयण सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लभिएसमाणे सो वि तावत आढाइ परिजाणेति वदति नमंसति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्लाण मंगलं देवय चेइय पज्जुवासति ॥ ३७ ॥

किया ॥ ३६ ॥ जाते हुवे उदक पेढालपुत्र को रोककर भगवान श्री गौतम स्वामी बोले कि अहो उदक ! तथाभूत साधु या श्रावक की पास से आर्यधर्म का पद सुनकर, अवधार कर, अपनी सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर समझे कि मुझे इनकी पास से अच्छा धर्म की प्राप्ति हुइ है और इससे मैं मेरा आत्मा को मोक्ष

पह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र भ० भगवान गो० गौतम को ए० ऐसा व० बोले ए० इन भं० भगवन् प० पद पु० पहिले अ० नहीं जाने अ० नहीं सुने अ० नहीं बोध हुवा अ० नहीं अभिगम हुवा अ० नहीं देखे अ० नहीं सुने अ० नहीं स्मरे अ० नहीं विज्ञानिक अ० नहीं करे अ० प्रगट नहीं हुवे अ० विच्छेद नहीं हुवे अ० सुनाये नहीं अ अंगीकार किये नहीं अ० अनुपधारित ए० यह अ० अर्थ णो नहीं स० श्रद्धा णो० नहीं प प्रतीत हुवा णो० नहीं रो० रुचा ए० इन भ भगवन् प० पद ए० अभी जा० जाने स० सुने बो० बोध हुवा जा० यावत उ० धारणाकिये ए० इस अ० अर्थ की स० श्रद्धा करता हूं प० प्रतीत करता हूं रो० रुचता

तएणं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं भंते पदाणं पुव्विं अन्नाणयाए असवणयाए, अबोहिए, अणभिगमेणं, अदिट्ठाणं, असुयाणं, अमुयाणं, अविन्नायाणं, अव्वोगडाणं, अणिगूढाणं, अविच्छिन्नाणं, अणिसिट्ठाणं, अणिवूढाणं, अणुवहारियाणं, एयमट्ठं णो सद्दहियं णो पत्तियं, णो रोइयं, एतेसिणं भंते पदाणं एण्हिं जाणयाए, सवणयाए, बोहिए, जाव उवहारणयाए एयमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, एवमेव से जहेयं

की प्राप्ति कराकरके तब उस पुरुष को अपने उपकारी गुरु का आदर करना, हाथ जोडना, गुणानुवाद करना, नमस्कार करना और सेवा भक्ति करना ॥ ३७ ॥ अब उदक पेढाल पुत्र भगवंत श्री गौतमस्वामी से ऐसे बोले कि हे भगवन्! आपने जो पद कहे उसे पहिले मैंने कदापि सुने नहीं, अवधारे नहीं, जाने

है ए० एमेही ज० जैसे तु०तुम व० कहते हो ॥३८॥ त० तब से० वह भ० भगवान गो० गौतमने उ० उदक पे० पेढाल पुत्र को ए० ऐसा व० कहा स० श्रद्धाकर अ० आर्य प० प्रतीत कर अ० आर्य रो० स्वीकर आ० आर्य ए० एसे ज० जैसे अ० मैं० व० कहता हूं त० तब से० वह उ० उदक पेढाल पुत्रने भ० भगवान गो० गौतमको ए० ऐसा व० कहा इ० इच्छता हूं भ०भगवान तु० तुमारी अं०समीप चा०चार याम ध० धर्म से पं० पंच व्रत स० प्रतिक्रमण सहित ध० धर्म उ० अंगीकार कर वि० विचरना ॥ ३९ ॥ त०

तुब्भे वदह ॥ ३८ ॥ तएण भगवं गोयमे उदय पेढालपुत्ते एवं वयासी सद्दहा हिण अज्जो, पत्तियाहिण अज्जो, रोइहिण अज्जो, एवमेय जहाणं अम्हे वयामो तएण से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी इच्छामिण भंते तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ॥ ३९ ॥

नहीं, स्मरण किया नहीं, बोध सहित हुवा नहीं, ऐसे पदों की मैंने श्रद्धा, प्रतीति, व रुचि की नहीं हे भगवन् ऐसे पदों आप आपकी पास से मैंने सुने, यावत् अवधारे हैं और उसकी श्रद्धा, प्रतीति व रुचि मैं करता हूं और "जैसे आप कहते हो वैसे ही है" ऐसा मैं मानता हूं ॥ ३८ ॥ तब गौतमस्वामी उदक पेढाल पुत्र को ऐसा बोले कि अहो आर्य उदक ! जो मैं भगवन्त का प्ररूपा हुवा धर्म कहता हूं उसकी तुम प्रतीति, रुचि, व श्रद्धा करो और उसको तथ्य करके मानो उदक पेढाल पुत्र बोले—अहो भगवन् ! मैं आपकी पास से चार

तब से० वह भ० भगवान गो० गौतम उ० उदक पे० पेढाल पुत्र को गे० लेकर ज० जहां स० श्रमण भ० भगवान म० महावीर ते० तहां उ० आये उ० आकर त० तब से० वह उ० उदक पे० पेढाल पुत्र स० श्रमण भ भगवान म महावीर को ति० तिन वक्त आ० आवर्तन प० प्रदक्षिणा क० की ति० तीनवक्त आ० आवर्तन प० प्रदक्षिणा क० करके व० वांदे न० नमस्कार किया वं० वंदनाकर न० नमस्कार ए० एसा वाले इ० इच्छताहूं तु० तुम्हारी अं० समीप चा० चा

तएण से भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्त गहाय जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता तएण से उदए पेढालपुत्ते समण भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करित्ता वंदइ नमंसति, वंदित्ता नमंसतित्ता एवं वयासी इच्छामिणं तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंच महव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए तएणं समणं भगवं महावीरे उदयं एवं

याम से पंच महाव्रतरूप धर्म प्रायश्चित की साथ अंगीकार कर विचरने की इच्छता हूं ॥ १९ ॥ तब गौतम स्वामी उदक पेढाल पुत्र को साथ लेकर जहां श्रमण भगवंत विराजमान थे वहां आये और महावीर स्वामी को तीनवार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करके बोले अहो भगवन् ! आपकी पास से मैं पंच महाव्रतरूप धर्म अंगीकार करने का इच्छता हूं तब श्रमण भगवान महावीर देवने फरमाया कि अहो देवानुप्रिय ! जैसे

रयाम ध० धर्मसे पं० पंचम महा व्रत स० प्रतिक्रमण सहित ध० धर्मको उ० अंगीकार कर वि० विचरने को त० तब स० श्रमण भ० भगवान म० महावीरने उ० उदकको ए० ऐसा व० कहा अ० यथासुख दे० देवानुप्रिय मा० मत प० प्रतिबन्ध क० करो त० तब से० वह उ उदक पे० पेढाल पुत्र स० श्रमण भ० भगवान म महावीर की अ० समीप चा० चारयाम ध० धर्म से पं० पांच महाव्रत स० प्रतिक्रमण सहित ध० धर्म उ० अंगीकार कर वि० विचरता है त्ति० ऐसा बे० कहता हूं ॥ ४ ॥

क्यासी अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंध करेहि तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइय सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ—त्तिबेमि ॥ ४० ॥ इति उदग पेढालपुत्त—नालंदइज्जं तेवीसम मज्झयणं सम्मत्तं ॥

* * *

तुमको सुख होवे वैसे करो धर्म में विलंब मत करो ऐसा सुनकर उदक पेढाल पुत्रने महावीर स्वामी की पास से चारयाम (महाव्रत) से पंच महाव्रत का धर्म अंगीकार कर विचरने लगे और जिन प्रणीत धर्म पालने लगे ऐसा श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्यों जम्बू स्वामी प्रमुख से कहते हैं कि जैसा मैंने श्री महावीर देवसे सुना है वैसा ही तुमको कहता हूं ॥ ४० ॥ यह उदक पेढाल पुत्र—नालंदीय नामक तेवीसवा अध्ययन समाप्त हुवा और सूयगडांग सूत्र का भावार्थ भी समाप्त हुवा *

॥ द्वितीय श्रुतस्कंध समाप्त ॥

तब से॰ वह भ॰ भगवान गो॰ गौतम उ॰ उदक पे॰ पेढाल पुत्र को गे॰ लेकर ज॰ जहां स॰ श्रमण भ॰ भगवान म॰ महावीर ते॰ तहां उ॰ आये उ॰ आकर त॰ तब से॰ वह उ॰ उदक पे॰ पेढाल पुत्र स॰ श्रमण भ भगवान म महावीर को ति॰ तिन वक्त आ॰ आवर्तन प॰ प्रदक्षिणा क॰ की ति॰ तीनवक्त आ॰ आवर्तन प॰ प्रदक्षिणा क॰ करके व॰ वांदे न॰ नमस्कार किया वं॰ वंदनाकर न॰ नमस्कार कर ए॰ ऐसा बोले इ॰ इच्छताहूं तु॰ तुम्हारी अं॰ समीप चा॰ चा

तएण से भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे भगवं महावीर तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता तएण से उदए पेढालपुत्ते समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ, तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करित्ता वंदइ नमंसति, वंदित्ता नमंसतित्ता एवं वयासी इच्छामिणं तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए तएणं समणे भगवं महावीरे उदयं एवं

याम से पंच महाव्रतरूप धर्म प्रायश्चित की साथ अंगीकार कर विचरने को इच्छता हूं ॥ ३९ ॥ तब गौतम स्वामी उदक पेढाल पुत्र को साथ लेकर जहां श्रमण भगवंत विराजमान थे वहां आये और महावीर स्वामी को तीनवार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करके बोले अहो भगवन् ! आपकी पास से मैं पंच महाव्रतरूप धर्म अंगीकार करने का इच्छता हूं तब श्रमण भगवान महावीर देवने फरमाया कि अहो देवानुप्रिय ! जैसे

॥ इति द्वितीयाग ॥

* सूयगडांग सूत्रम् समाप्तम् *

॥ वी० २४४२ भाद्रपद वदी ४ गुरु ॥

शास्त्रोद्धार प्रारंभ

वीराब्द २४४२ ज्ञान पंचमी

इति

सूयगडाङ्ग सूत्र

समाप्तम्

शास्त्रोद्धार समाप्ति

वीराब्द, २४४६ विजयादशमी